संस्कृत-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

द्वितीय भाग

नाट्यसाहित्य

(प्रथम खण्ड)

लेखक

रामजी उपाध्याय एम० ए०, डी० लिट्०

सीनियर प्रोफेसर तथा संस्कृत विभागाध्यक्ष

सागर विश्वविद्यालय, सागर

रामनारायणलाल विजयकुमार

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

२, कटरा रोड, इलाहाबाद–२११००२

प्रथम संस्करण] —— १९७२ —— [मूल्य

प्रकाशक

रामनारायणलाल विजयकुमार
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
२, कटरा रोड, इलाहाबाद-२११००२

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

संस्कृत-रूपक के साहित्यिक विन्यास का समारम्भ पहली शती ईसवी से आज तक निरन्तर होता आ रहा है। इस बीच प्रत्येक शती में सैकड़ों रूपक लिखे गये, पर उनमें से अधिकांश सुरक्षित नहीं रखे जा सके। फिर भी सहस्रों रूपक आज भी प्राप्त हैं। इन सबको एक साथ पर्यालोचन की परिधि में लाना लेखक और प्रकाशक की सामर्थ्य से बाहर है। ऐसी स्थिति में इन रूपकों को ऐतिहासिक क्रम से प्राचीन, मध्ययुगीन और अर्वाचीन तीन खण्डों में प्रस्तुत करने की योजना है। प्रथम खण्ड प्रथम शती के अश्वघोष से लेकर अष्टम शती के प्रथम चरण के भवभूति तक की रचनाओं की विस्तार पूर्वक आलोचना है। निस्सन्देह इसी युग में सर्वोत्तम रूपकों की रचना हुई। साधारणतः मान्यता है कि इस युग में उच्च कोटि के नाट्यसाहित्य का प्रणयन हुआ। यह मान्यता अधिकांशतः सत्य है। आधुनिक युग के पढ़ने-पढ़ाने वाले लोग इन्हीं रूपकों तक सीमित रह जाते हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि मध्ययुगीन और अर्वाचीन रूपकों के प्रति विराग हमारी भूल है। अभिनवगुप्त जैसे मनीषी ने अपने युग के जिन रूपकों को अमूल्य मान कर उनसे अभिनव-भारती में उदाहरण दिये हैं, उन्हें आज उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। यह हमारा दृष्टिदोष है, उन कृतियों का नहीं। यदि केवल प्राचीनतम नाट्यकृतियों में ही भारतीय नाट्यकला का सर्वोच्च उन्मेष होता और परवर्ती रूपकों में उसका अभाव होता तो कुन्तक, अभिनवगुप्त, धनिक, मम्मट, विश्वनाथ और सिंहभूपाल आदि उन परवर्ती रूपकों को उदाहरणीय नहीं मानते।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। मध्ययुग और अर्वाचीन युग में विरचित सहस्रों नाट्यकृतियों का राजसभाओं, यात्रा-महोत्सवों तथा सरस्वती-मन्दिरों में अभिनय हुआ, जिसमें तत्कालीन राजा और प्रजा रसविभोर हुई और जिससे लोगों को व्यक्तिगत रूप से आन्तरिक प्रेरणायें प्राप्त हुईं तथा समग्र राष्ट्र को अपने कृताकृत का परीक्षण करने का अवसर मिला। उन्हीं कृतियों को हम नगण्य मानकर बहुत कुछ खो चुके हैं। भारतीय इतिहासकारों ने भी विदेशी इतिहासकारों के स्वर में स्वर मिलाकर परवर्ती नाट्यकृतियों का नाम लेना भी प्रायः व्यर्थ का प्रयास समझा है। यदि आप 'अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः' कोटि से बाहर हैं तो स्वयं ही देखें कि मध्ययुग और आधुनिक युग की इन रचनाओं में कितनी कलात्मक और सांस्कृतिक निधि भरी है। आप अपनी उस निधि को सँभालें। इन परवर्ती रचनाओं में अविरल जनजीवन

है, तत्कालीन राष्ट्र-निर्माता मनीषियों की प्रवृत्तियों का समाकलन है और समग्र भारत के जागरण का अप्रतिम सन्देश है।

प्रायः संस्कृतज्ञों की भी भ्रान्त धारणा है कि मध्ययुग और अर्वाचीन युग में विरचित रूपक-साहित्य में कोई नवीनता नहीं है और इनमें प्राचीन पद्धति का अनुसरण मात्र है। वास्तविकता तो यह है कि इस परवर्ती युग में नाट्य विधान की अभिनव प्रवृत्तियों का उदय हुआ और नई कथावस्तु को नये विधि-विधान से सँजो कर अभिनव नाट्यशास्त्रीय आयामों की प्रतिष्ठा की गई। इन सबकी समीक्षा करके तत्सम्बन्धी आलोचनात्मक प्रतिमानों की स्थापना की जानी चाहिए।

मध्ययुगीन नाट्यसाहित्य की कतिपय समस्याओं का समाधान पहली वार इस ग्रन्थ में यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। इनमें से एक है छायानाटक की समस्या। इतिहासकार छायानाटक को परछाईं के प्रयोग वाला रूपक मानते आये हैं। कतिपय विद्वानों का मत है कि छाया नाटक में किसी बड़े नाटक का अभिनेय सार होता है। ये दोनों मत निराधार हैं। वास्तव में छाया नाटकों में किसी पात्र की मायामयी प्रतिकृति (छाया) का प्रयोग होता था, जैसे दूताङ्गद में मायामयी सीता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में कतिपय नये अनुसन्धानों का समावेश किया गया है। यथा, स्वप्नवासवदत्त में उत्तररामचरित की भाँति अङ्गीरस करुण है और वेणीसंहार का अङ्गीरस रौद्र है, वीर नहीं, रूपकों के अङ्क भाग में दृश्य के साथ ही सूच्य सामग्री की भी प्रचुरता मिलती है, एकोक्ति (Soliloquy) का प्रयोग अनन्यथा-सम्भाव्य भावात्मक प्रखरता के लिए होता है। और उत्तररामचरितादि के गर्भाङ्क में अङ्क के भीतर अङ्क नहीं होता, अपितु लघु रूपक होता है।

संस्कृत-रूपकों का अद्यतन विकास द्वितीय और तृतीय खण्डों में प्रस्तुत करने की योजना का कार्यान्वयन प्रकाशकाधीन है। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत खण्ड से पाठकों को संस्कृत-नाट्यसाहित्य के पर्यालोचन की एक नई दिशा मिलेगी और उनकी तत्सम्बन्धी अभिरुचि लेखक के आलोचनात्मक प्रगमन में पाथेय बनेगी।

हनुमज्जयन्ती
वि० स० २०३०

रामजी उपाध्याय

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १

नाट्य-विधान

रङ्गमञ्च पर किसी कथा से सम्बद्ध पुरुषों के रूप धारण किये हुए नटों या नर्तकों के द्वारा कथा-पात्रों के कविकल्पित कार्यकलापों का अपने व्यवसाय (अभिनय) द्वारा प्रत्यक्षीकरण नाट्य है।[1] जिस काव्य का आश्रय लेकर नाट्यप्रयोग किया जाता है, उसे रूपक या उपरूपक कहते हैं। रूपधारण की प्रक्रिया द्वारा रूपक में रामादि नायक के साथ ही उनसे सम्बद्ध घटनाओं और परिस्थितियों का प्रत्यक्षीकरण होता है। यही रूपक नाम की सार्थकता है।[2] संस्कृत में रूपक दस प्रकार के माने गये हैं। इनको परस्पर भिन्न करने वाले तीन तत्व प्रधान हैं—वस्तु, नेता और रस।

वस्तु

वस्तु या कथावस्तु इतिवृत्त का काव्यात्मक निबन्धन है। कथावस्तु जितनी सरस होती है, नाटक भी उतना ही सरस होता है। कथावस्तु के लिए कवियों ने वेद और पुराणेतिहास ग्रन्थों को उपजीव्य माना। इनके आधार पर गढ़ी हुई कथावस्तु

---

१. अभिनवगुप्त के अनुसार नट रामादि नायक का अनुकरण नहीं करता। उन्होंने स्पष्ट किया है कि अनुव्यवसायवत् विशेषविषयीकार्यं नाट्यम्। ...तेन रञ्जकसामग्रीमध्यानुप्रविष्टेन प्रच्छादितस्वस्वभावेन प्राक्प्रवृत्तलौकिकप्रत्यक्षानुमानादिजनितसंस्कारसहायेन सहृदयसंस्कारसचिवेन हृदयसंवादतन्मयीभावनासहकारिणा प्रयोक्त्रा दृश्यमानेन योऽनुव्यवसायो जन्यते सुखदुःखाद्याकारतच्चित्तवृत्तिरूपरूषितनिजसंविदानन्दप्रकाशमयः अतएव विचित्रो रसनास्वादनचमत्कारचर्वणनिर्वेशभोगाद्यपरपर्यायः तत्र यदवभासते वस्तु तन्नाट्यम्।...न त्वनुकरणा—रूपम्। अभिनवभारती भाग १ पृष्ठ ३७

दशरूपक में 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में उचित नहीं है।

२. अभिनवगुप्त ने रूपक का निर्वचन करते हुए कहा है—रूप्यते प्रत्यक्षीक्रियते योऽर्थः। तद्वाचकत्वात् काव्यानि रूपाणि। अभिनवभारती ना० शा० १८·१ अभिनवगुप्त इस प्रसंग में जगत् को ईश्वर का रूप बतला कर रूपक की व्याख्या इस प्रकार आरम्भ करते हैं—

रूपं यदेतद् बहुधा चकास्ति यद्येन भावी भविता न जातु।
तच्चक्षुरर्कात्मिकमीश्वरस्य वन्दे वपुस्तैजससारधाम्नः॥

प्रख्यात कही जाती है। यदि कवि ने अपनी रचना के लिए स्वयं अपनी ओर से कोई कहानी गढ़ ली तो उस कथावस्तु को उत्पाद्य कहते हैं। अपनी कल्पना के रंग में कभी-कभी कवि पुरानी कथा को अभिनव अङ्गों से विशेष चमत्कार प्रदान करता है। इस प्रकार की कथा में प्रख्यात अंश के साथ कल्पित अंश का भूरिशः योग होता है और वह कथा मिश्र कोटि में आती है। इसमें उत्पाद्य कथांश आधे के लगभग होना ही चाहिए।

रूपक की कथावस्तु में कहीं-कहीं अनेक कथायें संगमित होती हैं। इनमें से नायक की एक प्रधान कथा होती है, जिसमें उसे फल प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दिखाया जाता है। इसे आधिकारिक कथा भी कहते हैं, क्योंकि इसके द्वारा अधिकारी नायक को अधिकार (फल की सिद्धि) की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त प्रासंगिक कथायें पताका और प्रकरी हो सकती हैं। पताका-वृत्त के नायक को उपनायक कहते हैं और वह प्रधान नायक की सहायता से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है और बदले में प्रधान नायक की फलप्राप्ति में सहायता देता है। प्रकरी-वृत्त स्वल्प होता है। इसका स्वार्थरहित नायक केवल उपकारी होता है। उसका अपना कोई निजी कार्य नहीं सिद्ध होता है।

कथावस्तु का अध्ययन प्रधानतः तत्सम्बन्धी अर्थप्रकृति, अवस्था और सन्धि की दृष्टि से किया जाता है।

अर्थप्रकृति

कथावस्तु के आख्यान के उद्भव को अर्थप्रकृति कहते हैं[1]। अर्थप्रकृति की परिभाषा भोज ने दी है, जिसके अनुसार अर्थप्रकृतियाँ कथावस्तु के उपादान-कारण हैं

कथाशरीरोपादानकारणभूताः पंचार्थप्रकृतयो भवन्ति। भरतकोश पृ० २८

---

१. अभिनवगुप्त ने अर्थप्रकृति की परिभाषा दूसरे प्रकार से दी है। यथा,
यत्रार्थः फलं तस्य प्रकृतय उपायाः फलहेतवः।···एतैः पंचभिरुपायैः पूर्णफलं निष्पाद्यते।
अभिनवगुप्त के समक्ष अर्थप्रकृति की एक अन्य सुप्रथित परिभाषा थी—

अर्थस्य समस्तरूपकवाच्यस्य प्रकृतयः प्रकरणान्यवयवार्थखण्डाः।

वे इस परिभाषा को सदोष बताते हैं, किन्तु यह परिभाषा परवर्ती शारदातनय को मान्य है। यथा,

अर्थप्रकृतयः पञ्च कथादेहस्य हेतवः। भावप्र० पृ० २०४

सागरनन्दी ने नाट्यदर्पण में इसका समर्थन करते हुए कहा है—

नाटकीयवस्तुनः पञ्च प्रकृतयः स्वभावा भवन्ति। नैतान् परित्यज्य नाटकार्थाः सम्भवन्ति।

पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य । इनमें से बीज नाट्यवृक्ष के बीज के समान होता है । बीज की परिभाषा भरत के शब्दों में है—

स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।
फलावसानं यच्चैव बीजं तत् परिकीर्तितम् ।। १६.२२

अर्थात् संवाद के माध्यम से एक ऐसी छोटी सी बात कह दी जाती है, जो बहुविध आशयों से निर्भर होती है और अन्त में फल तक जा पहुँचती है ।[1] दूसरी अर्थ-प्रकृति बिन्दु है । रूपक में किसी प्रयोजन के समाप्त होने पर कथाप्रवाह के रुकने पर उसे कभी-कभी बिन्दु के द्वारा अगले या मुख्य प्रयोजन की ओर प्रवर्तित कर देते हैं[2] । इस प्रकार बिन्दु-रूप वक्तव्य आगे की कथा का बीज बन जाता है । बिन्दु को ऐसी स्थिति में अवान्तर बीज कह सकते हैं । यह पहले से आती हुई कथा के प्रसङ्ग में होता है और साथ ही इसमें वह तत्त्व होता है, जिससे परवर्ती कथा चल पड़ती है ।

भरत के अनुसार बिन्दु के संक्षिप्तार्थ का आश्रय लेकर प्रवेशक और विष्कम्भक को प्रवर्तित होना चाहिए । यथा,

अङ्कान्तरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम् ।
प्रकरणनाटकविषये प्रवेशकः संविधातव्यः ।। १८.३३

भरत का प्रवेशक-विष्कम्भक-विषयक यह विधान रूपकों में स्वीकृत नहीं प्रतीत होता । तीसरी अर्थप्रकृति पताका है, जिसे प्रासङ्गिक वृत्त भी कहते हैं । पताका की कथावस्तु रूपक की कथावस्तु का अभिन्न अङ्ग होती है। इसका नायक रूपक में उपनायक होता है, जिसकी अभीष्ट-प्राप्ति में रूपक का प्रधान नायक सहायक होता है । पताका का उपनायक प्रधान नायक की अभीष्ट प्राप्ति में सहायक होता है । इस प्रकार पताकानायक रूपक के अन्त तक चलता है ।

भरत ने पताका की परिभाषा दी है—

यद् वृत्तं तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम् ।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता ।। ना० शा० १६.२४

---

१. शारदातनय ने भावप्रकाशन में कहा है—
बीजमुप्तं यथा स्कन्धशाखापुष्पादिरूपतः ।
बहुधा विस्तृतिं गच्छेत् फलायान्तेऽवकल्पते ।। पृ० २०४

२. भरत के अनुसार
प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम् ।
यावत् समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः ।। ना० शा० १८.३३

पताका के प्रसंग में पताकास्थानक की चर्चा की जाती है।[1] पताका-स्थानक का तात्पर्य है पताकास्थानीय अर्थात् पताका का प्रतिनिधि।[2] पताका इति-वृत्त उस स्थान पर आता है, जब नायक कठिनाइयों में पड़ा हुआ किंकर्तव्यविमूढ होता है। उसकी कठिनाइयाँ पताका के इतिवृत्त से दूर होने की सम्भावना होती। पताकास्थानक में भी नायक कठिनाइयों में पड़ा होता है।[3] वह किंकर्त्तव्यविमूढ होता है। ऐसी कठिनाई की स्थिति में जब उसे सफलता की आशा नहीं रह जाती, तभी कोई ऐसी नन्हीं सी प्रासंगिक घटना हो जाती है या कोई प्रासंगिक बात सुनने को मिलती है, जो नायक की दुराशा के बादल को तितर-बितर कर देती है। भले ही क्षण भर के लिए ही क्यों न हो, पताकास्थानक के द्वारा नायक के चित्त में उत्साह भर जाता है कि नैराश्य का कारण नहीं है और मुझे सफलता मिलकर रहेगी।

भरत ने पताकास्थानक की परिभाषा दी है--

यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन्स्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्॥ ना० शा० १९.३०

इस परिभाषा में पताकास्थानक के कतिपय लक्षणों का अनुसन्धान किया गया है। अभिनवगुप्त के अनुसार इस प्रकरण में अर्थप्रयोजन और उपाय दोनों है। कोई दूसरा ही प्रयोजन या उपाय नायक की चिन्ता का विषय है, किन्तु उससे मिलता-जुलता, पर कोई दूसरा ही उपाय या प्रयोजन प्रस्तुत हो जाता है, तब पताकास्थानक होता है। इस कारिका में आगन्तुक भाव का तात्पर्य है सहकारी भाव अर्थात् नायक की सहायता करना। यही पताका में भी होता है। यही दोनों का सादृश्य है। इसमें नायक की दृष्टि किसी उपलब्धि पर है, किन्तु उससे भिन्न कोई दूसरी ही उपलब्धि हो जाती है।

पताकास्थानक चार प्रकार का होता है। प्रथम पताकास्थानक

सहसैवार्थसम्पत्तिर्गुणवत्युपकारतः॥ १९.३१

---

१. पताका का एक अर्थ सौभाग्य या मङ्गल है। सम्भव है, पताका और पताका-स्थानक के मूल में यही अर्थ हो। पताका और पताकास्थानक में नायक के मंगल की योजना होनी चाहिए।

२. अभिनवगुप्त ने पताकास्थानक के स्थान पर पताकास्थानीय का प्रयोग इस प्रकार किया है--इदं च प्रकृतसाध्योपयोगाङ्गित्वात् पताकास्थानीयमिति। ना० शा० १९.३३ पर भारती में

३. पताकास्थानक के प्रकरण में नायक से अभिप्राय है नायक, नायिका, उपनायक और प्रतिनायक।

इसमें एकाएक उत्कृष्ट उपलब्धि हो जाती है। इसका उदाहरण रत्नावली में नायक के द्वारा वासवदत्ता समझ कर बचाते समय यह जानना कि यह वासवदत्ता नहीं, अपितु मेरी प्रेयसी नायिका सागरिका है। इसमें नायक को नायिका की उपलब्धि कुछ समय के लिए होती है।

द्वितीय पाताकास्थानक

वचः सातिशयं श्लिष्टं काव्यबन्धसमाश्रयम्।। १६.३२

इसमें कोई अतिशयोक्ति होती है, जो किसी पूर्वानुगमित प्रसंग में कही जाती है, किन्तु उसी से श्लिष्ट एक अन्य अर्थ निकलता है, जिससे भावी भाग्योदय की झलक मिलती है। इसका उदाहरण रामाभ्युदय में है—

बहुनात्र किमुक्तेन पारेऽपि जलधेः स्थिताम्।
अचिरादेव देवि त्वामाहरिष्यति राघवः।।

इसमें राम की अद्भुत पराक्रमशालिनी शक्ति का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है, किन्तु इसमें सीता को आश्वासन मिलता है कि सभी कठिनाइयों के होते हुए भी राम लङ्का से मुझे ले ही जायेंगे। यह अर्थ पताकास्थानक की योजना करता है। इसमें नायिका की दुराशा दूर होती है।

तृतीय पताकास्थानक

अर्थोपक्षेपणं यत्र लीनं सविनयं भवेत्।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमिष्यते।। १६.३३

इसमें कोई प्रयोजन अस्फुट रूप से प्रस्तुत होता है। उसे ही पूरी दृढता के साथ स्पष्ट करने के लिए श्लिष्ट प्रत्युत्तर का प्रयोग किया जाता है।

यह पताकास्थानक उत्तर-प्रत्युत्तर के द्वारा बनता है, जिसमें नायक का वाक्य उससे बात करने वाले के वाक्य से संयुक्त होकर नायक के लिए भावी सिद्धिविषयक अर्थ देकर उसका उपकारक होता है।[1]

चतुर्थ पताकास्थानक

द्व्यर्थोवचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
उपन्याससुयुक्तश्च तच्चतुर्थमुदाहृतम्।। १६.३४

इसमें श्लेष के द्वारा दो अर्थ निकलते हैं, जिनमें से अप्रासंगिक अर्थ के द्वारा भावी कथा का प्रवाह चल पड़ता है। इसका उदाहरण है रत्नावली में वैतालिक के द्वारा सन्ध्या के समय चन्द्रोदय के साथ श्लिष्ट उदयन का वर्णन। इसमें श्लिष्ट उदयन के नाम से आगे की कथा चल पड़ती है। श्लिष्ट अर्थ में नायिका अपना अभ्युदय देखती है।

---

१. यदि उपकारक न हुआ तो यह पताकास्थानक न होकर गण्ड होगा।

चतुर्थ अर्थप्रकृति प्रकरी है। यह भी पताका की भाँति प्रासंगिक वृत्त है, किन्तु यह लघु होता है और इसके नायक का कोई अपना स्वार्थ नहीं होता, जिसे प्रधान नायक की सहायता से सिद्ध करना है। इस प्रकार प्रकरी का नायक निष्काम है। भरत ने प्रकरी की परिभाषा दी है--

फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम् ।
अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत् ।। १९.२५

अन्तिम अर्थप्रकृति कार्य है। कार्य का अभिप्राय नाट्यशास्त्र के अनुसार केवल कार्यव्यापार ही तक सीमित नहीं है, अपितु कार्य के अन्तर्गत वे सारी परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं, जो कर्त्ता के लिए सहायक होती हैं। भरत ने कार्य की परिभाषा दी है --

यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक् प्राज्ञैः प्रयुज्यते ।
तदर्थो यः समारम्भः तत्कार्यं परिकीर्तितम् ।। १९२६

आधिकारिक वस्तु से सम्बद्ध जो कुछ किया जाता है, वह कार्य है। अभिनवगुप्त के अनुसार कार्य के अन्तर्गत जनपद, कोश, दुर्ग आदि विषयक सारे व्यापार तथा सामादि सभी उपायवर्ग आ जाते हैं।[1]

अर्थप्रकृतियों को नाट्यशास्त्र की पहेली ही कहा जा सकता है। इसमें अनेकविध तत्त्वों का समावेश किया गया है। पताका और प्रकरी नामक अर्थप्रकृतियाँ प्रासङ्गिक इतिवृत्त हैं। यदि ये दोनों इतिवृत्त अर्थप्रकृति हैं तो आधिकारिक वृत्त को अर्थप्रकृति में क्यों नहीं गिना जाय? यह प्रश्न बना रह जाता है। प्रथम दो अर्थप्रकृतियाँ बीज और बिन्दु स्पष्ट ही कथांश हैं और कार्य नामक पंचम अर्थप्रकृति कार्यव्यापार है। इस प्रकार के सर्वथा पृथग्विध तत्त्वों को अर्थप्रकृति नामक एक वर्ग में साथ बैठाना चिन्त्य है।

अभिनवगुप्त के समय में एक प्रश्न था कि रूपक में सभी अर्थप्रकृतियों का होना आवश्यक है क्या? अभिनवगुप्त का कहना है कि बीज, बिन्दु और कार्य तो सभी रूपकों में होने ही चाहिए, किन्तु पताका और प्रकरी का सर्वत्र होना आवश्यक नहीं है[2]।

---

१. तेन जनपदकोशदुर्गादिकव्यापारवैचित्र्यं सामाद्युपायवर्ग इत्येतत्सर्वं कार्येऽन्तर्भवति। ना० शा० १९.२६ पर भारती

२. न सर्वत्र प्रारम्भादिवत् सर्वा अर्थप्रकृतयोऽपि।...बीजबिन्दुकार्याणि तु सर्वत्रानपायीनि। अभिनवभारती ना० शा० १९.२६

अवस्था

किसी रूपक में फलप्राप्ति के लिए नायकादि पात्रों के बहुविध कार्य होते हैं। इस प्रकार के सभी कार्यों (घटनाओं) को कायिक, वाचिक और मानसिक तीन कोटियों में विभक्त किया गया है। आधिकारिक वृत्त में प्रधान नायक के कार्य-व्यापार के विकास क्रम के अनुसार पाँच भाग किये जा सकते हैं--आरम्भ, यत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इन्हें अवस्था कहते हैं।[1] इनमें से आरम्भ नामक कार्य की अवस्था केवल मानसिक रहती है, जिसमें फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मन में स्थान कर लेती है। नायक, नायिका, प्रतिनायक या दैव किसी के साथ यह अवस्था सम्बद्ध हो सकती है। इसको फलारम्भ भी कहते हैं, क्योंकि इसमें फल के लिए आरम्भ किया जाता है। यत्न नामक अवस्था में उत्सुकता और बढ़ जाती है और फल की प्राप्ति के लिए उपाय का अनुसंधान-रूपी व्यापार होता है। प्राप्त्याशा में उपाय करने पर फल की प्राप्ति में बाधायें कुछ-कुछ दूर होती हैं और आशा बँधती है कि फल मिल सकता है। इसका नाम प्राप्तिसंभव अर्थात् प्राप्ति की सम्भावना भी है। नियताप्ति में उपायों के द्वारा फल की प्राप्ति का होना असन्दिग्ध हो जाता है। अन्तिम अवस्था फलागम में नायक को साक्षात् फल मिल जाता है।

सन्धि

कार्य की एक-एक अवस्था को एक-एक सन्धि में विनिवेशित करते हैं। सन्धि की परिभाषा भरत ने दी है--

इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितम्।
पंचभिः सन्धिभिस्तस्य विभागः सम्प्रकल्पितः॥ १९.११

अभिनवगुप्त के अनुसार पंचावस्था की अनुयायी पंचसन्धियाँ हैं।[2] कार्य को उपर्युक्त पाँच अवस्थाओं में विभक्त करके उनका अभिनयात्मक रूप बनाने के लिए वाक्यों की रचना की जाती है। अभिनवगुप्त के अनुसार रूपकार्थ महावाक्यार्थ होता है, अर्थात् असंख्य वाक्य रूपक में मिल-जुल कर एक वाक्य से बन कर सारभूत अर्थ देते हैं।[3] प्रत्येक कार्यावस्था के वाक्य पृथक्-पृथक् एक-एक सन्धि के अन्तर्गत रखे जाते

---

१. भरत के अनुसार

संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः कारकस्य यः।
तस्यानुपूर्व्या विज्ञेयाः पञ्चावस्थाः प्रयोक्तृभिः। १९.७

२. अवस्थापंचकानुयायिना सन्धिपंचकेनापि भाव्यमेव। ना० शा० १९.१७

३. महावाक्यार्थरूपस्य रूपकार्थस्य पंचांशा अवस्थाभेदेन कल्प्यन्ते। तत्र मुखस्य स्वतन्त्रस्येतिवृत्ते समस्तप्रयोजनस्यात एव नायकस्य स्वमुखेन परद्वारेण वा या प्रारम्भावस्था प्रथमा व्याख्याता तदुपयोगी यावान् अर्थराशिः स मुखसन्धिः। अर्थात् मुखसन्धि वह है, जिसमें आरम्भ नामक अवस्था-सम्बन्धी वाक्यराशि हो।

हैं। नाटकीय वाक्यों को कलात्मक विधि से जोड़ना सन्धि है। सन्धि का इस प्रसंग में अर्थ जोड़ना है। अभिनवगुप्त ने सन्धि की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—

येनार्थावयवा सन्धीयमानाः परस्परमङ्गैश्च सन्धय इति समाख्या निरुक्ता।

भारती ना० शा० १६.३७

कार्य की प्रत्येक अवस्था के अनेक अंग हो जाते हैं। ऐसे प्रत्येक अंग का वर्णन एक-एक सन्ध्यङ्ग में होता है। कुछ सन्ध्यङ्ग कार्यपरक होते हैं, शेष पात्रों या परिस्थितियों के कलात्मक निदर्शन होते हैं।

पञ्च सन्धियाँ हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। मुख सन्धि में प्रारम्भोपयोगी अर्थराशि संगृहीत होती है। इसमें कथा का बीज डाला जाता है। इस प्रक्रिया को बीज की उत्पत्ति कहते हैं। प्रतिमुख सन्धि में बीज उसी प्रकार अङ्कुरित प्रतीत होता है, जैसे मिट्टी में छिपे बीज का अङ्कुर मिट्टी के ऊपर दिखाई देता है। प्रतिमुख में प्रति का अर्थ है आभिमुख्य अर्थात् बीज के विकास का सामने आना, यद्यपि इसमें कहीं-कहीं बीज-विषयक चर्चा अन्तरित रहती है। रत्नावली में कामपूजन प्रकरण में बीज का यद्यपि विकास होता है, किन्तु ऐसा लगता है कि बीज से इसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इस प्रकार मुखसन्धि में बीज का उद्घाटन तो होता है, किन्तु वह कभी-कभी 'नष्टमिव' अर्थात् परित्यक्त सा प्रतीत होता है। इसमें यत्न नामक अवस्था के कार्यव्यापार होते हैं। गर्भसन्धि में बीज की उत्पत्ति और उद्घाटन के अनन्तर उद्भेद होता है। इसमें प्राप्त्याशा नामक अवस्था के कार्यव्यापार के द्वारा बीज का उद्भेद (फलजननाभिमुख्यत्व) प्रतीत होता है। उद्भेद में नायक के प्रयास से फलप्राप्ति दिखाई देती है, किन्तु प्रतिरोधी के व्यापार से फल की अप्राप्ति रहती है।[1] विमर्श सन्धि में किसी लोभ, क्रोध या व्यसन के कारण फल-प्राप्ति में जो बाधा आती है, उसको दूर करके प्राप्ति का निश्चय प्रदर्शित किया जाता है। निर्वहण नामक सन्धि में नायक को फल की प्राप्ति होती है।

दशरूपक के अनुसार सन्धियों का अर्थप्रकृतियों से भी याथासंख्य होता है।[2] यह चिन्त्य है, क्योंकि नाटकों में भी पताका और प्रकरी नामक अर्थप्रकृतियों का होना आवश्यक नहीं है। अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है—

---

१. प्रत्येक रूपक में प्रतिनायक या प्रतिरोधी का होना आवश्यक नहीं है जहाँ प्रतिनायक नहीं होता, वहाँ परिस्थितियाँ या कोई अन्य व्यक्ति ही विरोधी होकर अप्राप्ति का कारण बनते हैं। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में।

२. अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्यापंचसन्धयः॥ १.२२
किन्तु साथ ही इस ग्रन्थ में कहा गया है कि गर्भसन्धि में पताका का होना आवश्यक नहीं है। 'पताका स्यान्नवा' १.३६

न सर्वत्र प्रारम्भादिवत् सर्वा अर्थप्रकृतयोऽपि ।······बीजबिन्दुकार्याणि तु सर्वत्रानपायीनि । ना० शा० १९.२७ पर भारती ।

इसके अतिरिक्त कार्य और बिन्दु तो पूरे रूपक में रहते हैं, उनको केवल निर्वहण या प्रतिमुख सन्धि के साथ बाँधना ठीक नहीं है ।

प्रत्येक सन्धि प्रसंगानुसार अनेक अंगों में विभक्त होती है । संध्यङ्गों की संख्या चौसठ हैं ।

कुछ शास्त्रकारों ने सन्ध्यंगों का अपनी-अपनी सन्धियों में विन्यस्त होना आवश्यक बताया है । यह ठीक नहीं है । अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है कि युक्ति नामक सन्ध्यङ्ग को मुखसन्धि में बताया गया है, किन्तु वह तो सभी सन्धियों में निबन्धन योग्य होती है ।[1]

अनुसन्धि

पताकावृत्त के व्यापारानुसार भागों को अनुसन्धि कहते हैं । सन्धियों और अनुसन्धियों के अंगों का विचार और नामकरण तत्सम्बन्धी कार्यों, वाक्कौशल और परिस्थितियों की समीक्षा की दृष्टि से किया गया है ।

धर्मी

रूपक में कथावस्तु को लोकधर्मी और नाट्यधर्मी नामक दो भागों में बाँटा गया है । भरत ने लोकधर्मी की परिभाषा दी है—

स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्रीपुरुषाश्रयम् ।
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता ।। १३.७२

अभिनवगुप्त ने इस प्रसंग में कहा है कि कवि जब यथावृत्तवस्तु का वर्णन करता है और नट उसका प्रयोग करता है, वह अपनी बुद्धि के द्वारा रंजना-वैचित्र्य नहीं लाता तो वह काव्य-भाग लोकधर्म का आश्रय लेने के कारण लोकधर्मी है । भरत के अनुसार नाट्यधर्मी की परिभाषा है—

अतिवाक्यक्रियोपेतमतिसत्त्वातिभावकम् ।
लीलाङ्गहाराभिनयं नाट्यलक्षणलक्षितम् ।। १३.३७

इसमें ऐतिहासिकता और स्वाभाविकता को छोड़कर कविकल्पित चित्तवृत्ति का समावेश किया जाता है तो उस कथावस्तु को नाट्यधर्मी कहते हैं । रंगमंच पर कला-शिल्प की वस्तुयें, जनान्तिक, अपवारित, अनुक्तश्रवण, आकाशभाषित, पुरुष का स्त्रीवेष में अभिनय, नृत्य, संगीत, अङ्गाभिनय आदि प्रकरण नाट्यधर्मी हैं ।

---

१. लक्षणे एवायं क्रमो न निबन्धन इति यावत् । तेन उद्भटप्रभृतयोऽङ्गानां सन्धौ क्रमे च नियममाहुस्तद्युक्त-यागमविरुद्धमेव । भारती ना० शा० १९.६९—

अङ्क तथा प्रवेशक

कथावस्तु का विभाजन दृश्य और सूच्य की दृष्टि से मूलतः अङ्क और प्रवेशक में हुआ। भरत के अनुसार

दिवसावसानकार्यं यद्यङ्के नोपपद्यते सर्वम् ।
अङ्कच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैस्तद्विधातव्यम् ॥ १८.२६
सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे वा ।
परिजनकथानुबन्धः प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ १८.२८
अङ्कान्तरसन्धिषु च प्रवेशकास्तेषु तावन्तः ॥ १८.२९

अर्थात् अङ्क में एक दिन की कथा होनी चाहिए। यदि अंक में एक पूरे दिन की कथा नहीं आ पाती तो अङ्क को समाप्त करके शेष कथा को प्रवेशक में रखा जा सकता है। अङ्क और प्रवेशक में अन्तर यह है कि जिन लोगों के इतिवृत्त के विषय में चर्चा होती है, उनकी भूमिका में पात्र रंगमच पर रहे तो वह नाट्यांश अङ्क है। उनकी अनुपस्थिति में यदि उन लोगों के परिजन या अन्य जन उनसे सम्बद्ध कामों को संवाद द्वारा या अकेले ही वर्णन करके प्रेक्षकों को सुना दें, अभिनय द्वारा समक्षित न करें तो वह नाट्यांश प्रवेशक है। अङ्क में एक दिन मात्र की कथा होती है, किन्तु प्रवेशक में एक मास या वर्ष तक की कथा सुनाई जा सकती है। इस प्रकार अनेक वर्षों तक की कथा प्रेक्षक जान ले, इस बात के लिए प्रवेशक का विशेष महत्त्व है।

आगे चलकर प्रवेशक के समकक्ष विष्कम्भक की स्थापना हुई। इन दोनों में अन्तर यह रहा कि विष्कम्भक उत्तम पात्रों के सम्पर्क में आने वाले मध्यम और अधम पात्रों के संवाद रूप में होता है और प्रवेशक कोरे अधम पात्रों के द्वारा प्रस्तुत होने लगा। प्रवेशक में उत्तम पात्रों के कार्यकलाप की चर्चा नहीं होती थी, क्योंकि अधम पात्रों का उत्तम पात्रों के सम्पर्क में आना सम्भव नहीं था।

प्रवेशक और विष्कम्भक को अर्थोपक्षेपक नाम दिया गया। अर्थोपक्षेपक कोटि में आगे चलकर चूलिका, अङ्कमुख और अङ्कावतार को भी सम्मिलित किया गया। इनमें से चूलिका वह संसूच्य है, जिसमें कोई पात्र नेपथ्य में रह कर किसी घटना की सूचना देता है।[1] चूलिका का सूच्य होना स्पष्ट है। इसके द्वारा किसी अङ्क के मध्य में किसी तात्कालिक महत्त्वपूर्ण वृत्त की सूचना देकर परवर्ती कथाप्रवाह में एक नया मोड़ ला दिया जाता है। अङ्कमुख और अङ्कावतार में प्रवेशक, विष्कम्भक और चूलिका

---

१. चूलिका का श्रावण प्रारम्भ में किसी ऐसे पात्र के द्वारा किया जाता था, जो नाट्यमण्डप के शिखर पर होता था। चूलिका शिखर को कहते हैं। परवर्ती युग में नेपथ्य से चूलिकाश्रावण होने लगा।

के समान किसी वृत्त की सूचना नहीं रहती।[1] अङ्कमुख में परवर्ती अङ्क के मुख (आरम्भ) की सूचना दी जाती है। अङ्क के अन्त में आने वाले पात्र परवर्ती अङ्क के आरम्भ में मिलेगें, यह सूचना अङ्कावतार में दी जाती है। नाटकों में प्रवेशक और विष्कम्भक लघु दृश्य की भाँति रहे हैं, जिनके द्वारा परवर्ती अङ्क की कथावस्तु की भूमिका प्रस्तुत की जाती है। नियमानुसार अङ्कों में सारी कथावस्तु दृश्य होनी चाहिए, पर उसमें सूच्य कथांश भी रहता है। मुद्राराक्षस और वेणीसंहार के अङ्कों में ऐसे सूच्यांशों का बाहुल्य है। प्रवेशक और विष्कम्भक में भी कहीं-कहीं दृश्य अभिनय होता है।[2]

अङ्क के साथ गर्भाङ्क जुटा हुआ है। इसमें भूतकालीन कथा को सूच्य न बना कर दृश्य बना देते हैं। गर्भाङ्क के विषय में यह भ्रान्त धारणा है कि अङ्क के भीतर अङ्क गर्भित रहता है। वास्तव में अङ्क के भीतर एक लघु रूपक ही गर्भित रहता है, जिसका नाट्य, नाटिका और प्रेक्षणक नाम भी मिलता है। भवभूति के उत्तरराम-चरित में अङ्क नामक रूपक गर्भित है। बालरामायण में राजशेखर ने एक स्थान पर अङ्क के भीतर नाटिका को ही गर्भित किया है। यह नाटिका लघुनाटक है।

जिस प्रकार गर्भ गर्भधारी का मूलतः अङ्ग है और परतः स्वतन्त्र सत्ता है, उसी प्रकार गर्भित नाट्य की यद्यपि अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, किन्तु वह नाटक की कथा का अभिन्न अङ्ग है। ऐसा करने के लिए रंगमंच के पात्रों को दो वर्गों में विभाजित कर देते हैं, जिनमें से प्रथम वर्ग अभिनेता रहता है और दूसरा वर्ग पहले वर्ग का अभिनय देखता है और साथ ही नाटकीय प्रतिक्रिया का अभिनय करता है। प्रेक्षक उन दोनों वर्गों का अभिनय देखता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रकार की भावात्मकता और रसाश्रयता ऐसे गर्भित नाट्यों में मिलती हैं, वे अन्यथा सम्भव नहीं हैं। यही इनका कलात्मक विशेष है।[3]

अङ्कों का नाम कतिपय रूपकों में उनमें आये हुए विशिष्ट पात्र, कार्य या परि-स्थितियों के नाम पर होता है। अङ्क का अर्थ चिह्न है। पात्र, कार्य या परिस्थिति उस अङ्क के परिचायक चिह्न बनते हैं। मृच्छकटिक में एक दुर्दिनाङ्क है। इसकी घटनाओं पर उस दिन की तूफ़ान का रङ्ग चढा है। यह नाम परिस्थितिसूचक है।

---

१. अङ्कमुख और अङ्कावतार को इस दृष्टि से अर्थोपक्षेपक कहना ठीक नहीं है। उनमें अर्थ का क्षेपण होता ही नहीं है। अभिनवगुप्त ने इनके द्वारा अर्थोपक्षेपण की चर्चा की है, पर अर्थोपक्षेपण वाले अङ्कमुख और अङ्कवतार नहीं मिलते। ना०शा० १८.३१ पर भारती

२. नाट्यशास्त्रियों का दृश्य और सूच्य को क्रमशः अङ्क और अर्थोपक्षेपक में सीमित करने का विधान नाटककारों को मान्य नहीं रहा है।

३. गर्भाङ्क का विधान परवर्ती है। भरत के नाट्यशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं मिलती।

वस्तुतः रङ्गमंच पर कोई पात्र मूलकथा के जिस पुरुष की भूमिका में आकर जो कार्य करता है, वह न तो मूल कार्य ही है, न उसका अनुकरण ही है। अभिनय के द्वारा प्रेक्षक को यह प्रतीति हो जाती है कि यह सारा व्यापार आनन्दानुभूति के स्तर पर अलौकिक ही है। नाट्य में अलौकिकता को प्रतीत कराने के लिए अभिनय प्रारम्भ होने के पहले पूर्वरङ्ग के गीत, नृत्य, आतोद्य आदि का कार्यक्रम परम उपयोगी रहता है। इससे प्रेक्षक रंगमंचीय कार्यव्यापारदर्शन के लिए अलौकिक व्यक्तित्व से सम्पन्न हो जाता है।

रूपक का आरम्भ नान्दी नामक मंगल श्लोक से होता है तथा अन्त में सबके कल्याण तथा समृद्धि की प्रार्थना होती है। अंकों में चार-पाँच से अधिक पात्र नहीं होने चाहिए तथा अंकान्त में सब का निष्क्रमण होता है। नान्दी-श्लोक के आगे प्रस्तावना का स्थान होता है। इसमें सूत्रधार नाट्यकार का, रूपक का तथा अभिनय के उपलक्ष्य का परिचय देता है और साथ ही कौशलपूर्वक मूल कथा का सूत्रपात्र या तो प्रधान नायक का ही प्रवेश करा कर या दूसरे उपायों से करता है।

रूपक तथा उपरूपक

संस्कृत में रूपक के दस भेद माने गये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग। इन दस मुख्य भेदों के साथ ही नाटिका की गिनती होती है। आगे चलकर उपरूपक के १० से २० भेद माने गए, जिनका उल्लेख नाट्यशास्त्र आदि प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता।[1]

वस्तु, नेता और रस की दृष्टि से नाटकीय भेद बने हैं। इसी के साथ इन भेदों में अंकसंख्या का भी उपकल्पन होता है। नाटक, डिम, व्यायोग, समवकार और अंक—नाट्य के इन प्रकारों में प्रख्यात वृत्त का उपयोग होता है। प्रकरण, नाटिका, भाण प्रहसन, और वीथी—इन भेदों में कल्पित वृत्त होता है। ईहामृग नाम के भेद में मिश्रवृत्त पाया जाता है।

नाटक और प्रकरण में सभी सन्धियाँ होती हैं। नाटक में शृंगार या वीर रस मुख्य होता है।[2] नाटक का नायक राजा तथा प्रकरण का नायक—अमात्य, विप्र, वणिक् आदि में से कोई भी हो सकता है। नाटक में पाँच से दस तक अंक होते हैं। प्रकरण

---

१. उपरूपक नृत्य और नाट्य के बीच में पड़ते हैं। इनमें नाच-गान की विशेषता होती है। नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खणक, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भाणिका भेद हैं।

२. इस नियम का सर्वथा पालन नहीं हुआ है। कतिपय नाटकों में अन्य रसों को अङ्गी बनाया गया है। स्वप्नवासवदत्त तथा उत्तररामचरित में करुण अङ्गी है। वेणीसंहार में रौद्र रस अङ्गी है।

में दश अंक होते हैं। डिम में चार अंक होते हैं। इसमें नायक देव, दानव, गन्धर्वादि होते हैं। इसमें हास्य और शृंगार को छोड़ कर शेष रस पाये जाते हैं। समवकार में तीन अंक होते हैं। देव या दानव इसका नायक होता है और वीर रस मुख्य होता है। ईहामृग में भी चार अंक होते हैं। इसमें नायक और प्रतिनायक के रूप में मनुष्य तथा देवता का नियोजन किया जाता है। नाटक के नायक देवता नहीं होते।

व्यायोग, अंक, भाण, प्रहसन और वीथी एकांकी हैं। अंक में करुण रस प्रधान होता है तथा इसके नायक देवेतर होते हैं। प्रहसन में हास्य की और व्यायोग में वीर रस की मुख्यता होती है। भाण और वीथी में शृङ्गार प्रधान होता है। भाण की एक अपनी विशेषता है कि इसमें एक ही पात्र का अभिनय होता है, जो आकाशभाषित की सहायता से नाटकीय घटना को प्रकाश में लाता है।

रूपकों में चार प्रकार के नायक माने गये। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त। सभी नायक धीर अवश्य होते हैं, पर स्वभाव की विशेषता के अनुसार उदात्तादि नाम पड़ते हैं। युधिष्ठिर और रामचन्द्र धीरोदात्त, भीम धीरोद्धत, उदयन धीरललित तथा चारुदत्त धीरप्रशान्त श्रेणी के नायक हैं। पहले तीन भेदों में क्षत्रिय नायकों का तथा अन्तिम में ब्राह्मण और वैश्य नायकों का समावेश होता है।

अभिनय का विकास

वैदिक काल में राजसूय-यज्ञ में गविष्टि का अभिनय होता था। यजमान राजा, किसी अन्य राजा पर अपने सम्बन्धी होने पर भी केवल दिखावे के लिए या यज्ञ के एक आवश्यक विधान की पूर्ति के लिए आक्रमण करता था। इसमें दर्शकों का मनोविनोद अवश्यमेव कल्पनीय है। इस प्रकार के अभिनय का उल्लेख वैदिक साहित्य में है। यही नाट्य का मूल है। सम्भवतः नाटक के इन्हीं तत्त्वों को दृष्टि में रखकर भरत ने लिखा है—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।। १·१७ ।।

राजसूय-यज्ञ की गविष्टि धार्मिक नाट्य दृश्य के रूप में थी। वैदिक महाव्रत में वैश्य और शूद्रों की जो अभिनयात्मक लड़ाई होती थी, उसमें लड़ाई का एक प्रमुख अंग वाग्युद्ध भी अवश्य ही रहा होगा। इसे देखने वालों को नाट्य का ही आनन्द आता होगा। धार्मिक नाट्य दृश्यों का अभिनय ऋग्वेद के युग में होता था—इस मत का प्रतिपादन योरोपीय विद्वानों ने भी किया है।

धार्मिक नाट्य दृश्यों को पुस्तक का रूप वैदिक काल में दिया गया कि नहीं, यह अज्ञात है। उस युग के लोग लिखने-पढ़ने में कुछ कम विश्वास रखते थे। इस परम्परा से सम्बद्ध रूपक सर्वप्रथम पुस्तक रूप में प्रथम शती ई० पू० में अश्वघोष के

लिखे हुए मिलते हैं। इसके पूर्व भी पाणिनि और पतञ्जलि ने अभिनयात्मक साहित्य की चर्चा की है।[1]

पाणिनि ने शिलाली और कृशाश्व के बनाये हुए नटसूत्रों की चर्चा की है। इस प्रकरण में पाणिनि को चौथी शती ई० पू० का मानकर कीथ नटसूत्र के अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह करते हैं। उनका मत है कि नट मूक अभिनेता भी हो सकते हैं, पर १४० ई० पू० के पतञ्जलि के तत्सम्बन्धी उल्लेखों से प्रभावित होकर कीथ का कहना है कि पतञ्जलि के युग में नट का अर्थ अभिनयकर्ता है। नट अभिनय करते हुए बोलते और गाते भी थे। यहाँ कीथ की हठधर्मिता स्पष्ट है। वस्तुतः पतञ्जलि पाणिनि के अनुयायी हैं। वे नट का कोई ऐसा अर्थ कैसे ले सकते थे, जो २०० वर्ष पहले पाणिनि-युगीन अर्थ से भिन्न हो? अष्टाध्यायी और महाभाष्य के परिशीलन से स्पष्ट है कि महाभाष्य में उदाहरण रूप में आये हुए पदों के अर्थ परम्परा पर आधारित हैं। ऐसी स्थिति में नटसूत्र को परवर्ती नाट्यशास्त्र से असम्बद्ध करने का वैदेशिक दुराग्रह समीचीन नहीं है।

धार्मिक नाट्य दृश्यों के अभिनय की परम्परा आज भी जीवित है, जिनका किसी पुस्तक में निबद्ध रूप नहीं मिलता। रामलीलायें उसी परम्परा में आज भी सम्पन्न की जाती हैं। विवाह के अवसर पर बारात के चले जाने पर नृत्त, नृत्य और नाट्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। यह नाट्य परम्परा उसी मूल धार्मिक परम्परा से सम्बद्ध है, यद्यपि स्वरूपतः उससे कुछ भिन्न है।

यजुर्वेद के अनुसार सोमयज्ञ से अवसर पर सोमप्राप्ति का अभिनय होता था वागरूपधारिणी गौ को लाया जाता था। उसे देकर सोम लिया जाता था। फिर गौ को उससे छीन लिया जाता था और उसे ऊनी कोड़े से मारा जाता था। कहते हैं, गाय भी जब सोम को ला रही थी, तो उसे गन्धर्वों ने चुरा लिया। उसी से पुनः सोम-प्राप्ति का यह अभिनय था।

प्राचीन परम्परा

वैदिक साहित्य में विष्णु के यज्ञ-रूप में वामन का अभिनय करने का उल्लेख मिलता है। एक बार जब देवासुर-संग्राम में देवता हार गये थे और असुरों ने पृथ्वी को अपने में ही बाँटना आरम्भ किया तो देवताओं ने विष्णु को वामन-रूप में यज्ञ माना और उन को आगे करके असुरों के समीप पृथ्वी का कुछ भाग अपने लिये माँगने पहुँचे। असुरों ने कहा—"जितनी भूमि में यह वामन विष्णु सो जाय, बस उतना आप लोग ले लीजिए।" सोये हुए विष्णु की वेदिका-रूप में प्रतिष्ठा हुई। देवताओं ने वामन के यज्ञ-रूप को विस्तार देना आरम्भ किया और उन्होंने सारी पृथ्वी ही ले ली। इस कार्य को सम्पादित करते हुए विष्णु श्रान्त हो गये और वृक्षों की

---

१. अष्टाध्यायी ४.३.११० और आगे

जड़ में छिप गये। फिर देवताओं ने जड़ काट कर उन्हें ढूँढ निकाला। परवर्ती युग में भी यज्ञ की वेदिका बनाते समय विष्णु के उपर्युक्त कार्यकलाप का अंशतः अभिनय होता रहा है।[1]

अभिनय-कला

नाट्य का अभिनय चार प्रकार का होता है—आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। इनमें से आङ्गिक अभिनय तीन प्रकार का होता है—शरीरज, मुखज तथा चेष्टाकृत। आंगिक अभिनय में शरीर के प्रत्येक अंग की अनेकानेक गतियों की विशेषताओं का परिकल्पन है। अकेले नेत्र के ३६ दृष्टि-विधान (विशिष्ट गतियाँ और स्थितियाँ) परिगणित हैं। इसके साथ ही दर्शन के आठ भेदों का विवरण है। ताराओं द्वारा जो अभिनय होता था, उसे पुटकर्म कहा जाता था, । पुटकर्म आठ प्रकार के बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त भौंहों के द्वारा सात प्रकार का अभिनय (भ्रूकर्म) होता है। उपर्युक्त सभी अभिनयों के रस तथा भावों की अभिव्यक्ति से सम्बद्ध प्रयोग का विवेचन किया गया है।

वागभिनय का सम्बन्ध स्वर और व्यंजन से होता है। भरत ने वागभिनय को नाट्य-रूपी पुरुष का शरीर माना है। वास्तव में वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति करने के लिए ही आङ्गिक अभिनय तथा नेपथ्य-विधान आदि साधन अपनाये जाते हैं। वाक्यों का पाठ व्याकरण तथा छंद शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध होना चाहिये था। रूपक में स्वल्प पद्य और लघु गद्य होना चाहिए।

वागभिनय प्रकरण में भाषा-विधान की प्रतिष्ठा की गई थी। जिस देश में जिस काव्य की रचना हुई हो, उसी देश की भाषा उसमें होनी चाहिए थी। नाटकों में संस्कृत के अतिरिक्त विभिन्न देशों की प्राकृत भाषाओं का उपयोग होता था। विभिन्न देशों के लोगों का अभिनय करने वाले अभिनेताओं को उन्हीं देशों की प्राकृत भाषा बोलने का विधान वागभिनय में था। ऐसी प्राकृत भाषायें सात थीं—मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शूरसेनी, अर्धमागधी. वाह्लीका और दाक्षिणात्या। इनके अतिरिक्त शबर आभीर, चण्ड, अलस, चर, द्रविड, उड्र आदि वनचरों की विभाषायें थीं। देश-भेद के अनुसार भाषा की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—गंगासागर के मध्य देशों की एकार-बहुला, विन्ध्य-सागर के मध्य देशों की भाषा नकार-बहुला, सुराष्ट्र अवन्ति तथा वेत्रवती के उत्तर देशों की भाषा चकार-बहुला, हिमालय-सिन्ध-सौवीर आदि देशों की भाषा उकार-बहुला, तथा चर्मण्वती नदी के पार देशों की भाषा तकार-बहुला बोली जानी चाहिए थी। वागभिनय के वाक्य-प्रचार प्रकरण में विभिन्न कक्षा के अभिनेताओं के एक दूसरे के सम्बोधन के लिए समुचित पदों का विवेचन है।

---

१. शतपथ० १.२.५।

नाटक के अभिनय में अतिशय हृद्य, मधुर तथा हितोपदेश से युक्त वाक्यों का प्रयोग करने का नियम था। निष्ठुर वाक्यों का प्रयोग निषिद्ध था। आङ्गिक, वाचिक तथा सात्त्विक अभिनय का सम्बन्ध अभिनेता के निजी व्यक्तित्व से होता है। इनके अतिरिक्त जिन वस्तुओं को प्रस्तुत करके अभिनय सम्पन्न किया जाता है, उन्हें आहार्य कोटि में रखा जाता है। इसमें अभिनेताओं की वेश-भूषा, नाट्य-कथा के अमानवीय पात्रों की प्रतिमायें, नदी, पर्वत, वन आदि दृश्यों के चित्र आदि का समावेश होता है। आहार्य के द्वारा अनायास ही दर्शक को पात्रों, परिस्थितियों तथा भावी घटनाओं की सूचना मिल जाती है।

आहार्य अभिनय के लिए चार प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। पुस्त, अलंकार, अंगरचना तथा संजीव। काठ के फलक, वस्त्र, चर्म आदि से जो प्रतिमायें रंगमंच पर रखने के लिए बनाई जाती हैं, वे संधिम पुस्त हैं। जो प्रतिमाएँ यन्त्र के द्वारा चलती-फिरती प्रतीत होती हैं, वे व्याजिम पुस्त के अन्तर्गत आती हैं। जो प्रतिमाएँ चेष्टा करती हैं, वे चेष्टिक कोटि में आती हैं। पुस्त के द्वारा पर्वत, रथ और विमान प्रस्तुत किये जाते थे।

अभिनय करते समय अभिनेता यदि स्वर्ण, रत्न आदि के वास्तविक अलंकार धारण कर ले तो सभी अलंकार इतने बोझिल हो जायँ कि अभिनय करना तो दूर रहा, भय था कि अभिनेता मूर्च्छित हो जायँ। ऐसी परिस्थिति में अभिनेताओं को जतुपूर्ण और अल्परत्न वाले अलंकार पहनाये जाते थे। अभिनेता की देव, असुर, मानुष, यक्ष राक्षस आदि कोटि तथा उनके देश, मनोदशा आदि का परिचय उनकी वेश-भूषा आदि से हो सकता था। इन्हीं को दृष्टिपथ में रख कर वस्त्र और अलंकार आदि पात्रों को पहनाये जाते थे।

अंगरचना में पात्रों के शरीर को रँगा जाता था। उस पर विविध प्रकार के चित्र बनाये जाते थे तथा दाढ़ी आदि बना दी जाती थी। वस्त्र पहनाने का विधान अंगरचना के अन्तर्गत है। इन सभी की रचना में पात्रों के देश, जाति, आयु, व्यवसाय आदि का ध्यान रख कर उन्हीं के अनुकूल रूप बनाया जाता था।

रङ्गमंच पर प्राणियों का प्रवेश संजीव कोटि का आहार्य है। इसके द्वारा साँप आदि अपद, मनुष्य-पक्षी आदि द्विपद तथा गाँव और अरण्य के चतुष्पद पशुओं का अभिनय होता था।

आहार्य अभिनय की साधारणतः सभी वस्तुयें प्रायः कृत्रिम होती थीं। अस्त्र-शस्त्र, पर्वत, भवन, गुफायें, हाथी, घोड़े, रथ, विमान आदि सभी बाँस, लकड़ी, वस्त्र आदि से बना लिए जाते थे। ताड़ के पत्ते भी इस काम के लिए उपयुक्त होते थे।

शस्त्र बनाने के लिए तृण, बाँस, पत्तों तथा लाख का उपयोग होता था। अनेक वस्तुयें मिट्टी की बना ली जाती थीं।[1]

अनुभाव के प्रदर्शन के लिए सात्त्विक अभिनय होता है। जिस अभिनय में सत्त्व की अधिकता होती थी, उसे ज्येष्ठ अभिनय कहते थे। मध्यम कोटि के सत्त्व वाले अभिनय को मध्य तथा सत्त्वहीन अभिनय को अधम कोटि में रखा गया था। सात्त्विक अभिनय में मन को समाहित करके रोमांच, अश्रु, स्वरभेद, स्तम्भ, स्वेद, वेपथु वैवर्ण्य तथा प्रलय-भावों का प्रदर्शन रस और भाव की निष्पत्ति के लिए होता है।[2]

नाट्याभिनय के लिए अनेक पात्रों का चुनाव होता था। विविध कोटि के अनु-कार्य (देव, दानव, मानव) आदि का रूप लेने के लिए विभिन्न योग्यता के पात्रों को प्रशस्त माना गया है। देवता की भूमिका में वर्तमान होने के लिए पात्र को मनोरम अंग वाला प्रियदर्शन होना चाहिए। उसे मोटा या दुबला, दीर्घ या मन्थर नहीं होना चाहिए। साथ ही उसके शरीर से आभा प्रगट होनी चाहिए तथा स्वर में माधुर्य होना चाहिए। राक्षस, दानव और दैत्य की भूमिका में अभिनय करने के लिए मोटा, ऊँचा और महाकाय मनुष्य चुनना चाहिए, जो मेघ के समान गरजता हो तथा जिसकी भ्रुकुटी चढ़ी हुई हो। राजा तथा राजकुमार की भूमिका में अभिनय करने के लिए वह व्यक्ति चुनना चाहिए, जिसके नेत्र, अंग, ललाट, नासिका, ओष्ठ, कपोल, मुख, कण्ठ, ग्रीवा आदि सुन्दर हों, अंग-प्रत्यंग मनोरम हों तथा जो सुशील, ज्ञानी और प्रियदर्शन हो। भरत ने सेनापति, अमात्य, कंचुकी, श्रोत्रिय, मुनि आदि की भूमिका में अभिनय करने योग्य पात्रों की विशेषताओं का विवेचन किया है।[3]

अभिनय करने वाले पात्रों को भूमिका की दृष्टि से तीन प्रकृतियों में बाँटा गया था—अनुरूपा, विरूपा और रूपानुरूपिणी। अनुरूपा भूमिका में अनुरूप स्त्री ही स्त्री की भूमिका तथा पुरुष ही पुरुष की भूमिका में प्रकट होते हैं। पात्र की अवस्था भी अनुकार्य के समान होती है। भूमिका में यदि बालक वृद्ध या वृद्ध बालक का अभिनय करता तो वह विरूपा प्रकृति कही जाती थी। यदि पुरुष स्त्री की भूमिका का अभिनय करता तो वह प्रकृति रूपानुरूपिणी कही जाती थी।[4]

शैली

रूपक में रस की दृष्टि से यथायोग्य अक्षर, अलंकार, छन्द और शब्द-योजना का विधान बनाया गया है। भरत का मत है कि वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों के

१. आहार्य प्रकरण नाट्यशास्त्र २१वां अध्याय।
२. वही ७.९३–९४ तथा २२.१–३।
३. वही अध्याय ३५ में भूमिका-विन्यास।
४. वही अध्याय २६।

काव्य में लघु अक्षर की विशेषता, उपमा और रूपक अलङ्कार होने चाहिए। इसके विपरीत बीभत्स और करुण में गुरु अक्षर की विशेषता होनी चाहिए तथा ऐसा ही होना चाहिए, जब वीर और रौद्र रस आधर्षण-विषयक हों। शृङ्गार-रस के लिए रूपक, दीपक आदि अलङ्कार, आर्या अथवा अन्य मृदु वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए। वीररस के लिए जगती और अतिजगती के अतिरिक्त संकृति नामक छन्द की योजना होनी चाहिए। युद्ध, और सम्फेट के प्रकरण में उत्कृति और करुण में शक्वरी तथा अतिधृति छन्द होने चाहिए। भरत का निर्णय है।

> शब्दानुदारमधुरान् प्रमदाभिधेयान्
> नाट्याश्रयासु कृतिषु प्रयतेत कर्तुम्।
> तैर्भूषिता भुवि विभान्ति हि काव्यबन्धाः
> पद्माकरा विकसिता इव राजहंसैः ॥ (ना० शा० १६.१२१)

अभिनय-काल

अभिनय करने की दृष्टि से श्रुतिमधुर और धर्माभ्युदय विषयक नाट्य के लिए दोपहर के पहले का समय, सत्त्व-संवर्धन विषयक तथा वाक्य की विशेषता वाले नाट्यों के लिए दोपहर के पश्चात् का समय, कैशिकी-वृत्ति के शृङ्गार-रस सम्बन्धी नृत्य, गीत और वाद्य से विशिष्ट नाटक के लिए प्रदोष-वेला तथा माहात्म्यगर्भित, कारुणिक नाट्य के लिए प्रभात की वेला सर्वोत्तम मानी गई थीं। मध्याह्न, अर्धरात्र, सन्ध्या और भोजन करने की वेला में नाट्य का अभिनय निषिद्ध था। असाधारण परिस्थितयों में समय का विचार न रखते हुए कभी भी अभिनय किया जा सकता था, जब आश्रयदाता नाट्य-दर्शन की इच्छा प्रकट करे।[1]

अभिनय के लिए कुछ नियन्त्रण लोकसंग्रह की दृष्टि से बनाये गये थे। भरत ने बतलाया है कि किसी कुटुम्ब के पिता, पुत्र, स्नुषा श्वश्रू आदि नाटक का अभिनय देखने के लिए आ सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में शयन, चुम्बन, आलिङ्गन, भोजन, जल-क्रीडा आदि लज्जास्पद दृश्यों को रंगमंच पर नहीं दिखाना चाहिये।[2]

राजाओं के आश्रय में महाकवियों के नाटकों का अभिनय सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सका था। परवर्ती युग में राजाओं की राजधानियों में तथा बड़े नगरों में चारों दिशाओं के महाद्वार या गोपुर से होकर जो सड़कें आती थीं, उनके दोनों ओर दो नाट्यशालायें बनती थीं। बड़े नगरों में इस प्रकार आठ नाट्यशालायें हो सकती थीं। नाट्यमण्डप तीन तले होते थे। नाट्यमण्डप के महास्तम्भ हिरण्मय

---

१. नाट्यशास्त्र. २७.८०—८६।

२. वही २२.२८४–२८८।

बनते थे और भित्तियाँ स्फटिक-मणि-जटित होती थीं । नाट्य के मण्डप-शिखर पर रत्न विराजते थे ।[1] कुछ नाट्यगृहों के अवशेष पर्वतीय प्रदेश में भी मिले हैं ।[2]

नाट्य की लोकप्रियता के प्रमाण नाटक-ग्रन्थों में मिलते हैं । राजाओं के अतिरिक्त विद्वानों की परिषद् भी वसन्तोत्सव आदि के अवसर पर महाकवियों के नाटकों के अभिनय का रस लेती थी ।[3] अभिनय के द्वारा विद्वानों का परितोष तो होना ही चाहिए था ।[4] राजाओं की ओर से नाट्याचार्य नियुक्त होते थे और वे कुमारियों को अभिनय की शिक्षा देते थे ।[5] एक नाट्याचार्य ने नाटक की महिमा व्यक्त करते हुए कहा है—मुनियों ने नाट्य को देवताओं के नेत्रों के लिए शान्ति प्रदान करने वाला यज्ञ माना है । शिव ने अपने लिए ताडण्व तथा पार्वती के लिए लास्य अपनाकर नाट्य के दोनों अंगों को ग्रहण कर लिया है । इसमें लोकचरित तीन रसों से समायुक्त होता है ।

प्राश्निक

अभिनय के सम्बन्ध में विद्वानों का परितोष प्रमाण माना जाता था । उनके अतिरिक्त कुछ लोग अभिनय के सम्बन्ध में प्रामाणिक मत देने के लिए प्राश्निक नियुक्त होते थे । भरत ने प्राश्निक की योग्यता का परिचय दिया है । प्राश्निक सदाचारी, अभिनय-गुण-सम्पन्न, शान्त, वेदज्ञ, यश और धर्म में रत, मध्यस्थ, सुभाषी, नाट्य के छः अंगों का ज्ञाता, निर्लोभ, पवित्र, समभावना वाला, वाद्य बजाने में कुशल, तत्त्वदर्शी, देशों की भाषायें तथा विधान जानने वाला, कला और शिल्प का प्रयोजक, चार प्रकार के अभिनयों को जानने वाला, रस और भाव का समझने वाला, शब्द, छन्द और विधान को समझने वाला तथा अनेक शास्त्रों में विचक्षण होना चाहिए । भरत ने अभिनय को देखने वाले प्रेक्षकों की योग्यता के सम्बन्ध में भी विवेचन किया है । इसके अनुसार प्रेक्षक को सभी इंद्रियों से सम्पन्न, शुद्ध, ऊहापोह में कुशल, निर्दोष, सहानुभूति रखने वाला होना चाहिए । उसमें नायक के सन्तोष के साथ सन्तोष, शोक के साथ शोक और दैन्य के साथ दीनता होनी चाहिए ।[6]

---

१. महापुराण २२·१४७—१५० ।

२. भरत के अनुसार प्रथम नाट्याभिनय शिव के देखने के लिए हिमालय पर रम्य कन्दर, निर्झर तथा उपवन से सुशोभित प्रदेश में हुआ था । नाट्यशास्त्र ४·९ ।

३. मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय की प्रस्तावना ।

४. अभिज्ञान-शाकुन्तल की प्रस्तावना से ।

५. मालविकाग्निमित्र अंक १ में विष्कम्भक ।

६. नाट्यशास्त्र २७.४७—५२ ।

चित्राभिनय

कतिपय उद्दीपन विभावों की रंगमंच पर उपस्थिति आहार्य के द्वारा सम्भव न होने पर चित्राभिनय से की जाती है। चित्राभिनय के द्वारा दिनरात के विविध काल, वर्ष के विविध ऋतु, जलधर, वन, जलाशय, दिशा, ग्रह, नक्षत्र ज्योत्स्ना, वायुसुरभि, रस, गन्ध, धूप, धूलि, धूम, विद्युत्, उल्का, मेघगर्जन, सिंह आदि श्वापद, छत्र-ध्वज-पताका अस्त्र, शस्त्र, पक्षी आदि प्रेक्षकों को प्रदर्शित किये जाते थे। इनमें से कई अंगिक अभिनय द्वारा और शेष अपने लक्षक से प्रदर्शनीय थे। यथा,

> **ऊर्ध्वकेकरदृष्टिस्तु मध्याह्ने सूर्यमादिशेत् ।**
> **ध्वजापताकाश्च निर्देश्या दण्डधारणात् ।।**
> **प्रमोदजननारम्भैरुपभोगैः पृथक् पृथक् ।**
> **वसन्त स्त्वभिनेतव्यो नाना पुष्पप्रदर्शनात् ।।** (ना० शा० २५.८,२३,३३)

ऊपर जिस नाट्याभिनय का वर्णन किया गया है, उसका विकास राजाओं के आश्रय में विशेष रूप से हुआ। साधारण जनता के बीच गाँवों में जिस अभिनय की प्रतिष्ठा हुई, उसका परिचय पा लेना कठिन ही है। सोमदेव के कथासरित्सागर में लासक नामक नर्तक के द्वारा अभिनय करने का वर्णन मिलता है, जिसमें दैत्यों के अमृत का स्त्रीरूपधारी विष्णु के द्वारा हरण दिखलाया जाता था। इसमें अमृतकलश की स्थापना कर दी जाती थी और लासक की कन्या लास्यवती कलश के चारों ओर नृत्य करती थी। संभवतः तत्कालीन गाँवों में ऐसे नाट्याभिनय करने वाली नाट्य-मण्डलियाँ रही होंगी। रामलीला, कंसवध आदि का अभिनय करने वाली नाट्यमण्डलियाँ भी रही होंगी या गाँवों के लोग ही अपने ढंग से साधारण अभिनय कर लेते होंगे।

जैन साहित्य में नाट्याभिनय के राजाश्रय पाने के उल्लेख मिलते हैं। मेघकुमार नामक राजकुमार वैवाहिक जीवन का पूर्ण आनन्द लेने के लिए राजभवन में ३२ पात्रों द्वारा प्रस्तुत नाटक देखता था। नाट्याभिनय का उपयोग धर्मप्रसार के साधन के रूप में भी होता था। महावीर के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास, निर्वाण तथा उनके उपदेश देने के दृश्यों को एक नाटक में पात्र अभिनय द्वारा प्रस्तुत करते थे।

पाटलिपुत्र में 'आसाढभूति' नाटक साधु महाराज भरत के जीवन-चरित्र का नाटक प्रस्तुत करता था। इस नाटक को देखकर अनेक राजा और राजकुमार संन्यासी हो गये। अन्त में इस नाटक का अभिनय वर्जित हो गया और इसे नष्ट कर दिया गया, जब लोगों ने देखा कि इसके प्रभाव से प्रजा की हानि होगी और पृथ्वी पर कोई क्षत्रिय नहीं रह जायेगा। महुयरीगीय तथा सोयामणि नामक नाटकों के उल्लेख मात्र मिलते हैं। नाट्याभिनय की विविधता की चर्चा रायपसेणिय नामक ग्रन्थ में मिलती है।

अध्याय २

अश्वघोष

शारिपुत्र-प्रकरण और अन्य दो रूपकों के रचयिता अश्वघोष का प्रादुर्भाव प्रथम शती ईसवी में हुआ। अश्वघोष के दो महाकाव्यों बुद्धचरित और सौन्दरनन्द का परिचय प्रथम भाग में दिया जा चुका है। अश्वघोष ने सम्भवतः अनेक रूपकों की रचना की, जिनमें से केवल तीन के जीर्णावशेष मिले हैं। इनमें शारिपुत्र-प्रकरण की पुष्पिका में इसके लेखक अश्वघोष का नाम मिलता है, किन्तु इसी के साथ प्राप्त अन्य दो रूपकों में लेखक का नाम नहीं मिलता, जिन्हें अश्वघोष की रचना मान लिया गया है।[1]

शारिपुत्र-प्रकरण

शारिपुत्र-प्रकरण संस्कृत का प्रथम प्राप्य रूपक है, किन्तु इसके पहले अगणित रूपकों की परम्परा विराजमान थी।[2]

कथानक

मौद्गल्यायन और शारिपुत्र को गौतमबुद्ध ने अपना शिष्य बनाया। इन्हीं की कथा इस प्रकरण में प्रमुख है। शारिपुत्र धनी ब्राह्मण था। उसका परामर्शदाता था विदूषक। किसी दिन शारिपुत्र को अश्वजित् से ज्ञात हुआ कि बुद्ध की योग्यता असीम है और उनका शिष्य बनकर लाभ उठाया जा सकता है। शारिपुत्र ने इस सम्बन्ध में विदूषक से परामर्श किया। विदूषक ने कहा कि आप, ब्राह्मण हैं और किसी क्षत्रिय से उपदेश-ग्रहण उचित नहीं है। शारिपुत्र ने तर्क प्रस्तुत किया कि शीतल जल किसी का हो, उससे

---

१. इन ग्रन्थों की उपलब्धि हस्तलिखित तालपत्रों पर मध्य एशिया के तुर्फान प्रदेश में हुई। इनकी प्राप्ति का श्रेय प्रोफेसर ल्यूडर्स को है। शारिपुत्र के अन्तिम नवम अङ्क की पुष्पिका के अनुसार इसके रचियता सुवर्णाक्षीपुत्र अश्वघोष हैं। इसमें प्रकरण का पर्याय नाम शारद्वतीपुत्र प्रकरण भी मिलता है।

२. इस विषय में कीथ का कहना है—It is curious that fate should have preserved the work of the rival of the Brahmins, while it has permitted his models to disappear. That he had abundant precedent to guide him is clear from the classical form already assumed by his dramas. The Sanskrit Drama. Page 81.

प्यास मिटती है। औषधि कोई दे, उससे रोग दूर होता है। शारिपुत्र ने निर्णय कर लिया कि बुद्ध का शिष्य बनूँगा।

इसके पश्चात् मौद्गल्यायन शारिपुत्र से मिलता है। मौद्गल्यायन ने देखा कि शारिपुत्र बहुत प्रसन्न है। प्रसन्नता का कारण पूछने पर शारिपुत्र ने बताया कि मुझे बुद्ध से शिक्षा लेनी है। मौद्गल्यायन भी उसके साथ हो लिए। दोनों बुद्ध से मिले। बुद्ध ने भविष्यवाणी की कि तुम लोग हमारे शिष्यों में अनुत्तम बनोगे। तुम्हारे ज्ञान और योगशक्ति सर्वोच्च विकसित होंगी। वे दोनों गौतम के शिष्य बन जाते हैं। इसके अन्तिम अङ्क में बुद्ध ने आत्मा की अमरता का निराकरण किया है। अन्त में बुद्ध की स्तुति उन दोनों शिष्यों ने की है और बुद्ध उनको आशीर्वाद देते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि वे दोनों भिक्षु बन गये।

उपर्युक्त कथानक में प्राचीन कथा से एक भिन्नता है, जिसके अनुसार बुद्ध ने शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के समक्ष भविष्यवाणी नहीं की थी, अपितु अन्य लोगों को बताया था कि आगे चल कर ऐसा होगा। बुद्ध चरित में पुरानी कथा को इस प्रसङ्ग में यथावत् रखा गया है। जिससे प्रतीत होता है कि शारिपुत्र-प्रकरण का प्रणयन बुद्ध चरित के पश्चात् हुआ। शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बौद्ध बनने की कथा सर्वप्रथम महावग्ग में मिलती है।

वस्तु, नेता और रसादि की दृष्टि से शारिपुत्र प्रकरण में शास्त्रीय विधानों का बहुत कुछ अनुवर्तन मिलता है, फिर भी प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होनी चाहिए, किन्तु शारिपुत्र प्रकरण की कथा ऐतिहासिक है और वृत्त प्रख्यात है।[१] इसमें नायिका सम्बन्धी भी विषमता है। कथानक का जो अंश मिलता है, उससे यह आभास भी नहीं मिलता कि इसमें नायिका होगी ही। प्रख्यात कथा में नायिका का कोई स्थान नहीं था। परवर्ती प्रकरणों के समान इसमें अङ्कों की संख्या अत्यधिक है। यह नव अङ्कों में पूरा हुआ है। उपर्युक्त बातों का विचार करने से प्रतीत होता है कि अश्वघोष के समक्ष भारतीयेतर नाट्यशास्त्रीय परम्परा थी।

प्रकरण में परिभाषा के अनुसार प्रणयगाथा चाहिए, किन्तु शारिपुत्र-प्रकरण इसका अपवाद प्रतीत होता है। कुछ आलोचक भ्रमवश शारिपुत्र को धीरोदात्त कोटि का नायक मानते हैं। शारिपुत्र ब्राह्मण था और ब्राह्मण साधारणतः धीरप्रशान्त कोटि का ही नायक होता है। इसके अतिरिक्त प्रकरण में धीरप्रशान्त कोटि का नायक होना चाहिए।[२]

---

१. भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।

२. सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः।

शारिपुत्र और मौद्गल्यायन शान्ति की खोज में उदग्र हैं। व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया इस रूपक का चरम उद्देश्य है। परवर्तीयुग में धर्म, दर्शन आदि के प्रचार और प्रसार के लिए रङ्गमञ्च का उपयोग हुआ और अनेक रूपक इस उद्देश्य से लिखे गये। निःसन्देह ऐसे रूपकों की परम्परा में सर्वप्रथम प्राप्य रचना अश्वघोष का शारिपुत्र-प्रकरण ही है।

विदूषक का स्थान आरम्भिक रूपकों में सविशेष महत्त्वपूर्ण था। वास्तव में रूपक का एक उद्देश्य यदि मनोरञ्जन करना है तो हँसने-हँसाने के लिए इसमें विदूषक अत्यन्त उपादेय है ही। अश्वघोष की काव्य-रचना शान्ति को निष्पत्ति के लिए थी, फिर भी वे इसको सर्वजनग्राह्य बनाने के लिए मधुरतम रूप में प्रकट करना चाहते थे। सौन्दरनन्द के उपसंहार में उन्होंने अपनी इस रीति का उल्लेख करते हुए कहा है—

इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृतिः
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात् कृता।
यन्मोक्षात् कृतमन्यदत्र हि मया तत काव्यधर्मात् कृतम्
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति ॥ १८.६३॥

विदूषक जैसे पात्र को इस प्रकार के मन्तव्य वाले रूपक में कवि ने लोकप्रियता की सृष्टि के लिए ही रखा होगा।

शारिपुत्र प्रकरण में पात्र-संख्या की अतिशयता प्रतीत होती है। शारिपुत्र, मौद्गल्यायन और बुद्ध, तो इसके प्रमुख पात्र हैं। इनके अतिरिक्त अश्वजित् कौण्डिन्य और श्रमणादि नायक धीरप्रशान्त बुद्ध के मतानुयायी हैं।

शारिपुत्र-प्रकरण में शान्त-रस अङ्गी है। नाट्यशास्त्र के अनुसार शान्त-रस की नाटक में निष्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि अभिनय के साथ-साथ शान्ति का साहचर्य असम्भव है। फिर भी इसमें अन्य किसी रस को अङ्गी मानना अनुचित है। विदूषक के पात्र होने मात्र से हास्य रस का स्थान निर्विवाद ही है।

शारिपुत्र-प्रकरण में भरतवाक्य-विषयक एक प्रश्न उपस्थित किया गया है। इस प्रकरण में बुद्ध, ने भरत वाक्यात्मक आशीर्वचन कहा है, जो नायक नहीं है। इसके आधार पर कहा गया है कि उस समय तक यह नियम नहीं बना था कि भरतवाक्य से रूपक की समाप्ति होनी चाहिए और न भरतवाक्य का अपरिवर्तनीय रूप ही प्रवर्तित हुआ था। नायक ही के द्वारा भरतवाक्य की उक्ति होनी चाहिए—यह कोई पक्का नियम भास के युग तक नहीं बना था। भास के रूपकों मे से अनेक में 'अतः परमादि' भी नहीं मिलता। स्वप्नवासवदत्त में 'किं ते भूयः' आदि और अतः परमादि भी नहीं हैं और यौगन्धरायण भरतवाक्य कहता है, नायक उदयन नहीं। अविमारक में 'नारद 'किं ते भूयः प्रियमुपहरामि' और 'यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि' आदि के

साथ भरतवाक्य है, किन्तु उसे सौवीर राज कहता है। एक बार और उसके पहले इसी प्रकार की भूमिका के वाक्यों-सहित कुन्तिभोज भी भरतवाक्य कहता है। ये दोनों नायक नहीं हैं। भास के अन्य रूपकों में भी भरतवाक्य-सम्बन्धी कोई निश्चित विचार नहीं है। हाँ, सभी रूपकों में शुभाशंसात्मक वाक्य श्लोक-रूप में हैं। परवर्ती युग में भी भरतवाक्य नायक के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी कहते थे। मुद्राराक्षस में राक्षस भरतवाक्य कहता है किन्तु राक्षस नायक नहीं है। ऐसी स्थिति में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि रूपक का अन्त शुभाशंसात्मक वाक्य से होना चाहिए, जिसे परवर्ती काव्य में भरतवाक्य कहा गया—यह रीति अश्वघोष के समय में थी। भरतवाक्य के पहले के कुछ औपचारिक वाक्य भास के समय तक भी सर्वथा अपेक्षित नहीं माने जाते थे।

अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण के साथ जो अन्य दो नाटक मिले, उनके नाम अथवा उनके रचयिता का नाम उनमें कहीं नहीं मिलता, किन्तु उनकी शैली और नाटकीय कला देखने से यही सम्भावना होती है कि वे अश्वघोष की ही कृति हैं।

बौद्ध नाटक भारत में और भारत के बाहर भी लिखे गये, किन्तु वे अब नहीं मिलते। महान् विद्वान् चन्द्रगोमी का लिखा हुआ बौद्ध नाटक लोकानन्द का तिब्बती अनुवाद-मात्र मिला है। इत्सिंग के अनुसार वेस्सन्तर जातक की कथा की गीतनाटक रूप में परिणति हुई थी। इसके रचयिता महासत्त्व चन्द्र थे, जिनका प्रादुर्भाव पूर्वी भारत में हुआ था। भारत के अनेक प्रदेशों में इस गीतनाटक का अभिनय गीत और नृत्य के साहचर्य में सम्पन्न होता था। बर्मा में आज भी वेस्सन्तर जातक का अभिनय होता है। भिक्षुक की दीक्षा भी नाटकीय अभिनय के रूप में सम्पन्न होती है।

तोखारी भाषा में बुद्ध के जीवनचरित विषयक कुछ रूपक मिले हैं। इन रूपकों का संविधान भारतीय नाटकों के अनुरूप है। चीन की नाट्य कला ऐसे ही साहित्य से अंशतः परम्परित हुई होगी।

अश्वघोष के रूपकों में श्लोक के अतिरिक्त उपजाति, शालिनी, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा और सुवदना वृत्तों में पद्य मिलते हैं। इनमें उत्तम पात्र संस्कृत बोलते हैं। गौतमबुद्ध, उनके शिष्य और अन्य रूपकों के नायक संस्कृत बोलते हैं। सभी प्रतीक पात्र भी संस्कृत-भाषी हैं। एक श्रमण पात्र संस्कृत बोलता है और आजीवक प्राकृत बोलता है। रंगमंच के निर्देश तत्सम्बन्धी पात्रों की भाषा में दिये गये हैं। अनेक प्रकार की प्राकृतों का उपयोग किया गया है। दुष्ट नामक पात्र की भाषा मागधी-प्राकृत से मिलती-जुलती है। गोबम् की भाषा प्राचीन मागधी के समान है, यद्यपि इसमें अर्धमागधी के कुछ लक्षण भी हैं। कीथ के अनुसार इन नाटकों की प्राकृत संस्कृत से प्रभावित है।[1]

---

१. संस्कृत ड्रामा पृष्ठ ८६

अध्याय ३

भास

भारत की अवनति के दिनों में भास का नाममात्र उन्नीसवीं शती तक ज्ञात था। इस बीच उनकी कोई रचना सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध नहीं थी।[1] १९१२ ई० में गणपति शास्त्री ने सर्वप्रथम उनके नाटकों का सम्पादन किया। कविता-कामिनी के हास-रूप में प्रतिष्ठित महाकवि भास का प्रादुर्भाव कब हुआ—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। कालिदास के पहले भास हुए इतना तो निश्चित ही है। अश्वघोष के पश्चात् भास के होने के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं। भास को कालिदास से १०० वर्ष पहले अर्थात् ३०० ई० के आसपास मानकर उन्हें गुप्तयुग के शुभागमन के अवसर पर प्रथम स्वागतगान करने वाले महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। भास ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। वे सम्भवतः कौशाम्बी के निवासी थे, जैसा उनके वत्स प्रदेश के आत्मसंस्तुत वर्णन से ज्ञात होता है। उनका व्यक्तित्व वैष्णव आदर्शों से अनुप्राणित था। भास का भारतीय संस्कृति के उदात्त गुणों में अप्रतिम विश्वास था। उनके हृदय में आत्मगुणों के प्रति सम्मान था।

कवि-परिचय

भास का काल-निर्णय एक पहेली है। साहित्य के इतिहास की गवेषणा करने वाले पण्डितों ने भास को ई० पू० ५०० से लेकर ११०० ई० तक रखा है। इस प्रकार १६०० वर्षों के दीर्घ अन्तराल में भास को कहीं निबद्ध कर देना सरल नहीं है। प्रत्येक इतिहासज्ञ के अपने-अपने प्रमाण हैं, जो उनको अभीष्ट मन्तव्य तक पहुँचाते हैं। वस्तुतः भास को ३०० ई० के लगभग रखना समीचीन है। इस सम्बन्ध में प्रमाण भास के प्रतिमा नाटक पर आधारित है, जिसमें उन्होंने मृत राजाओं की मूर्तियों को प्रतिष्ठापित करने का उल्लेख किया हैं। कुशन-युग के पहले राजाओं की मूर्तियों के तक्षण के प्रमाण नहीं मिलते हैं। कुशन-युग में मथुरा-कलाकेन्द्र में बनी हुई राजाओं की मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें से कनिष्क, वेम-कडफिसीज और चष्टन की

---

१. भारत के प्राचीन महाकवियों ने जिस आदर के साथ भास का नाम लिया है, वह केवल भास को ही नहीं, सारी प्राचीन कवि-परम्परा को गौरवान्वित करता है। ऐसे प्रशंसकों में कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर आदि प्रमुख हैं।

मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। ऐसी मूर्तियों का विशेष प्रचलन कुशन-रीति के द्वारा प्रवर्तित हुआ। ऐसा मान लेने पर भास अनायास ही कुशन-युग और गुप्त-युग के मध्यवर्ती बनकर ३०० ई० में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

कीथ ने भास को ३०० ई० के लगभग नीचे लिखे प्रमाणों के अनुसार रखा है। 'कालिदास भास के यश से प्रभावित थे, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है। यदि कालिदास को ४०० ई० के लगभग मानें तो भास को ३०० ई० के पश्चात् नहीं रख सकते। भास प्रथम शती ईसवी के अश्वघोष से पश्चात् के हैं, क्योंकि उनकी प्राकृत भाषा अश्वघोष की प्राकृत से परवर्ती प्रतीत होती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण के एक श्लोक पर बुद्धचरित की छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भास की शैली और भाव-विवेचन की रीति अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास के अधिक निकट पड़ती है।[1]

भास की तिथियों की विप्रतिपत्तियों का निदर्शन करें—

१. गणपति शास्त्री तथा हरप्रसाद शास्त्री—	छठी शती से चौथी शती ई०पू०तक
२. कोनो, स्वरूप, वेलर	दूसरी शती
३. बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, कीथ	तीसरी शती
४. विण्टरनित्ज	चौथी शती
५. बानट	सातवीं शती
६. काणे	नवीं शती
७. रामावतार शर्मा	दशवीं शती
८. रड्डी शास्त्री	ग्यारहवीं शती

भास पर गम्भीर गवेषणा करने वाले पुसाल्कर उन्हें पाँचवीं या चौथी शती ई० पू० में मानते हैं। उनके प्रमुख प्रमाण हैं—

(१) भास के द्वारा आर्यपुत्र शब्द का राजा के अर्थ में प्रयोग। यह अर्थ अशोककालीन है। इसके पश्चात् यह शब्द एकमात्र पति के अर्थ में नाटकों में प्रयुक्त होने लगा।

(२) भास के नाटकों में चित्रित सामाजिक दशा का पाँचवीं या चौथी शती ई० पूर्व का होना।

---

१. स्टेनकोनो का मत है कि शैली की दृष्टि से भास अश्वघोष के अधिक निकट हैं। वे भास को महाक्षत्रप रुद्रसिंह के समकालीन मानते हैं। रुद्रसिंह (१८१—१८८ ई०) तथा (१९१—१९६ ई०) तक शासक रहा। पंचरात्र के भरत-वाक्य में उनके मतानुसार जिस राजसिंह का उल्लेख है, वह यही रुद्रसिंह है।

(३) मन्दिर की परिधि में बालू छींटना। यह रीति पांचवीं शती ई० पू० में थी।

(४) जैन और बौद्ध धार्मिक रीतियों का परिहासास्पद चित्रण। इससे सिद्ध होता है कि भास इन दोनों धर्मों के आरम्भ होने के समय से बहुत पश्चात् के नहीं हो सकते।

उपर्युक्त प्रमाणों में से कोई भी इतना बलशाली नही दीखता, जिससे भास को निर्विवाद रूप से पाँचवी शती ई० पू० में रखा जा सके।

बार्नेट ने सातवीं शती में रचे हुए महेन्द्रवीरविक्रम के 'मत्तविलास' नामक प्रहसन को भाषा और परिभाषिक शब्दों की दृष्टि से भास के नाटकों के समकक्ष बतलाकर इन नाटकों को सातवीं शती में रखा है।

कुछ इतिहासकार भास को इतिहासज्ञता का श्रेय नहीं देना चाहते। यदि भास ने पाटलिपुत्र को बड़ा नगर नहीं माना है तो वे इस परिणाम पर जा पहुँचते हैं कि भास पाटलिपुत्र के बड़ा नगर बनने के पहले के हैं। वे क्यों नहीं ऐसा मानते हैं कि भास कम से कम पाटलिपुत्र के इतिहास से सुपरिचित थे और उन्होंने प्राचीन कथा से लघु पाटलिपुत्र का संयोजन किया है?

आचार का आदर्श उपस्थित करने वाले संस्कृत के महाकवियों में व्यास और वाल्मीकि के पश्चात् अश्वघोष और भास का नाम लिया जा सकता है।[1] भास संस्कृत के प्रथम श्रेष्ठ नाटककार हैं। इनके पहले केवल अश्वघोष के नाटक मिलते हैं। परवर्ती काव्यों का पर्यालोचन करने से प्रतीत होता है कि उनके उपजीव्य ग्रन्थों में भास के नाटकों का विशेष स्थान रहा है। भास को संस्कृत-नाटक-विधा का आचार्य मान सकते हैं।

भास के द्वारा विरचित अभी तक १३ रूपक मिले हैं। इनके नाम रचना-सौष्ठव के क्रमानुसार इस प्रकार हैं—दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, ऊरुभङ्ग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, अभिषेक, बालचरित, अविमारक, प्रतिमा, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त और चारुदत्त।

दूतवाक्य

कथानक

दुर्योधन की मन्त्रशाला में सभी राजा उससे मन्त्रणा करने के लिए उपस्थित होते हैं।[2] भावी युद्ध के लिए आयोजन करना है। द्रोण, शकुनि, कर्ण आदि भी दुर्योधन

१. परवर्ती युग में आदर्शवादिता मिट सी गई या शृंगार-रंजित हो गई।

२. यह दृश्य दुर्योधन के शिविर का है।

के साथ जाते हैं । दुर्योधन सबके लिए विशेष आसन बता कर उन्हें आदर पूर्वक बैठाता है । युद्ध के लिए सेनापति कौन हो--इसका निर्णय शकुनि के प्रस्तावानुसार भीष्म के पक्ष में होता है । तभी कृष्ण के आने का समाचार कंचुकी देता है कि पुरुषोतम नारायण पाण्डवों के स्कन्धावार से दूत बन कर पधारे हैं। कृष्ण के लिए पुरुषोत्तम नारायण सुनना दुर्योधन को असह्य है । वह कंचुकी को झिड़कता है कि उस ग्वाले को तुम पुरुषोत्तम कहते हो। राजाओं के साथ रहने पर भी तुम्हें समुदाचार नहीं आया । कंचुकी बेचारा सकपका कर कहता है कि घबराहट में समुदाचार भूल गया । दुर्योधन के पुनः पूछने पर कहता है कि दूत बन कर केशव आया है। दुर्योधन कहता है--यह समुदाचार है । लोगों ने कहा--केशव को अर्घ प्रदान किया जाय। दुर्योधन ने कहा--नहीं, उसे पकड़ लिया जाय, फिर तो पाण्डव अन्धे हो जायेंगे । मेरा विरोधी ही कोई नहीं रहेगा। उसने आदेश दिया कि कृष्ण के प्रति आदर प्रकट करने के लिए कोई खड़ा नहीं होगा । जो खड़ा होगा, उसे १२ स्वर्ण मुद्रायें दण्ड देनी पड़ेंगी ।

दुर्योधन को चिन्ता आ पड़ी कि मुझे न खड़ा होना पड़े। इसके लिए क्या करूँ ? उसने इसके लिए वह चित्रपट मँगवाया, जिसमें द्रौपदी का केशकर्षण चित्रित था और सोच लिया कि इसे देखते हुए ही कृष्ण के आने पर नहीं उठूँगा ।

चित्रपट को देखते हुए दुर्योधन उस में अभिव्यक्त पराक्रम की प्रशंसा कर रहा है। फिर उसमें चित्रित पाण्डवों के अमर्ष की चर्चा करता है कि वे सभी लड़ मरने के लिए सचेष्ट हैं । युधिष्ठिर सबको रोक देते हैं । शकुनि प्रसन्न है। द्रोण और भीष्म लज्जित हैं । दुर्योधन चित्रकार की प्रशंसा करता है--**अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता अहो युक्तलेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपट:।**

दुर्योधन तिरस्कार से कहता है--उस चिड़िया की सवारी करने वाले को लाओ । कृष्ण के प्रवेश करते ही सभी राजा घबड़ा गये । कृष्ण ने उनसे कहा कि आप बैठें ,दुर्योधन ने उन्हें धमकाया कि आप लोग दण्डित होंगे । केवल दुर्योधन बैठा रहा तो कृष्ण ने उससे कहा--क्या बैठे हो ? वह आसन से गिर ही गया और कृष्ण से कहा--दूत, इस आसन पर बैठ जाओ । कृष्ण ने सबको बैठाया और चित्रपट की ओर देखा । उन्होंने कंचुकी को आदेश दिया कि इसे दूर हटाओ। दुर्योधन ने कृष्ण से पूछा कि धर्मपुत्र, वायुसुत, इन्द्रपुत्र और अश्विपुत्र क्या सकुशल हैं ? कृष्ण ने कहा--सब सकुशल हैं। युधिष्ठिर अपना राज्य-भाग चाहते हैं। दुर्योधन ने कहा--कैसा राज्य ? हमारे चाचा तो मुनि के शाप से दारनिस्पृह थे । वे दूसरों के जनमाये हुए पुत्रों के पिता कैसे माने जा सकते हैं ? कृष्ण ने उत्तर दिया कि तुम्हारे बाप की भी उत्पत्ति तो कुछ ऐसी ही है । विचित्रवीर्य क्षयरोग से मर गये तो उनकी पत्नी से व्यास ने धृतराष्ट्र को नियोग द्वारा उत्पन्न किया ।

दुर्योधन ने कहा––राज्य-भोग भिक्षा से नहीं मिलता है। पाण्डव, राज्य चाहते हों तो लड़कर लें। कृष्ण ने समझाया कि बन्धु-बान्धवों के प्रति सदय बनो। दुर्योधन ने कहा कि अपने को देखो। तुमने कंस को मार डाला, जो तुम्हारा मामा था। कृष्ण ने इसके आक्षेपों का उत्तर देने के पश्चात् कहा कि परिहास बहुत हो चुका। अब काम की बात करो। दुर्योधन ने फिर वही कठोर बातें कहीं। कृष्ण ने समझ लिया कि इससे परुष बातें कह कर ही काम बनने की सम्भावना है। उन्होंने कहा कि अर्जुन के पराक्रम को तुम जानते हो कि उसने शिव से युद्ध करके उन्हें प्रसन्न किया, विराट नगर में भीष्मादि को पराजित किया और चित्रसेन से तुमको बचाया।

दुर्योधन ने कहा––मैं अपने पैतृक राज्य को नहीं देता। फिर तो गालीगलौज का वातावरण उत्पन्न हो गया। अन्त में दुर्योधन ने कृष्ण से बोलना बन्द कर दिया। यह देख कर कृष्ण ने कहा कि कुरुवंश का शीघ्र नाश होगा। इसके पश्चात् वे जाने लगे। दुर्योधन ने कहा––इसने दूत के समुदाचार का उल्लंघन किया है। इसे बाँधो। जब और कोई बाँधने के लिए नहीं बढ़ा तो कृष्ण को बाँधने के लिए स्वयं दुर्योधन आगे बढ़ा। कृष्ण ने विश्वरूप धारण कर लिया। वे कभी अदृश्य हो जाते थे, फिर प्रकट हो जाते थे। अनेक रूप हो गये। कृष्ण की दिव्य शक्ति से सभी राजा ही बँध गये। अन्त में उन्होंने अपने शस्त्रादि को बुलाया। उन्होंने सुदर्शन से कहा कि दुर्योधन को मार डालो। सुदशन ने सम्मति दी––

महीभारापनयनं कर्त्तुं जातस्य भूतले।
अस्मिन्नेव गते देव ननु स्याद् विफलः श्रमः॥ १.४६॥

कृष्ण ने कहा––क्रोध के कारण समुदाचार का विस्मरण हो गया था।

सुदर्शन के जाते समय शार्ङ्ग धनुष, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख, नन्दक तलवार, गरुड क्रमशः आये। सबको सुदर्शन चक्र ने लौटाया कि अभी कृष्ण को आपकी आवश्यकता नहीं है। कृष्ण पाण्डवों के शिविर को लौट गये।

दूतवाक्य की कथा महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत भगवद्यानपर्व से ली गई है। महाभारत की कथा के अनुसार कृष्ण के स्वागत के लिए दुर्योधन ने सभावास्तु बनवाया, जैसा उसे धृतराष्ट्र से आदेश मिला था। किन्तु वह कृष्ण को बन्दी बनाना चाहता था। स्वयं दुर्योधन कृष्ण के आवास पर आकर उनसे निवेदन करते हैं कि धृतराष्ट्र, भीष्म आदि सभा में आ गये हैं। आप भी चलें। कृष्ण ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पाण्डवों से सन्धि करने का प्रस्ताव रखा। धृतराष्ट्र ने सब कुछ सुनने के पश्चात् कहा कि मेरे मन्दमति पुत्र दुर्योधन को समझायें। कृष्ण ने उसे भी प्रेमपूर्वक समझाया और आधा राज्य दे देने के लिए कहा, अन्यथा विनाशकारी युद्ध की सम्भावना बताई। दुर्योधन ने कहा कि पाण्डवों को पहले जो राज्य दिया गया, वह उचित नहीं था। अब तो सुई की नोक बराबर भी भूमि उन्हें नहीं दे सकता। कृष्ण ने उसे बुरा भला

कहा। दुर्योधन आक्रोशवश वहाँ से अपने साथियों के साथ अन्यत्र चला गया। कृष्ण ने सुझाव दिया कि आप लोग दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को बाँध कर पाण्डवों को सौंप दें। अन्यथा सभो क्षत्रियों का विनाश होगा। दुर्योधन ने अपने साथियों के परामर्श से योजना बनाई कि हम लोग कृष्ण को बन्दी बनायें। कृष्ण के साथी सात्यकि ने कौरवों की यह चाल समझ ली और कृष्ण और धृतराष्ट्र को यह सब ज्ञात हो गया। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को समझाया कि तुम यह क्यों कर असम्भव और अनुचित कार्य करना चाहते हो। कृष्ण ने दुर्योधन को अपना विश्वरूप शंख-चक्रादि से युक्त दिखलाया। कृष्ण ने सबकी अनुमति ली और वहाँ से कुन्ती से मिलने चले गये।

समीक्षा

भास ने दूतवाक्य के कथानक को रूपकोचित बनाने के लिए पात्रों की संख्या स्वल्प कर दी है और नायक दुर्योधन को महत्त्व देने के लिए धृतराष्ट्र आदि को इसका पात्र नहीं बनाया है। महाभारत में भीष्म का सेनापति पद पर चुनाव इस घटना के पश्चात् होता है, किन्तु दूतवाक्य में पहले ही यह निर्णय हो जाता है। कृष्ण के आने पर कोई खड़ा न हो—यह भास की कल्पना है, जो महाभारत में नहीं है चित्रपट की घटना भी भास की कल्पना है।[१] कृष्ण का अपमान भी भास की कल्पना मात्र है। महाभारत में दुर्योधन युद्ध के लिए विशेष उत्सुक नहीं दिखाई देता। महाभारत में कृष्ण को बाँधने की योजना-मात्र है। दूतवाक्य में दुर्योधन ने बाँधने के लिए आदेश दे दिया है। विश्वरूप-प्रदर्शन का सारा दृश्य भास की काव्य-प्रतिभा से विशेष रमणीय और अद्भुत बन सका है।

दूतवाक्य में दुर्योधन का चरित्र महाभारत की तत्सम्बधी कथा की अपेक्षा हीनतर है, जैसा ऊपर लिखे कथा संक्षेप से भी स्पष्ट होता है।[२]

---

१. भास चित्र और मूर्ति आदि शिल्पों के अतिशय प्रेमी थे, और यथासम्भव अपने कथानकों में इनसे सम्बद्ध चर्चायें जोड़ देते थे। यह प्रवृत्ति उनकी सभी कृतियों में मिलती है। परवर्ती नाटककारों ने भास की इस प्रवृत्ति का प्रायशः अनुकरण किया है।

२. डा० पुसालकर का नीचे लिखा मत इस विषय में ठीक विपरीत है, किन्तु वह निराधार प्रतीत होता है—We do not think that the wickedness of Duryodhana is emphasised here, on the contrary he is shown in a farourable light as a comparison with the similar incidents in the epic will prove. P. 191. Duryodhana is presented in the drama as a mighty warrior, a dignified emperor, thus quite in contrast to the epic where he is merely a wicked man. P.189. Bhasa: A Study.

इस सम्बन्ध में कीथ का मत है—The Dutavakya is admirable in his contrast between the character of Duryodhana and the majesty of kṛṣṇa. the Sanskrit Drama P. 106।

दूतवाक्य व्यायोग कोटि का रूपक है, यद्यपि इसमें आकाशभाषित प्रयोग की बहुलता वीथी के योग्य है। इसमें व्यायोगोचित पुरुष पात्रों की बहुलता प्रख्यात धीरोद्धत नायक वीर और अद्भुत रस आदि हैं और इतिवृत्त ख्यात है। इस रूपक में पर्याप्त व्यञ्जना का प्रयोग हुआ है। नीचे लिखे श्लोक में धर्मात्मज आदि नामों से युधिष्ठिरादि के जारज पुत्र होने की व्यञ्जना है––

धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो भ्रातार्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः ।
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ सर्वेसभृत्याः कुशलोपपन्नाः ।। १·१६ ।।

दूतवाक्य में चन्द्रमा, हाथी आदि और इनके पर्यायवाची पुन:पुनः उल्लेखनीय पद हैं।[1] चित्रपट की योजना नवीनता है। भास के रूपकों में चित्र और मूर्ति की योजना और इन पदों का पुनःपुनः प्रयोग उनकी शिल्प-प्रियता का द्योतक है। अमानुषी पात्र सुदर्शन आदि भी काल्पनिक उद्भावना से प्रसूत हैं। इन योजनाओं की भास के रूपकों में प्रचुरता है, साथ ही परवर्ती साहित्य में विशेषतः रूपकों में इनका बहुल प्रयोग हुआ है। इसमें पाण्डु के शापित होने की चर्चा है।

दूतवाक्य में भास की समुदाचार-परायणता उनके अन्य अनेक रूपकों की भाँति प्रमाणित होती है। वारंवार उस पद का प्रयोग हुआ है। वास्तव में भास आचार्य के रूप में अपने रूपकों में उपस्थित हैं। उनकी सीख है––

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयाँल्लोकयोरुभयोरपि ।। १.२६।।

(भाइयों से प्रेम करो। यह दोनों लोकों में कल्याणकारी है।)

कर्णभार

कर्णभार का क्या तात्पर्य है––इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा० पुसालकर का कहना है कि गणपति शास्त्री, उलनर और सरूप भार का अर्थ बताते हैं––युद्ध में कर्ण का कार्य या उत्तरदायित्व, जब वह सेनापति था। गणपति शास्त्री का कहना है कि इसमें एक और अङ्क होना चाहिए, जिसमें कर्ण का युद्ध-सम्बन्धी पराक्रम का आख्यान होता। डा० पुसालकर ने इस अर्थ से असहमत होकर लिखा है कि कर्णभार रूपक पूर्ण है, किन्तु भार का अर्थ समझने के लिए उन्होंने सामासिक विग्रह किया है––**कर्णयोर्भारभूते कुण्डले दत्त्वा कर्णेनापूर्वा दानशूरता प्रकटीकृता। तामधिकृत्य कृतं नाटकम्।** डा० पुसालकर के इस अर्थ को मानने में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं। पहले तो इतने बड़े सामासिक विग्रह की प्रकल्पना करके पुस्तकों का नाम रखना अस्वभाविक है। दूसरे इस रूपक में कहीं यह नहीं कहा गया है कि कुण्डल कर्ण के लिए भारभूत थे।

१. यथा शशाङ्क १.३; चन्द्रलेखा १.७; १.५१; रण १·४; इभ १.१४ करी १.१५

तीसरे कर्ण ने केवल कुण्डल ही नहीं दिये, अपितु कवच भी दिये थे ।[1] इस प्रसङ्ग में यह भी ज्ञेय है कि प्रधानता कवच की थी न कि कुण्डल की ।[2]

कर्णभार में भार के सुसंगत अर्थ का निर्धारण करने के लिए इस शब्द का भास के रूपकों में अन्यत्र प्रयोगों का अभिप्राय गवेषणीय है ।[3] प्रतिमा नाटक में भरत राम से कहते हैं—प्रतिगृह्यतां राज्यभारः । इस प्रकरण में भार का तात्पर्य उत्तरदायित्व है । प्रतिज्ञायौगन्धरायण में हंसक से यौगन्धरायण कहता है—महान् खलु भारः प्रद्योतस्य निस्तीर्णः ।[4] इस प्रकरण में भार का तात्पर्य है हाथ में लिया हुआ काम । प्रतिज्ञा में यौगन्धरायण ने कहा है—

युद्धे समस्तमतिभारतया विपन्नम् ।।६-१।।

इस वाक्य में भी भारी काम के लिए भार का प्रयोग हुआ है ।

उपर्युक्त दोनों प्रकरणों के सामञ्जस्य में कर्णभार में भार का अर्थ 'प्रशस्त कर्म' लेना समीचीन है । यह अर्थ मानियर विलियम्स के कोश में बताये हुए भार के अर्थ से मेल खाता है । इनके अनुसार भार है—Task imposed on any one. कर्णभार में कवचकुण्डल देने का काम इन्द्र ने कर्ण के ऊपर डाला था । इस अर्थ को स्वीकार कर लेने पर कवच-कुण्डल दे देने के पश्चात् कथा पूरी हो जाती है और कर्ण के द्वारा युद्ध में पराक्रम दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।

कथानक

महाभारत की युद्धभूमि में कर्ण अपने सारथि शल्य को अपने शस्त्र-विद्या सीखने की कहानी बताता है । अपने गुरु परशुराम के कहने पर कि मैं क्षत्रियों को नहीं सिखाता हूँ, मैंने कह दिया कि मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । परशुराम से शिक्षा पाते समय एक दिन आचार्य मेरी गोद में सिर रख कर सो गये । वज्रमुख नामक कीड़े ने मेरी जाँघ में काटा, पर मैंने उन्हें जगाया नहीं । मेरे रक्त से भीगने पर जब वे जगे तो उन्होंने मुझे पहचान लिया कि मैं क्षत्रिय ही हूँ और शाप दिया—

---

१. देवदूत कहता है—कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तापेन इत्यादि ।

२. यह बात 'देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्याम्' से स्पष्ट है । सहयुक्तेऽप्रधाने । इस पाणिनि के सूत्र २·३·१९ से यह सुप्रभात है ।

३. भार का प्रयोग स्वप्नवासवदत्त में हुआ है—

स विश्रमो ह्यं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।।१·१५।।

यहाँ भी भार का अर्थ है हाथ में लिया हुआ उत्तरदायित्वपूर्ण काम ।

४. हाथ में लिए हुए काम के अर्थ में भार प्रयुक्त है इस वाक्य में—अर्धमवसितं भारस्य । स्वप्न० प्रथमाङ्क से ।

कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ।। १-१०

फिर भी कर्ण निराश नहीं है। वह अपना रथ अर्जुन के पास ले जाने का आदेश देता है। उसके रथ पर बैठते ही किसी याचक ब्राह्मण की पुकार सुनाई पड़ती है। वह ब्राह्मण कर्ण को नमस्कार करने पर आशीर्वाद देता है---तुम यशस्वी बनो। ब्राह्मण कर्ण कवच-कुण्डल लेकर सन्तुष्ट होता है। शल्य और कर्ण उसे पहचान लेते हैं कि वह इन्द्र है।

देवदूत आकर कर्ण से कहते हैं कि इन्द्र ने आपके लिए विमला नामक शक्ति किसी भी पाण्डव को मारने में समर्थ बनाने के लिए भेजी है। आरम्भ में कर्ण नहीं लेना चाहता, पर फिर कहने-सुनने पर ले लेता है।

कर्णभार की कथा का मूलाधार महाभारत है। महाभारत के अनेक स्थलों पर कर्ण की कथा के विविध अंश हैं।[1] कर्णपर्व के अनुसार युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय उसने शल्य को बताया था कि परशुराम ने मुझे शाप दिया है कि तुम्हारे अस्त्र आवश्यकता पड़ने पर तुमको स्मरण नहीं आयेंगे, क्योंकि मुझसे झूठ बोलकर तुमने अस्त्रविद्या सीखी है।

महाभारत में कवच-कुण्डल देने की कथा बहुत पहले की है और उसका युद्ध-भूमि पर शल्य के साथ उपर्युक्त परशुराम-कथा-प्रकरण का कोई सम्बन्ध नहीं है। भास ने उपर्युक्त दोनों वृत्तों को अधिक प्रभविष्णुता प्रदान करने के लिए एक साथ कर दिया है।

वनपर्व की कथा के अनुसार कर्ण ने द्रोण, कृपाचार्य तथा परशुराम से अस्त्र विद्या सीखी थी। वह प्रतिदिन दोपहर के समय जल में स्थित होकर सूर्य की स्तुति करता था और उस समय आये हुए याचक ब्राह्मणों को अभीष्ट वस्तु प्रदान कर देता था। एक दिन इन्द्र याचक ब्राह्मण बन कर आया। कर्ण उसे युवती, ग्राम, गोकुल आदि देना चाहता था। इन्द्र ने इन्हें अस्वीकार किया और कवच-कुण्डल माँगा। कर्ण नहीं देना चाहता था। इतने में कर्ण ने उसे पहचान लिया और अन्त में कहा कि आप अपनी अमोघ शक्ति से मेरे कवच-कुण्डल का विनिमय कर लें। इन्द्र अपनी शक्ति किसी एक वीर का वध करने के लिए कर्ण को दे देता है।

समीक्षा

भास ख्यात इतिवृत्तों को तोड़-मरोड़ और जोड़ कर नाटकोचित वातावरण उपस्थित करने में निष्णात हैं। इन्द्र को कवच-कुण्डल देने की कथा को महाभारतीय युद्ध भूमि पर घटित बताना और शल्य को इस घटना का साक्षी और पात्र बना देना भास का अपनी कला में उच्चतम आत्मविश्वास प्रकट करता है।

---

१. कर्णपर्व अध्याय ४२; आदिप० ६७·१४३-१४७; ११०·२८—२९; शान्तिपर्व अध्याय ३ अनुशासनप० १३७·९ बनपर्व ३१०·२१,३८।

वास्तव में इस कथानक में कर्ण का अपनी भूतकालीन परशुराम-सम्बन्धी चरितगाथा सुनाना सर्वथा अनावश्यक है और नाटक की दृष्टि से इसका कोई साम्प्रतिक उपयोग भी नहीं है। ऐसा लगता है कि शाप का तत्त्व भास को रुचिकर प्रतीत होता था और इसे लाने मात्र के लिए परशुराम की कथा का सन्निधान किया गया है।

कवि भावी घटनाक्रम की सूचना पूर्वभूमिका द्वारा देता है। कर्ण कहता है कि मैं गौ, ब्राह्मण आदि की सेवा करने के लिए कुछ भी कर सकता हूँ। इस कथन के थोड़ी देर पश्चात् ही इन्द्र याचक ब्राह्मण बन कर आ ही जाता है।

भास युद्ध के प्रशंसक हैं। परवर्ती युग के विरले ही नाटककार युद्ध को लोकप्रिय बनाने के लिए तर्क उपस्थित करते हैं। भास का कहना है—

हतेऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ।। १·१२

हाथी के पर्यायवची शब्दों का बहुल प्रयोग इस पशु के प्रति भास की श्रद्धा प्रकट करता है।[1]

इस रूपक में छोटे-छोटे वाक्यों के संवाद विशेष प्रभावोत्पादक प्रतीत होते हैं। यथा—

शक्रः—गज इति। मुहूर्त्तमारोहामि। नेच्छामि कर्ण, नेच्छामि।

कर्णः—किं नेच्छति भवान्। अन्यदपि श्रूयताम्। अपर्याप्तं कनकं ददामि।

शक्रः—गृहीत्वा गच्छामि। नेच्छामि कर्ण। नेच्छामि।

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि।

शक्रः—पृथिव्या किं करिष्यामि।

ब्राह्मण-रूपधारी शक्र का प्राकृत बोलना समीचीन नहीं लगता।

कर्णभार में सीख दी गई है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ।। १·२२

अर्थात यज्ञ और दान ही अमर हैं।

कर्णभार का आरम्भ करुण रस से होता है। इसके उत्तर भाग में दानवीर का परिपाक है।

कर्णभार उत्सृष्टाङ्क कोटि का रूपक है।

---

१. करि १·३ में, वारण १,६, १·२०; गज १·११

दूतघटोत्कच

दूतघटोत्कच नामक एकाङ्की महाभारतीय वातावरण में निबद्ध है, यद्यपि इसका कथानक महाभारत में नहीं मिलता। महाभारत में शल्यपर्व में कृपाचार्य ने दुर्योधन के समक्ष प्रस्ताव रखा कि पाण्डवों से सन्धि कर लें। दुर्योधन ने उनका प्रस्ताव नहीं माना। कर्णपर्व में अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा है कि युद्ध बन्द करके सन्धि करो अन्यथा सबका विनाश होगा। दुर्योधन विजय की आशा से उन्मत्त था। उसने उनकी बात टाल दी।

कथानक

भीष्म को अर्जुन ने धराशायी कर दिया—इस अमर्ष से आवेश में आये हुए कौरवों ने जिस दिन अभिमन्यु को मार डाला, उसी दिन की कथा है। गान्धारी और धृतराष्ट्र ने समझ लिया कि हमारे पुत्रों का अन्त होने ही वाला है। उस समय दुर्योधन शकुनि के रोकने पर भी उसके साथ धृतराष्ट्र का अभिवादन करने चल देता है। धृतराष्ट्र उन्हें आशीर्वाद नहीं देता है और बताता है कि तुम सौ भाइयों की एक बहिन दुःशला अब तुम लोगों की कृपा से विधवा हो जायेगी। दुर्योधन के अपनी निर्भीकता प्रकट करने पर धृतराष्ट्र ने अर्जुन के द्वारा प्रवर्तित भावी अनिष्ट का संकेत करते हुए उसके पराक्रम की प्रशंसा की—

शक्रं पृच्छ पुरा निवातकवचप्राणोपहारार्चितं
पृच्छास्त्रैः परितोषितं बहुविधैः कैरातरूपं हरम्।
पृच्छाग्निं भुजगाहुति-प्रणयिनं यस्तर्पितः खाण्डवे
विद्यारक्षितमद्य येन च जितस्त्वं पृच्छ चित्राङ्गदम्[1] ॥१·२२

उसी अवसर पर दुर्योधन को अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनाई जाती है कि अभिमन्यु को मारने वाले की तथा उसकी हत्या से प्रसन्न होने वालों की कल सूर्यास्त के पहले मेरे हाथों मृत्यु होगी, अन्यथा मैं स्वयं चितारोहण करूँगा।

इधर कृष्ण ने धृतराष्ट्र के पास घटोत्कच को अपना सन्देश देने के लिए भेजा। सन्देश है—

पितामह, एक पुत्रविनाशादर्जुनस्य तावदीदृशी खल्ववस्था। का पुनर्भवतो भविष्यति। ततः क्षिप्रमिदानीमात्मबलाधानं कुरुष्व। यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्न दहेत्प्राणमयं हविरिति।

अर्थात् अपनी ओर से युद्ध बन्द कर दें।

---

१. यह श्लोक दूतवाक्य के प्रथमाङ्क के ३२,३३ श्लोक से सारतः अभिन्न है। दोनों रूपकों में दुर्योधन की आँख खोलने के लिए उपर्युक्त चर्चा की गई है। प्रायः इन्हीं से सारतः अभिन्न है ऊरुभंग का १.१४।

घटोत्कच के द्वारा दिये हुए सन्देश का परिहास किया गया। कृष्ण को अराजा और घटोत्कच को राक्षस कहा गया। अन्त में घटोत्कच को बिना सन्देश दिये जाने के लिए कहा गया। तुम को मार नहीं डालते, क्योंकि तुम दूत हो।

घटोत्कच को रोष हो आया। उसने कहा कि दूत समझ कर मेरे ऊपर दया करने की आवश्यकता नहीं—

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः ।
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ।।१·५०

अर्थात् जिसे मरना हो, मुझसे लड़ ले।

घटोत्कच को धृतराष्ट्र ने शान्त किया। उसके प्रतिसन्देश माँगने पर दुर्योधन ने कहा—युद्ध-भूमि में सन्देश का उत्तर बाणों से देंगे।

एकाङ्की के अन्त में कृष्ण के सन्देश का अन्तिम भाग शिक्षा के रूप में है—

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्कांक्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ । १·५२

ऐसा लगता है कि घटोत्कच भास का प्रियपात्र है। अपने दो रूपकों में कवि ने घटोत्कच की महिमा द्विगुणित की है। वस्तुतः घटोत्कच-सम्बन्धी दोनों रूपकों का आधार महाभारत में नहीं है। दूतघटोत्कच के कथानक में स्पष्ट विरोध है। एक ओर तो इस रूपक के अनुसार अर्जुन की प्रतिज्ञा है कि कल सन्ध्या तक जयद्रथ को मार डालना है। फिर कैसे कृष्ण का सन्देश उचित हो सकता है कि धृतराष्ट्र अपनी सेना को युद्ध-भूमि से अलग करके युद्ध समाप्त कर दें ?

घटोत्कच को इस रूपक में दूत का स्थान उसकी किस योग्यता को दृष्टि में रखते हुए दिया गया है—यह कहना कठिन है। उसके दौत्य में अङ्गद की चरितावली प्रतिभासित है।

समीक्षा

दूतघटोत्कच में छोटे पात्रों के मुँह से बड़ी बातें सुनने को मिलती हैं, जो अनुचित है। यथा भट धृतराष्ट्र से कहता है—

क्रूरमेवं नरपतिं नित्यमुद्यतशासनम् ।
यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीवेत्स तत्क्षणम् ।। १·३२

अर्थात् तुम्हारे अतिरिक्त कोई और ऐसी बात सम्राट् दुर्योधन से कहता तो वह मार डाला गया होता।

कुछ कल्पनायें सुप्रथित आयाम की हैं। यथा भूकम्प के साथ उल्कापात का वर्णन है—

सुव्यक्तं निहतं दृष्ट्वा पौत्रमायस्तचेतसः ।
उल्कारूपाः पतन्त्येते महेन्द्रस्याश्रुविन्दवः ।। १·२६

कवि ने भावी घटनाओं के क्रम की पूर्व सूचना क्षीण स्वर में दी है। जब दुःशला सुनती है कि उत्तरा विधवा हो गई तो वह कहती है—

जेण दाणिं बहूए उत्तराए वेधव्वं दाइदं, तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठम् ।

अर्थात् जिसने उत्तरा को विधवा बनाया, उसने अपनी ही पत्नियों को विधवा बनाने का समारम्भ किया है। वह विचारी क्या जानती थी कि उसका यह वक्तव्य उसी पर घटित हो रहा है ।[1]

इस रूपक में समुदाचार-निदर्शन है। घटोत्कच धृतराष्ट्र से कहता है कि आपके लिए कृष्ण का कुछ सन्देश है। धृतराष्ट्र तत्काल आसन से उठ कर खड़े हो जाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने क्या आज्ञा दी है। इस प्रकरण से व्यञ्जना है कि बड़ों का सन्देश बैठे-बैठे नहीं सुनना चाहिए, खड़े हो कर सुनना चाहिए।[2] यही समुदाचार घटोत्कच की अभिवादन-विधि में भी है। वह अपने गुरुओं का अभिवादन पहले कह कर अपना नाम लेता है।

अशुभ बातों को व्यंग्य शब्दावली में प्रकट करने की रीति इस रूपक में अपनाई गई है। अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार इन शब्दों में दिया गया है—

खे शक्रस्य पितामहस्य सहसैवोत्सङ्गमारोपितः । १·३

व्यंग्य पूर्ण धृतराष्ट्र का यह वक्तव्य है कि हम गङ्गा के तट पर चलें।

प्रस्तुत रूपक वीररस-प्रधान है। आरम्भ में अभिमन्यु का मृत्यु-प्रकरण करुण-रसात्मक है। दूतघटोत्कच साधारणतः व्यायोग कोटि का रूपक माना गया है। इसमें कुछ लक्षण उत्सृष्टिकाङ्क के हैं।

कवि का प्रिय पशु हाथी शब्द अपने विविध पर्यायों में अनेकशः प्रयुक्त है।[3]

---

१. भास की कला में यह प्रयोग अदृष्टाहृति है, जिसमें भावी अपनी विषमता के चोखे दाँतों से चबा डालने के लिए चञ्चल प्रतीत होती है।

२. बड़ों के सन्देश आसन छोड़कर खड़े होकर सुनने का अनेकशः वर्णन भास ने अपने रूपकों में किया है। आगे चलकर कुन्दमाला में भी यह समुदाचार प्रतिष्ठित है। इस प्रकार शिष्टाचार के प्रकरणों में प्रत्यक्षतः कवि शिक्षक के रूप में है। यदि वह सीधे कह देता कि धृतराष्ट्र ने कृष्ण का सन्देश सुन लिया या अपने बड़ों का नाम पहले लेकर घटोत्कच ने अभिवादन किया तो शिष्टाचार की सीख व्यंग्य ही रह जाती। कवि इसे अभिधा से स्पष्ट करके प्रभविष्णु बनाता है।

३. वारण १.३; गज १·३०; गजेन्द्र १·३३।

ऊरुभङ्ग

महाभारतीय युद्ध के प्रायः अन्तिम समय में दुर्योधन अकेला कौरव वीर बचा था। इधर पाण्डवों को विजयश्री प्रायः प्राप्त हो चुकी थी। इस समय छिपे हुए दुर्योधन को ढूढँकर उससे लड़ कर उसको समाप्त करने के उद्देश्य से भीम सन्नद्ध है।

कथानक

दुर्योधन और भीम एक दूसरे से बढ़ कर गदायुद्ध में निपुण हैं। वे द्वन्द्वयुद्ध कर रहे हैं। युद्ध में भीम चोट खाकर गिर पड़ता है। कृष्ण अपनी जाँघ पर थपथपा कर कुछ संकेत करते हैं। भीम पुनः उठता है और दुर्योधन की जाँघ पर गदा से प्रहार करता है—

त्यक्त्वा धर्मघृणां विहाय समयं कृष्णस्य संज्ञासमं ।
गान्धारी तनयस्य पाण्डुतनयेनोर्वोर्विमुक्ता गदा ।। १.२४

दुर्योधन की जाँघ टूट गई।

बलदेव इस युद्ध को अन्याय पूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं—

रणशिरसि गदां तां तेन दुर्योधनोर्वोः ।
कुलविनयसमृद्ध्या पातितः पातयित्वा ।। १.२७

वे स्वयं भीम को मारने के लिए उतावले हैं। दुर्योधन अपने शरीर को घसीटते हुए बलराम के पास आ जाता है। वह बलराम से सप्रणाम निवेदन करता है कि आप लड़ें नहीं। पाण्डवों को जीवित रहने दें। क्यों?

जीवन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेघाः ।

पर बलदेव कहते हैं कि मरो मत, दुर्योधन। मैं सभी पाण्डवों को मार कर तुम्हारे अधीन करता हूँ। दुर्योधन उन्हें फिर रोकता है—

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम् ।
मयि चैवं गते राम विग्रहः किं करिष्यति ।। १.३३

बलराम कहते हैं कि तुम्हें छल से पराजित किया गया है। दुर्योधन आनन्दित होकर कहता है—

यद्येवं समवैषि मां छलजितं भो राम नाहं जितः ।। १.३४

इसके पश्चात् धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुर्योधन की दो पत्नियां और उसका पुत्र दुर्जय दुर्योधन के समीप आते हैं। धृतराष्ट्र विलाप कर रहा है। गान्धारी के कथनानुसार दुर्योधन की पत्नियाँ उसे ढूँढने जाती हैं। धृतराष्ट्र दुर्जय को भेजता है कि दुर्योधन को ढूँढ़ निकालो। दुर्योधन यह सब देख रहा है, किन्तु उन तक पहुँच नहीं सकता।

उनकी बातें सुनता है, किन्तु प्रत्युत्तर देने में असमर्थ है। दुर्जय उन्हें ढूँढ निकालता है। वह थका है और कहता है--

अहंपि खु दे अङ्के उवविसामि ।

अर्थात् मैं तुम्हारी गोद में बैठूंगा। दुर्योधन उसे रोकता है और मन में सोचता है--

हृदयप्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सवः स्वयम् ।
सोऽयं कालविपर्यासाच्चन्द्रो वह्नित्वमागतः ।। १.४३

दुर्जय के पूछने पर वह कहता है कि मैं अपने भाइयों का अनुसरण करूँगा। दुर्जय कहता है--मुझे भी वहीं ले चलो।

इस बीच सभी कुटुम्बी वहाँ पहुँच जाते हैं। धृतराष्ट्र शोकवश गिर पड़ते हैं। दुर्योधन माता से कहता है--

नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम् ।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ।। १.५०

अन्य जनों को भी वह अन्तिम सन्देश देता है। वह कौटुम्बिक विग्रह को भूल गया है और अपने पुत्र को सीख देता है--

'अहमिव पाण्डवाः शुश्रूषयितव्याः'

स्पृष्ट्वा चैवं युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजं ।
देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलं ।। १.५३

अर्थात् पाण्डवों के साथ तुम भी मेरे लिए तर्पण करना। बलदेव अब तक सब कुछ देख-सुन रहे थे। उनका युद्धोत्साह शिथिल पड़ चुका था। वे कहते हैं--

अहो वैरं पश्चात्तापः संवृत्तः ।

इस अवसर पर बलदेव युद्धोत्साही अश्वत्थामा को आते हुए देखते हैं। उसके पूछने पर दुर्योधन कहता है--

गुरुपुत्र, फलमपरितोषस्य

अश्वत्थामा कहता है कि मैं कृष्णादि सब को मार डालूँगा। दुर्योधन कहता है--

धनुर्मुञ्चतु भवान्

दुर्योधन को अपने सभी पापों की एकपदे स्मृति हो आती है। वह कहता है--द्रौपदी का केश-कर्षण, अभिमन्यु का वध, द्यूत में पाण्डवों को छल से जीतना, पाण्डवों का वनवास करना--ये सभी मैंने किये।

अश्वत्थामा कहते हैं कि मैं रात्रि में पाण्डवों को मार डालूँगा। बलदेव उसका समर्थन करते हैं। अश्वत्थामा दुर्जय को वाणीमात्र से अभिषेक के विना ही राजा घोषित

करते हैं। दुर्योधन इस प्रकरण से प्रसन्न हो जाता है। फिर वह मर जाता है। धृतराष्ट्र तपोवन जाते हैं। अश्वत्थामा अपनी योजना कार्यान्वित करने चल देते हैं। बलदेव भरत वाक्य बोलते हैं—

गां पातु नो नरपतिः

दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध महाभारत के शल्य पर्व में वर्णित है, जिसमें दुर्योधन का ऊरुभंग होता है और वह धराशायी हो जाता है। अन्यायपूर्वक उसके मारे जाने से बलराम क्रोध करके भीम को हल से मारने के लिए दौड़ते हैं।[1] कृष्ण के समझाने पर भी उन्होंने दुर्योधन की हत्या को अन्यायपूर्ण बताया। कृष्ण ने भी दुर्योधन की दुष्प्रवृत्तियों की निन्दा की। दुर्योधन ने कृष्ण का प्रतिवाद किया, और खोटी खरी सुनाई। कृष्ण ने उत्तर दिया। कृष्णादि के चले जाने के पश्चात् दुर्योधन ने समीपस्थ संजय से और अन्य दूतों से अपने सम्बन्धियों के लिए सन्देश भेजा कि मेरा जीवन सफल और ऐश्वर्यशाली रहा है और मैं वीरगति प्राप्त कर रहा हूँ। दुर्योधन का सन्देश अश्वत्थामा को भी मिला। अश्वत्थामा ने सारी स्थिति का उसके समक्ष पर्यालोचन किया तो दुर्योधन रो पड़ा। अश्वत्थामा ने कहा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी पाञ्चालों को मार डालूँगा। दुर्योधन की आज्ञा से अश्वत्थामा का सेनापति-पद पर अभिषेक हुआ।

इस रूपक में नाट्यशास्त्रीय विधान की अनुकूलता के लिए महाभारतीय कथा का संक्षिप्तीकरण और अनेक महाभारतीय पात्रों का अनुल्लेख प्रमुख विशेषता है। महाभारत में कृष्ण के बताने पर अर्जुन के संकेतानुसार भीम जाँघ पर प्रहार करते हैं ऊरुभंग में अर्जुन को इस प्रसंग में नहीं लाया गया है। स्वयं कृष्ण ही दुर्योधन को संकेत से बताते हैं कि जाँघ पर प्रहार करो। रूपक में करुण रस की सम्भृति के लिए धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुर्योधन की पत्नियों और उसके पुत्र को टूटी जाँघ वाले दुर्योधन के पास लाकर पश्चात्ताप और क्रन्दन का वातावरण उपस्थित किया गया है।

---

१. पुसालकर ने लिखा है—Balarāma was not present at the club fight according to the epic. Bhasa a Study p.203. यह वक्तव्य सर्वथा निराधार है। महाभारत के नीचे लिखे श्लोक प्रमाण हैं—

ततोऽब्रवीद् धर्मसुतो रौहिणेयमरिन्दमम्।
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत॥ शल्य प० ३४·१९
स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुंगवः।
दिदृक्षुरभिसम्प्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम्॥ शल्य प० ५४·५१
शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम्।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली॥ शल्य प० ६०·३

ऊरुभंग का भीम उतना नृशंस नहीं है, जितना महाभारत में दिखाया गया है । इसमें भीम और दुर्योधन दोनों को महाभारत की अपेक्षा अधिक प्रबुद्ध दिखाया गया है । महाभारत का दुर्योधन अन्त में पाण्डवों से बदला लेने कि लिए उत्सुक है । रूपक के अनुसार अपनी मृत्यु को आसन्न देखकर उसे ज्ञान हो आया है कि पाण्डवों से वैर की इतिश्री करने में ही कल्याण है ।[1] वह अपने पुत्र दुर्जय को पाण्डवों से मेल करने की सीख देता है । केवल रूपक के अन्त में अश्वत्थामा के प्रोत्तेजित होने पर दुर्योधन को आशा बँधती है कि वह दुर्जय को विजयश्री दिलायेगा । दुर्जय का अभिषेक भास की निजी योजना है ।

समीक्षा

भास को युद्ध तो प्रिय नहीं था, किन्तु युद्ध का वर्णन उन्हें अतिशय प्रिय था । सम्भवतः यही करण है कि वे नाट्यशास्त्रीय नियमों के विरुद्ध भी रंगमच पर युद्ध करा देते हैं। युद्ध के वर्णन में भास का लाघव अनुपम है । उनका युद्ध अग्नि की भाँति ही सर्वग्रासी है । युद्ध वह विनाश उत्पन्न कर देता है कि उसकी चर्चा करने वाला तक कोई नहीं बच रहता।

> एतद्रणं हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं
> संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम् ।
> युद्धे वृकोदरसुयोधनयोः प्रवृत्ते
> योधा नरेन्द्रनिधनैकगृहं प्रविष्टाः ।। १.३

भास की दृष्टि में युद्ध यज्ञ है—

> करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्तः ।
> ध्वजविततवितानः सिंहनादोच्चमन्त्रः पतितपशुमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञः ।।

कवि का रूपकाभिनिवेश प्रायः प्रकट हुआ है । यज्ञ को भास ने विविध रूपों में देखा है—

> वैरस्यायतनं बलस्य निकषं मानप्रतिष्ठागृहं
> युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवरसभां शौर्यप्रतिष्ठां नृणाम् ।
> राज्ञां पश्चिमकालवीरशयनं प्राणाग्निहोमक्रतुं
> सम्प्राप्ता रणसंज्ञमाश्रमपदं राज्ञा नभः संक्रमम् ।। १.४

---

१. भास ने अपनी प्रारम्भिक कृतियों में दुर्योधन के स्वभाव को कर्कश चित्रित किया है । दूतवाक्य और दूतघटोत्कच में यह प्रवृत्ति मिलती है। इनके पश्चात् ऊरुभंग और पंचरात्र में दुर्योधन के चरित्र के श्वेतीकरण का प्रयास प्रत्यक्ष है ।

ऊरुभङ्ग के अधिकांश में कारुण्य प्रवाहित है । हार्दिक पीडा का इतना मार्मिक चित्रण संस्कृत-साहित्य में विरल है । दुर्योधन अपने पुत्र दुर्जय को गोद में बिठाने में असमर्थ होने पर कहता है——

हृदयप्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सवः स्वयम् ।
सोऽयं कालविपर्यासाच्चन्द्रो वह्नित्वमागतः ।। १.४३

धृतराष्ट्र भी अपने पुत्र की दुर्गति देखकर रो पड़ता है——

यः काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणो
लोके किलैको वसुधाधिपेन्द्रः ।
कृतः समे भूमिगतस्तपस्वी
द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः ।। १.४५

यही भावधारा राजतरङ्गिणी में कल्हण ने आद्योपान्त प्रवाहित की है ।[1] ऐसा लगता है कि भास ही आगे चल कर कल्हण हुआ । भास का अश्वत्थामा कहता है——

उद्यत्प्राञ्जलयो रथद्विपगताश्चापद्वितीयैः करै——
र्यस्यैकादशवाहिनीनृपतयस्तिष्ठन्ति वाक्योन्मुखाः ।
भीष्मो रामशरावलीढकवचस्तातश्च योद्धा रणे
व्यक्तं निर्जित एव सोऽप्यतिरथः कालेन दुर्योधनः ।। १.५८

काल की ऐसी ही महिमा राजतरंगिणी में है ।

कालेन याति क्रिमितां महेन्द्रो महेन्द्रभावं क्रिमिरभ्युपैति ।। राजत० ७.१३९६

वात्सल्य को ऊरुभङ्ग में निदर्शित करना भास की निजी सूझ है । इसमें गान्धारी का अपने पुत्र दुर्योधन के प्रति और दुर्योधन का अपने पुत्र दुर्जय के प्रति जो वात्सल्य है, वह कौटुम्बिक संश्लिष्टि का परमादर्श है ।

वात्सल्य के अतिरिक्त करुण और वीर रस की निर्झरिणी इस रूपक में सुव्यक्त है । दुर्योधन का अपने सम्बन्धियों से मिलना और दुर्योधन और भीम का युद्ध——क्रमशः इन रसों के उत्स हैं ।

ऊरुभङ्ग में यथापूर्व हाथी या उसके पर्यायवाची शब्दों की प्रचुरता है ।[2]

शिल्प भास को प्रिय हैं । ऊरुभङ्ग में दो स्थानों पर चित्र की चर्चा है । यथा

संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम् । १.३
संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं क्षिपामि ।। १.६०

---

१. राजतरंगिणी ४.५४५; ५.७; ७.१४५५ ।

२. द्विप १.२ में, नाग १.५ में; करिवर १.६ में, गज १.८ में ।

ऊरुभङ्ग व्यायोग कोटि का रूपक है। इसका नेता भीम है।

मध्यम-व्यायोग

मध्यम-व्यायोग में मध्यम की कथा है।[1] घटोत्कच यात्रा करने वाले किसी ब्राह्मण-परिवार को पकड़ लेता है। उनके पूछने पर घटोत्कच कहता है कि मेरी माता ने उपवास का पारण करने के लिए इस वन से किसी मनुष्य को पकड़ कर लाने के लिए कहा है। माता, पिता और तीन पुत्रों में से वह किसी एक पुत्र के मिल जाने पर शेष सबको छोड़ने के लिए कहता है। पिता कहता है कि पुत्र को देकर मुझे शान्ति न रहेगी। घटोत्कच कहता है—तो सबका अन्त होगा। ब्राह्मण ने कहा—तो मुझे ही ले चलो। ब्राह्मणी ने कहा—यह कैसे ? पति और पुत्रों के लिए अपना शरीर मैं दूँगी। घटोत्कच ने कहा—मेरी माता को स्त्री नहीं चाहिए। ब्राह्मण ने कहा—तो मुझे ले चलो। घटोत्कच ने कहा—बूढ़ा भी नहीं चाहिए। तब तीनों पुत्रों ने क्रमशः अपने को घटोत्कच के साथ जाने के लिए कहा। ब्राह्मण ने कहा—जेठे पुत्र को मैं नहीं छोड़ सकता। ब्राह्मणी ने कहा—मैं छोटे पुत्र को नहीं छोड़ सकती। मझले ने कहा—माता-पिता का दुलारा नहीं हूँ। किसका प्यारा हूँ ? घटोत्कच ने कहा—मेरे साथ चलो। मझला घटोत्कच से छुट्टी लेकर दूरस्थ जलाशय में पानी पीने चला जाता है। उसके देर करने पर घटोत्कच उसे तीव्र स्वर से बुलाता है—ओ मध्यम, शीघ्र आओ। उसी समय पाण्डवों में मध्यम भीम आ गये। घटोत्कच ने उसे देखकर कहा कि मैं मध्यम को बुला रहा हूँ। भीम ने कहा—मैं मध्यम ही तो हूँ—

> **मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः।**
> **मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र भ्रातृणामपि मध्यमः॥ १.२८**
> **मध्यमः पञ्चभूतानां पार्थिवानां च मध्यमः।**
> **भवे च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यमः॥ १.२९**

इसी बीच ब्राह्मण पुत्र मध्यम आ पहुँचता है। उसे घटोत्कच ले जाना चाहता है। ब्राह्मण भीम को पहचान गया है। वह उससे कहता है—मेरे पुत्र को बचाओ। वह भीम को अपना परिचय देकर कहता है कि यह राक्षस हम सब को मार डालने के लिए उतारू है। भीम उसे फटकारते हैं और कहते हैं—अवध्य ब्राह्मण को छोड़ो। घटोत्कच कहता है—नहीं छोड़ता। यदि मेरा बाप भी कहे तो नहीं छोड़ता। इसे माँ की आज्ञा से पकड़ा है। भीम ने कहा—तुम्हारी माँ कौन है ? घटोत्कच ने बताया—हिडिम्बा, भीमपत्नी। भीम ने कहा कि ब्राह्मण पुत्र को छोड़ो। मैं ही तुम्हारे साथ चलता

---

१. मध्यम इसमें दो हैं (१) भीम जो पाण्डु के तीन पुत्रों में मध्यम था और (२) केशव दास नामक ब्राह्मण का मझला पुत्र। वास्तव में मध्यम पाण्डव अर्जुन का नाम था। पाँच भाइयों में वह तीसरा था। भीम के लिए मध्यम नाम बहुत समीचीन नहीं है।

हूँ। पर मुझे बलपूर्वक ले जाओ। मैं सीधे नहीं जाता। घटोत्कच ने कहा—क्या मुझे पहचानते नहीं ? मैं कौन हूँ। भीम ने कहा—मेरे बेटे हो। क्षत्रिय का पुत्र ही सारी प्रजा होती है। घटोत्कच ने कहा—तो तुम डर गये। भीम ने कहा कि डर क्या है, यह तुमसे जानना चाहता हूँ। फिर तो वे दोनो भिड़ गये।

घटोत्कच ने भीम को भुजपाश में बाँध लिया। उसे खेल-खेल में छुड़ाकर भीम ने कहा—यह तो कुछ नही रहा। फिर उसने भीम को मायापाश में बाँधा। भीम ने उसे मायापाश-मोक्षमन्त्र से दूर कर दिया। घटोत्कच हार गया। उसने भीम से कहा—तुम अपनी पहली बात से क्यों हटते हो। तुमने कहा था कि ब्राह्मण-पुत्र के स्थान पर मैं पारणा की सामग्री बनूँगा। भीम ने कहा—अच्छा, चलो, हिडिम्बा ने भीम को पहचान लिया। इस प्रकार सबका अभीष्ट सम्पन्न हुआ।

महाभारत में घटोत्कच की कथा आदिपर्व के १५४वें अध्याय में समाप्त होते ही एकचक्रा नगरी में पाण्डवों के निवास की कथा आती है, जिसके अनुसार चारों पाण्डव भीख माँगने गये थे और भीम कुन्ती के साथ एक ब्राह्मण परिवार में थे। इस परिवार में माता-पिता और उनके पुत्र और कन्या हैं। उनमें से किसी एक को वकासुर का भोजन बनना है। अपनी माता की अनुमति से भीम स्वयं वकासुर के पास जाता है और वकासुर को मार डालता है।[1]

उपर्युक्त महाभारतीय कथा को भास ने मध्यमव्यायोग में अपनी कल्पनाओं के बल पर अभिनव रूप दिया है। सम्भव है महाभारतीय आख्यान के आधार पर पहले से ही कोई ऐसी कथा लोकप्रचलित भी रही हो, जो मध्यम-व्यायोग की कथा से कुछ अधिक मिलती-जुलती हो। मध्यमव्यायोग में तीन पुत्रों में से मध्यम पुत्र ही हेय हो सकता था—इसकी कल्पना भास को ऐतरेय ब्राह्मण में शुनः शेपाख्यान के उस अंश से प्राप्त हुई होगी, जिसमें मध्यमपुत्र होने के कारण शुनःशेप को वरुण के लिए बलिदान करने के लिए उसके माता-पिता ने छोड़ दिया।

उपर्युक्त कथाओं को मध्यम-व्यायोग का उपजीव्य मान लेने पर भी इसके कथानक की चारुता और संश्लिष्टता कवि की कल्पनात्मक उद्भावना को सुप्रमाणित करती हैं।

समीक्षा

मध्यम-व्यायोग में भास की शैली की अनेक रूपकोचित विशेषतायें उभड़ आई हैं। इसमें छोटे-छोटे वाक्यों की लड़ी गूँथ देना, ऐसे अवसर पर जब विशेष भावोद्रेक हो, बड़ा ही प्रभावोत्पादक लगता है। यथा—

१. महाभारत की कथा और मध्यम-व्यायोग की कथा में समान तत्त्व हैं। (१) एक को न देने पर सबका नाश (२) परिवार के सभी सदस्य एकैकशः अपनी बलि देने को समुद्यत हैं। (३) भीम का सबकी रक्षा करने के लिए वकासुर को मार डालना।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। अतिक्रामति मातुराहारकालः । किं नु खलु करिष्ये । भवतु दृष्टम् । भो ब्राह्मण, आहूयतां तव पुत्रः ।

वृद्धः—आः अतिराक्षसं खलु ते वचनम् ।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति। मर्षयतु भवान् मर्षयतु । अयं मे प्रकृतिदोषः अथ किंनामा तव पुत्रः ।

वृद्धः—एतदपि न शक्यं श्रोतुम् ।

घटोत्कच—युक्तम् । भोः ब्राह्मणकुमार ! किंनामा ते भ्राता ।

प्रथमः—तपस्वी मध्यमः ।

घटोत्कचः—मध्यम इति सदृशमस्य। अहमेवाह्वयामि । भो मध्यम, मध्यम, शीघ्रमागच्छ ।

(ततः प्रविशति भीमसेनः)

भीमः—कस्यायं स्वरः ।[1]

भास की कल्पना-परिधि की विशालता उसके मध्यम के व्यङ्ग्यार्थ से प्रस्फुटित होती है। यथा—

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः ।
मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र भ्रातॄणामपि मध्यमः ।। १.२८
मध्यमः पंचभूतानां पार्थिवानां च मध्यमः ।
भवे च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यमः ।। १.२९
मध्यमस्त्विति सम्प्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यमः ।। १.३०

भास के उपमान प्रत्यक्ष जगत् के हैं, जो सर्वसाधारण को सुविदित हैं। ऐसे उपमानों में प्राकृतिक तत्त्व—वृक्ष, लता, पशु, पक्षी आदि की अधिकता है। यथा—

व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः ।
सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपैति ।। १.३

सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो
बभ्रुभ्रूः श्येननासो द्विरदपतिहनुर्दीप्तविश्लिष्टकेशः ।
व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिर्लम्बपीनांस-बाहुः
सुव्यक्तं राक्षसोजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुत्रः ।। १.२६

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहु—
र्मध्ये तनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः ।

---

१. हिडिम्बा और घटोत्कच का संवाद इससे भी लघुतर वाक्यों का है ।

विष्णुर्भवेद्विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ॥ १.२७

मध्यमव्यायोग का प्रधान रस वीर है, किन्तु आरम्भ में ब्राह्मण-परिवार की कारुणिक दशा करुण-रस का निस्यन्द है। भयानक, रौद्र, अद्‌भुत आदि अन्य रस स्थान-स्थान पर निष्पन्न हैं।

मध्यमव्यायोग में समुदाचार का उच्चादर्श मिलता है। भीम अपनी राक्षसी पत्नी हिडिम्बा के विषय में कहते हैं—

जात्या राक्षसी न समुदाचारेण

भीम को कवि ने समुदाचार का आदर्श बना दिया है। वह ब्राह्मण परिवार से निवेदन करता है कि हमारा आश्रम निकट है। वहाँ विश्राम करके आगे की यात्रा कीजिये। जब ब्राह्मण जाने लगता है तो वे उससे कहते हैं—

गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दर्शनाय ।

हिडिम्बा और घटोत्कच भीम के साथ ब्राह्मण को आश्रमपद-द्वार तक छोड़ने के लिए जाते हैं।

कौटुम्बिक संश्लिष्टता का आदर्श भी इसमें सुप्रतिष्ठित है। ब्राह्मण का पूरा परिवार एक दूसरे से बढ़कर त्यागी है। उनमें से प्रत्येक पूरे परिवार की रक्षा के लिए अपना बलिदान करने के लिए समुत्सुक है।

सामाजिक संश्लिष्टता का आदर्श **'पूज्यतमाः खलु ब्राह्मणाः'** भीम के इस वाक्य में है।

मध्यम-व्यायोग में कथानक के निर्माण में कवि ने अपनी अभिनव कला का सौष्ठव प्रदर्शित किया है, जिसके द्वारा वे दो घनिष्ठ पात्रों को इस प्रकार भिड़ा देते हैं कि उनमें से कोई एक दूसरे को नहीं जानता और दूसरा जानता है कि मैं किससे भिड़ रहा हूँ।[1] ऐसी परिस्थिति में कवि न पहचानने वाले से जब कभी ऊटपटाँग बातें कहलवाता है तो हास्य की निष्पत्ति होती है। यथा—भीम कहता है कि घटोत्कच, जिस भीम का नाम ले रहे हो, वह कौन है? तुम्हारा पिता शिव, कृष्ण, इन्द्र और यम में से किसके समान है? घटोत्कच उत्तर देता है—सब के समान है। भीम कहता है—क्यों झूठ

---

१. इस प्रकार का प्रसङ्ग (१) पंचरात्र में है, जिसमें अभिमन्यु, भीम और अर्जुन को नहीं जानता, किन्तु भीम और अर्जुन उसे पहचानते हैं। (२) कर्णभार में कर्ण इन्द्र को नहीं पहचानता, किन्तु इन्द्र कर्ण को पहचानता है। (३) स्वप्नवासवदत्त में पद्मावती सब को पहचानती है, किन्तु उसे कोई नहीं पहचानता। अन्य रूपकों में भी यह प्रवृत्ति है।

बोल रहे हो ? घटोत्कच उत्तर देता है---क्या तुम मुझे मिथ्यावादी बना रहे हो ? मेरे गुरु की निन्दा कर रहे हो ? अच्छा, पेड़ उखाड़कर तुम्हें मार डालता हूँ ।[1]

कवि के प्रिय शब्द हाथी, चन्द्रमा आदि के पर्यायवाची इस रूपक में भी पुनः पुनः आये हैं ।[2] प्रतिमाकृति शब्दों का प्रयोग करके इस रूपक में भी कवि ने अपनी शिल्पप्रियता व्यक्त की है ।[3]

नाट्यशास्त्र के अनुसार रङ्गमञ्च पर युद्ध नहीं होना चाहिए । इस रूपक में भीम और घटोत्कच का मल्ल युद्ध रंगमंच पर होता है । ऊरुभंग का युद्ध-प्रकरण भी नाट्यशास्त्र की दृष्टि से समीचीन नहीं है ।

पञ्चरात्र

पंचरात्र की कथा महाभारत के वातावरण में विरिचित है यद्यपि वह पूर्णतया कवि-कल्पित है ।

कथानक

दुर्योधन ने यज्ञ किया । द्रोण, भीम, आदि उसकी धार्मिकता से प्रसन्न हैं । दुर्योधन श्रेष्ठ जनों को प्रणाम कर रहा है । उसे बधाई देने वालों में अभिमन्यु भी है। सभी छोटे-मोटे राजा बधाई देते हैं, किन्तु विराट नहीं उपस्थित हुए । दुर्योधन द्रोण को दक्षिणा देना चाहता है । वे दक्षिणा नहीं चाहते । दुर्योधन सर्वस्व भी उन्हें देने के लिए तत्पर है। द्रोण की आँखें आँसू से भर जाती हैं । वे अन्त में माँगते है पाण्डवों के लिए आधा राज्य---

> **येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां**
> **संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।**
> **त्वं पाण्डवानां कुरु संविभाग-**
> **मेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥ १.३३**

भीष्म ने इसका समर्थन किया । शकुनि ने वारंवार विरोध किया । कर्ण ने द्रोण का समर्थन किया और कहा कि सान्त्व भाव से उससे अपना अभीष्ट पूरा करायें, क्रोध से नही । दुर्योधन द्रोण की शान्त वाणी से प्रभावित है, किन्तु शकुनि और कर्ण का समर्थन चाहता है । कर्ण राज्य देने के पक्ष में है । शकुनि ने कहा कि आप द्रोण

---

१. इसी प्रकार के सन्दर्भों के आधार पर कविवर कालिदास ने कुमारसम्भव के पञ्चम-सर्ग में शिव और पार्वती का मनोरम संवाद उपस्थित किया है, जिसमें परिहास का भाव प्रधान है ।

२. करिवर १.६; द्विरद १.२६, गज १.२४, २६; कुंजर १.४४,४६ इन्दु १.५,३८ चन्द्र १.३३

३. प्रतिमाकृति १.४

से कहें कि पाँच रात (पंचरात्र) में पाण्डवों को ढूँढ़ निकालिए तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जाय। दुर्योधन ने यह सुझाव मान लिया। द्रोण ने भीष्म के कहने पर पाँच रात्रि में पाण्डवों को ढूँढ़ निकालने का प्रस्ताव मान लिया।

उसी समय महाराज विराट का दूत आया। उसने संवाद दिया कि उनके सम्बन्धी कीचकों का वध किसी ने कर दिया है। इसी शोक से वे नहीं आये। भीष्म ने कहा कि विराट शत्रुता रखने के कारण नहीं आया है। उसकी गायों का अपहरण कर लिया जाय। दुर्योधन इसके लिए समुद्यत हो जाता है।

विराट के गोचारक देखते हैं कि हमारे घोष को गोहर्त्ता घेर रहे हैं। वे बाण-प्रहार करने लगे। विराट को इसका सन्देश मिला। गोरक्षा का सनातन आह्वान महाराज विराट के शब्दों में है—

रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ।।२.५

गाय के लिए युद्ध करना कभी व्यर्थ नहीं जाता। मरने पर स्वर्ग और उनको छुड़ा लेने पर धर्म होता है।

राजा को ज्ञात होता है कि उनके रथ पर उत्तर बृहन्नला को सारथि लेकर युद्ध करने चला गया है। राजा को इसी समय समाचार मिलता है कि कुमार का रथ श्मशान की ओर भाग गया है, किन्तु वह पुनः युद्ध-भूमि में आ गया है और शत्रु क्षत-विक्षत हो गये हैं। शत्रुपक्ष से केवल अभिमन्यु निर्भय होकर लड़ रहा है। अन्त में विराट को अपनी विजय का समाचार मिलता है।

उत्तरा ने बृहन्नला को युद्ध-सम्बन्धी पराक्रम से प्रभावित होकर प्रेमोपहार रूप में अलंकार दिये। राजा ने उसे युद्धवृत्त का वर्णन करने के लिए बुलाया। इसी बीच राजा को समाचार मिला कि अभिमन्यु पकड़ लिया गया है। उसे बाहों से पकड़कर उतार लिया उस वीर ने, जो रसोईघर में नियुक्त है। बृहन्नला राजा के पास उसे लाने के लिए जाती है। मार्ग में भीम अर्जुन (दोनों प्रच्छन्न वेष में) और अभिमन्यु मिलते हैं। अर्जुन के कहने से भीम अभिमन्यु को संलाप में व्यापृत करता है। बृहन्नला (अर्जुन) के पूछने पर कि इतने वीर हो तो पकड़े क्यों गये, अभिमन्यु ने उत्तर दिया—

अशस्त्रो मामभिगतस्ततोऽस्मि ग्रहणं गतः ।
न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यादर्जुनं पितरं स्मरन् ।। १.५२

उसी समय उत्तर आया और उसने कहा कि यह बृहन्नला अर्जुन है। तब तो सभी पाण्डव पहचाने गये।

महाराज ने अपनी कन्या उत्तरा को बृहन्नला (अर्जुन) के लिए दे दिया, जिसे अर्जुन के कथनानुसार औचित्य की दृष्टि से अभिमन्यु की पत्नीरूप में स्वीकार किया गया ।

इधर हारे हुए कौरव पक्ष में चर्चा हो रही है कि अभिमन्यु को कौन पकड़ ले गया । सूत ने कहा कि मेरे रथ चलाते समय घोड़ों से क्षिप्रतर गति से दौड़ने वाले किसी पुरुष ने रथ को पकड़ कर रोक लिया । उसके पास कोई आयुध भी नहीं था । भीष्म ने कहा कि तब तो वह भीम होगा । द्रोण ने इसका समर्थन किया । वीरों में यह भी चर्चा चली कि उत्तर के रथ से अर्जुन बाण-सन्धान कर रहा था । उसी समय यह समाचार मिला कि दुर्योधन के रथ की ध्वजा पर जिस तीर से प्रहार किया गया था, उस पर अर्जुन का नाम था । फिर भी दुर्योधन और शकुनि क्यों मानने लगे ? अन्त में युधिष्ठिर की ओर से उत्तर दूत-रूप में दुर्योधन के पास आया कि उत्तरा-अभिमन्यु के विवाह में आप लोगों को सम्मिलित होना है । विवाह कहाँ हो ?

द्रोण ने दुर्योधन से कहा कि पंचरात्र के भीतर ही पाण्डवों का ठिकाना ज्ञात हो गया । अब तो आप गुरुदक्षिणा रूप में आधा राज्य पाण्डवों को दे दीजिए । दुर्योधन ने राज्य देते हुए कहा—

बाढ़ं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥३.२५

पञ्चरात्र की कथा का प्रारम्भिक अंश भास की कल्पना से प्रसूत है । विराट की गौओं के हरण का प्रकरण समाप्त हो जाने के पश्चात् अनेकशः भीष्म और द्रोण ने साथ-साथ दुर्योधन से कहा है कि पाण्डवों से सन्धि कर लो, पर यज्ञ की दक्षिणा-रूप में द्रोण ने पाण्डवों को आधा राज्य दे देने की बात कभी नहीं कही है । वास्तव में दुर्योधन ने ऐसा कोई यज्ञ ही नहीं किया ।

महाभारत में विराटपर्व के अन्तर्गत गोहरण-पर्व है । इसके अनुसार कौरवों ने विराट की गौओं का अपहरण किया । गोपाध्यक्ष ने राजकुमार उत्तर को गौओं की रक्षा के लिए उत्साहित किया । उत्तर बृहन्नला को सारथि बना कर जाता है । वहाँ उत्तर निरुत्साह है । युद्ध बृहन्नला ही करती है। इसी बीच उत्तर के पूछने पर बृहन्नला अपना और अपने भाइयों का परिचय देती है । गौओं को अर्जुन बचा लाता है । कौरवों की महती सेना का संहार होता है । कौरव-सेना के महावीरों से अर्जुन का युद्ध होता है और वे सभी पराजित होकर भाग खड़े होते हैं ।

इधर राजा विराट अपनी नगरी में पड़े है । वे जब सुनते हैं कि बृहन्नला उत्तर के सारथि हैं तो बड़े चिन्तित होते हैं कि कहीं उत्तर मर ही न गया हो । युधिष्ठिर ने उन्हें समझाया कि बृहन्नला के सारथि होने पर विजयश्री अवश्य प्राप्त होगी । इसी

समय विराट को अपनी विजय का समाचार मिलता है। आनन्द में मग्न विराट युधिष्ठिर के साथ जुआ खेलते हुए उनसे कहते हैं कि मेरे बेटे को अद्भुत विजय मिली। युधिष्ठिर ने कहा—यह सब बृहन्नला के सारथि होने पर अवश्यम्भावी था। विराट ने युधिष्ठिर को खोटी-खरी सुनाई कि तुम मेरे पुत्र के बराबर उस षण्ढ को समझते हो। युधिष्ठिर ने फिर भी बृहन्नला को ही श्रेय दिया। विराट ने युधिष्ठिर को पासा से ही दे मारा। युधिष्ठिर की नाक से रक्तस्राव होने लगा। जब उत्तर ने युद्ध-भूमि से लौट कर यह सब देखा तो उसने अपने पिता से कहा कि आप उन्हें मनाइये, अन्यथा सर्वनाश होगा। विराट ने क्षमा माँगी। उत्तर ने उन्हें युद्ध की वास्तविकता बताई कि युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला मैं नहीं, कोई देवकुमार है, जो कल या परसों प्रकट होगा। वह समय आने पर पाण्डव अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने पर अपने वास्तविक रूप में विराट के सम्मुख विराजमान हुए। विराट से उनका परिचय हुआ।

महाभारत की कथा से अतिरिक्त कुछ तत्त्व पंचरात्र में जोड़े गये हैं, जो नाट्योचित है। पंचरात्र का आरम्भिक और अन्तिम अंश वास्तव में महाभारतीय कथा का परिच्छद मात्र है, जिसमें द्रोण का ब्राह्मण्य और दुर्योधन का चारित्रिक श्वेतीकरण प्रमुख तत्त्व हैं। अभिमन्यु की इस कथा के माध्यम से सुरुचि-पूर्ण प्रसङ्ग भास ने जोड़ा है। इस प्रसङ्ग के जोड़ने से कवि की दो प्रवृत्तियों का समन्वयन हुआ है। एक तो किसी पुत्र का चरित्र-वर्णन हो सका है और दूसरे एक बालक अपने पिता आदि को न पहचानते हुए उनसे जो बातें करता है, वह अतिशय उत्कृष्ट हास्य और वात्सल्य की निर्झरिणी-प्रवाहित करती हैं। इसमें पुत्रक का चरित-वर्णन ऊरूभङ्ग, मध्यम-व्यायोग, और बालचरित की परम्परा में है। भास की बालकों की चारु चरितावली प्रस्तुत करने का अतिशय चाव था। अभिमन्यु को महाभारत के अनुसार उत्तरा से विवाह करने के लिए, आनर्त देश से बुलाया गया था।

समीक्षा

पंचरात्र के आरम्भ में यज्ञ-प्रकरण में अग्निदाह का वर्णन प्रतीक रूप में है[1]। अग्निदाह महाभारत-युद्ध है। इस के प्रतीक का अनुसन्धान अधोविध है—

प्रथम—हा धिक्, दर्शितमेव तावद् वटुचापलम्।

इसमें चपलता दिखाने वाले वटु धृतराष्ट्र के पुत्र हैं, जिनके कारण महाभारत का युद्ध हुआ।

---

१. अन्य पद्यों में १.१५ में महाभारत-युद्ध की व्याप्ति, १.११ में युद्ध में मरे लोगों के सम्बधियों का अन्यत्र जाना, १.१२ में दुर्योधन के द्वारा सब का प्रदाह, १.१३ में युद्ध में कभी हार कभी जीत; १.१४५ में दुर्योधन का अपनी पत्नी के दोष से मर मिटना; १.१५ में श्राद्ध; १.१८ में अश्वत्थामा का रात्रिकालीन हत्या का प्रतीक प्रतीत होता है।

द्वितीयः—अग्निरग्निभयादेष भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः ।
कुले व्युत्क्रान्तचारित्रे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ।।१.७

इसमें कौरवों के भय से पाण्डवों के वनवास का उल्लेख है

तृतीयः—शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा ।
नारीवोपरतापत्या बालस्नेहेन दह्यते ।। १.८

इसमें पुत्रवियोग से गान्धारी के शोकाग्नि में जलने का उल्लेख है

बड़ा ही स्पष्ट प्रतीक है नीचे लिखे पद्य में—

वल्मीकमूलाद् दहनेन भीतास्तत्कोटरैः पञ्च समं भुजंगाः ।
समं विपन्नस्य नरस्य देहाद् विनिस्सृताः पंच यथेन्द्रियाणि ।।

इसमें वल्मीक से निकलते हुए पाँच सर्प पंचपाण्डव हैं। द्वितीय अंक में पात्रों के नृत्य करने की चर्चा है। वे सभी गोपाल हैं।

निकट सम्बन्धियों को आवेशपूर्ण परिस्थिति में किसी न पहचानने वाले पात्र से मिलाकर संवाद में रस ला देना यह भास की कथा-प्रणिधान-कला का शिखर-बिन्दु है। इसका सर्वोच्च निदर्शन इस रूपक में प्रतिफलित हुआ है। यथा—

अभिमन्यु—भगवन्, आपको अभिवादन करता हूँ।

भगवान्—वत्स, आओ, आओ।

राजा—किसने इन्हें पकड़ा ?

भीम—महाराज, मैंने।

अभिमन्यु—यह कहिए कि अशस्त्र होकर पकड़ा।

भीम—बस, बस मैं शस्त्रहीन कैसे था ? मेरी भुजायें ही शस्त्र हैं। दुर्बल धनुष से लड़ते हैं।

अभिमन्यु—ऐसा कैसे ? क्या आप मेरे मध्यम तात हैं, जो ऐसा कह रहे हैं ? केवल उन्हीं को ऐसा कहना शोभा देता है।

भगवान्— पुत्र, यह मध्यम कौन है ?

अभिमन्यु—सुनिये। अथवा हम लोग ब्राह्मणों को उत्तर नहीं देते। कोई दूसरा पूछे।

राजा—मैं पूछता हूँ।

अभिमन्यु—जिसने जरासंध की गर्दन मरोड़ी थी। यदि आप दया करना चाहते हों तो बस एक काम करें। मुझे बेड़ी पहना कर रखिये। मेरा चाचा मुझे अपनी बाहुओं से ही उठा ले जाकर मुक्त करेगा।

ऐसा मनोरंजक संवाद भास की अनुत्तम कला का परिचायक है। ऐसे ही अर्जुन और भीम अभिमन्यु के पकड़ कर लाने की घटना पर विमर्श कर रहे हैं। अर्जुन ने अपवारित मुद्रा में भीम से कहा कि यह आपने क्या कर दिया ? भीम ने उस समय रंगमंच पर सब को सुनाते हुए ही 'अर्जुन' कह दिया तो अर्जुन ने सँभाला—हाँ, हाँ यह अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु है। भीमसेन सावधान हो गये।

एक अन्य मनोरंजक संवाद है भीम, अर्जुन और अभिमन्यु का, जब अभिमन्यु को कहना पड़ता है—यह क्या गड़बड़-घोटाला है कि तुम लोग धर्मराज, भीम और अर्जुन की भाँति कुटुम्ब की स्त्रियों तक के विषय में पूछते हो ?[१] इस प्रकार की संवादात्मक चारुता का सन्निवेश करने के लिए भास ने अभिमन्यु-प्रकरण को इस रूपक में जोड़ा है, यद्यपि यह सर्वथा अनावश्यक है।

कथा-विन्यास-सम्बन्धी कला का एक अन्य उदाहरण है दो अनन्याश्रित वक्तव्यों का सामञ्जस्य करके प्रश्न के उत्तर की व्यञ्जना करना। द्रोण का आत्मगत वक्तव्य है—'पाण्डवों की प्रवृत्ति कहाँ से मिले ?' उसी समय भट कहता है—'विराट नगर से दूत आया है'। यह पताकास्थानक है।

भास के कथाविकास में निमित्तों को केन्द्रविन्दु मानकर चला जा सकता है। जब बृहन्नला का रथ श्मशान की ओर भटकता है तो युधिष्ठिर इस निमित्त की व्यञ्जना प्रकट करते हैं कि जहाँ दुर्योधनादि हैं, वहाँ श्मशान बनेगा।

पंचरात्र में भास की शैली की कुछ विशेषताएँ समुदित हुई हैं। इसमें कवि ने केवल पात्रोचित भाषा का प्रयोग ही नहीं किया है, अपितु उपमानादि के द्वारा भी पात्र और संवादस्थली के परिवेश के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया है। यथा गोमित्रक कहता है—**एते केऽपि मनुष्या दधिपिण्डपाण्डरैश्छत्रैर्घोटकशकटिकामारुह्य सर्वे घोषं विद्रवन्ति चौराः।**' इस वाक्य में छत्र का विशेषण है दधिपिण्डपाण्डर। रथ के लिए इसमें घोटकशकटिका प्रयोग किया गया है। इसका वक्ता ग्वाला है।

भास को शाब्दी क्रीड़ा का चाव था। यथा—

स यौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः।
विमुक्तराज्योऽप्यभिवर्धितः श्रिया त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥२.३२

---

१. किसी एक वक्ता को सत्य का अन्यथा बोध करा कर उससे मनोरंजक बातें कहलवाने की कला महाभारत में पर्याप्त प्रस्फुटित है। महाभारत के इस प्रकरण में पाण्डवों के व्यक्तित्व से अपरिचित विराट क्या-क्या कहता है और करता है—सबमें विनोद की सामग्री है। भास ने इस विनोद की सामग्री को विशेष सुरुचि-पूर्ण बनाया है। विराट की उत्तर के विषय में अवितथ प्रशंसा (२.२६) ऐसा ही प्रकरण है।

त्रिदण्डधारी का दण्डधारक न होना एक पहेली है, जिसका समाधान यमक की गुत्थी सुलझाने पर ही सम्भव होगा।

एक ही पद्य में पाँच वक्ताओं की बातों का समावेश एक चमत्कार ही है। वह पद्य इस प्रकार है—

द्रोण—तस्मान्मे रथमानयन्तु पुरुषाः

शकुनिः—हस्ती समानीयताम्।

कर्णः—भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः स्थाप्यताम्।

भीष्मः—बुद्धिम त्वरते विराटनगरं गन्तुं धनुस्त्वर्यताम्।

सर्वे—मुक्त्वा चायमिहैव तिष्ठतु भवानाज्ञाविधेया वयम्॥१·५७

भास पात्रोचित भाषा से अधिक महत्त्व कार्योचित भाषा को देते थे। बृहन्नला को प्राकृत बोलना चाहिए, किन्तु महाराज विराट ने उससे कहा—**ऊर्जितं कर्म। संस्कृतमभिधीयताम्।**[1]

भास के समय में गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रति अधिक चाव था। पंचरात्र के तीन अंकों में कमशः ५७,७२ तथा २६ पद्य हैं। ऐसी स्थिति में गद्योचित स्थलों में भी पद्यों की भरमार है। एक ऐसा पद्य है—

यज्ञेन भोजय महीं जय विक्रमेण
रोषं परित्यज भव स्वजने दयावान्।
इत्येवमागतकथामधुरं ब्रुवन्तः
कुर्वन्ति पाण्डवपरिग्रहमेव पौराः॥१.२०

पंचरात्र समवकार कोटि का रूपक है। इसके नेता द्रोणाचार्य हैं और इसके प्रधान रस वीर, हास्यादि हैं।

समुदाचार

भास इस रूपक में समुदाचार की शिक्षा विशेष रूप से देते हैं। भास के अनुसार ज्यों ही विराट ने सुना कि भीष्म भी लड़ने के लिए आये हुए हैं, वे आसन से उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर पूछा कि क्या गाङ्गेय भी आये हैं? बड़ों के सामने अपने पुत्र से प्रेम का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। यथा—

अद्येदानीं यातु सन्दर्शनं वा शून्ये दृष्ट्वा गाढमालिंगनं वा।
स्वैरं तावद् यातु मुद्वाष्पतां वा मत्प्रत्यक्षं लज्जते ह्येष पुत्रम्॥ २.४०

---

१. कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः।

अर्थात् मेरे सामने अर्जुन पुत्र के प्रति लज्जाशील रहेगा। अभिमन्यु ने कहा कि ब्राह्मण के प्रश्नों का उत्तर हम नहीं देते। अर्जुन के समुदाचार का आदर्श नीचे लिखे वाक्य में है—

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ २.७१

(मैंने अन्तःपुर की सभी स्त्रियों को माता समझा है। उत्तरा को मैं अपने पुत्र के लिए ग्रहण कर सकता हूँ।)

युद्ध-सम्बन्धी समुदाचार का आदर्श अभिमन्यु के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। भीम जब उसे पकड़ने आया तो उसके हाथ में शस्त्र नहीं था। वह शस्त्रहीन पर कैसे अस्त्र चलाये, उसने प्रतिकार नहीं किया और अपने को पकड़ जाने दिया।

राजकुमार का नाम नौकर-चाकरों को नहीं लेना चाहिए—यह समुदाचार अभिमन्यु के द्वारा नाम लेते समय बताया गया है।

वर्णन

पंचरात्र के आरम्भ में यज्ञ और अग्निदाह का सुविस्तृत वर्णन है, जो भास की महाकाव्य-प्रणयन की योग्यता प्रमाणित करता है। यह वर्णन २५ पद्यों में है। इसमें प्रतीक के द्वारा महाभारत की भूत और भावी घटनाओं का परिचय दिया गया है। यही इसकी नाटकीय उपयोगिता है।

पंचरात्र में ग्राम-जीवन का निदर्शन संस्कृत-साहित्य को एक विरल देन है। इसके दूसरे अंक में ग्रामीण गोपालकों के सामूहिक नृत्य-संगीत वर्णन से कवि की कला-प्रियता प्रमाणित होती है।

अभिषेक

अभिषेक नाटक में राम-कथा का आरम्भ उस स्थल से होता है, जब सीता हरी जा चुकी हैं और सुग्रीव से सन्धि हो चुकी है कि वालि को राम मारेंगे।

कथानक

राम की अनुमति से सुग्रीव वाली से लड़ने आता है। तारा के रोकने पर भी वाली सुग्रीव से भिड़ जाता है। सुग्रीव को वाली पछाड़ देता है। राम बाण से वाली को मार गिराते हैं। बाणाक्षरों से वाली को ज्ञात होता है कि मारने वाले राम हैं। वाली ने कहा—

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥१.१८

अर्थात् वल्कलधारी होकर धोखे-धड़ी से मुझे मारना सर्वथा अनुचित है। यह कह कर वाली मर जाता है। सुग्रीव का अभिषेक होता है।

हनुमान् सीता को खोजते हुए लङ्का जा पहुँचते हैं। दीर्घ अनुसन्धान के पश्चात् वह सीता के पास पहुँचते है। वहाँ पेड़ के ऊपर बैठ कर वे सारी स्थिति का अवलोकन करते हैं। इधर रावण सीता से प्रेम की बातें करता है। सीता उसे शाप का भय बताती हैं। रावण चला जाता है। हनुमान् सीता के सम्मुख आकर उनसे राम का समाचार बताते हैं कि राम शीघ्र ही लङ्का पर आक्रमण करने वाले हैं।

हनुमान् ने सीता से मिलने के पश्चात् अशोकवनिका भग्न कर दी। रावण को यह समाचार दिया जाता है। रावण के द्वारा भेजे हुए सैनिकों को हनुमान् मार डालते हैं। उन्होंने कुमार अक्ष को उनके पाँच सेनापतियों सहित मार डाला। इन्द्रजित् युद्ध के पश्चात् हनुमान् को बाँधकर ले आता है। विभीषण और हनुमान् रावण के सम्मुख उपस्थित होते हैं।

हनुमान् रावण की राजोचित प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए उससे अनादर पूर्वक बातें करते हैं और अन्त में उसे रावण कहते हैं। उससे खीझकर रावण आदेश देता है कि दूत होने के कारण तो यह अवध्य है, पर इसकी पूँछ में आग लगा कर इसे छोड़ दिया जाय। रावण ने हनुमान् से कहा कि राम से कह दो कि मुझसे आकर लड़े। इधर विभीषण ने रावण से कहा कि पराक्रमी राम से युद्ध न करें, तब तो रावण ने उसका भी निर्वासन कर दिया।

विभीषण राम के शिविर के समीप समुद्र तट पर पहुँचते हैं। हनुमान् उन्हें राम से मिलाते हैं। विभीषण बताते हैं कि दिव्यास्त्र से समुद्र वश में होगा। वरुण ने प्रकट होकर राम के आदेश का पालन करते हुए समुद्र के बीच से जल सुखा कर मार्ग दे दिया। राम लङ्का पहुँचे। शुक और सारण रावण के चर राम की सेना में आये। राम ने उन्हें सब कुछ परीक्षण करके लौट जाने का आदेश दिया।

संग्राम में कुम्भकर्ण आदि मारे गये। रावण ने राम-लक्ष्मण के शिर की प्रतिकृति बनवाई। उसे सीता को दिखाया। सीता के समीप जब रावण था, तभी राक्षस वे प्रतिकृतियाँ लाकर रावण को देते हैं। रावण उन्हें सीता को दिखाता है और कहता है कि अब मुझसे प्रेम करो। उसी समय रावण को समाचार मिलता है कि इन्द्रजित् मारा गया। रावण आवेश में प्रमत्त होकर कहता है—इसी सीता के कारण यह सब हुआ। इसका हृदय चीर कर इसकी अँतड़ी की माला पहन कर युद्ध में राम-लक्ष्मण आदि का संहार करूँगा। दूत के समझाने पर उसने सीता को नहीं मारा।

राम-रावण का युद्ध होता है। इन्द्र मातलि से राम के लिए रथ भेजते हैं। घोर युद्ध के पश्चात् रावण को राम ने मारा। राम लक्ष्मण के साथ सीता से मिलते

हैं। सीता के विषय में राम कहते हैं—**तत्रैव तिष्ठतु रजनिचरावमर्शजातकल्मषा इक्ष्वाकुकुलस्याङ्कभूता।**

राम की इच्छानुसार सीता अग्निप्रवेश करती हैं। वहाँ से अधिक प्रभायुक्त होकर वे बाहर निकलती हैं। अग्निदेव सीता को राम के पास लाकर कहते हैं—

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम्।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता॥६.२८

अग्निदेव राम का अभिषेक करते हैं।[1]

भास के अन्य कई रूपकों की भाँति अभिषेक का नाम भी खींचतान से ही समीचीन कहा जा सकता है। इसमें सुग्रीव और राम के अभिषेक होते हैं, किन्तु पूरे नाटक के कथानक की प्रवृत्ति को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें अभिषेक नितान्त साधारण सी बात है, वह भी राम का अभिषेक लङ्का में होना भास के प्रतिमा नाटक के अनुसार मिथ्यावाद है। प्रतिमा के अनुसार राम का अभिषेक जनस्थान में हुआ था और रामायण के अनुसार अयोध्या में रामाभिषेक हुआ था।

कथानक में दूसरा परिवतन है समुद्र को पार करने के लिए बीच से समुद्र के जल का द्विधा हो जाना, जिससे सूखे-सूखे राम और उनकी सेना लङ्का पहुँच गई।

लक्ष्मी का रावण को छोड़ कर राम के पास जाना भास का कल्पित संयोजन है। जटायु से समाचार जान कर हनुमान् का लङ्का में जाना—यह भी कविकल्पित है। जटायु तो कब का मर चुका था।

कथानक में एकमुखता नहीं है। साधारणतः रूपक में उपजीव्य ग्रन्थ की ऐसी घटनाओं को काट-छाँट कर पृथक् कर देना चाहिए, जिनका प्रधान कार्य से कोई सम्बन्ध न हो। भास ने इस रूपक में रामायण की बहुत सी घटनाओं को उड़ा दिया है, किन्तु शुक-सारण का राम की सेना का परीक्षण करने के लिए आना उन्होंने व्यर्थ ही अभिषेक में रहने दिया है। इसी प्रकार रावण की लक्ष्मी का राम के पास जाना भी व्यर्थ की ही चर्चा है।

अभिषेक की कथावस्तु में भास ने अपने एक प्रिय कथांश को जोड़ा है, जिसके अनुसार वाली को मारते समय उर्वशी, गङ्गादि का दर्शन होता है। मरने के समय ऊरुभंग में दुर्योधन, प्रतिमा में दशरथ और अविमारक में मरणोद्यत नायक इसी प्रकार के दिव्य दृश्य देखते हैं।

समीक्षा

कहीं-कहीं भावी घटना का पूर्व सङ्केत किया गया है। यथा—

१. प्रतिमा में राम का अभिषेक जनस्थान में होता है।

नालं मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः ॥१.१०

भावी घटना का संकेत पताकास्थानक द्वारा किसी प्रश्न के पूछने पर आकस्मिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा अन्य प्रसंग में कहे हुए वाक्यों या शब्दों से भी मिलता है।[1] अङ्क को समाप्त करने के लिए सन्ध्या हो जाने का उल्लेख किया गया है[2]। यथा--

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।
रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥ ४.२३

इस श्लोक की उत्तमता से भी सम्भवतः इसके समावेश के लिए कवि को प्रेरणा मिली है।

अभिषेक में रंगमञ्च पर युद्ध और मृत्यु का अभिनय दिखाया गया है। सुग्रीव और वाली रंगमञ्च पर लड़ते हैं और राम के बाण से आहत होकर वाली रंगमञ्च पर ही मर जाता है।

अभिषेक में पात्रों की संख्या व्यर्थ ही अधिक बढाई गई है। शुक, सारण, लक्ष्मी आदि पात्र न बनाये गये होते और न उनसे सम्बद्ध कथांश का समावेश किया गया होता तो कोई हानि न होती। नायक राम को अवतार-रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अनेक अन्य दिव्य कोटि के पात्र—वरुण, अग्नि, लक्ष्मी आदि यदि न लाये जाते तो नाटक में स्वाभाविकता का सौष्ठव सुरुचिपूर्ण रहता। रावण का चरित्र-चित्रण उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ दिखाने के कारण असफल है।

अभिषेक में समुदाचार की योजना पूर्ववत् है। सुग्रीव और वाली के युद्ध-प्रकरण में लक्ष्मण ने प्रश्न उठाया है—

'गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम्'

अर्थात् वह सदाचार का उल्लंघन करके बड़े भाई से लड़ने जा रहा है। वाली का समुदाचार का प्रश्न समीचीन है, जब वह राम से पूछता है--

---

१. अभिषेक के ५.१० में रावण सीता से पूछता है कि तुमको कौन छुड़ायेगा ? इसके ठीक पश्चात् ही किसी अन्य प्रसंग में राम का नाम सुनाई पड़ता है। अर्थात् राम छुड़ायेगा। यह पताकास्थानक है।

२. अभिज्ञानशाकुन्तल का तृतीयाङ्क और रत्नावली का प्रथमाङ्क सूर्यास्त की सूचना से समाप्त होते हैं।

युक्तं भो नरपतिधर्ममास्थितेन
युद्धे मां छलयितुमक्रमेण राम । १.१७
भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।
छलेन मां प्रहरता प्ररुढमयशः कृतम् ।। १.१८

कोई अपकार्य हो जाने के पश्चात् उसके सम्बन्ध में कार्याकार्यविचारणा से समुदाचार का पक्ष उपस्थित किया गया है।

भास ने इस रूपक में भी युद्धवर्णन के प्रति चाव प्रकट किया है। प्रथम अंक में सुग्रीव और वाली के युद्ध का वर्णन बहुत बड़ा नहीं है, किन्तु पाँचवे और छठें अङ्क में प्रायः युद्ध ही युद्ध की कथा है। पाँचवे अङ्क में कोई राक्षस युद्ध-सम्बन्धी वृत्त रावण को आ-आकर बताता है, जिससे उसे आवेश और उद्विग्नता होती है। छठें अङ्क में तीन विद्याधर राम-रावण युद्ध की विशेषताओं का आँखों-देखा विवरण प्रस्तुत करते हैं।[1]

अभिषेक में समुद्र का वर्णन मनोरम है[2]। यथा

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छंखाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ।। ४.१७

अभिषेक का—

यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी ।
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।।३.१

अभिज्ञानशाकुन्तल के

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् । ४.९

का पूर्वरूप प्रतीत होता है।

अभिषेक का अङ्गी रस वीर है। वीर रस के लिए युद्धात्मक कथानक सामञ्जस्य-पूर्ण होता ही है। कवि ने इस रस के लिए समुचित पदावली का प्रयोग किया है। यथा——

१. भास ने तीन की संख्या उस प्रकरण के लिए अपना रखी है, जहाँ कोई घोर संघात होना है, जिसमें प्रमुखतः प्रतिनायक का पतन दिखाया गया है। पंचरात्र के प्रथम अंक में भी तीन ब्राह्मण आकर ऐसे ही उपस्थित होते हैं। ऐसे ही प्रयोजन के लिए उत्तररामचरित के षष्ठ अंक में विद्याधर मिथुन की भूमिका है।

२. समुद्र का यह वर्णन रामायण अयो० ५०.१६-१८ के अनुरूप है।

दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणं ।
युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम् ।। २.१०

अभिषेक में शृङ्गार नितान्त संयत कहा जा सकता है। शृंगाराभास की निष्पत्ति होती है । सीता के प्रति रावण के प्रेमोद्गार में शृङ्गारोचित शब्दावली है—

रजतरचितदर्पणप्रकाशः
करनिकरैर्हृदयं ममाभिपीड्य ।
उदयति गगने विजृम्भमाणः
कुमुदवनप्रियबान्धवः शशाङ्कः ।। २.११

वाली की मृत्यु के वर्णन में करुण रस की क्षीण निर्झरिणी प्रवाहित है । अद्भुत रस के लिए इस नाटक में प्रचुर अवसर स्वभावतः है । देवताओं की चरितावली विशेषतः सीता के अग्निप्रवेश के प्रकरण में अग्निदेव का कार्यकलाप तथा राम के अभिषेक के अवसर पर देवताओं का आगमन अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए प्रयुक्त हैं ।

अभिषेक में शब्दालङ्कारों की छटा कहीं-कहीं विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होती है । यथा—

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्राद् ।
आरुह्यागेन्द्रं सद्द्विपेन्द्रं महेन्द्रम् ।। २.१

नीचे लिखे पद्य में उत्प्रेक्षा की चारुता प्रभविष्णु है—

सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो विलुलितफेनतरंगचारुहारः ।
समधिगतनदीसहस्रबाहुर्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः ।। ४.३

युद्ध-भूमि उदधि से उपमित है । यथा—

रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा ।
उदधिरिव विभाति युद्धभूमी रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा ।।६.२

अभिषेक में इन्द्र के प्रति कवि की विशेष अभिरुचि दिखाई पड़ती है । किसी किसी पद्य में इन्द्र शब्द का प्रयोग चार बार भी किया गया है ।[1]

अभिषेक के बहुशः पद्यों में भावानुरूप छन्दों का संयोजन मिलता है । अन्यत्र कुछ पद्यों में कई वक्ताओं की बातें निबद्ध हैं । यथा

प्रथमः—इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः
द्वितीयः—रामस्य रावणवधाय कृतोद्यमस्य ।

---

१. इन्द्र का प्रयोग १.३,१०,१२ २.१,२,४,५, १८,१६; ३.१७; ४,२,३,६; ५.१६ आदि में है ।

तृतीयः--संग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः ।
सर्वे--प्राप्ता वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णम् ।।६.१

भास को पद्य लिखने का बड़ा चाव था । जहाँ कोरे गद्योचित भाव हैं, वहाँ भी वे पद्य लिखते जाते थे । यथा--

बाणाः पात्यन्ते राक्षसैर्वानरेषु
शैलाः क्षिप्यन्ते वानरैर्नैऋतेषु ।
मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुसंघट्टनैश्च
भीमश्चित्रं भोः सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः ।। ६.५

छठें अंक में गद्य केवल अपवाद रूप से ही हैं । इसका तीन चौथाई पद्यात्मक है । इस अंक का अन्तिम भाग विशेष रूप से गीतात्मक है । इसमें गन्धर्व और अप्सरा विष्णु की स्तुति गाते हैं ।

अभिषेक में वानरों का संस्कृत बोलना समीचीन नहीं प्रतीत होता है। भास अधिक से अधिक पात्रों से संस्कृत बोलवाते हैं । भास का विट चारुदत्त में संस्कृत बोलता है, किन्तु नागानन्दादि परवर्ती नाटकों में वह प्राकृत-भाषी है ।

'आकाश' नामक विधि से भी कुछ वक्तव्य रंगमंच के पात्रों को सुनाई पड़ते हैं । किं वक्ष्यति, किं ब्रवीषि आदि से ऐसे वक्तव्यों का आरम्भ होता है।[1]

अभिषेक में कुछ शब्दों के प्रयोग अतिशय उदात्त लगते हैं । यथा सन्तान के लिए कुलप्रवाल, घर के लिए निशान्त, वानर के लिए वनौकस् ।[2]

हिन्दी में जहाँ अपना शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ संस्कृत में प्रायः स्व शब्द प्रयुक्त होता है, किन्तु भास ने अनेक स्थलों पर स्व के स्थान पर तव और मम आदि का प्रयोग किया है । भास के कई रूपकों में इस प्रकार का प्रयोग मिलता है । यथा--

ममागमनं देवाय निवेदयामि[3] ।
प्रेक्षस्व लक्ष्मणयुतं तव चिन्तकान्तम् ।। अभिषेक ५.७

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में मम और तव के स्थान पर स्व का प्रयोग होना चाहिए ।

अभिषेक में कहीं-कहीं संवाद-शिल्प त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है । युद्ध का समाचार देने वाला लक्ष्मण का युद्ध देखकर उसका वृत्तान्त रावण के समक्ष प्रस्तुत करता है । वह जाने के दूसरे ही क्षण समाचार देने के लिए लौट आता है । यह अस्वाभाविक है ।

---

१. पाँचवें अङ्क में चौथे पद्य के नीचे ।

२. कुलप्रवाल १.२६ में निशान्त २.४ में और वनौकस् ३.८ के नीचे प्रयुक्त हैं ।

३. अभिषेक ४.८ के नीचे । अभिज्ञानशाकुन्तल में और कहीं-कहीं अन्य पुस्तकों में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं ।

बालचरित

बालचरित में बालकृष्ण की अनेकानेक लीलाओं का एकत्र वर्णन है। परवर्ती युग में भी अनेक कार्यों को नाटक की कथा द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, यद्यपि यह नाटक के नियमों के विरुद्ध है, क्योंकि नाटक में किसी एक प्रमुख कार्य की ओर ले जाने वाली उसकी सारी प्रवृत्तियाँ होनी चाहिए। ऐसा बालचरित में नहीं है।

कथानक

नारद बालकृष्ण का दर्शन करने के लिए गगनपथ से अवतीर्ण होकर अपना परिचय स्वयं देकर चलते बने। अपनी दृष्टि में वे स्वयं कलहप्रिय हैं और कृष्ण कलह के मूल उत्पन्न हुए हैं। वे नवजात कृष्ण की प्रदक्षिणा करते हैं।[१] वसुदेव कृष्ण को लेकर मथुरा से भाग चले। यमुना का जल दो भागों में छिन्न हो गया। वे यमुना पार पहुँचे। नन्द की वसति के समीप उन्हें नन्द अपनी मृत नवजात कन्या को लिए हुए मिले। कृष्ण को वसुदेव ने नन्द के द्वारा रक्षा करने के लिए दे दिया। बालरूप धारण करके गरुड, चक्र आदि कृष्ण का साह्य करते हैं। वसुदेव मथुरा लौट आये। उनके साथ नन्द की वह मृत कन्या थी, जो मार्ग में जीवित हो गई थी।

चाण्डाल युवतियाँ कंस के घर में प्रवेश करती हुई उससे अनकेशः कहती हैं कि हमारी कन्याओं का तुमसे विवाह हो। कंस उनकी ढिठाई देखकर क्रोध से कहता है—भागो। वे ओझल हो जाती हैं।[२] फिर चाण्डाल-रूपधारी शाप उसके घर में प्रवेश करता है। शाप के साथ ही अलक्ष्मी, खलति, कालरात्रि, महानिद्रा, पिंगलाक्षी कंस के घर में प्रवेश करते हैं। लक्ष्मी कंस के शरीर को छोड़ कर चल देती है और विष्णु के पास जा पहुँचती है।[३]

कंस अशुभ लक्षणों का अभिप्राय ज्योतिषियों से पुछवा कर जान लेता है। उसी समय कंचुकी बताता है कि देवकी को सन्तान उत्पन्न हुई है। वसुदेव बुलाये जाते हैं। कंस उनसे पूछकर ज्ञात करता है कि कन्या उत्पन्न हुई है। कंस कन्या को मँगवाता है और उसे शिला पर पटक देता है। वह कात्यायनी बनकर सपरिवार कंस के समक्ष उपस्थित होती है। उसके परिवार में कुण्डोदर, शूल नील आदि हैं। वे सभी कंस को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। कात्यायनी की आज्ञानुसार वे सभी गोपवसति में ग्वाले बनकर अवतीर्ण होते हैं।

---

१. इस प्रसंग में नारद का शिशु-दर्शन बहुत कुछ अश्वघोष के बुद्धचरित में असित के सिद्धार्थ-दर्शन के समकक्ष है। महाभारत के अनुसार अर्जुन के जन्म के समय नारद वहाँ पधारे थे।

२. यह दृश्य मैकबेथ की तीन चुड़ैलों के समागम का पूर्वादर्श है।

३. अभिषेक में भी लक्ष्मी रावण का घर छोड़कर राम के पास चल देती है।

दामक और वृद्ध गोपाल बातें करते हैं, जिसके अनुसार पूतना, शकट, यमलार्जुन प्रलम्ब, धेनुक, केशी आदि को कृष्ण और बलराम ने मार डाला है। वहीं समाचार दिया जाता है कि कृष्ण गोपियों के साथ हल्लीसक नृत्य करेंगे। गोपी और गोप मनोरञ्जन की मुद्रा में कृष्ण और बलराम के समक्ष उपस्थित होते हैं। सभी नाचते-गाते हैं। तभी अरिष्टर्षभ दानव आता है। अरिष्टर्षभ का कहना है—

यत्र यत्र वयं जातास्तत्र तत्र त्रिलोकधृत् ।
दानवानां वधार्थाय वर्तते मधुसूदनः ॥ ३-१३

अरिष्टर्षभ कृष्ण के आघात से मर जाता है।

इसके पश्चात् कालिय-दमन के लिए कृष्ण चल देते हैं। कृष्ण ने दह में प्रवेश करके कालिय के फणों पर हल्लीसक नृत्य किया। परास्त होकर कालिय कृष्ण की स्तुति करता है—

गोवर्धनोद्धरणमप्रतिमप्रभावं बाहुं सुरेशं तव मन्दरतुल्यसारम् ।
का शक्तिरस्ति मम दग्धुमिमं सुवीर्यं यं संश्रितास्त्रिभुवनेश्वरसर्वलोकाः ॥

वह कृष्ण की शरण में आता है।

कालियदमन के पश्चात् कृष्ण को कंस का निमन्त्रण मिलता है कि आपको मथुरा में महोत्सव के अवसर परिवार-सहित उपस्थित होना है,। कृष्ण भावी घटना की चर्चा करते हैं—

आकृष्य कंसमहमद्य दृढं निहन्मि
नागं मृगेन्द्रमिव पूर्वकृतावलेपम् ॥ ४·१३

कंस अपना मन्तव्य घोषित करता है कि रंगभूमि में आने पर कृष्ण को मल्लों से मरवा दूँगा। ध्रुवसेन कंस से बताता है कि कृष्ण ने क्या-क्या अद्भुत पराक्रम दिखाये हैं—'आपके धोबी से वस्त्र छीन लिया, कुवलयापीड नामक आपके हाथी को मार डाला, मदनिका नामक कुब्जा से गन्धादि लेकर अपना प्रसाधन किया, मालियों से फूल-मालायें ले लीं।' धनुश्शाला के रक्षक को मार कर धनुष तोड़ कर कृष्ण सभामण्डप में जा पहुँचे। कंस चाणूर और मुष्टिक को भेजता है, जो मारे जाते हैं। ध्रुवसेन कृष्ण और बलराम से कहता है—

एष महाराजः। उपसर्पेतां भवन्तौ

कृष्ण और बलराम—**आः कस्य महाराजः।**[1]

---

१. पंचरात्र में भी इन्हीं शब्दों में अभिमन्यु और विराट का परिचय कराया गया है—
बृहन्नला—एष महाराजः। उपसर्पतु कुमारः।
अभिमन्यु :—आः कस्य महाराजः।

कंस कृष्ण को देखकर कहता है—

लोकत्रयं हि परिवर्तयितुं समर्थः ।। ५·८

चाणूर को कृष्ण और मुष्टिक को बलराम पछाड़ते हैं। कृष्ण कंस को छत से पटक देते हैं। वह मर जाता है। वसुदेव आ जाते हैं। कृष्ण और बलराम उनसे मिलते हैं और उनका अभिवादन करते हैं। उग्रसेन राजा बनाये जाते हैं। नारद आकर कृष्ण को नमस्कार करते हैं।

बालचरित के कथानक में बहुविध अभिनेय दृश्य ऐसे हैं, जिन्हें परवर्ती शास्त्रीय विधानों के अनुसार रंगमंच पर नहीं दिखाना चाहिए। वध के अनेक दृश्य हैं, युद्ध होते हैं—ये सब नाटक में अभिनय के द्वारा दृश्य नहीं बनाने चाहिए। अवश्य ही भास के समय में ऐसे नियमों की अटूट मान्यता नहीं थी।

बालचरित में कृष्ण की बालावस्था के पराक्रमों का आख्यान है। इसकी कथावस्तु का सर्वप्रथम रूप कुछ-कुछ हरिवंश में और विरल ही महाभारत में मिलता है। हरिवंश के विष्णुपर्व में नारद का मथुरा में आकर कंस को आने वाले भय की सूचना देना, कंस द्वारा वसुदेव-देवकी के सात नवजात शिशुओं की हत्या, कृष्ण का जन्म लेना, वसुदेव का कृष्ण को नन्द के घर में रखकर उसकी कन्या को उठा लाना, शिला पर उसको पटक कर कंस द्वारा मारने का प्रयास, उसका आकाश में उड़ जाना और देवी-रूप में विकसित होकर कंस से कहना कि जब तुम मारे जाओगे, उस समय तुम्हारा रक्त पीऊँगी, कृष्ण द्वारा शकट-भंजन, पूतना-वध, यमलार्जुन-भंजन, कालिय-दमन अरिष्टासुर-वध, केशिवध करना, कंस द्वारा कृष्ण का आमन्त्रण, मथुरा में आकर कृष्ण द्वारा रजक का वध, माली को वरदान, कुब्जा से प्रसाधन-सामग्री लेकर उसे वरदान और धनुर्भङ्ग करना, कृष्ण द्वारा चाणूर, मुष्टिक, कुवलयापीड आदि का वध और अन्त में कंस का वध करके माता-पिता से मिलना तथा उग्रसेन को राजा बनाना आदि वृत्त हैं।

महाभारत के अनुसार वसुदेव-देवकी से कृष्ण का जन्म होता है। यह कथा इतनी ही आदिपर्व में है, किन्तु सभापर्व के परवर्ती पाठ में कृष्ण के बालचरित की कथा पर्याप्त विस्तार से दी गई है। सभापर्व की यह कथा हरिवंश की कथा से परवर्ती है।

उपर्युक्त महाभारतीय और हरिवंशीय कथाविन्यास में यमुना पार करने की चर्चा नहीं है। यमुना पार करते समय उस नदी का जल द्विधा विभक्त हो गया—यह कथांश सम्भवतः भास का संयोजन हो।[1]

---

१. अभिषेक नाटक में भी समुद्र के द्विधा विभक्त होकर मार्ग देने के अभिनव कथा-विन्यास से इस मत का समर्थन होता है।

समीक्षा

बालचरित में कृष्ण का प्रधान कार्य है कंस का वध करना, किन्तु भास ने इसमें कृष्ण की बालावस्था की समस्त चरितावली एक-एक करके गूंथ दी है। विस्तार-पूर्वक अरिष्टासुर का वध और कालिय नाग का दमन क्रमशः तृतीय और चतुर्थ अङ्क में पूरे-पूरे वर्णित हैं।[1] पाँचवे अंक में कंसवध की कथा है। ऐसी कथा में सन्धि, अर्थप्रकृति और कार्यावस्था का निर्वाह असम्भव रहा है। इसमें मुख सन्धि और निर्वहण सन्धियाँ समीचीन हैं। इसमें बीजन्यास नारद के शब्दों में इस प्रकार है—

तद् भगवन्तं लोकादिमनिधनमव्ययं लोकहितार्थे कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतं नारायणं द्रष्टुमिहागतोऽस्मि।

नारद ने अपना परिचय दिया है—

अहं गगनसंचारी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
ब्रह्मलोकादिह प्राप्तो नारदः कलहप्रियः॥ १.३

इस कलहप्रिय विशेषण से व्यञ्जना होती है कि पूरे नाटक में झगड़ा-झंझट का प्रपञ्च है।

बालचरित पाँच अङ्कों का नाटक है। इसके नेता बालकृष्ण हैं। नायक के व्यक्तित्व के अनुरूप ही व्यक्तित्व वालों के लिए साधारणतः काव्य प्रिय होता है। बालचरित इस प्रकार संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ बालोचित नाटक है। इसमें बालकों की अभिरुचि का ध्यान रखते हुए भी कुछ प्रकरण सन्निवेशित हैं। यथा चाण्डाल युवतियों का—

चाण्डालयुवतयः—आगच्छ भर्तः आगच्छ। अस्माकं कन्यानां त्वया सह विवाहो भवतु।

चाण्डाल युवतियाँ तीन बार यही वक्तव्य प्रस्तुत करती हैं। तीसरा अंक-ग्रामीण बालकों की अभिरुचि को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया है। वृन्दावन में बालकृष्ण का गोपियों के साथ हल्लीसक नृत्य करना दर्शक वृद्ध गोप को भी केवल हृदय से ही नहीं, शरीर से भी नचा देता है। कृष्ण के शब्दों में गोपियों का परिचय है—

एताः प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्रा
गोपाङ्गनाः कनकचम्पकपुष्पगौराः।
नानाविरागवसना मधुरप्रलापाः
क्रीडन्ति वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः॥ ३.२

---

१. बालचरित की कथावस्तु महाकाव्योचित कही जा सकती है।

गोपाल भी कुछ ऐसे ही हैं। सभी नाचते हैं। कृष्ण की नीचे लिखी प्रवृत्तियाँ किस बालक को रमणीय नहीं बना देंगी ? नन्द के शब्दों में--"कृष्ण किसी घर में दूध पीयेगा, दूसरे घर में दही खायेगा, कहीं दूसरे घर में मक्खन खायेगा। कहीं खीर खायेगा और कहीं मट्ठे की हँड़िया झाँकेगा"।

बालचरित में लौकिक और अलौकिक गणनातीत पात्र हैं। चाण्डाल युवतियों का पात्र होना केवल दो मिनट के लिए ही है। कुछ प्रतीक पात्र हैं, यथा, शाप, खलति, अलक्ष्मी, महानिद्रा, पिङ्गलाक्षी। ये कंस के घर में प्रवेश करती हैं। कंस का घर छोड़कर राजश्री चली जाती है। चक्र, गरुड, शार्ङ्ग, कौमोदकी, शङ्ख, नन्दक आदि बालक का वेष धारण करके बालचरित का रसास्वादन करने के लिए आभीर-ग्राम में अवतीर्ण होते हैं।[1] शूल, कुण्डोदर, नील, मनोजव आदि अन्य पात्र हैं।

कुछ अन्य अलौकिक पात्र हैं अरिष्टासुर, और कालियनाग आदि। अरिष्टासुर बैल है, किन्तु वह मानवोचित प्रवृत्तियों से समन्वित है। बैल के मुख से पद्य सुनिये--

शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः खमिवालिखंश्च
शत्रोर्वधार्थमुपगम्य वृषस्य रूपम्।
वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमान-
माक्रम्य शत्रुमहमद्य सुखं चरामि ॥ ३.५

कालियनाग फण से कृष्ण को लपेटेगा भी और संस्कृत में व्याख्यान भी देगा--

लोकालोकमहीधरेण भुवनाभोगं यथा मन्दरं
शैलं शर्वधनुर्गुणेन फणिना यद्वच्च यादोनिधौ।
स्थूला खण्डलहस्तिहस्तकठिनो भोगेन संवेष्टितं
त्वामेष त्रिदशाधिवासमधुना सम्प्रेषयामि क्षणात् ॥

अन्तिम अंक में नारद पुनः एक बार पात्र बन कर आते हैं। उनके साथ देव, गन्धर्व और अप्सरायें भी हैं। कथावस्तु से असंख्य अन्य बहुविध पात्रों का परिचय मिलता है। इस नाटक में देवलोक, मर्त्यलोक और असुरलोक तीनों से पात्रों का घोर जमघट है, जो भले ही नाट्यशास्त्र की दृष्टि से समीचीन न हो, किन्तु आधुनिक चलचित्रों के युग में वे पात्र विचित्र नहीं प्रतीत होते। नृत्य और संगीत की योजना भी नाटक को आधुनिक नाटकों के स्तर पर मनोरञ्जक बनाती है।

बालचरित का प्रधान रस वीर है, जो प्रायः आदि से अन्त तक परिव्याप्त है। कृष्ण के अलौकिक पराक्रमों में बालप्रिय अद्भुत रस की प्रचुर निष्पत्ति होती है। बालचरित में वात्सल्य की स्वाभाविक निर्झरिणी प्रवाहित है। वात्सल्य भी शृङ्गार

१. दूतवाक्य में भी ये सभी क्षण भर के लिए पात्र बनाये गये हैं।

का एक रूप माना जाता है। हल्लीसक नृत्य का दृश्य शृङ्गारित है। अरिष्टासुर, कालिय और कंस-वध के प्रकरण में वीर के साथ ही भयानक और रौद्र का समावेश है। सारा वातावरण शान्ति और भक्ति का है। वास्तव में कृष्ण का अवतार ही हुआ है—**गोब्राह्मणहिताय,** जिसकी चर्चा कृष्ण ने वारंवार की है।[1]

रसों के अनुकूल उद्दीपन विभाव की सज्जा है। नन्द की कन्या मर चुकी है। सन्तति की मृत्यु जीवन-दीप का बुझ जाना है। इस काल का वर्णन नन्द के शब्दों में है—

सम्प्रति हि महिषशतसम्पातसदृशोऽहो बलवानन्धकारः।
दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
संप्रावृतप्रसुप्ता नीलवसना यथा गोपी॥ १.१९

गौओं का वर्णन है—

अनुदितमात्रे सूर्ये प्रणमत सर्वादरेण शीर्षेण।
नित्यं जगन्मातॄणां गवाममृतपूर्णानाम्॥ ३.१

बालचरित की भाषा भी बालोचित कही जा सकती है। इसमें बड़े समासों का अभाव-सा है और अलंकारों का जाल कहीं बोझिल नहीं है। पात्रानुकूल भाषा और भाव हैं। गोप मागधी प्राकृत बोलता है और उसके उपमान उसके चारों ओर दृश्य वस्तुओं से चुने हुए हैं। वृद्ध गोपाल की दृष्टि में बलराम गाय के दूध के समान हैं और कृष्ण सिंह के समान हैं।

बालचरित में सूत्रधार की आदिम उक्ति अभिज्ञानशाकुन्तल की आदिम उक्ति का आदर्श प्रस्तुत करती है। यथा—

शंखक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः।
दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसन्निभः कलियुगे वः पातु दामोदरः॥ १.१

अभिज्ञानशाकुन्तल का "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या" उपर्युक्त श्लोक से सन्तुलित-सा है। इस नाटक में ग्रामदृश्य वर्णन संस्कृत-साहित्य की दुर्लभ उपलब्धियों में से है।

अविमारक

भास के नाटकों में अविमारक का विशेष महत्त्व है। परवर्ती अनेक कवियों की कृतियों पर इसका प्रभाव दिखाई देता है। इसमें भास की शृङ्गारात्मक प्रतिभा का सर्वोच्च विलास निखरा है।

---

१. बलराम ने भी कहा है—दिष्टया गोब्राह्मणहितं कृतम्।

कथानक

कौन्त्य नगर के राजा कुन्ति भोज की दो बहनें सुचेतना और सुदर्शना थीं। सुदर्शना का विवाह काशिराज से और सुचेतना का विवाह सौवीरराज से हुआ था। सुदर्शना को अग्निदेव से एक पुत्र हुआ,[1] जिसको शैशव में ही उसने अपनी बड़ी बहिन सुचेतना को दे दिया, क्योंकि सुचेतना का सद्यःप्रसूत पुत्र मर गया था। उस बालक का नाम विष्णुसेन पड़ा। इस रहस्य को कोई नहीं जानता था। आगे चल कर विष्णुसेन का नाम अविमारक भी पड़ा, जब उसने प्रजापीडक राक्षस अवि को मारा। यही इस नाटक का नायक है।

एक बार सौवीरराज मृगया करते हुए ब्रह्मर्षि चण्डभार्गव के आश्रम में जा पहुँचे। ऋषि के पुत्र को व्याघ्र ने मार डाला था। राजा को देखते ही ऋषि उन पर क्रोधित हो गये। राजा ने उनसे कह दिया कि आप ब्रह्मर्षि वेष में चाण्डाल हैं। ब्रह्मर्षि ने शाप दिया कि तुम सकुटुम्ब एक वर्ष के लिए चाण्डाल बन जाओ। सौवीरराज अपने पुत्र अविमारक और पत्नी सुचेतना के साथ कुन्ति भोज की नगरी में चाण्डाल बन कर प्रच्छन्न विधि से रहने लगे।

राजा कुन्ति भोज की कन्या कुरंगी के युवावस्था में प्रवेश करने पर उसके माता-पिता उसके विवाह के विषय में सचिन्त हैं। एक दिन कुरंगी उपवन-विहार करने के लिए गयी, जहाँ किसी प्रमत्त हाथी से आक्रान्त होने पर उसे अविमारक नामक किसी अपरिचित युवक ने बचाया। युवक और युवती में एक दूसरे के प्रति बरबस आकर्षण हो गया। राजा को सूचना मिली कि रक्षक युवक अपने को अन्त्यज बताता है, किन्तु यह सत्य नहीं प्रतीत होता।

कुन्ति भोज को कन्या के सुरक्षित होने के समाचार के पश्चात् ज्ञात होता है कि सौवीरराज ने कभी केवल एक बार अपना दूत कुरंगी को अपने पुत्र के लिए वधू रूप में प्राप्त करने के लिए भेजा था। अब अपने राजकुमार के साथ उनका ठौर-ठिकाना नहीं ज्ञात हो रहा है। राजा मन्त्री को आदेश देता है कि सौवीरराज की पूछताछ की जाय।

अविमारक और कुरङ्गी परस्पर प्रणयानुबद्ध हैं। नौकरों को देववाणी से ज्ञात हो जाता है कि अविमारक कुलीन है। कुरंगी की धात्री और उसकी सखी नलिनिका अविमारक से कहती हैं कि आप आज ही अन्तःपुर में कुरंगी से मिलें। अविमारक स्वीकृति दे देता है।

---

१. अग्निदेव से सुदर्शना की पुत्रोत्पत्ति महाभारत में कुन्ती के देवपुत्रों की उत्पत्ति के समकक्ष है। सम्भवतः सुदर्शना के पति का नाम कुन्ति भोज उपर्युक्त तथ्य का व्यञ्जना-द्वार से स्पष्टीकरण करने के लिए है।

अर्धरात्र में अविमारक अन्त:पुर में प्रविष्ट हो जाता है। उसके लिए अन्तःपुर का द्वार खुला छोड़ा गया था। कुरंगी अर्धसुप्त है। नलिनिका जाग रही है। वह अविमारक का स्वागत करती है। सोते समय कुरंगी नलिनिका का आलिंगन करना चाहती है। नलिनिका इस कार्य के लिए अविमारक को अपने स्थान पर नियोजित करती है।

एक वर्ष तक अविमारक कुरंगी के अन्तःपुर में उसके प्रणयपाश में आबद्ध रहा। तब राजा को इस गान्धर्व विवाह की सूचना मिली। अविमारक अन्त:पुर से बच निकला। नायक-नायिका सन्तप्त हैं। नायक दावाग्नि में या पर्वतशृङ्ग से गिर कर प्राण-विसर्जन करना चाहता है। अन्त में मलय-पर्वत-शिखर पर सपत्नीक विद्याधर से उसकी भेंट होती है, जिसने अपनी विहार-स्थली-रूप में समग्र भारत का एकीकरण दिवसमात्र में किया है——

प्राक् सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातुं पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान् मध्याह्ननिद्रासुखान्॥ ४.१०

विद्याधर ने अपनी विद्या से जान लिया कि अविमारक कौन है और किस प्रयोजन से वहाँ पहुँचा है। वह सहानुभूतिपूर्वक अविमारक को अपनी अँगूठी देता है, जिसे बायें हाथ में धारण करने वाला मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष रहता है, किन्तु दाहिने हाथ में धारण करने से अदृश्य हो जाता है। वह जिस किसी को छूता है, वह भी अदृश्य हो जाता है। विद्याधर ने उसे अपना शक्तिशाली खड्ग भी दिया। अविमारक से सदा के लिए उसकी मैत्री हो गई।

उस अँगूठी के प्रभाव से अदृश्य होकर अविमारक और विदूषक कुरङ्गी के अन्त.पुर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे देखते हैं कि कुरंगी उत्तरीय से अपने को बाँधकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत है। अविमारक उसे बचाता है। इस प्रकार उनका पुनः संगम होता है।

शाप का वर्ष समाप्त हो जाने पर सौवीरराज प्रकट होते हैं। उनके मन्त्रियों ने कुन्तिभोज के पास पत्र भेजा था कि सौवीरराज सकुटुम्ब आपके नगर में हैं। कुन्तिभोज का मन्त्री भूतिक सौवीरराज को ढूँढ़ निकालता है। इधर नारद आकर उन सब को अँगूठी की माया से छिपे अविमारक का आदिकाल से सारा वृत्तान्त बताते हैं।[1]

---

१. कीथ ने भ्रान्तिवशात् लिखा है कि अविमारक और कुरंगी नारद के घर पर मिलते हैं। संस्कृत ड्रामा पृष्ठ १२६।

अन्त में वे कहते हैं कि अविमारक ने कुन्तिभोज की कन्या से गान्धर्व विवाह कर लिया। नारद ने बताया--

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ॥ ६.१४

अविमारक का कथानक महाभारतीय या रामायणीय वातावरण में पल्लवित किया गया है, जिसमें देवता और विद्याधरों का मानवों से साहचर्य अनहोनी घटना नहीं थी। इस नाटक में नायक स्वयमेव महाशक्तिमान् और कर्मण्य होने के कारण अपनी बाधाओं को दूर कर अभीष्ट की प्राप्ति करता है।

अविमारक की कथा, जैसा नाटक के लिए अपेक्षित है, पूर्णतः कविकल्पित नहीं है। सम्भवतः भास को यह कथा गुणाढ्य के बड्ढकहाओ से मिली हो अथवा लोकप्रचलित कथातरंगिणी से लेकर भास ने इसे सँवारा हो।

समीक्षा

अविमारक छः अङ्कों का नाटक है। इसको प्रकरण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें नायक राजकुमार है और प्रकरण का नायक विप्र, वणिक या अमात्यादि होना चाहिए।

भास को महती रुचि थी पाठकों के सामने ऐसे पात्र प्रस्तुत करने में, जो कुछ लोगों के लिए या सबके लिए अपरिचित हों। अविमारक ऐसे ही पात्रों में से एक है। नाटक के प्रथम अंक तक तो प्रेक्षक भी अविमारक के विषय में कोरी ऊहा-पोह करते हैं। द्वितीय अंक में विदूषक से प्रेक्षकों को ज्ञात होता है कि राजकुमार अविमारक ऋषिशाप के कारण अन्त्यज बना हुआ है। इससे नायक के विषय में उनकी जिज्ञासा प्रबलतर हो जाती है। चौथे अंक में विद्याधर के संवाद से प्रेक्षकों को अविमारक का सच्चा इतिहास और परिचय मिलता है। अभी तक नायिका कुरंगी और उसके परि-वार के लोग नायक के विषय में प्रायः विमूढ हैं। अविमारक का रहस्य अन्तिम अंक में सर्वविदित होता है, जब नारद स्वयं आकर अविमारक का पूरा वृत्तान्त नायक और नायिका के परिवार के समक्ष प्रकट करते हैं।[1]

अविमारक की कथावस्तु अत्यन्त जटिल और सुविस्तृत है नायिका को प्राप्त करने के लिए लुकाछिपी प्रायः रूपकों में मिलती है, किन्तु अपने पौरुष से

---

१. यह प्रवृत्ति परवर्ती रूपकों में प्रायशः दिखलाई पड़ती है। कालिदास का दुष्यन्त कुछ समय तक अपने को अविदित रखता है। मालविका का परिचय भी नाटक के अन्त में मिलता है कि वह राजकुमारी है। रत्नावली नाटिका की नायिका भी पहेली बनी रहती है। प्रियदर्शिका में नायिका आरण्यका बनकर अपरिचित रहती है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी अन्त तक अज्ञात रहती है। भास इस प्रवृत्ति के पुरस्कर्ता हैं।

नायिका की प्राप्ति की कथा अविमारक की निजी विशेषता है, जो परवर्ती युग में कालिदास के द्वारा विक्रमोर्वशीय में अनुवर्तित है ।

गान्धर्व विवाह के पश्चात् नायक और नायिका का वियोग होने पर एक दूसरे के लिए सन्तप्त होना चित्रित करके विप्रलम्भ शृङ्गार की रसनिर्झरिणी प्रवाहित करने की योजना अविमारक में पर्याप्त रूप से सफल है ।[१]

नायक का पत्नी-वियोग में आत्महत्या करने का प्रयास भारतीय साहित्य में एक अनहोनी सी संघटना है । नायिका ही वियोग में अधिक सन्तप्त होती है—इस लोकोक्ति को मिथ्या सिद्ध करने के लिए भास ने अपने नाटकों में अनेक स्थलों पर सफल प्रयास किया है । स्वप्नवासवदत्त में उदयन इसी कोटि का नायक है । अविमारक तो अग्नि में जल मरने के लिए कूद पड़ता है और पर्वत-शिखर से नीचे कूद कर प्राण देना चाहता है ।[२]

वियोगिनी नायिका का प्राण देने के लिए समुत्सुक होना साधारण बात है । परवर्ती युग में संस्कृत के अनेक रूपकों में नायिका का ऐसा प्रयास सम्भवतः अविमारक के आदर्श पर कल्पित है ।[३]

कथावस्तु के विकास में यद्यपि विदूषक का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, फिर भी विदूषक की परिहास-वृत्ति से नाटक को रञ्जित करने के लिए कथावस्तु में कुछ नये तत्त्वों का समावेश किया गया है । यथा—अंगूठी में यह शक्ति बताना कि उसके पहनने वाले से जिसका स्पर्श रहेगा, वह भी अदृश्य रहेगा—यह बात केवल इसीलिए कही गई है कि नायक के साथ विदूषक भी अदृश्य हो कर कुरंगी के अन्तःपुर में प्रवेश करे ।

---

१. गान्धर्व विवाह का नाटकोचित उत्कर्ष अभिज्ञानशाकुन्तल में है । कालिदास ने इसमें शकुन्तला और दुष्यन्त की वियोगावस्था का जो चित्र उपस्थित किया है, उसका आधार कुरंगी और अविमारक का भासकृत वियोग-वर्णन प्रतीत होता है ।

२. नायक का वियोग में आत्महत्या करने का प्रयास अनङ्गहर्ष के तापसवत्सराज में मिलता है । यह प्रकरण अविमारक के आदर्श पर कल्पित है । ऋग्वेद में पुरूरवा का आत्महत्या करने का विचार १०.६५ में मिलता है ।

३. हर्ष की रत्नावली और नागानन्द की नायिकायें आत्महत्या करने पर उतारू हैं । उन्हें नायक आकर बचाते हैं । प्रियदर्शिका की नायिका आरण्यका भी कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में विष खाकर प्राण देना चाहती है । ये सभी आख्यान-बन्ध अविमारक के आधार पर कल्पित हैं ।

विदूषक के इसी महत्त्व को प्रासङ्गिक बताने के लिए अविमारक से विदूषक के विषय में कहलाया गया है[1]—

गोष्ठीषु हासः समरेषु योधः शोके गुरुः साहसिकः परेषु ।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ।। ४.२६

कथावस्तु के विन्यास में वर्णनाधिक्य के कारण कहीं-कहीं अवरोध से प्रतीत होते हैं । वास्तव में रूपक में ऐसे वर्णन या इतिवृत्तात्मक आख्यान हेय हैं, जो रूपक की कथावस्तु के विकास में योग नहीं देते । ऐसा लगता है कि भास कहीं-कहीं भूल जाते हैं कि वे रूपक का प्रणयन कर रहे हैं । जैसे, महाकाव्यों में साङ्गोपाङ्ग वर्णन आख्यान की उपेक्षा करते हुए सँजोये जाते हैं, वैसे ही अविमारकादि अनेक रूपकों में भी मिलते हैं । अविमारक के तीसरे अङ्क में जब नायक अन्तःपुर की भित्ति पर आरोहण करता है तो वह राजकुल की श्री का वर्णन करने लगता है । ऐसा लगता है कि इस नाटक को भास ने अपने वर्णनों के द्वारा तत्कालीन संस्कृति का कोश-सा बना दिया है, यह नाट्यकला की दृष्टि से ठीक नहीं है ।

चतुर्थ अङ्क में विद्याधर ने कहा है—

कार्यान्तरेषु पुनरप्यहमस्मि पार्श्वे ।। ४.१८

यह वक्तव्य अनावश्यक है, क्योंकि विद्याधर फिर नाटक में कहीं नहीं आता । अभिनय की दृष्टि से अविमारक में मायात्मक और अलौकिक कार्यव्यापार व्यवहारिक नहीं हैं । इस नाटक में ऐसे कामों की अधिकता है । अग्नि में प्रवेश करना और न जलना ऐसा ही अलौकिक व्यापार है । विद्याधर की दी हुई अँगूठी तो इन्द्रजाल रचती है । उसके पहनते ही अदृश्य होना कहाँ तक रंगमंच पर अभिनेय हो सकता है ? शाप का प्रभाव भी अलौकिक कार्यव्यापार है । ऐसा लगता है कि अन्य कई कारणों से भी अविमारक के अनक स्थल अभिनेय नहीं हैं । अविमारक के कथाविन्यास में यह अनुचित सा प्रतीत होता है कि कुरंगी के गान्धर्व विवाह की चर्चा सुनकर भी इसके पिता जयवर्मा से उसका विवाह करने को उद्यत हैं ।

अविमारक में पात्रों की संख्या बहुत बड़ी है । राजकुल से सम्बद्ध कथानक में पात्राधिक्य होना स्वाभाविक भी है । इसके पात्र समाज के सभी वर्गों से लिए गये हैं,

---

१. ऐसे विदूषक के विषय में डा० पुसाल्कर का कहना निराधार प्रतीत होता है कि—
It may be that Sakara is the exaggerated development of this braggart Santusta. Bhasa—A Study p. 239.

साहित्य दर्पण के अनुसार शकार है—

मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः ।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्त. ।। ३.४४

साथ ही कुछ पात्र दिव्य कोटि के भी हैं। नायक स्वयं अग्निदेव का पुत्र है। ऐसा लगता है कि भास नारद को कलहप्रिय बताना कहीं भूलते ही नहीं। अविमारक में नारद का परिचय कलहप्रिय विशेषण कहकर देना सर्वथा अयोग्य है, क्योंकि उन्होंने कलह का कोई काम नहीं किया है।

अविमारक में प्रायः आद्यन्त शृंगार रस की धारा प्रवाहित है। शृंगार का विस्तार करने पर भी कवि ने केवल शृंगारात्मक भावों का चित्रण किया है अनुभावों का नहीं। यही शृंगार की श्रेष्ठ मर्यादा है, जिसके बाँध को भास ने कहीं टूटने नहीं दिया है। शृङ्गारोचित सौन्दर्य का परिचय कवि उसके प्रभाव से देता है, न कि नख-शिख वर्णन द्वारा। रसोचित वर्णनों की परम्परा भास ने महाकाव्यस्तर पर निर्मित की है। उनके द्वारा वर्णित अन्धकार को नाव से पार करना है।

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
तमसि दशदिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥ ३.४

भास को मेघों से अतिशय प्रीति थी। उनके मेघ हैं——

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रिया जम्भका वज्रभृद्गृष्टयो
भगणयवनिकास्तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूता नभोमार्गरूढक्षुपाः।
मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपाला गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिलभैक्षहारा रवीन्द्वर्गला देवयन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः ॥ ६.५

मेघमाला की लम्बायमान सरणी के वर्णन के लिए दीर्घ चरणों का पद्य सुषभ है। विशेषतः आ की आनुप्रासिक अनुवृत्ति से छन्द की गति संगीतमयी है।

भास का पर्वत विद्याधरों का आतिथ्य करने में समर्थ है। यह है कवि दृष्टि——

अयं पर्वतः समर्थः इवास्माकं मुहूर्तमातिथ्यं कर्तुम्।

कवि की कल्पनायें विविध अलङ्कारों का सहारा लेकर प्रस्फुटित हुई हैं। यथा—कुरंगी का वर्णन है——

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः।
विहाय श्रीः कृष्णं जलशयनसुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति ॥ २.३

इसमें सन्देहालङ्कार की छटा है। आगे लिखे पद्य में दृष्टान्त अलङ्कार का चमत्कार है——

कान्तासमीपमुपगम्य मनोऽभिलाषाद्-
धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का ।
संसक्तनालगतकण्टकभीतचेता-
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति ।। ३.१५

श्लेष के द्वारा भावी घटना की प्रवृत्तियों की व्यञ्जना की गई है। यथा, प्रथम अङ्क में राजा कहता है—**अथ केन सनाथीकृता कुरंगी ।**

इसमें सनाथीकृता का श्लेष द्वारा अर्थ है पति रूप में अलंकृत करना। इससे व्यंग्य है कि कुरंगी का रक्षक उसका पति बने। भास गद्य की अपेक्षा पद्य के विशेष प्रेमी प्रतीत होते हैं कहीं-कहीं गद्योचित स्थलों को भी पद्य में लिखा गया है। यथा—

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे
पूर्वं पौरुषामाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ।।६.१४

भावी घटनाक्रम की समीचीनता और उनकी सूचना नेपथ्य से अनेक स्थलों पर कराई गई है। यथा नलिनिका से विलासिनी पूछती है कि कुरंगी का (गान्धर्व) विवाह कब होगा ? तभी नेपथ्य से सूचना मिलती है—**अद्य ।**

कभी-कभी ज्योंही किसी पात्र की चर्चा हुई कि अप्रत्याशित रूप से उस पात्र को उपस्थित करके दर्शकों को चकित कर दिया जाता है। यथा—नलिनिका अपने आप से पूछती है—राजकुमार का क्या वृत्तान्त है ? तभी अविमारक पता नहीं, कहाँ से उपस्थित होकर कहता है—**अयं मे वृत्तान्तः ।**

कुछ परिस्थितियाँ कल्पित करके पात्रों को इस प्रकार गढ़ना कि उनके परस्पर सम्पर्क में आने पर एक दूसरे को जानता हो, किन्तु दूसरा उसको नहीं जानता हो—यह भास का साधारण नाटकीय कौशल है। अविमारक का सारा खेल ऐसा ही है। वह सभी पात्रों को उनके वास्तविक रूप में जानता है, किन्तु उसे राजधानी में नायिका पक्ष का कोई भी नहीं पहचानता। उसकी नायिका भी उसे नहीं जानती और वर्षों उससे प्रेम करती है। इस प्रवृत्ति का सर्वोपरि सन्निकर्ष उस स्थल पर है, जब नायिका उससे आलिङ्गन करती है, किन्तु वह समझ रही है कि मेरी सखी नलिनिका मेरा आलिंगन कर रही है।

एकोक्ति (Solilquy)

अविमारक में कलात्मक एकोक्तियों का अनुपम सन्निधान है, जो संस्कृत नाट्य साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रमुख एकोक्तियाँ हैं द्वितीय अङ्क में प्रवेशक के पश्चात् नायक द्वारा नायिका के सौन्दर्य और उसके प्रति अपनी मानसिक चिन्ता व्यक्त करना तथा चतुर्थ अङ्क में प्रवेशक के पश्चात् नायक का नायिका से वियुक्त होने पर अपने मानसिक औत्सुक्य, प्राकृतिक सन्तापन और मरणोद्यम की चर्चा करना।

उपजीव्यता

अविमारक में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो परवर्ती रूपकों के समान तत्त्वों के उद्भावक माने जा सकते हैं। अधोलिखित तालिका से यह समानतत्त्वानुसन्धान विज्ञेय है—

अविमारक	**अभिज्ञानशाकुन्तल**
१. नायक अन्यत्र पला है। उसका कुलशील आदि नायिका नहीं जानती। नायिका से मिलने पर प्रथम दृष्टि में प्रणयोत्कण्ठा प्रबलतर हो जाती है।	१. नायिका अन्यत्र पली है। नायक को उसके कुलशील का ज्ञान नहीं है। प्रथम मिलन में नायक और नायिका प्रेमपाश में आबद्ध हैं।
२. नायक ऋषि-शापाभिभूत है।	२. नायिका ऋषि-शापाभिभूत है।
३. गान्धर्व-विवाह के पश्चात् नायक और नायिका का वियोग होता है।	३. गान्धर्व विवाह के पश्चात् नायक-नायिका वियुक्त होते हैं।
४. नायिका मरना चाहती है क्योंकि पति का वियोग असह्य है।	४. नायिका पति के द्वारा ठुकराये जाने पर कहती है—**भगवति वसुधे देहि मे विवरम्**।[1]
५. चेटियाँ और नायक छिपे रह कर क्रमशः नायक और नायिका के मनोभाव जानने में व्यापृत हैं।[2]	५. दुष्यन्त और सानुमती छिप कर क्रमशः नायिका और नायक के मनोभाव जानते हैं।
	रत्नावली
१. नायक का वियोग असह्य होने पर नायिका फाँसी लगाती है।	१. नायक का वियोग असह्य होने पर नायिका फाँसी लगाती है।
२. सूर्यास्त बता कर द्वितीय अङ्क का अन्त कर दिया गया है।[3]	२. सूर्यास्त बताकर प्रथमाङ्क समाप्त कर दिया गया है।
	तापसवत्सराज
नायक आत्महत्या करना चाहता है।	नायक आत्महत्या करना चाहता है।

---

१. उत्तर रामचरित में सीता कहती हैं—णेदु मं अत्तणो अंगेषु विलअं अम्बा। सप्तम अंक में।

२. कुन्दमाला में तिलोत्तमा छिप कर राम का सीता वियोग में मनोभाव जानना चाहती है।

३. अङ्कान्त का यह विधान परवर्ती युग में प्रायः सभी नाटकों में अपनाया गया है।

अविमारक और कालिदास की रचनाओं में अनेक स्थलों पर भाव और विचार-सरणि की समता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. अविमारक में नायक के विषय में कहा गया है—

दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः शूरोऽपि दाक्षिण्यवान्, सुकुमारोऽपि बलवान्। प्रथमाङ्क में कालिदास के दिलीप का वैशिष्ट्य है—

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।। रघुवंश १.२२

२. राजकर्म के दुःख की अनुभूतियों का राजा वर्णन करता है—

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या
प्रच्छाद्यौ रागदोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः।। अवि० १.१२

अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त कहता है—

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।। ५.६

३. अविमारक में नायक नायिका से प्रणय निवेदन करता है—

किंवा प्रलप्य बहुधा शरणागतोऽस्मि

प्रायः नायिका की समान परिस्थितियों में कुमारसम्भव में शिव पार्वती से कहते हैं—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः।। ५.८६

नायक के मुख से नायिका के उन्मादक सौन्दर्य का वर्णन भी आदर्श रूप में भास ने अविमारक में प्रस्तुत किया है, जो परवर्ती नाटककारों के लिए उपजीव्य सा बन गया है। एक उपजीव्य पद्य है—

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः।
विहाय श्रीः कृष्णं जलशयन-सुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति।। २.३

इस पद्य की प्रतिध्वनि सन्देह अलंकार का आश्रय लेकर नायिका का वर्णन करने वाले कालिदास, हर्ष आदि की रचनाओं में उल्लेखनीय है। नायक और नायिका

का पूर्वराग अविमारक में पहली बार इस रूप में वर्णित है, जो परवर्ती युग के कवियों का आदर्श बना है ।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि अविमारक कालिदासादि अनेक नाटककारों के लिए वस्तुतः उपजीव्य रहा है । पात्रों को प्रच्छन्न रूप में रखने की जो प्रवृत्ति भास ने चलाई और चरम शिखर तक विकसित की, वह अनेक परवर्ती रूपकों में अपनाई गई । नाट्य शिल्प की इस एकतानता से भी भास के अविमारक की लम्बी छाया प्रतीयमान है ।

भास ने अविमारक में नाट्यशास्त्र के कुछ नियमों का उल्लंघन किया है । रङ्गमञ्च पर आलिंगनादि का अभिनय नहीं होना चाहिए । अविमारक ने रंगमंच पर नायिका कुरंगी का आलिङ्गन किया है, यद्यपि यह रात्रिकालीन दृश्य है ।

प्रतिमा

प्रतिमा-नाटक में राम की कथा अभिषेक की सज्जा होने पर कैकेयी के वर माँगने से आरम्भ होती है और उनके लङ्कायुद्ध के पश्चात् अयोध्या में लौटने पर अभिषेक तक चलती है। परवर्ती रूपकों का उपजीव्य होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है ।

कथानक

राम के अभिषेक की सामग्री इकट्ठी हो चुकी है । सीता अवदातिका नामक चेटी के हाथ में वल्कल देखती है और उसे परिहास में पहन लेती है । उसी समय सीता को किसी चेटी से ज्ञात होता है कि राम का अभिषेक होने वाला है। सहसा अभिषेक वाद्य बजना रुक जाता है । फिर राम आकर सीता से मिलते हैं और बताते हैं कि महाराज ने मेरे न चाहने पर भी मेरे अभिषेक की विधि आरम्भ की । उस समय—

> **शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके**
> **छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।**
> **सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे**
> **राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ।। १.७**

राम सीता को वल्कल पहने देखकर कहते हैं तुम अर्धाङ्गिनी हो । तुमने वल्कल क्या पहना, मैंने पहन लिया । तभी राम सुनते हैं कि महाराज की रक्षा करें । कैकेयी के कारण वे रक्षणीय हैं । राम कहते हैं—**तेन उदर्केण गुणेनात्र**

---

१. अविमारक के द्वितीय अंङ्क में नायक और नायिका की पूर्वरागावस्था वर्णित है । नायिका का कामसन्ताप दूर करने के लिए पुष्पादि का उपयोग पञ्चम अंक में है ।

भवितव्यम् ।[1] अर्थात् इसका परिणाम उत्तम होना चाहिए। राम ने कैकेयी के राज्य माँगने को सर्वथा उचित बताया। राम का कहना है.—

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १·१५

दशरथ मूर्च्छित हैं। लक्ष्मण हाथ में धनुष लिए हुए आ धमकते हैं और राम से कहते हैं कि संसार को युवतिरहित करने का मेरा निश्चय है, क्योंकि उस स्त्री कैकेयी ने आपका १४ वर्षों का वनवास माँगा है। राम इसे मङ्गल बता कर सीता से उनको पहले से ही दिया हुआ वल्कल माँग कर पहन लेते हैं। सीता भी राम के न चाहने पर भी लक्ष्मण का समर्थन पाकर बन जाने के लिए प्रस्तुत हैं। लक्ष्मण भी राम के न चाहने पर भी सीता का समर्थन पाकर वन जाने के लिए राम के लिए दिये हुए वल्कल से आधा भाग ग्रहण कर लेते हैं। तीनों वनवास के लिए चल देते हैं। यह समाचार मिलने पर भी कि दशरथ उन्हें देखने के लिए इधर ही आ रहे हैं, वे रुकते नहीं।

सुमन्त्र राम आदि को वन में छोड़ने के पश्चात् लौट कर दशरथ से मिलता है। दशरथ कहते हैं कि अरण्य में अनेक विपत्तियाँ होती हैं। सुमन्त्र ने कहा कि राम शृंगवेरपुर में अयोध्या की ओर मुख करके आपको कुछ सन्देश कहना चाहते थे, किन्तु वाष्पस्तंभित कण्ठ होने से विना कुछ कहे ही चले गये। यह सुनकर दशरथ घोर मोह में विलीन हो गये। मरण के थोड़ा पहले उनको पितर दिखाई पड़ते हैं।

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् प्रतिमागृह में दशरथ की प्रतिमा स्थापित कर दी गई। उसे देखने के लिए सारा अन्तःपुर जाने वाला है। उसी समय भरत चिरकाल तक मामा के घर रहने के पश्चात् उधर से लौटते हैं। उन्हें अयोध्या के सूत ने बताया है कि महाराज अस्वस्थ हैं। वह जानते हुए भी उन्हें दुःखी करने वाले विपत्ति का समाचार नहीं देता। भरत को कोई भट सूचना देता है कि आप एक दण्ड के पश्चात् रोहिणी नक्षत्र में नगर में प्रवेश करें। तदनुसार भरत निकटवर्ती देवकुल में विश्राम करने के लिए पहुँचते हैं। वहाँ देवकुलिक से पूछने पर उन्हें ज्ञात होता है कि ये मूर्तियाँ इक्ष्वाकु-वंशी मृतराजा—दिलीप, रघु, अज और दशरथ की हैं। दशरथ की मृत्यु और रामादि का वनगमन सुनकर भरत वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। तभी वहाँ भरत की मातायें सुमन्त्र के साथ आईं। देवकुलिक ने उन्हें बताया कि मूर्ति के समीप मूर्छित होकर भरत पड़े हैं। भरत ने तीनों माताओं का अभिवादन किया। भरत ने कैकेयी को खोटीखरी

---

१. इस नाटक के अनुसार राम का यह वाक्य सर्वथा सत्य है। राम का सर्वोच्च कल्याण इसी बात में था कि वे वन चले गये, अन्यथा राम की मृत्यु दशरथ की मृत्यु का कारण बनती। यही श्रवण की हत्या के कारण उसके पिता द्वारा दशरथ को दिये गये शाप का तात्पर्य था।

सुनाई। कैकेयी ने कहा—मैंने महाराज के सत्य वचन की रक्षा करते हुए यह सब किया है। भरत के बहुत ऊँच-नीच कहने पर कैकेयी ने कहा कि विशेष विवरण देश-काल समुचित होने पर बताऊँगी।[१]

भरत ने अभिषेक नहीं कराया। वे राम से मिलने के लिए अभिषेक की सामग्री के साथ तपोवन चले जाते हैं। साथ में सुमन्त्र और सारथि हैं। सुमन्त्र ने बताया कि रामादि इस आश्रम में हैं। भरत ने आश्रमद्वार पर निवेदन किया—

निर्घृणः कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ४·५

भरत रामादि को पहचानते नहीं थे। उनके द्वारा भेजने पर शत्रुघ्न उनके विषय में सोचते हैं। क्या यह राम हैं?

नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ ४.८

तभी सुमन्त्र से लक्ष्मण की बात होने पर भरत ने उन्हें पहचाना। पर लक्ष्मण को सुमन्त्र से पूछना पड़ा कि ये कौन हैं। भरत राम से मिलते हैं और वन में राम के साथ रहने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राम ने कहा कि यह अनुचित होगा। अन्त में भरत इस बात पर मान जाते हैं कि राम की चरण पादुका उन्हें मिल जाय और १४ वर्ष बीतने पर राम राजा बनें। राम, लक्ष्मण और सीता तीनों भरत को आश्रमद्वार तक छोड़ आते हैं।

राम को पिता का वार्षिक श्राद्ध करना है। उसी समय सीता का हरण करने के लिए परिव्राजक वेषधारी रावण वहाँ आता है। राम के पूछने पर रावण बताता है कि हिमालय के सातवें शृङ्ग पर काञ्चनपार्श्व नामक मृग रहते हैं। उनसे श्राद्ध में पितृतर्पण होता है। राम हिमालय पर जाने को प्रस्तुत हैं। रावण कहता है—यह देखें-हिमालय ने आपके लिए काञ्चनपार्श्व भेज ही दिया। राम उसके पीछे चलते बने और सीता को आदेश दे गये कि अतिथि का सत्कार करें। रावण माया का रूप हटाकर स्वरूप धारण करके घोषणा करता है—

बलादेष दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ ५.२१

तभी सीता की रक्षा के लिए जटायु रावण पर आक्रमण करता है। रावण उसे घोर युद्ध में मार कर यमलोक भेजता है। इसे दो वृद्ध तापस देखते हैं और राम से कहने के लिए चल पड़ते हैं।

---

१. भरत की यह कथा 'पताका' वृत्त के अन्तर्गत आती है। भास पताका रचना के लिए विख्यात हैं।

सुमन्त्र जनस्थान से राम का वृत्त जान कर लौटे हैं। वे भरत से बताते हैं कि राम जनस्थान से किष्किन्धा गये। वहाँ उन्होंने अपने ही समान राज्यभ्रंश और पत्नी वियोग से सन्तप्त सुग्रीव का दुःख दूर कर दिया है। उसी समय भरत कैकेयी के पास जाकर कहते हैं--

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ।। ६.१३

कैकेयी ने रहस्य की बात बताई कि महाराज को शाप था कि पुत्र-शोक से मरेंगे। इसीलिए अपने को अपराधी बनाकर भी मैंने राम को वन में भेजा, राज्य के लोभ से नहीं। पुत्र-प्रवास के बिना मुनि का शाप समाप्त नहीं होता। भरत के पूछने पर कि १४ वर्ष का वनवास क्यों दिया ? कैकेयी ने बताया कि १४ दिन कहना चाहती थी, मुँह से १४ वर्ष निकल गया। भरत ने कहा--

दिष्ट्यानपराद्धात्र भवती। अम्ब यदि भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्र भवती, तत् सर्वं मर्षितव्यम्। अम्ब अभिवादये।

भरत रावण के विरोध में राम की सहायता करने के लिए माताओं और वसिष्ठादि के साथ ससैन्य चल देते हैं। इधर राम रावण-विजय के पश्चात् विमान द्वारा जनस्थान पहुँच गये हैं, जहाँ सीता के पुत्रीकृत वृक्षक थे। राम सीता के समक्ष पहले की सब स्मृतियों का नवीकरण करते हैं। शत्रुघ्न बताते हैं--

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदशतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ।।[1] ७.९

प्रतिमा की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण की रामकथा से अनेक स्थलों पर नितान्त भिन्न नई दिशा में प्रवर्तमान है। कुछ प्रमुख परिवर्तन अधोलिखित तालिका में निर्दशित हैं--

प्रतिमा	रामायण
१. जब अभिषेक की कहीं चर्चा भी नहीं थी, अवदातिका नामक चेटी वल्कल लाती है, जिसे सीता विनोदवशात् पहन लेती हैं।	१. रामायण में यह वृत्त नहीं है। इसमें कैकेयी स्वयं चीर देती है।

---

१. इस दृश्य का वर्णन बहुत कुछ उत्तर-रामचरित में अनुहृत है।

२. राम का अभिषेक आधा हो चुका है। घट के जल से उनके सिर पर जल गिर रहा है। उस समय राजा ने इसे रोक दिया।	२. रामायण के अनुसार अभी अभिषेक की सज्जा हो रही है, तभी कैकेयी ने उनसे वर माँगा कि भरत राजा हों।
३. शत्रुघ्न ने अभिषेक का घट हाथ में ले रखा था।	३. रामायण के अनुसार विवाह के पश्चात् शत्रुघ्न भरत के साथ अपने मामा के घर थे।
४. भास के अनुसार भरत होश सँभालने पर अयोध्या में कभी रहे ही नहीं। उन्हें अयोध्यावासी रामादि कोई नहीं पहचानते और न वे ही किसी को पहचानते हैं।	४. रामायण के अनुसार विवाह के पूर्व चारों भाई साथ-साथ अयोध्या में थे। उन सबका साथ ही जनकपुर में विवाह हुआ था।
५. मन्थरा ने अभिषेक-विधि को बन्द कराने के लिए राजा के कान में कुछ कहा।	५. अभिषेक विधि आरम्भ होने के पूर्व ही कोपभवन में दशरथ के आने पर कैकेयी ने उनसे भरत का अभिषेक और राम का वनवास—दो वर माँगे।
६. सीता राम के साथ लक्ष्मण के वन में जाने का समर्थन करती हैं। इसी प्रकार भरत की माँग पूरा करने का समर्थन भी सीता करती है।	६. रामायण में इस विषय में सीता की चर्चा भी नहीं आती।
७. देवकुल के समीप भरत का रोका जाना, मृत राजाओं की प्रतिमा का देवकुल में स्थापित होना, वहीं पुजारी से दशरथ की मृत्यु का समाचार मिलना, कौसल्यादि का प्रतिमा दर्शन के लिए आना और उनका भरत को मूर्च्छित देखना और न पहचानना—यह सारा प्रकरण कल्पित है। उन्हें पुजारी से ज्ञात होता है कि ये भरत हैं। वहीं कैकेयी भरत से कहती है कि राम के वनवासादि के पीछे जो मेरी योजना है, वह समय आने पर बताऊँगी।	७. रामायण में यह सारा वृत्तान्त नहीं हैं।

८. भरत केवल सुमन्त्र के साथ राम से मिलने के लिए जाते हैं और जनस्थान में उनसे मिलकर उनकी पादुका प्राप्त करके वहीं उसका अभिषेक करते हैं। सुमन्त्र से भरत का परिचय रामादि प्राप्त करते हैं। इस प्रकरण में लक्ष्मण को भरत से बड़ा बताया गया है।

८. रामायण के अनुसार ससैन्य भरत चित्र-कूट में राम से मिलते हैं। पादुका के अभिषेक की चर्चा नहीं है। रामा-यण के अनुसार भरत से लक्ष्मण बड़े थे।

९. रावण सीता का हरण करने के लिए परिव्राजक-वेष में आकर राम और सीता से मिलता है। उस समय लक्ष्मण तीर्थयात्रा से लौटते हुए कुलपति का प्रत्युद्गमन करने गये हैं। राम को पितृश्राद्ध, के लिए सर्वोत्तम काञ्चन पार्श्वमृग बताकर उसे मारने के लिए राम के चले जाने पर रावण सीता का हरण करता है, जब सीता उसका आतिथ्य करने के लिए नियुक्त हैं।

९. रामायण के अनुसार रावण मारीच को स्वर्ण मृग बनाकर भेजता है, जिसे पकड़ने के लिए सीता के आग्रह करने पर राम चले जाते हैं। मारीच के राम के स्वर में आर्तनाद करने पर लक्ष्मण को भी सीता भेज देती हैं। उस समय रावण आकर सीता का हरण करता है।

१०. सीता का रावण द्वारा अपहरण दो वृद्ध तापस देखते हैं। वे समाचार देने के लिए राम के पास जाते हैं।

१०. रामायण में ऐसी कोई चर्चा नहीं है।

११. भरत ने राम का समाचार जानने के लिए सुमन्त्र को भेजा। वे जन-स्थान तक जाकर सब समाचार जानकर भरत से बताते हैं कि सीता का हरण हो चुका है। भरत आक्रोश-वशात् कैकेयी को खोटी-खरी सुनाने फिर पहुँचते हैं। तब कैकेयी के निर्देशानुसार सुमन्त्र भरत को दशरथ के शाप का वृत्तान्त सुनाते हैं, जिसके अनुसार दशरथ को पुत्र के वियोग में मरना ही था। कैकेयी ने कहा कि मैंने इसीलिए अपने को

११. रामायण में सुमन्त्र के जनस्थान जाने का या राम का सीता-हरण सम्बन्धी सन्देश लाने की कोई चर्चा नहीं है। यह सारा वृत्तान्त रामायण में इस रूप में नहीं मिलता।

अपराधी बनाकर राम को वन में भेजा। कैकेयी ने यह भी कहा कि वनवास १४ दिन का देना चाहती थी, किन्तु मुँह से संभ्रमवश १४ वर्ष निकल गया। भरत कैकेयी के विचार से सहमत हो जाते हैं कि सब कुछ ठीक हुआ है।

१२. भरत रावण के विरुद्ध राम की सहायता करने के लिए सपरिवार, सर्षि, ससैन्य जनस्थान पहुँचते हैं, जहाँ राम रावण को जीत कर पहले से ही आये हुए हैं। वहाँ राम का अभिषेक सम्पन्न होता है।

१२. ऐसा कोई प्रकरण रामायण में नहीं है। रामायण के अनुसार राम का अभिषेक अयोध्या में हुआ और भरत से उनकी भेंट नन्दिग्राम में हुई।

राम की कथा का यह रूप भास को कहाँ से मिला—यह कहना कठिन है। सम्भव है, नाटकीय उत्कर्ष के लिए कथानक में इस प्रकार का परिवर्तन भास की प्रतिभा का प्रतिभास हो, अथवा कोई ऐसा रामचरित-विषयक ग्रन्थ भास का उपजीव्य हो, जिसमें रघुवंश के राजाओं के वर्णन के साथ ही राम की कथा का यह रूप हो।

इस नाटक के कथानक में प्रतिमा और देवकुल का प्रकरण एक अभिनव संयोजन है, जिसका न केवल भास के रूपकों के तात्त्विक विश्लेषण में, अपितु अन्य कवियों के रूपकों के कथानुसन्धान में भी विशेष महत्त्व है।[1] वास्तव में इस नाटक में प्रतिमा और देवकुल का सारा प्रकरण नितान्त अनावश्यक है। इससे नाटकीय कथा शिल्प का सौष्ठव बढ़ा नहीं है, अपितु घटा है। तो फिर क्यों भास ने इसे स्थान दिया? ऐसा प्रतीत होता है कि भास को वास्तु, मूर्ति और चित्रकला का अतिशय चाव था। उनकी रमणीयता से काव्य की रमणीयता का समन्वयन करना, चाहे वक्रपथ से ही क्यों न हो, उनको अभीष्ट है। देवकुल की इस महिमा का पर्यालोचन करके सम्भवतः बाण ने भास की प्रशस्ति में लिखा—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

अर्थात् भास को देवकुल से प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, वैसे ही जैसे नाटकों से। इस प्रकरण में भास श्लेषार्थ के लिए पर्वत या गोपुर का द्योतक है।

---

१. मृच्छकटिक में भी अपेक्षित न होने पर द्वितीय अंक में देवकुल और प्रतिमा की चर्चा की गई है। कुन्दमाला में भी प्रतिमा है।

नाटक में जनस्थान को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह साभिप्राय है। (१) भरत राम से वनवास के थोड़े दिन पश्चात् मिलते हैं। ( ) सुमन्त्र राम से मिल कर उनका समाचार जानने के लिए जनस्थान में पहुँचते हैं। (३) रावण विजय के पश्चात् राम जनस्थान में पुनः आते हैं। गोदावरी द्वारा परिपूत इस प्रदेश को उत्तर भारत के लोगों के लिए भी तीर्थ बना देना कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है।

भरत को सर्वथा अपरिचित रखना और वारंवार पाठक या दर्शक को इस तथ्य का स्मरण कराते रहना—यह भी साभिप्राय है। भरत कैकेयी से पूछते हैं कि जब पुत्र-वियोग से दशरथ को मरना था तो मेरा वनवास क्यों नहीं माँगा ? कैकेयी ने कहा कि दशरथ से तुम्हारा संयोग ही कब रहा कि तुम्हारे वियोग में वे मरते ? यदि भरत को अपरिचित नहीं रखा जाता तो कैकेयी के चरित्र के श्वेतीकरण का उद्देश्य अन्यथा पूरा नहीं हो पाता। पात्रों को प्रच्छन्न रखना भास के लिए स्वाभाविक था। उन्होंने अपने कई रूपकों में पूर्णतः या आंशिक रूप से पात्रों को प्रच्छन्न हो रखा है।

भरत की राम से रूपगत सदृशता की वारंवार चर्चा की गई है। सीता तक भरत को देख कर उन्हें राम ही समझती हैं, यद्यपि उन्हें ज्ञात था कि भरत आये हुए हैं। भास के अनुसार महापुरूषों का चरित्र ही केवल आनुवंशिक नहीं होता, अपितु उनके रूप और स्वर भी समान होते हैं।[1] भरत का रूप अपने पूर्वजों की आकृति से तो मिलता ही है, साथ ही राम की आकृति से मिलता है। वे राम के प्रतिरूप हैं केवल शरीर से ही नहीं, अपितु चरित्र से भी। शरीर की समता चरित्र की समता के साथ प्रवर्तित है। यह सारा उपक्रम भरत के चारित्रिक उदात्तीकरण के लिए है। तभी तो राम ने उनके विषय में कहा है—

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ।। ४.२६

समीक्षा

राम का अभिषेक सात अङ्कों के इस प्रतिमा नाटक का फल है। इसके आदि मध्य और अन्त में अभिषेक-विधि दृष्टिगोचर होती है। आदि में अभिषेक आरम्भिक अवस्था में ही विघ्न-विहत होता है। मध्य में राम की पादुका का अभिषेक होता है।[2] अन्त में जनस्थान में राम का अभिषेक पूरा होता है। विचित्रता यह है कि नायक फल प्राप्ति की दिशा में तटस्थ है। वैसे ही जैसे कुमारसम्भव में शिव अपने विवाह के सम्बन्ध में तटस्थ हैं।

---

१. राम ने भरत की पुकार सुन कर कहा—

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ।। ४.६

२. भरतः अत्र (पादुकोपरि) अभिषेकजलमावर्जयितुमिच्छामि।

प्रतिमा में दशरथ की मृत्यु रंगमञ्च पर द्वितीय अङ्क के अन्त में दिखाई गई है। यह परवर्ती नाट्य-विधान के प्रतिकूल पड़ता है।

कथावस्तु के विन्यास में अप्रिय घटनाओं को उनसे प्रतिहत होने वाले व्यक्तियों को शनैः शनैः गौण विधि से बताया गया है। उदाहरण के लिए कुछ अप्रिय घटनायें हैं—(१) राम को सीता से कहना है कि मेरा अभिषेक रुक गया और मेरा वनवास होगा। (२) भरत को दशरथ की मृत्यु बतानी है। (३) भरत को सीता का अपहरण बताना है।[१] इसमें राम का वनगमन अत्यन्त मार्मिक विधि से उद्घाटित है। राम सीता से कहते हैं कि जब तुमने वल्कल पहन लिया तो मैंने ही पहन लिया, क्योंकि तुम अर्धाङ्गिनी जो ठहरी। फिर कुछ देर के पश्चात् लक्ष्मण आकर बताते हैं—

वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ १.२३

देवकुलिक तो भरत को पहेली बुझा रहा है, जब उसे बताना है कि तुम्हारे पिता मर गये। वह अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयं अजः के आगे बढ़ता ही नहीं कि चौथी मूर्ति मृत दशरथ की है। अप्रिय प्रसङ्गों को कहीं-कहीं अतिशय संक्षेप में कहा गया है।[१] यथा—

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महताकृतम्
सीतां मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ ६.११

कैकेयी का भरत से कहना कि राम का केवल चौदह दिन का वनवास चाहती थी, मुँह से १४ वर्ष निकल गया। यह समीचीन नहीं है। चौदह दिन के वनवास में तो दशरथ मरते ही नहीं। चौदह दिन से तो अधिक वे तभी राम से अलग रहे थे, जब विश्वामित्र उन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिए ले गये थे।

भरत से मिलने के पहले राम को कैसे ज्ञात हुआ कि राजा दशरथ मर गये। इस सम्बन्ध में भास मौन हैं। रामायण के अनुसार भरत के राम से मिलने पर ही उनको ज्ञात हुआ कि दशरथ मर चुके हैं।

कहीं-कहीं आख्यान की भावी प्रवृत्तियों की सूचना व्यञ्जनात्मक निर्देशों से दी गई है। अवदातिका से लेकर वल्कल पहन लेना प्रतिमा के प्रथम अंक में सीता के भावी वनवास का सूचक है। भरत राम से मिलने के लिए आने वाले हैं। उसके कुछ ही

---

१. प्रतिमा के ६.१० में 'तुल्यदुःखेन' पदों से सुमन्त्र सीता-हरण की सूचना व्यञ्जना द्वारा देता है। इस श्लोक में भरत को कम आघात पहुँचे, इस उद्देश्य से यह भी कहा गया है कि सुग्रीव की पत्नी हरी गई जो फिर मिल गई है। इसी प्रकार राम को भी सीता मिल कर रहेगी। स्वाभाविक है कि इस प्रकार कहने से भरत का आघात कम हो गया।

पहले राम सीता से कहते हैं--**मैथिलि, अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्तादच्छल्कवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्** । सुदूर भविष्य का सङ्केत भी कहीं-कहीं मिलता है। यथा दशरथ का कहना--**बहुदोषाण्यरण्यानि** इत्यादि से भविष्य में सीताहरण की आशंसा होती है।

प्रतिमा के घटनाक्रम की एक विप्रतिपत्ति है कि जिस दिन भरत राम से मिलकर लौटे, उसी दिन सीता का हरण होता है।[1] रामायण के अनुसार ऐसा नहीं हुआ और न काल-गणना की दृष्टि से ही यह ठीक प्रतीत होता है।

प्रतिमा के दूसरे अङ्क में दशरथ का विलाप नाट्योचित नहीं है। पहले तो इसका कोई महत्त्व कथा के विकास में है ही नहीं। यह तो महाकाव्यों के लिए ठीक है कि लम्बे-चौड़े विलापों का सन्निवेश हो। नाटक में तो एक-एक वाक्य के सम्बन्ध में यह विचारणीय रहना चाहिए कि उसके द्वारा कथा का विकास अनुबद्ध हो।

क्या भास का जनस्थान विन्ध्यवन में था? राम काञ्चनपार्श्व मृग लाने के लिए जनस्थान से हिमालय जाना चाहते हैं तो सीता से कहते हैं--

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।।[2] ५.११

ऐसा लगता है कि उस प्रकरण में भास ने कुछ भूल की है।

भास के कथावस्तु-सम्बन्धी शिल्प के कुछ तत्त्व प्रतिमा नाटक में स्पष्ट होते हैं। किसी पात्र को मूर्च्छित बताकर उसके प्रति अभीष्ट जन की सहानुभूति की अञ्जलि प्रदान करना भास की अभिनव योजना रही है। इस नाटक में भरत दशरथ की मृत्यु और राम का १४ वर्ष का वनवास सुनकर अचेत हैं। तभी उनकी मातायें आती हैं। देवकुलिक के शब्दों में--

हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ।।३.१२

मूर्ति का दृश्य उपस्थित करके कथा में उत्कर्ष उत्पन्न करना यह वस्तु-शिल्प की दूसरी विशेषता है, जो प्रतिमा में निदर्शित है। इस नाटक के अनुसार दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनकी मूर्ति का निर्माण किया गया है, जिसे देखकर भरत को उनकी मृत्यु का ज्ञान होने पर असह्य शोक और कैकेयी के प्रति क्षोभ होता है।

पात्रों को प्रच्छन्न रखने का कौशल भास की अपनी योजना है। उन्होंने कैकेयी के विश्वकल्याणात्मक स्वरूप को इस नाटक के छः अङ्कों तक प्रच्छन्न रखा। यह भास

---

१. यह पाँचवे अंक के प्रथम पद्य से सुस्पष्ट है।

२. यह पद्य अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क का आदर्श है। शाकुन्तल में नायिका आश्रम के वृक्षों और पशुओं से प्रस्थान के पूर्व अनुमति लेती है।

के वस्तु-शिल्प के उत्कर्ष का चरम विन्दु है। इसके अतिरिक्त रावण भी पाँचवें अङ्क में परिव्राजक रूप में प्रच्छन्न है। वह राम और सीता को पहचानता है किन्तु वे उसे नहीं पहचानते।

रूपसादृश्य, कथावस्तु-सम्बन्धी शिल्प का एक प्रमुख तत्त्व, इस नाटक में तीसरे और चौथे अङ्क में पुनः पुनः प्रतिभासित है। भरत का सादृश्य राम से और दशरथ दोनों से है। इसके द्वारा इनकी पहचान होती है, यद्यपि इसी सादृश्य के कारण लक्ष्मण और सीता इन्हें राम समझने का सन्देह करते हैं। भरत का दशरथादि से रूप-सादृश्य के अतिरिक्त स्वर-सादृश्य भी था। जैसा सीता और सुमन्त्र ने प्रमाणित किया है।

मरते समय किसी पुरुष को दिव्य दृश्य की प्रतीति करना भास का प्रिय विषय रहा है। इस नाटक में मरणासन्न दशरथ अपने पूर्वजों दिलीपादि को देखते हैं।

राम और रावण की बात करा देना संस्कृत के विरल कवियों के लिए ही सम्भव हो सका है।[१] प्रतिमा नाटक के पंचम अंक में यह बातचीत प्रतिनायक के वास्तविक स्वरूप में नहीं हुई। पात्रों को प्रच्छन्न रखने की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति भास की है, उसी के द्वारा यह सम्भव हो सका है।

प्रतिमा में प्राचीन भारत के महत्तम वीर नायक और प्रतिनायक हैं। नायक और नायिकादि का चरित लोकसंग्रह की दृष्टि से अतिशय उदात्त है। कवि ने अनेक स्थलों पर राम का चरित वाल्मीकि से कहीं अधिक ऊँचा प्रस्तुत किया है। भास का राम स्पष्ट कह सकता है—

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १.१५

कैकेयी के विषय में राम कहते हैं—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ १.१३

वे कैकेयी के द्वारा बनाई हुई अपनी वनवास-योजना को कल्याण के लिए मानते हैं और कहते हैं—

किमम्बायाः? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम्।

कैकेयी के चरित्र का श्वेतीकरण राम के मनोभावों से आरम्भ होता है और अन्त में कैकेयी जब सारा रहस्य खोल देती है कि राम का वनवास वसिष्ठादि मुनियों

---

१. रामायण में युद्धभूमि में राम ने रावण के अपकारों का विवरण उसके सामने प्रस्तुत किया है।

के परामर्श से सब के कल्याण के लिए आयोजित किया गया है तो भरत तक उससे क्षमा माँगते हैं कि जननि, तुम्हारा आत्मत्याग प्रशस्य है।

प्रतिमा में पात्रों के कौटुम्बिक सम्बन्धों के चारित्रिक आदर्श की स्थापना की गई है। अपने कुटुम्ब के लिए आत्मत्याग का आदर्श भास ने अपने अन्य रूपकों में भी प्रस्तुत किया है।

स्वप्नवासवदत्त में वासवदत्ता स्वयं दासी बनकर रहती है, जिससे उसके पति का पद्मावती के साथ विवाह होने पर अभ्युदय हो। कैकेयी अपने को लोकदृष्टि में १४ वर्षों तक अपराधिनी बनाकर रहती है, जिससे रामादि का कल्याण हो। उस कैकेयी की भर्त्सना दास-दासी और उसके पुत्र भी करते हैं, फिर प्रजा का क्या कहना! कैकेयी के चरित्र में आदि से अन्त तक समता है, किन्तु लोकदृष्टि में विषमता है। लक्ष्मण तो कैकेयी के द्वारा समुपस्थित विपत्तियों को देखकर राम से कहते हैं—

अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ।। १.१८

भरत कैकेयी को माता मानना ही नहीं चाहते—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसंक्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येष धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताप्यमाता ।।

उसी कैकेयी के चरित्र का उत्थान देखिये, जब वह राम से कहती है कि हम लोगों का बहुत दिनों से मनोरथ था कि आप का राज्याभिषेक हो।[1] इसी दिशा में वस्तुतः उसका प्रयास रहा है।

प्रतिमा में स्त्रियों की भूमिका केवल अन्तःपुरीय नहीं है। कैकेयी ने मन्त्रियों के परामर्श से लोक कल्याण के लिए राम का वनवास आदि जो काम कराये, वह सिद्ध करता है कि उनका कार्यक्षेत्र केवल गृहसीमा में संकुचित नहीं था। राजकुल की स्त्रियाँ देवकुल में मूर्तिदर्शन करने जाती हैं। सीता के परामर्श से राम लक्ष्मण को अपने साथ वनवास के समय ले जाते हैं। सीता राम को परामर्श देती हैं कि भरत की याचना पूरी करें।

भास ने अपने रूपकों में अनावश्यक रूप से भी पात्रों की संख्या बहुल कर दी है। प्रतिमा के छः अङ्कों में शत्रुघ्न पात्र नहीं है। सातवें में एक क्षण के लिए उन्हें पात्र बनाने की आवश्यकता नहीं थी, जब उनका कार्य पात्रवैशिष्टय-परक नहीं है।

---

१. कैकेयी के भावात्मक शरीर को कवि ने प्रच्छन्न रखा है। प्रायः भास भौतिक शरीर को अपरिचित रखते हैं। यहाँ भावशरीर को अपरिचित कर दिया है।

प्रतिमा नाटक में अङ्गीरस करुण है। इसका प्रगाढतम रूप दशरथ के विलाप में दिखलाई पड़ता है। यथा--

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥२.१८

भरत और राम की चरितावली धर्मवीर की निर्झरिणी प्रवाहित करती है। प्रतिमा में भावात्मक उत्थान-पतन का अनुबन्धन रोचक है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भरत के इस संगीतानुगतिक वक्तव्य में मिलता है--

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेशं च भाषां च सौमित्रिणा ॥ ३.३

दर्शक भरत के इस पद्य के तत्काल पश्चात् सूत के मुख से 'आत्मगतम्' सुनता है--

भोः कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न न निवेद्यते। कुतः

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ॥ ३.४

इसी प्रकार जब भरत माता कैकेयी से अतिशय रुष्ट हैं कि उसने राम को वन भेजा और वहाँ सीता का अपहरण हुआ तो वे कैकेयी से कहते हैं--

हन्त भोः सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥ ६.१४

तभी उनको कैकेयी की वनवास-योजना का रहस्य विदित होता है और वे कहते हैं--

दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती। अम्ब, यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम् । अम्ब, अभिवादये ।

राम के अभिषेक के अवसर पर तो भास ने भावों के उत्थान-पतन का अनूठा चित्रण एक ही पद्य में किया है। यथा--

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लंघिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ॥१.५॥

इसके पूर्वार्ध में बताया गया है कि अभिषेक की प्रक्रिया चल रही है और उत्तरार्ध में कहा गया है कि उसे रोक दिया गया।

पात्रों को प्रच्छन्न रख कर भावों का उत्थान-पतन प्रायः दिखाया गया है। अतिथिरूप में प्रच्छन्न रावण के प्रति सीता का भाव प्रकट रूप में रावण के प्रति पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है।

कवि की सूक्ष्म दृष्टि कहीं-कहीं एक ही श्लोक से सुप्रमाणित है। यथा--

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत्॥

इस पद्य में यद्यपि काव्यात्मकता का अभाव सा है, स्वभावोक्ति अलंकार इसमें है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि के परिवेशन के कारण यह अद्वितीय ही है।

रथवेग का वर्णन भास की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है यथा--

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति॥३.२

अर्थात् रथवेग के कारण वृक्ष भागते हुए प्रतीत होते हैं। नेमि के छिद्राव-काश में पृथ्वी वैसे ही घुसती हुई प्रतीत होती है, मानो आवर्तवती नदी हो, पहियों के अर दिखाई नहीं पड़ते और चक्के चलते हुए नहीं प्रतीत होते हैं। घोड़ों के द्वारा उठाई हुई धूलि रथ का पीछा नहीं कर पातीं।

भास को पद्य लिखने का चाव था। वे गद्योचित स्थलों को भी पद्यों में लिख देते थे। ऐसे सभी पद्यों में स्वभावोक्ति अलंकार है। प्रायः ऐसे पद्य कवि के सूक्ष्म दर्शन चित्रार्पण-शैली के परिचायक हैं। यथा--

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया॥५.२॥

इसमें अन्तिम पंक्ति सूक्ष्मदर्शियों के मस्तिष्क ही की उपज हो सकती है। ऐसे गद्योचित पद्य वृत्तात्मक चटुलता के नियोजक हैं, जिसमें अनेक बातों

का परिचय स्वल्पतम आयाम में छन्द के माध्यम से रोचक विधि से देना होता है।[1]

कवि की भाषा का बाह्य परिधान अनुप्रास-मण्डित है। यथा—

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः

इस पद्य में व्यञ्जनों का अनुप्रास है। स्वरों का अनुप्रास भी भास को प्रिय था। यथा—

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लंघिते ॥ १.५

इस पद्य के प्रत्येक पद में 'ए' का स्वर अनुप्रासित है।

शब्दालङ्कार के साथ अर्थालङ्कार का संयोजन भी कहीं-कहीं मिलता है। यथा

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मे मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥२.११

प्रतिमा नाटक में संक्षिप्ति भास की एक विशेषता है। यथा सीता कहती है—

यद्येवं न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम

अर्थात् अभिषेक का जल मुखोदक में परिणत हो जायेगा। यहाँ मुखोदक का अभिप्राय है 'रोते हुए राम का अश्रुमार्जन करने के लिए जल'। मुखोदक से इतना बड़ा अर्थ निकालना भास की शैली की विशेषता है। संक्षिप्ति का एक अन्य उदाहरण है—

वक्तव्यं किंचिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते।
किं कृतः प्रतिषेधोऽयं नियम-प्रभविष्णुता ॥ ३.७४

इस पद्य का अर्थ समझने के लिए पाठक को अपनी ओर से अनेक पद जोड़ने पड़ेंगे।

भास ने अपने अनेक नाटकों की भाँति प्रतिमा में भी संवादात्मक पद्यों का संयोजन किया है। ऐसे स्थलों में एक ही पद्य में अनेक वक्ताओं की बातें प्रश्नोत्तरसमाधान के रूप में होती हैं। यथा—

---

१. इस प्रवृत्ति का अनुत्तम परिचायक अधोलिखित श्लोक है—

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मंगलं स भगवान् वेद्यो वसिष्ठः स्थितः ॥ १.३

इसका अन्य उदाहरण है नागेन्द्रा यवसाभिलासविमुखाः आदि २.२

पितुर्मे को व्याधिः हृदयपरितापः खलु महान्
किमाहुस्तं वैद्याः न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।
किमाहारं भुंक्ते शयनमपि भूमौ निरशनः
किमाशास्याद् दैवं स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ।। ३.१

इस संवादात्मक पद्य के प्रत्येक चरण के आदि में एक प्रश्न है, जिसका उत्तर प्रश्न के ठीक पश्चात् दिया गया है ।

भास के रूपकों में समुदाचार प्रतिष्ठा की योजना का भव्यतम रूप प्रतिमा नाटक में मिलता है ।[1] समुदाचार शब्द का अनेकशः प्रयोग इस नाटक में हुआ है । यथा—

(१) तृतीय अंक में भरत कहते हैं—उपविश्योपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः ।

(२) तृतीय अंक में भरत कहते हैं—सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति भवान् सुमन्त्र एव ।

(३) तृतीय अंक में कौसल्या कहती हैं—सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ।

(४) पञ्चम अंक में सीता कहती हैं—आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः ।

(५) पंचम अंक में राम कहते हैं—यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि ।

(६) पंचम अंक में रावण कहता है—ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि ।

उपर्युक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि अभिजात लोगों के समुदाचार का पालन नितान्त आवश्यक था और भास अपने रूपक में प्रतिपद समुदाचार का निदर्शन करते हैं। प्रतिमा में कुटुम्बिजनों के साथ समुदाचार का आदर्श-निदर्शन भास का विशेष उद्देश्य रहा है । इसके कुछ उदाहरण नीचे लिखे हैं—(१) सुमन्त्र को 'दशरथ के सामने रामादि का नाम लेना है । उन्होंने कहा राम, लक्ष्मण और सीता । राजा ने कहा—यह तो अक्रम हो गया । तुम्हें राम सीता और लक्ष्मण कहना चाहिए । (२) भरत सुमन्त्र से कहते हैं कि आप मुझे माताओं का अभिवादन क्रम बतायें। (३) राम सीता से कहते हैं—भरत को देखने के लिए अपनी आँखों को विशालतर

---

१. वाल्मीकि ने समुदाचार शब्द का प्रयोग किया है—

नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्या सदा त्वयि । सुन्दर ६५.१७

बनाओ।[१] (४) राम लक्ष्मण से कहते हैं कि जाओ, सत्कार करके कुमार का शीघ्र प्रवेश कराओ, पर रुको—

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ।। ४.१३

अर्थात् जो भाव माता अपने पुत्र में रखकर उसका सम्मान करने के लिए जाती है उसी भाव से सीता स्वयं भरत को लेने के लिए जायें। इनके नेत्रों से प्रेमाश्रु की वर्षा भी होनी चाहिए। तदनुसार सीता भरत को लिवा लाने जाती हैं। सीता भरत से कहती हैं—आओ वत्स, भाइयों के मनोरथ को पूरा करो। राम भरत से मिलने पर कहते हैं—

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।। ४.१६

छाती फैलाओ, अपनी दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन करो, मुख ऊपर करो, विपत्ति से जले मेरे शरीर को आह्लादित करो। (५) भरत की नीचे लिखी उक्ति समुदाचार की पराकाष्ठा है—

यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप पादमूले ।। ४.२४

वास्तव में प्रतिमा एक कौटुम्बिक समुदाचार का नाटक है। इसमें भास ने दरसाया है कि कुटुम्ब के लोगों को कैसे रहना चाहिए। तभी तो भरत कहते हैं—

यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं
तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः ।। ४.२५ ।।

यही बड़े भाई के प्रति सद्भाव है। चौथे अंक में राम भरत से कहते हैं कि आप आज ही विजय के लिए अयोध्या लौट जायँ। तब सीता कहती हैं—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः। अर्थात् आज ही क्यों जायँ? भरत ने अपने व्यक्तित्व की सफलता का वर्णन किया है—

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयिता शीलान्वितोऽहं सुतः ।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयं गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ।। ४२१

भास का कलाप्रेम प्रतिमा से झलकता है। प्रतिमा की भूमिका भास ने राम कथा में जोड़ी है—यह इसका विशद प्रमाण है। उनकी कल्पित मूर्तियों की आलोचना भरत के मुख से परिचेय हैं—

---

१. चतुर्थ अंक में—मैथिलि भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।

अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् ।

इसी प्रकार कवि की प्रशंसा देवालय के लिए भी है—

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य सहर्म्यदुर्लभः ।

भास की उपजीव्यता का प्रचुर प्रमाण प्रतिमा में प्रतिभासित होता है, जो नीचे की तालिका से स्पष्ट है—

प्रतिमा में	अभिज्ञानशाकुन्तल में
१. सर्वं शोभनीयं सुरूपं नाम । प्रथमाङ्क से	१. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् । सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् । षष्ठ अंक से । सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम् । द्वितीयांक से
२. नटी-इअम्हि	२. नटी—अज्जउत्त, इअम्हि ।
३. ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम् । नटी-अय्य, तह (गायति)	३. शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् । नटी तह इति (गायति)
४. प्रस्तावना में सूत्रधार शरद् का वर्णन करता है ।	४. प्रस्तावना में सूत्रधार ग्रीष्म का वर्णन करता है ।
५. (रथं स्थापयति) विश्रामयाश्वान् । तृतीयाङ्क में	५. (रथं स्थापयति) आर्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः । प्रथमाङ्क में ।
६. नायिका बालवृक्षों का सेचन कर रही है । नायक कहता है— **योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि** **स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।** **कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं** **समं लताभिः कठिनीकरोति ॥**[1] ५.३	६. नायिका बालवृक्षों का सेचन कर रही है । नायक कहता है— **इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः** **तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति ।** **ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया** **शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥** १.१८
७. राम सीता से कहते हैं कि अब हम सभी को हिमालय पर जाना है । वे सीता से कहते हैं—	७. नायिका कण्वाश्रम छोड़ने वाली है । कण्व कहते हैं—

---

१. ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास की शमीलता भास के समं लताभिः से प्रतिभासित है।

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।। ५.११	पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् । आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।४.९
	समग्र चतुर्थ अंक में भास के श्लोक का उपबृंहण है ।
८. शाप की सीढ़ी पर चढ़कर कैकेयी के चरित्र का श्वेतीकरण ।	८. शाप की सीढ़ी पर चढ़कर दुष्यन्त के चरित्र का श्वेतीकरण ।
	उत्तररामचरित
९. जनस्थान की कथा जब राम लंका से लौट रहे थे—सीता के साथ राम अपनी पूर्वकालिक स्मृतियों को बताते हैं । राम:—अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।	९. शम्बूक को मारने के पश्चात् जनस्थान में राम के लौटने पर उनकी स्मृतियों का आकलन है । ते एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च ।
१०. मूर्छित भरत की मातायें उन्हें आश्वस्त करती हैं।	१०. मूर्छित राम को अदृश्य सीता आश्वस्त करती है ।
११. रूपसादृश्य के कारण भरत को पहचाना जाता है ।	११. रूप-सादृश्य के द्वारा राम लवकुश की ओर आकृष्ट होकर कहते हैं— **अपि जनकसुतायास्तच्चतच्चानुरूपम् स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति । ननु पुनरिह तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो— रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यं प्रियायाः ।। ६·२६**

भास को कुछ शब्द अतिशय प्रिय हैं । इनमें से चन्द्र और इसके पर्याय अनेकशः मिलते हैं । कवि राम की उपमा प्रायशः चन्द्र से देते हैं ।[1]

प्रतिमा में कतिपय दोष प्रत्यक्ष हैं । कवि ने नाटकीय दृष्टि से निष्प्रयोजन ही अनेक परिवर्तन किये हैं । यथा प्रतिमा का प्रकरण, भरत का चित्रकूट के स्थान पर जनस्थान में राम से मिलने के लिए जाना । इसके अतिरिक्त अभिषेक की विधि को इस प्रकार प्रवर्तित करना कि राम की माता और सीतादि को भी न ज्ञात हो—एक अकल्पनीय कल्पना है । राम का दशरथ से विना मिले ही वन चला

१. चन्द्र और उसके कुछ पर्यायों के प्रयोग हैं सातवें अङ्क के १२,१३,१४ वें श्लोक में ।

जाना भी समीचीन नहीं है। उनसे कहा गया था कि आप का सीता के साथ वन जाना सुनकर दशरथ इधर ही आ रहे हैं। इसे सुनकर लक्ष्मण कहते हैं--

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्।

राम कहते हैं--**गतेष्वस्मासु राजानः शिरःस्थानानि पश्यतु ।। १.३१**

जनस्थान से हिमालय जाने की चर्चा करते समय राम कहते हैं कि विन्ध्य से हिमालय जाना है। जनस्थान का विन्ध्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो नितान्त भ्रान्त वक्तव्य है।

भास का सीता की उपमा भुजङ्गमाङ्गना से देना ठीक नहीं लगता। यद्यपि वाल्मीकि ने भी इस प्रकरण में सीता की उपमा पन्नगेन्द्र वधू से दी है।[1] ऐसा लगता है कि उस युग की धारणा थी कि सर्वातिशायी सौन्दर्य नागवधुओं में ही था और नाग के प्रति दुर्भाव नहीं था।

इस नाटक का 'प्रतिमा' नाम कवि के प्रतिमा-प्रेम के कारण है। परवर्ती युग में रूपकों के मृच्छकटिक, कुन्दमाला, छायानाटक, रत्नपञ्चालिका आदि नाम इसी उद्देश्य से रखे गये कि उनमें क्रमशः मिट्टी की गाड़ी, कुन्द की माला, सीता की छाया और हीरे की पुतली की कलात्मक सन्धारणायें महत्त्वपूर्ण प्रतीत हों।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण

प्रतिज्ञायौगन्धरायण चार अङ्कों का नाटक है।[2] इसमें यौगन्धरायण नामक मन्त्री अपने स्वामी राजा उदयन वत्सराज को प्रद्योत महासेन के बन्दीगृह से मुक्त कराता है।

कथानक

महाराज उदयन मृगया करने के लिए नागवन गये। वहाँ किसी आगन्तुक ने आकर राजा से कहा कि नीलहस्ती यहाँ से एक कोस पर है। राजा उसे पकड़ने के लिए चला गया, यद्यपि उसके मन्त्री रुमण्वान् ने रोका और न मानने पर साथ जाने के लिए आग्रह किया, किन्तु राजा उन्हें साथ न ले गया।

---

१. प्रतिमा में ६.२ और रामायण के अरण्यकाण्ड में ४६.२२

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण को नाटिका, नाटक, ईहामृग आदि कोटियों में भी रखा गया है। वस्तुतः किसी भी रूपक कोटि के सभी लक्षण इसमें नहीं मिलते। इसकी प्रस्तावना में इसे प्रकरण कहा गया है। इसका नायक यौगन्धरायण अमात्य है, जैसा प्रकरण में होना ही चाहिए। प्रकरण की कथावस्तु उत्पाद्य होनी चाहिए। इसकी कथा ऐतिहासिक है। अतएव चार अंक होने पर भी इसे नाटक कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के युग में शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार इसे प्रकरण कहा जा सकता था।

उस हाथी के समीप राजा के पहुँच जाने पर उसके पेट से सैनिक निकले, जिनके साथ युद्ध करते हुए बहुतों को मार कर मूर्छित हो जाने पर राजा पकड़ लिया गया। शत्रुओं ने राजा को लता से बाँधकर अतिशय पीड़ा दी। राजा के सचेत होने पर कोई दुष्ट सैनिक राजा का वध करने के लिए उसके पास आ रहा था, किन्तु बीच में ही फिसल कर गिर पड़ा।

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्कुरवर्जिता।
भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति।। १.९

अर्थात् पृथ्वी ने अपने स्वामी की स्वयं रक्षा कर ली। प्रद्योत के मन्त्री शालंकायन ने राजा को बन्धन-विमुक्त कराया। उसने पालकी पर बैठाकर राजा को उज्जयिनी ले जाने की व्यवस्था कर दी थी। राजा ने यौगन्धरायण से मिलने के लिए हंसक को भेजा था। यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की—

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः।। १.१६ ।।

अर्थात् राजा को मुक्त करके ही दम लूँगा।

इधर महासेन की राजधानी उज्जयिनी में चर्चा हो रही है पहले राजा और कंचुकी के बीच कि काशिराज का दूत आया है कि राजकन्या वासवदत्ता काशिराज को प्रदान की जाय। राजा उसके सत्कार की व्यवस्था करवा कर वासवदत्ता के विवाह के विषय में सोचते हैं। वे काशिराज को कन्या देने के सम्बन्ध में विशेष उत्सुक नहीं हैं। उनका ध्यान वत्सराज की ओर जाता है। वत्सराज को पकड़ लाने के लिए उन्होंने अपने मन्त्री शालंकायन को भेजा है। तभी महारानी आ जाती हैं। वासवदत्ता के विषय में राजा-रानी बातें करते है कि वह इधर वीणापरायण हो गई है। रानी उसके लिए वीणाशिक्षक चाहती है। राजा कहते है कि इसका पति ही इसे वीणा सिखायेगा। राजा अपने अधीन राजाओं का नाम लेकर महारानी से पूछता है कि इनमें से कौन वासवदत्ता के योग्य है। उसी समय काञ्चुकीय कहता है—वत्सराज। वास्तव में उसे राजा को 'वत्सराज पकड़ लिया गया'—यह समाचार देना था, जिसका प्रथम शब्द कह कर वह रुक गया था। उसे कहना था **गृहीतो वत्सराजः**। राजा को विश्वास नहीं पड़ रहा था। कञ्चुकी ने स्पष्ट किया कि आपके मन्त्री शालङ्कायन ने वत्सराज को पकड़ लिया है। उसे लेकर उज्जयिनी आ पहुँचा है। उसी समय रानी कहती हैं कि इसीलिए तो मैं वासवदत्ता को किसी को नहीं देना चाह रही थी।[1]

१. इससे स्पष्ट है कि वत्सराज को पकड़ लेने पर राजा-रानी को दो प्रयोजन सिद्ध हो चुके हैं—(१) सभी राजा वश में हो गये और (२) वासवदत्ता के योग्य वर हाथ में आ गया।

महासेन ने आज्ञा दी कि वत्सराज को सम्मानपूर्वक रखा जाय। उससे मिलने के लिए सबको अनुमति दी जाय। उसको वत्सराज की प्रिय वीणा घोषवती मिलती है, जिसे वह वासवदत्ता के लिए दे देते हैं।

कौशाम्बी के मन्त्री उज्जयिनी में प्रच्छन्न वेश में आ पहुँचे हैं। यौगन्धरायण उन्मत्तक बना हुआ है। रुमण्वान् द्वारपाल हो गया है। वह श्रमणक का वेश बनाकर घूमते हुए किसी शिवालय (देवकुल) के समीप पहुँचता है, जहाँ उसे उन्मत्तक के वेश में यौगन्धरायण मिलता है और वहीं उससे मोदक के लिए बनावटी कलह करते हुए विदूषक है। मध्याह्न होने पर ये तीनों निर्जन अग्निगृह में वत्सराज को कौशाम्बी ले भागने के विषय में विचार-विमर्श करते हैं। विदूषक को वत्सराज से मिलकर बताना है कि नलागिरि नामक हाथी लम्बी यात्रा के लिए तैयार कर लिया गया है। उसके डरकर भागने के लिए देवकुल के पास के घर में आग लगा दी जायेगी। देवकुल में शङ्ख, दुन्दुभि आदि रख दिये गये हैं, जिनका नाद सुनकर हाथी भागे। प्रतिगज मद भी बना लिया गया है। नलागिरि के नगर में उपद्रव करने पर महासेन उसे वश में करने के लिए वत्सराज को स्वतन्त्र करेगा और उसे वीणा भी देगा, जिसे बजा कर वह नलागिरि को वश में करे। राजा को क्या करना है—

सेनाभिर्मनसानुबद्धजघनं कृत्वा जवे वारणं
सिंहानामसमाप्त एव विरुते त्यक्त्वा सविन्ध्यं वनम्।
एकाहे व्यसने वने स्वनगरे गत्वा त्रिवर्णं दशां
येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते॥ ३.५

अर्थात् उस हाथी पर बैठकर एक ही दिन में उज्जयिनी से कौशाम्बी चला जाय विदूषक ने कहा कि वत्सराज तो वासवदत्ता को देखकर उसके प्रेम में आसक्त है। वह तो कारागार नहीं छोड़ना चाहता। योजनायें बनती हैं, जिसके अनुसार यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है—

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव।
यदि तां न हरेद्राजा नास्मि यौगन्धरायणः॥ ३.८
यदि तां चैव तं चैव तां चायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः॥ ३.९

अर्थात् वासवदत्ता को भी साथ ही ले जाना होगा।

यौगन्धरायण की योजना को सफल करने के लिए एक और सुविधा मिली। महासेन ने अपनी कन्या वासवदत्ता को वीणा-वाद्य सीखने के लिए वत्सराज के पास भेजना आरम्भ किया। उन दोनों का गान्धर्व विवाह हो गया। वह भी वत्सराज के साथ भद्रवती पर बैठ कर कौशाम्बी जाने के लिए प्रस्तुत हो गई। वत्सराज को पकड़ने

के लिए महासेन की सेना आगे बढ़ी। उससे यौगन्धरायण और उसके द्वारा-नियुक्त सैनिकों ने भिड़न्त की। उस समय यौगन्धरायण का सैनिक रूप था—

निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः
कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः
विरचितबहुचीरः पाण्डराबद्धपट्टः
सतडिदिव पयोदः किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः ॥ ४.३

अन्त में यौगन्धरायण पकड़ा गया, जब उसकी तलवार हाथी के दाँत से प्रत्याहत हो कर टूट गई थी। उसे शस्त्रागार में ठहराया गया।

यौगन्धरायण जब दण्ड की आशङ्का कर रहा था, तभी उसे राजा की ओर से पुरस्कार मिला। उसे कञ्चुकी बताता है कि महासेन ने वत्सराज और वासवदत्ता का विवाह स्वीकार कर लिया है। महारानी आत्महत्या करना चाहती थी, किन्तु राजा ने विवाह को चित्रद्वारा सम्पन्न कराकर उसके आवेश को मिटा दिया।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कथा इतिहास-प्रसिद्ध उदयन की लोकप्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर बृहत्कथा में संकलित थी, जिसके आधार पर भास ने इसको वर्त्तमान रूप दिया है। इसमें राजनीतिक चाल का काव्यात्मक रूप प्रतिभासित होता है। भास ने इसके अतिरिक्त स्वप्नवासवदत्त में और सम्भवतः चारुदत्त में राजनीतिक परिस्थितियों से कथावस्तु को संगमित किया है। परवर्ती युग में विशाखदत्त का मुद्राराक्षस सम्भवतः प्रतिज्ञायौगन्धरायण से प्रेरित हुआ है, जिसमें चाणक्य यौगन्धरायण की भूमिका लेकर प्रतिज्ञा करता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में चन्द्र शब्द अनेकशः प्रयुक्त है और उससे गौणरूप से चन्द्रगुप्त की व्यञ्जना होती है। यथा—

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः ॥ १.१६

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्रत्यक्ष नेतृचरित की स्वल्पता है। वत्सराज उदयन का चरित तो प्रत्यक्ष रूप से किसी अङ्क में नहीं है। वह इस प्रकरण का पात्र ही नहीं है। अन्य पात्रों के चरित भी प्रायः संवाद द्वारा सूचित होते हैं।

पूरी कथावस्तु में ही एक अन्तर्धारा प्रवाहित है कि महासेन अपनी कन्या का विवाह उदयन से करना चाहते हैं, पर वे इस विचार को प्रच्छन्न रखना चाहते हैं। प्रच्छन्नता और विशेषतः व्यक्तित्व की प्रच्छन्नता बनाये रखना भास की एक बड़ी विशेषता है। प्रतिमा नाटक में कैकेयी भी अपने व्यक्तित्व को प्रच्छन्न रखती है। इस रूपक में महासेन की बातों से व्यंग्य है कि वे वत्सराज को कोरे शत्रु रूप में नहीं देखते। वत्सराज का ध्यान आते ही एक वार के लिए कहीं न कहीं से उनके मन में यह बात व्यंग्य हो उठती है कि वासवदत्ता से उसका प्रणय मेरा अभीष्ट है। जब रानी

कहती है कि वासवदत्ता के लिए वीणाचार्य चाहिए तो वे कह देते हैं कि उसका पति ही उसे वीणा-वादन सिखायेगा। यहाँ व्यंग्य है कि उसका पति वत्सराज होगा। फिर उस वत्सराज का उज्जयिनी की राजधानी में स्वागत तो थोड़ा-बहुत हुआ। उससे मिलने की छूट सब को दे दी गई थी। किन्तु भास ने यह क्या बिना सोचे समझे लिख डाला कि उज्जयिनी में उदयन को अपने हाथ से बनाई हुई चटाई पर सोना पड़ता था और उनके पैर में बेंड़ी पड़ी रहती थी।[1]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कथावस्तु में भास के वस्तु-शिल्प के अनेक तत्त्व प्रकट होते हैं। पहली बात है भास के गान्धर्व विवाह का प्रवर्तन। अपने सभी प्रणयात्मक नाटकों में भास ने विवाह गान्धर्व रीति से ही कराया है। अविमारक और चारुदत्त में इसी प्रकार का विवाह है। वस्तु की दूसरी विशेषता है हाथी के द्वारा उत्पात करना।[2] हाथी पद और पशु दोनों भास को प्रिय थे।[3] अविमारक में हाथी का उत्पात होता है, बालचरित में कृष्ण उत्पलापीड नामक हाथी को मार डालते हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अनुसार उदयन का प्राण ही हाथी में बसता था। नील हाथी के चक्कर में वह पकड़ा गया। नलागिरि हाथी के उत्पात करने पर वह मुक्त हुआ और भद्रवती हथिनी ने उसके प्राणों की रक्षा की। तीसरी विशेषता है किसी श्रेष्ठ पात्र को युद्ध-भूमि में पकड़वाने की। जो वीर पकड़ा जाता है, वह पहले शस्त्रहीन बनाया जाता है। पंचरात्र में अभिमन्यु को शस्त्रहीन बनाकर पकड़ा गया। इसी प्रकार प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यौगन्धरायण को शस्त्रहीन बताकर पकड़ लिया जाता है। इस प्रकार श्रेष्ठ पात्रों को पकड़वाना भास को प्रिय था, अन्यथा कथावस्तु में इस कथांश के सन्निवेश की कोई आवश्यकता नहीं है। चौथी विशेषता, यद्यपि इसमें विशेष नहीं उभरी है, अग्नि-प्रदाह की है। नलागिरि को भड़काने के लिए आग लगाई गई। पंचरात्र और स्वप्न-वासवदत्त में आग लगाने की विस्तृत चर्चा है। पाँचवी विशेषता है दिव्य पात्रों की चरित-चर्चा। इस रूपक में द्वैपायन दिव्य पात्र हैं, जो यौगन्धरायण के लिए अपने वस्त्र और सन्देश छोड़ जाते हैं। दूतवाक्य, कर्णभार, बालचरित और अविमारक में दिव्य चरित प्रत्यक्ष है। छठीं विशेषता है आत्महत्या का प्रयास। इसमें महारानी आत्महत्या करना चाहती हैं। सातवीं विशेषता है चित्र द्वारा विवाह की चर्चा।

भावी कार्य की सूचना यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा से मिलती है। उसकी तीन

---

१. प्रतिज्ञा० ३.६

२. अभिज्ञानशाकुन्तल और उत्तररामचरित में हाथी का उत्पात सम्भवतः भास के आदर्श पर अनुप्रणीत हैं।

३. उत्तरामचरित में हाथियों का लड़ना सम्भवतः भास की इस निधि का उत्तराधिकार रूप में भवभूति की उपलब्धि है।

प्रतिज्ञाओं से भावी कार्यक्रम स्पष्ट है। द्वैपायन का कथांश यद्यपि कथा के विकास की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर उससे भी भविष्य की सूचना मिलती है। पताकास्थानक का प्रयोग भावी घटनाक्रम की सूचना देने के लिए है। यथा वासवदत्ता के विवाह के लिए महासेन महारानी से पूछते हैं—

कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा । २·८

महारानी के कुछ कहने के पहले ही कंचुकी कहता है—**वत्सराज ।**

संवाद में भावी घटना-क्रम का विन्यास प्रकट होने लगता है। द्वितीय अंक में राजा और रानी विचार कर रहे हैं कि घोषवती वीणा किसको दी जाय। यह निर्णय होता है कि वासवदत्ता को दी जाय। राजा कंचुकी से पूछते हैं कि वासवदत्ता कहाँ है? विना किसी पूर्व प्रसंग के उसी क्षण वे कंचुकी से फिर पूछते हैं कि वत्सराज कहाँ है? इससे स्पष्ट है कि राजा के मन में वासवदत्ता का ध्यान आते ही वत्सराज का ध्यान आ जाता है। क्यों? वे उन दोनों को एक दूसरे के साथ ही सोच सकते हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण का एक उद्देश्य है मन्त्री के लिए चरित्र का उच्चादर्श प्रस्तुत करना। भास को इसमें सफलता मिली है। मन्त्री हो तो यौगन्धरायण जैसा। विदूषक के, परिहास में ही हो, अन्यथा सुझाव देने पर वह कहता है—

परित्यजामः सन्तप्तं दुःखेन मदनेन च ।
सुहृज्जनमुपाश्रित्य यः कालं नावबुध्यते ।। ३·७

अलौकिक वृत्तों के प्रतिभास की आस्था रही है। द्वैपायन के द्वारा वस्त्र-प्रदान और भावी प्रवृत्तियों की आशंसा कराई गई हैं।

इस रूपक में अमात्य यौगन्धरायण नायक है।[1] वह तीन प्रतिज्ञायें करता है और अपनी कूटनीति और पराक्रम से उन तीनों प्रतिज्ञाओं को पूरा करता है। वह सतत कर्मण्य है। रङ्गमञ्च पर सभी अङ्कों में वही सर्वोपरि है। उदयन तो कभी रंगमञ्च पर आता ही नहीं। यदि नाटक का फल है उदयन को बन्धन-विमुक्त कराना तो

---

१. सूत्रधार ने १·१ में यौगन्धरायण को नायक रूप में प्राथमिकता दी है। इससे यौगन्धरायण का नायक होना प्रमाणित है। भास ने ऐसे प्रथम श्लोक में नायक को ही प्राथमिकता दी है। कीथ के अनुसार "Its hero is the minister of Udayana, the Vatsa king" Sanskrit Drama p. 102 अर्थात् यौगन्धरायण नायक है।

डा०पुसालकर के अनुसार—Vatsaraja is the hero. Bhasa—A Study p. 273 Second Edition. अर्थात् वत्सराज नायक है। उनका मत समीचीन नहीं प्रतीत होता, जैसा ऊपर लिखा जा, चुका है। विन्तरनित्ज भी यौगन्धरायण को नायक मानते हैं। Hist. Ind. Lit. vol. II p.22०

इसके लिए आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम में से किसी में उदयन की प्रवृत्ति नहीं है। इसके विपरीत यौगन्धरायण आदि से अन्त तक प्रत्येक कार्यावस्था में सफलता की ओर बढ़ने में सचेष्ट है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कार्यवशात् पागल बने हुए यौगन्धरायण और मद्यपायी-गात्रसेवक की भूमिका संस्कृत के रूपक साहित्य के लिए एक असाधारण योजना है। पात्रों को प्रच्छन्न रखने के उद्देश्य से भास ने ऐसा किया है। वास्तव में पात्रों को प्रच्छन्न रखने की भास की कला का यह चरम विकास है। अन्य प्रच्छन्न प्रमुख पात्र है रुमण्वान्। इस रूपक में तो पूरी उज्जयिनी ही प्रच्छन्न हो रही थी, जैसा भास ने बताया है—

प्राकारतोरणवर्जं सर्वं कौशाम्बी खल्विदम्॥

उदयन धीरललित और धीरोदात्त का अनुपम और सफल मिश्रण है। वह यौगन्धरायण की सारी योजना पर पानी फेर देता है, यह कह कर कि मुझे उज्जयिनी से नहीं जाना है, क्योंकि यहाँ वासवदत्ता है। यौगन्धरायण ने उदयन के विषय में कहा है—

अदेशकाले ललितं कामयते स्वामी

उसके इस लालित्य को देखकर विदूषक ने तो कह दिया कि उदयन को छोड़ कर चल देना चाहिए।

उदयन का धीरोदात्त वीर स्वरूप उस अवसर पर दिखाई देता है जब सैनिक उसे पकड़ने के लिए घेर लेते हैं। वह वीरता से युद्ध करता है। कभी प्रद्योत के समक्ष झुकता नहीं। उसने नलागिरि हाथी को वश में किया, जब सारी उज्जयिनी उससे डरकर शङ्कित थी। अन्त में उसकी उदात्तता का प्रमाण है—

हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना॥ ४·१९

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में अङ्गीरस वीर है। वीररस का भेद यदि प्रतिज्ञावीर हो तो यौगन्धरायण की चरितगाथा प्रतिज्ञावीर के अन्तर्गत आती है। अन्य रस अद्‌भुत और हास्य आदि हैं।[1] तीसरे अंक में प्रच्छन्न पात्रों का असम्बद्ध प्रलाप हास्य के लिए है।

भावों का उत्थान-पतन अनेक स्थानों पर कलात्मक है। यौगन्धरायण दण्ड की आशंका करता, है, तभी उसे स्वर्णकलश पुरस्कार रूप में मिलता है। इसी प्रकार जब उदयन दिव्य वारण देखना चाहता था, उस समय उसे सिंह दिखाई दिया और साथ

---

१. नील हस्ती का प्रकरण इतना अलौकिक है कि इसके कारण प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कटु आलोचना की जाती है।

ही उस हाथी के पेट से शत्रुयोद्धा निकले। इसके अतिरिक्त महाराज उदयन को राजा महासेन की कन्या वन्दीगृह में वीणा सीखने के लिए पत्नी रूप में मिल गई। यह है भाग्य का चक्र। इसी को लक्ष्य करके यौगन्धरायण ने भरतरोहतक से कहा है—**विवाहः खल्वेष स्वामिनः।**

यौगन्धरायण के विषय में भावसरिता उत्थान-पतन है—

भुजगमिव सरोषं धर्षितं चोच्छ्रितं च।

महासेन के भावों के उत्थान-पतन का परिचय अधोलिखित पद्य में उल्लेखनीय है—

पूर्वं तावद् वैरमस्यावलेपादानीतेऽस्मिन् स्यात् तु मध्यस्थता मे।
युद्धक्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि॥ २.१४

भावात्मक उत्थान-पतन का क्षणशः चित्रण अन्तिम अंक के अन्त में है, जब महारानी वासवदत्ता का अपहरण सुनकर मरणोद्यत हैं। तभी महाराज उनसे कहते हैं कि तुम्हारी कन्या का क्षत्रोचित विवाह हुआ है। क्योंकर हर्ष के अवसर पर शोक करती हो? उस समय—

स्त्रीजनेनाद्य सहसा प्रहर्षव्याकुलक्रमा।
क्रियते मंगलाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया॥ ४.२४

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की शैली अनेक स्थलों पर भावोचित है। भावावेश में क्षण-क्षण में विचार परिवर्तन होता है। ऐसी स्थिति में लघु वाक्यों का होना स्वाभाविक है। उदयन के पकड़ जाने का समाचार महासेन को मिलता है। उस समय की वाक्यावली स्वल्पाक्षरी है। यथा—

राजा—किमाह भवान्।

कांचुकीयः—तत्र भवताममात्येन शालङ्कायनेन गृहीतो वत्सराजः।

राजा—उदयनः

कांचुकीयः—अथ किम्

राजा—शतानीकस्य पुत्रः

काञ्चुकीयः—दृढम्

राजा—सहस्रानीकस्य नप्ता।

कांचुकीयः—स एव

यह लघुवाक्यों का संवाद आशातीत सिद्धि का सूचक है, जिसके कारण महासेन आश्चर्यचकित है।

यदि किसी पात्र को समय गँवाना अभिप्रेत हो तो वह अनर्गल प्रलाप करके दर्शकों को हास्य रस की सामग्री प्रस्तुत करता है। गात्रसेवक और भट का नीचे लिखा संवाद इसी प्रकार का है—

गात्रसेवकः—युज्यते। सा च ननु मत्ता, स पुरुषोऽपि मत्तोऽहमपि मत्तः, त्वमपि मत्तः, सर्वं मत्तसमं भवति।

भटः—सर्वं तावत् तिष्ठतु। राजकुले भद्रपीठिकां न निष्क्राम्य कुतोऽयमाहिण्डते इति।

गात्रसेवकः—इत आहिण्डे। अत्र पिबामि एतेन पिबामि। मा संरम्भेण। किं क्रियताम्।

भटः—भवत्वसम्बन्धप्रलापः। शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय।

गात्रसेवकः—प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती। अङ्घो मया भद्रवत्या अंकुशमाहितम्।

भास ने अपने संवादों को श्रोता की योग्यता का विचार करके रूपित किया है। यदि श्रोता से सहानुभूति है तो उसके हृदय पर आघात न पहुँचे—इस विधि से उसे किसी दुर्घटना का परिचय देना चाहिए। नीचे लिखे श्लोक में भास बताते हैं कि वत्सराज की माता को कैसे बताया जाय कि उनका पुत्र शत्रुओं के हाथ में जा पहुँचा। प्रतीहारी किस प्रकार यह संवाद दे—

पूर्वं तावद् युद्धसम्बद्धदोषाः
प्रस्तोतव्या भावनाः संशयानाम्।
सन्दिग्धे ऽर्थे चिन्त्यमाने विनाशे
रूढे शोके कार्यतत्त्वं निवेद्यम्॥ १.१३

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तृतीय अंक में उन्मत्तक (यौगन्धरायण), विदूषक और रुमण्वान् (श्रमणक) रहस्यमयी भाषा में प्रत्यक्षतः असम्बद्ध असत्प्रलाप करते हैं, किन्तु वास्तव में उनकी भाषा श्लिष्ट है और उसके द्वारा वे परस्पर अपने भाव को इंगित करते हैं। यथा—नीचे के प्रसङ्ग में मोदक उदयन को बचाने के लिए उपाय-सूत्र हैं।

विदूषकः—भो उन्मत्तक, आनय मम मोदकमल्लकम्। मा परकीये स्नेहं कृत्वा अवबध्यस्व।

उन्मत्तकः—के के मां बध्नन्ति। मोदकाः खलु मां रक्षन्ति।

नेपथ्यविशेषमण्डिताः प्रीतिमुपदातुमुपस्थिताः।
राजगृहे दत्तमूल्या कालवशेन मुहूर्तदुर्बलाः॥ ३.१

विदूषक—भो उन्मत्तक, आनय मम मोदकमल्लकम्। अनेन प्रत्ययेनोपाध्यायकुलं गन्तव्यम्।

अर्थात् इन उपाय-सूत्रों के साथ मुझे राजा उदयन से मिलना है।

भास की भाषा अपने अर्थान्तरन्यासों और सूक्तियों से पर्याप्त प्रभविष्णु है। यथा—

हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना।
न ह्यनारुह्य नागेन्द्रं वैजयन्ती निपात्यते ॥ ४.१९

अर्थात् उदयन तुम्हारे राजा को मारने की स्थिति में था। किन्तु उसने उसकी रक्षा की। विना हाथी पर चढ़े कैसे उसका झण्डा गिराया जा सकता है ?

भास ने चित्र, मूर्ति और वास्तु कलाओं की कृतियों से अपना प्रेम प्रकट करने के लिए अपने अनेक रूपकों में इन कलाकृतियों को प्रसङ्गनिष्ट किया है। इस रूपक में सर्वप्रथम देवकुल की चर्चा आती है, जिसमें बैठ कर विदूषक आप बीती कहता है कि मेरे पास जो मोदक-मल्लक है, वह चित्र से मण्डित है। उस देवकुल में शिव, गणेश आदि देवताओं की मूर्तियाँ है। भास के अनुसार देवकुल के चारों ओर प्राकार होता था। वहाँ गर्भगृह में शिव और गणेश की मूर्ति थी। मोदक-मल्लक इस प्रकार चित्रित होता था की उस पर धूप पड़ने से आँखों में चकाचौंध होती थी। इसका कला-वैशिष्ट्य है भास के शब्दों में—साधु रे चित्रकर भाव, साधु। युक्तलेखतया वर्णानां यथा यथा प्रमार्ज्मि, तथा तथोज्ज्वलतरं भवति।

अन्यत्र भी भास ने चित्रकला के प्रति अपनी रुचि का परिचय इस रूपक में दिया है। वह है वासवदत्ता और उदयन का विवाह उनके चित्र के माध्यम से कर देना—

तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्।

भास के आदर्श पर परवर्ती युग में इन शिल्पों का विशेषतः चित्रों का नाटच-साहित्य में सन्निवेश होने लगा। रूपक में जैसे भी हो चित्र की चर्चा होनी ही चाहिए। कालिदासादि अनेक नाटककारों का ऐसा प्रयास रहा है। चित्रदर्शन से प्रथम प्रणय का आरम्भ मलाविकाग्निमित्र, रत्नावली आदि में हुआ है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण रूपक में यह बात रहस्य ही रह जाती है कि एक ओर तो उदयन को सब से मिलने की छूट है, महासेन उसकी सुख-सुविधा और मंगल-कामना को लेकर सचिन्त हैं।[1] वे उदयन से अपनी कन्या का विवाह कर देना चाहते हैं। दूसरी ओर

तस्यैव कालविभवात् तिथिपूजनेषु
दैवप्रणामचलिता निगलाः स्वनन्ति ॥ ३.४

---

१. राजा ने कहा है कि उदयन की स्तुति की जाय—कालसंवादिना स्तवेनार्च्यः। सबसे बढ़ कर विपरीत है स्वप्नवासवदत्त में उदयन का यह कहना कि मुझे महासेन ने पुत्र की भाँति पाला।

कथा का ऐसा विकास असमीचीन लगता है ।

महारानी ने वासवदत्ता का विवाह उदयन से करना चाहा था । फिर जब वह उदयन के साथ गान्धर्व और राक्षस विवाह की पद्धति पर चली गई तो उससे आत्महत्या करने की सोचवाना ठीक नहीं है । इससे तो भास का आत्महत्या के काण्ड के प्रति प्रवृत्ति प्रमाणित होती है ।

तीसरे अंक में विदूषक और उन्मत्तक की लम्बी बातचीत से कवि ने अनर्गल हास्य के द्वारा अजीर्ण कराया है, जो सर्वथा अनुचित है । इसे कवि अतिसंक्षिप्त कर सकता था । इसी प्रकार द्वैपायन का प्रकरण भी यदि न रखा गया होता तो इस रूपक की कोई क्षति न होती । यह कथांश व्यर्थ है ।

स्वप्नवासवदत्त

स्वप्नवासवदत्त भास का सर्वोत्तम नाटक कहा जाता है । यह राजनीति-प्रधान रूपक है, जिसमें महाराज वत्सराज उदयन की दो नायिकाओं—वासवदत्ता और पद्मावती की प्रणय गाथा से रमणीयता का उपचय किया गया है । भास अपने नाटकों का नाम इनकी सर्वोच्च विशेषताओं को प्रत्यक्ष करने के उद्देश्य से भी रखते थे । इस नाटक में नायक को स्वप्न देखते समय अपनी नायिका से साक्षात् मिलने का अवसर मिलता है, जिसे वह मृत समझता था । इस प्रकार की नाटकीय स्वप्न की उपयोगिता काव्य में सबसे पहले भास ने इतने उत्कर्ष-सहित सम्पन्न की है । यही इस नाटक के नाम की सार्थकता है ।[1]

संस्कृत का प्रथम प्रणयात्मक रूपक स्वप्नवासवदत्त मिलता है । इसके पश्चात् मृच्छकटिक के अतिरिक्त कालिदास और हर्ष के रूपक मिलते हैं । इन सबमें स्वप्नवासवदत्त की भाँति नायक की पत्नी या पत्नियाँ हैं । इनके सम्बन्ध में नाटककारों की विप्रतिपत्ति रही है । प्रथमक्रम में स्वप्नवासवदत्त में रानी दूसरा विवाह करने में योग देती है । द्वितीयक्रम में पति के कल्याण में अपना कल्याण मानती हुई रानी नायिका से विवाह अपनी प्रसन्नता से करा देती हैं । यह विक्रमोर्वशीय में है । तृतीयक्रम में रानी नायिका को वन्दी तक बना देती है । इसका समारम्भ कालिदास के मालविकाग्निमित्र में होता है । विवाह तो होकर ही रहता है ।

कथानक

राजपुरुष मगध में किसी आश्रम के निकट लोगों को हटा रहे हैं, जिससे राजकन्या पद्मावती आश्रम में आ सके । साधु का वेश धारण किये हुए यौगन्धरायण और अवन्तिका-कुमारी का वेश धारण की हुई वासवदत्ता वहाँ पहले से ही हैं । उन्हें बुरा लगता है

१. परवर्ती नाटक कुन्दमाला के अभिज्ञान से राम को सीता का जीवित होना ज्ञात हुआ ।

कि आश्रम में भी हटो हटो सुनाई पड़े। वासवदत्ता कहती है कि मुझे इससे खिन्नता होती है। यौगन्धरायण समझाता है कि पति की विजय के पश्चात् पुनः तुम्हें ऐश्वर्य प्राप्त होगा, जब यह सब नहीं सुनना पड़ेगा—

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी—
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥ १.४

उनको कंचुकी से मगध के राजा दर्शक की बहिन पद्मावती का परिचय मिलता है। यौगन्धरायण मन में कहता है कि यह तो हमारे महाराज उदयन की पत्नी बनेगी।

वहाँ तापसी से चेटी कहती है कि पद्मावती के लिए उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का दूत आया है कि उसका विवाह राजकुमार से हो जाय। पद्मावती कञ्चुकी से पूछती है कि क्या कोई मिला, जिसे कुछ दान दिया जाय। कंचुकी ने घोषणा की—

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥ १.८

तभी यौगन्धरायण ने कहा—मेरी बहन है यह (पद्मावती)। कुछ दिनों के लिए इसका पति इससे दूर है। कुछ समय तक आप के द्वारा इसका पालन हो। पद्मावती ने स्वीकार कर लिया। फिर तो वासवदत्ता पद्मावती के पास मन में यह कहती चली गई—**'का गतिः। एषा गच्छामि मन्दभागा।'**

यौगन्धरायण ने मन में सोचा कि आधा काम तो पूरा हो गया। मन्त्रियों के साथ जो योजना बनाई थी, वह सफल हो रही है। फिर जब महाराज उदयन चक्रवर्ती हो जायँगे और उनको वासवदत्ता को सौंपूंगा तो यही पद्मावती साक्षी बनेगी।

उसी समय आश्रमभूमि में कोई ब्रह्मचारी आया। परिचय पूछने पर उसने बताया कि मैं वत्स देश में लावाणक गाँव में पढ़ता था। वहाँ एक बड़ी विपत्ति पड़ी। वहाँ के राजा उदयन की प्रियतमा पत्नी वासवदत्ता थी। एक दिन राजा सपत्नीक मृगया करने के लिए उस गाँव में ठहरा। राजा के मृगया के लिए बाहर जाने पर उस में आग लग जाने से वासवदत्ता जल गई। उसे बचाने के लिए मन्त्री यौगन्धरायण भी आग में जल मरा। लौटने पर राजा भी अग्नि में कूदना चाहता था, किन्तु मन्त्रियों ने उसे रोक लिया। रुमण्वान् नामक मन्त्री उसे बचा रहा है।

राजधानी में पद्मावती कन्दुक-क्रीड़ा कर रही है। वहीं वासवदत्ता और चेटियाँ हैं। पद्मावती के हाथ को लाल देखकर वासवदत्ता ने कहा कि तुम्हारे हाथ परकीय

हो रहे हैं। पद्मावती के कहने पर कि क्यों परिहास कर रही हो, वासवदत्ता ने कहा कि शीघ्र तुम्हारे वर को हम लोग देखेंगे। तुम महासेन की वधू बनोगी। चेटी ने कहा कि पद्मावती उनके साथ सम्बन्ध नहीं चाहती। वे वत्सराज उदयन से सम्बन्ध चाहती हैं।

धात्री पद्मावती से आकर कहती है कि तुम को आज ही उदयन वत्सराज को दे दिया जायेगा। राजा किसी अन्य प्रयोजन से यहाँ आये हुए हैं और उन्हें सर्वथा योग्य देखकर महाराज ने पद्मावती को उन्हें दिया है। वासवदत्ता को कौतुक-मंगल करने के लिए बुलाया जाता है और कौतुक-मालिका बनाने के लिए पुष्प दिये जाते हैं। वह कनमनाते हुए गूँथती तो है किन्तु सपत्नीमर्दन नामक ओषधि को नहीं गूँथना चाहती। वह इस सारे प्रकरण से धीरज खो बैठती है और शय्या पर दुःख मिटाने के लिए चल देती है।

प्रमदवन में पद्मावती, वासवदत्ता और चेटी जाती हैं। चेटी शेफालिका कुसुम तोड़ती है और वासवदत्ता तथा पद्मावती शिलापट्ट पर बैठ जाती हैं। पद्मावती चाहती है कि उदयन शेफालिका कुसुम-समृद्धि देखें। वासवदत्ता उससे पूछती है कि क्या तुमको पति प्रिय हैं। वह उत्तर देती है कि मैं नहीं जानती, किन्तु उनके बिना चित्त उत्कण्ठित हो रहा है। वह फिर कहती है कि मुझे वह जैसे प्रिय हैं, वैसे ही वासवदत्ता को भी थे। वासवदत्ता ने कहा इससे भी अधिक। तुम कैसे जानती हो—जब पद्मावती ने पूछा तो वासवदत्ता ने बात बना दी कि अन्यथा वह क्यों स्वजनों को छोड़ती। चेटी ने पद्मावती से कहा कि आप भी उदयन से वीणा सीखें। पद्मावती ने कहा कि सिखाने के लिए कहा तो था, तब बिना कुछ बोले ही रुआँसे होकर निःश्वास ली। मैं समझती हूँ वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करके वे रोना चाहते थे, किन्तु दाक्षिण्य के कारण मेरे आगे न रो सके। वासवदत्ता मन ही मन कहती हैं कि मैं धन्य हूँ।

विदूषक और राजा उदयन मिलते हैं। राजा पद्मावती के विषय में सोच रहा था। 'वह कहाँ हो सकती है' विदूषक इस पर विचार कर रहा था। वासवदत्ता परपुरुष का दर्शन नहीं करती—इसलिए उसे लेकर पद्मावती निकट ही लतामण्डप में खिसक गई। वसन्तक ने राजा को सुझाव दिया कि हम लोग माधवी-लतामण्डप में चलें। इनसे बचने के लिए चेटी ने भौंरों से लदी हुई डाल को हिला दिया। बस, राजा और विदूषक वहीं मण्डप-द्वार के निकट बैठ गये। अपनी स्थिति पर वासवदत्ता को रुलाई आ रही थी। पद्मावती से उसने बताया कि कासकुसुमरेणु के गिरने से आँखों में आँसू आ गये।

इसी समय विदूषक ने राजा से पूछा कि तुमको कौन अधिक प्रिय रही है—वासवदत्ता या पद्मावती। उदयन कुछ भी नहीं कहना चाहता था, किन्तु विदूषक के सत्याग्रह करने पर उसे कहना पड़ा—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं चित्तं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ ४·४

फिर राजा ने विदूषक से पूछा—तुमको दोनों में कौन अच्छी लगी ? विदूषक ने सोचने पर बताया कि वासवदत्ता अधिक अच्छी रही, वैसे तो पद्मावती में अनेक गुण हैं। राजा ने विस्मृति-वश कहा—वासवदत्ता से सब कुछ बता दूंगा। विदूषक ने कहा—अब वह कहाँ है ? उदयन शोक-क्लिन्न था। उसी समय वासवदत्ता से पूछ कर पद्मावती वहाँ मुखोदक लेकर पहुँची। उदयन को झूठ बोलना पड़ा कि पराग गिरने से आँखों में आँसू आ गये।

किसी दिन पद्मावती को शिरोवेदना हुई। वासवदत्ता को वहाँ समुद्रगृहक में पहुँचकर उसे कथा सुना कर शिरोव्यथा मिटानो है। विदूषक के माध्यम से शिरोवेदना की बात सुनकर राजा वहाँ विदूषक के साथ पहुँचते है। वहाँ पद्मावती नहीं थी। राजा वहीं पद्मावती की शय्या पर पड़ कर प्रतीक्षा करने लगा। राजा के सो जाने पर विदूषक कम्बल लाने चला गया।

इसी बीच वासवदत्ता और चेटी वहाँ आईं। अर्ध-प्रकाशमण्डित उस समुद्रगृहक में वासवदत्ता ने समझा कि पद्मावती ही विस्तर पर लेटी है और वह उसके पार्श्व में सो गई। उसी समय राजा स्वप्न में कहने लगा—**हा वासवदत्ते, हा अवन्तिराजपुत्रि, हा प्रिये, हा प्रिय शिष्ये, देहि मे प्रतिवचनम्।** वासवदत्ता ने कहा—**आलपामि भर्तः। आलपामि।** इस प्रकार स्वप्नगत राजा के प्रश्नों का उत्तर देती हुई उसने जाने के पहले चारपाई से लटकते हुए राजा के हाथ को विस्तर पर रख दिया। राजा जग पड़ा, किन्तु इस बीच वासवदत्ता निकल गई थी। राजा ने पुकारा—वासवदत्ता, रुको, रुको। उसे यह ज्ञान पक्का न हो सका कि वास्तव में वासवदत्ता ने ही उसका स्पर्श किया था। तब तक विदूषक आ पहुँचा। राजा ने उससे कहा—वासवदत्ता जीवित है। विदूषक ने कहा—अरे वह कब की मर गई है। राजा ने कहा कि मुझे जगाकर वह अभी चली गई है। मुझसे रुमण्वान् ने झूठ ही कहा है कि वह मर गई। विदूषक ने कहा कि सपना देखा है।[1] राजा ने कहा—

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ५·६

१· ऐसा ही प्रकरण कुन्दमाला में है, जहाँ विदूषक ने कहा कि यह सब तिलोत्तमा की करनी है। वह सीता का रूप धारण कर आप को ठग गई है।

तभी उदयन को समाचार मिलता है कि आरुणि पर आक्रमण करने के लिए रुमण्वान् चल पड़ा है, जिसका साथ महाराज दर्शक की सेना देगी । वत्स देश जीत लिया गया । उदयन ने कहा कि युद्ध में मैं आरुणि को नष्ट कर दूंगा ।

महासेन के भेजे हुए कंचुकी रैभ्य और महारानी अंगारवती की भेजी हुई वसुन्धरा नामक वासवदत्ता की धात्री दर्शक के प्रतीहार पर उपस्थित है । उन्हें उदयन से मिलना है। उदयन को उस दिन अपनी घोषवती वीणा मिली थी, जिससे उन्हें वासवदत्ता की स्मृति प्रत्यग्र हो आई। उदयन कहता है—

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ।। ६·३

उदयन के समीप तभी रैभ्य और वसुन्धरा आते हैं । उनसे मिलने के लिए पद्मावती पहले से ही बुला ली जाती है। महासेन और अङ्गारवती के सन्देश उदयन ग्रहण करते हैं । अङ्गारवती का सन्देश है—

अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता ।[1]

तथापि वासवदत्ता और आपका चित्र बनाकर विवाह कर दिया गया । ये चित्र देखकर आप आश्वस्त हों । पद्मावती ने भी चित्र देखा और कहा—यह चित्र तो अवन्तिका से बहुत मिलता-जुलता है । फिर तो वह उद्विग्न हो गई और प्रसन्न भी। उसने उदयन से कहा कि इस चित्र के समान एक स्त्री तो यहीं रहती है । राजा ने कहा उसे शीघ्र बुलाया जाय । उसी समय वह व्यक्ति भी आ पहुँचा, जिसने अवन्तिका को न्यास-रूप में पद्मावती को दिया था । राजा ने कहा कि इसकी बहिन इसको झट लौटा दी जाय । तब तक पद्मावती अवन्तिका को यह कहते ले आई कि आप के भाई लेने के लिए आ गये हैं । वसुन्धरा ने अधिकरण बन कर वासवदत्ता को देखा और चिल्ला पड़ी कि यह तो वासवदत्ता है । राजा ने कहा कि तब तो ये अन्तःपुर में जायें । प्रच्छन्न यौगन्धरायण ने कहा कि कहाँ अन्तःपुर में जायेंगी ? ये तो मेरी बहिन हैं । राजा ने कहा कि यह महासेन की पुत्री है । उत्तर मिला यौगन्धरायण का—

भरतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ।। ६·१६

राजा ने कहा कि तब तो ये जवनिका हटायें । इनको पहचाना जाय । तभी यौगन्धरायण बोल पड़ा—स्वामी की जय हो और वासवदत्ता ने कहा—आर्यपुत्र की जय हो । राजा को विश्वास नहीं पड़ रहा था कि यह सब क्या है । उसने कहा—

१· इस वक्तव्य का प्रतिज्ञायौगन्धरायण में अङ्गारवती के वासवदत्ता के अपहरण के पश्चात् आत्महत्या करने के लिए उद्यत होने वाली घटना से थोड़ा विरोध पड़ता है।

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥ ६·१७

यौगन्धरायण ने अपनी सारी योजना का मन्तव्य प्रकट किया । पद्मावती को लेकर सभी उज्जयिनी की ओर मिलन का संवाद प्रत्यक्ष कराने के लिए चल पड़े ।

समीक्षा

स्वप्नवासवदत्त का इतिवृत्त प्राक्कलित कोटि का है, जिसमें सारा वृत्तात्मक संविधान प्रधान पात्र के द्वारा पूर्वनियोजित है ।[1] यौगन्धरायण का अधोलिखित वक्तव्य इसका प्रमाण है—**अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्र भवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वास-स्थानं भविष्यति ।**

वासवदत्ता जली, पर उसकी हड्डी भी आग में न मिली। उसके गहने राजा को मिले—यह सब कथानक में असमंजसित रहता है । पाठकों को आरम्भ से ही यह ज्ञात रहता है कि वासवदत्ता जीवित है ।

स्वप्नवासवदत्त की कथा में आदि से अन्त तक पाठक की जिज्ञासा जागरित रहती है। पत्नी का इतना बड़ा त्याग कदाचित् किसी अन्य कथा में कहीं नहीं मिलता है । यही कारण है कि इसको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई । इसमें भास की कथा के कुछ तत्त्व विशेष रूप से उभरे हैं। यथा (१) किसी राजकुमारी के लिए कोई राज-कुमार अभ्यर्थी हो और उसे कुछ समय तक विचाराधीन रखकर अस्वीकार किया जाय। इसमें प्रद्योत राजकुमार पद्मावती के द्वारा अस्वीकार किया गया ।[2] (२) किसी रानी और मन्त्रियों के परामर्श से राजा को बिना बताये हुए योजनायें बनाकर उन्हें कार्यान्वित करना । इस नाटक में यौगन्धरायण और रुमण्वान् नामक मन्त्री वासवदत्ता से परामर्श करके प्रायः पूरे नाटक के कथानक की योजना कार्यान्वित करते हैं।[3]

---

१. इस प्रकार का प्राक्कलित संविधान भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण और विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में प्रत्यक्ष हैं। इनमें सभी घटनायें कतिपय पात्रों के द्वारा पूर्व-नियोजित हैं । इस प्रकार के संविधान की दृष्टि से मुद्राराक्षस अनुत्तम कृति है ।

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण और अविमारक में काशिराजकुमार को अस्वीकृत किया गया है । यदि इन रूपकों में राजकुमार के प्रत्याख्यान का यह कथांश नहीं रखा गया होता तो कोई क्षति नहीं थी । इससे यही प्रमाणित होता है कि भास को इस प्रकार की संघटना प्रिय थी या काशिराज से भास की खटपट थी ।

३. प्रतिमा में कैकेयी और मन्त्री राम के वनवास और भरत के राजपद पाने की योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करते हैं । प्रतिज्ञायौगन्धरायण में राजमाता और यौगन्धरायण योजना बनाते हैं । आगे की योजनायें विदूषक और रुमण्वान् के साथ बनती हैं ।

(३) नायक और नायिका को बहुत दिनों तक वियुक्त रखकर उनमें से किसी एक के सोते समय अज्ञात रूप से दूसरे से मिलाना। इस रूपक में वासवदत्ता सोते हुए उदयन के बिस्तर पर उसे न जानती हुई सहशायिनी हो जाती है।[1] (४) अपना काम बनाने के लिए अग्निप्रदाह की योजना। इसमें लावाणक ग्राम में आग लगा कर यौगन्धरायण और वासवदत्ता के जल मरने की मिथ्या बात उड़ाई जाती है।[2] (५) कथा के विकास में चित्रादि कलाओं का योग। इसमें उदयन और वासवदत्ता के वैवाहिक चित्र के द्वारा वासवदत्ता की पहचान कराई गई है।[3] वासवदत्ता जीवित है--इसका ज्ञान राजा को तीन क्रमों में भास ने सम्भवतः इसी लिए कराया है कि एकाएक उसके जीवित होने की बात सुनकर वह आपा न खो बैठे।

स्वप्नवासवदत्त का बीज अधोलिखित यौगन्धरायण के वाक्य में है--

श्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः। १.४

और फल है राजा के नीचे लिखे कथन में--

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥ ६.१८

भास का कथावस्तु-सम्बन्धी शिल्प स्वप्नवासवदत्त में नितान्त उच्चकोटिक है। इसकी कुछ विशेषतायें अधोलिखित हैं। (१) पात्रों को प्रच्छन्न रखना। भास के शब्दों में **अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते**। चतुर्थ अङ्क में वासवदत्ता को पुरुषान्तरित कर लेने पर उसके प्रति उत्सुकता और बढ़ जाती है कि अब वह क्या और कैसे करती है, क्या कहती है और कैसे एकाएक अपने को नई परिस्थिति में अनुकूलित करती है। इस समस्या पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्रच्छन्न पात्र तो अभिनय करता है और उस अभिनय का अभिनय रंगमंच पर होता है। स्वप्न-

---

१. अविमारक में भी नायिका सोई रहती है और नायक अज्ञातरूप से उसका सहशायी हो जाता है। चारुदत्त में भी शयन करते हुए नायकादि की चर्चा है, किन्तु अन्य प्रसङ्ग में।

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण और पंचरात्र में भी आग लगने का दृश्य सविशेष है। भास को इसकी कल्पना महाभारतीय लाक्षागृह दाह से हुई होगी।

३. पंचरात्र में दुर्योधन द्रौपदी के चीरहरण का दृश्य देखकर अपने को कृष्ण की ओर से उदासीन रखता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नायक-नायिका का चित्र बनाकर उनका विवाह कराया गया है। प्रतिमा में दशरथ की मूर्ति देखकर भरत को उनकी मृत्यु का समाचार ज्ञात होता है। चारुदत्त में वसन्तसेना नायक का चित्र बनाती है, जिसकी प्रशंसा उसकी सखियाँ सादृश्य की विशेषता के आधार पर करती हैं।

वासवदत्त में वासवदत्ता के अतिरिक्त यौगन्धरायण ऐसा पुरुषान्तरित पात्र है। इनमें से प्रच्छन्न वासवदत्ता का कहीं-कहीं अभिनयात्मक द्वित्व प्रकट होता है। वह अपने को परिव्राजक की भगिनी-रूप में पूर्ण रूप से ढाल चुकी है। फिर भी वह कहीं भूल पाती है कि मैं उदयन की महारानी हूँ। उसकी दूसरी भूमिका 'आत्मगतम्' द्वारा परम रोचक बन पड़ी है। यथा—

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः।

चेटी—भर्तृदारिके, साश्रुपाताः खलु आर्याया दृष्टिः।

वासवदत्ता—एष खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः।

वासवदत्ता के 'आत्मगतम्' कोटि के वक्तव्य कला की दृष्टि से अनुपम हैं। वासवदत्ता अपने प्रियतम के अपने वियोगजनित दुःख से छुटकारा पा जाने पर प्रसन्न है। अपनी और प्रियतम को परिस्थिति पर विचार करने से उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं। इसका कारण पूछने पर उसे झूठ बोलना पड़ता है कि पराग नेत्रों में गिर पड़े हैं।

(२) अपनी प्रियतमा वासवदत्ता को उदयन मृत समझता है। ऐसे पति के विचार वासवदत्ता को आड़ से सुनने को मिलते हैं—यह है 'भास का कथानक-शिल्प।'[1] उदयन कहता है—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन् मे मनो हरति॥ ४·४

वासवदत्ता ने इसी प्रकरण में कहा है—**ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते।**

(३) प्रियतमा की किसी वस्तु को उसकी वियोगावस्था में देखकर नायक का उसका ध्यान आने पर सकरुण होना। इस नाटक में वासवदत्ता की घोषवती वीणा वियोगावस्था में उदयन को मिलती है और वह कहता है—

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया॥ ६.३

(४) यथास्थान समुदाचार का आख्यान कवि का अभिप्रेत विषय है।[2] जब कंचुकी महासेन का सन्देश उदयन को सुनाता है, उदयन पहले आसन से उठकर कहता है **किमाज्ञापयति महासेनः।** फिर जब उज्जयिनी से आये हुए कञ्चुकी और धात्री से

---

१. ऐसी ही योजना कुन्दमाला और उत्तररामचरित में कार्यान्वित की गई है।

२. समुदाचार शब्द का अनेकशः प्रयोग इस नाटक में मिलता है। यथा

(१) द्वितीय तथा चतुर्थ अङ्कों में आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः;

(२) षष्ठ अङ्क में सखीजनसमुदाचारेणाजानन्त्यातिक्रान्तः समुदाचारः।

मिलना है तो वहाँ पद्मावती को होना ही चाहिए—यह समुदाचार निभाने के लिए राजा जाने के लिए उद्यत पद्मावती को रोक देते हैं और कहते हैं—**कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति ।**

(५) घटना-क्रम की भावी प्रवृत्तियों का ज्ञान स्थान-स्थान पर दर्शकों को कराते हुए भास ने उनकी उत्सुकता को उद्बुद्ध रखा है। नाटक के आरम्भ में ही यौगन्धरायण के मुख से सूचना दी गई है—

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।[1]
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।। १.४

इसी अङ्क में आगे चल कर वह पुनः कहता है—**एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।**

छठें अङ्क में कंचुकी की वासवदत्ता के कुशल की कामना भी भावी घटना का द्योतक है।[2]

स्वप्नवासवदत्त में पात्रों की संख्या नाट्योचित है और अधिक नहीं है। इसमें नायक कोरा धीरललित नहीं है।[3] वह वीर भी है। उसके वीरोचित वाक्य हैं—

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ।। ५,१३

ऐसा प्रतीत होता है कि भास राजा को नायक बनाकर उसकी वृत्तियों को कोरी शृङ्गारित बनाने के पक्ष में नहीं थे। ऐसे नायक को यथासमय क्षत्रियोचित वीरता से मण्डित होना ही चाहिए। स्वप्नवासवदत्त अमात्य और नायिका-प्रधान नाटक है। नायिका-प्रधान से तात्पर्य है नायिका के उपक्रम से नाटक की घटनाओं का आदि से अन्त तक प्रवर्तन। इसमें वासवदत्ता कर्मण्य है और उदयन राजा मात्र है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में भास ने उनकी विशेषतायें प्रकट की हैं। उनकी वासवदत्ता और पद्मावती में कौन अधिक अच्छी है—इस प्रकरण में हास्य के साथ ही उनकी विशेषतायें निष्पन्न हुई हैं। अन्तर स्पष्ट होता है उस प्रकरण में, जहाँ नायक वासवदत्ता के वियोग में विवश है। इस समय उदयन के नेत्र अश्रुपूर्ण थे।

---

१. भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नायक न होते हुए भी उदयन को वीरता से मण्डित किया है, यद्यपि वह धीरललित कोटि का पात्र है।

२. छठें अंक में कंचुकी ने कहा है—राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ।

३. नाट्यशास्त्र के अनुसार धीरललित नायक नाटक में अपवादात्मक है।

यही अवसर था कि पद्मावती और वासवदत्ता वहाँ से खिसक सकती थीं। इसके लिए पद्मावती ने प्रस्ताव किया, किन्तु वासवदत्ता ने उसे भी रोकते हुए कहा—

एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्त्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।

अर्थात् स्वामी के पास तुमको रहना ही चाहिए, जब वे उत्कण्ठित हैं।

भास की वासवदत्ता मूलतः और स्वभावतः स्त्री है। समय की आवश्यकता देख कर वह राजनीति में भले बहती है। वह अपने मानस के अन्तस्तम से स्वगत और एकोक्तियों में आत्मा की पुकार व्यक्त करती है। यथा, पद्मावती का उदयन से विवाह सुनकर कहना——अत्याहितम्। वासवदत्ता का चारित्रिक द्वित्व भास की कला की अपूर्व परिणति है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता है कि पद्मावती नहीं जानती कि वह वासवदत्ता से बात कर रही है और वासवदत्ता को यह ज्ञात है कि मैं पद्मावती से बात कर रही हूँ। इस चारित्रिक साधना से स्वप्नवासवदत्त का चतुर्थ अङ्क कितना रमणीय बन पड़ा है।

विदूषक अन्य नाटककारों की अपेक्षा भास को अधिक प्रिय रहा है। वास्तव में भास के किसी नाटक में कथावस्तु के विकास से विदूषक को सम्बंधित कर देना सम्भव नहीं है, किन्तु उसके बिना भास की प्रतिभा का सर्वोच्च विकास नहीं हो सका। ऐसा लगता है कि भास अपने प्रारम्भिक रचना-काल में अधिक गम्भीर तथा शृङ्गार और हास्य से प्रायः अछूते थे। उस समय उनकी प्रतिभा ऐतिहासिकता की सीमित परिधि में पूर्ण रूप से खिल नहीं पाई। उन्हें कालान्तर में यह प्रतीति हुई कि मनोरञ्जन-प्रधान अभिनय के लिए गम्भीरता और ऐतिहासिकता से थोड़ी दूर रहने की आवश्यकता है। पहले वे मनोरञ्जन के लिए पात्रों की प्रच्छन्नता आदि साधनों को अपना कर किञ्चित् हास्य प्रवृत्ति लाते थे, पर इतने से सन्तुष्ट न होकर उन्होंने अन्त में विदूषक की भूमिका जोड़ी। विदूषक उनके परवर्त्ती रूपकों में नायक की छाया की भाँति उसके साथ लगा रहता है और उसकी श्रृंगारित वृत्तियों को प्रवर्तित करता है। इन रूपकों में जो विशुद्ध हास्य का प्रतिभास है, उसी को देखते हुए कहा गया——

'भासो हासः' आदि।

भास के विदूषक बहुत उच्च कोटि के पात्र हैं।[1] इस नाटक के चतुर्थ अङ्क की सारी रसमयता की सृष्टि के लिए वही प्रेरक है।

---

१. अविमारक में भास ने सर्वप्रथम विदूषक पात्र की कल्पना की। इसमें विदूषक के विषय में नायक का कहना है——

गोष्ठीषु हासः समरेषु योधः शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम्॥ ४.२६

भास ने अपने चरित्र-चित्रण की कला से पात्रों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर दी है। घोषवती वीणा, उज्जयिनी की संस्मृति, विदूषक का नायिकाओं के विषय में राजा से प्रश्नादि के प्रकरण पात्रों के हृदय तक पाठकों की पहुँच कराते हैं।

स्वप्नवासवदत्त में रस-सम्बन्धी विप्रतिपत्ति का समाधान एक कठिन समस्या है। इसका अङ्गी रस करुण है अथवा शृंगार? करुण को अङ्गी रस मानने में अड़चन आती है कि नाट्यशास्त्र के अनुसार करुण को अङ्गी बनाना समीचीन नहीं है। फिर भी उत्तररामचरित में यदि करुण अङ्गी है तो अन्य नाटकों में करुण का प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। वास्तव में इस नाटक में नायक उदयन है और नायिका वासवदत्ता है, जो नायक की दृष्टि में मृत है। नायक को नायिका के वियोग-जनित हृद्गत भावों का उद्गार ही इस नाटक के प्रथम, चतुर्थ और पंचम अङ्कों में निबद्ध है। वह सदैव वासवदत्ता के लिए रोता है। पद्मावती ने कहा है—**वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदिति।**

राजा के मन में सदैव वासवदत्ता का ध्यान बना रहता है। उसने विदूषक से कहा है—

सर्वं तत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै।

तभी विदूषक ने कह दिया कि वह अब कहाँ रही? राजा के मुँह से करुण का उद्गार है—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥ ४.६

पाँचवें अङ्क में विदूषक राजा को कथा सुनाने के समय जब उज्जयिनी नाम नगरी से आरम्भ करता है तो उसे राजा यह कह कर रोक देता है—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
वाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः॥ ५.५

फिर वहीं से विदूषक के चले जाने पर वासवदत्ता आ गई। तब तो राजा का स्वप्न में वासवदत्ता के लिए विलाप करते हुए कहना है—**हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये देहि मे प्रतिवचनम्।**

घोषवती वीणा के पुनः मिलने पर उदयन एक बार और उसे देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं।

छठें अंक में राजा कंचुकी से कहता है—

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि॥ ६.११

प्रश्न है कि क्या उपर्युक्त रस-निष्पत्ति को विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत रखा जा सकता है ? कदापि नहीं । शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार यह सारा करुण है । ऐसी स्थिति में उपर्युक्त करुण के समक्ष शृङ्गार के प्रसंग इस नाटक में नगण्य हैं ।[1]

इस मत के समर्थन में अभिनवगुप्त की तापस वत्सराज में करुण मानने की चर्चा सुसंगत है । अभिनवगुप्त ने लिखा है—

शृंगारानन्तरं नियमेन करुणः । व्याप्रियते त्वसौ तज्जन्मनि यथा तापसवत्सराजचरिते वासवदत्तादाहात् वत्सराजस्य ।[2]

विदूषक की प्रवृत्तियाँ हास्य रस का स्रोत हैं । यह अपने अटपट व्यवहार से तो हास्य का सर्जन करता ही है, साथ ही झूठ बोलकर भी हँसा देता है । राजा को झूठे ही साँप-साँप कह कर उसने चौंका दिया था ।

विदूषक के हास्य से उच्चतर है भास के द्वारा प्रस्तुत वासवदत्ता के लिए वाग्युद्ध का अभिनय, जिसमें यौगन्धरायण कहता है कि वह मेरी बहन है और उदयन कहता है कि यह मेरी पत्नी है ।

स्वप्नवासवदत्त में भावातिरेक होने पर उससे उपरत होने की परिस्थितियाँ निर्मित की गई हैं । राजा वासवदत्ता की स्मृति में निमग्न होने से अति दुःखी हैं । उसी समय महाराज दर्शक का उन्हें सन्देश मिलता है कि वत्स का राज्य जीत लिया गया है । इसी प्रकार जब उदयन घोषवती वीणा को देखकर वासवदत्ता की स्मृति से सकरुण थे, तभी उन्हें उज्जयिनी से आये हुए कंचुकी और धात्री के द्वारा सास और ससुर का सन्देश सुनने को मिला ।

स्वप्नवासवदत्त में भास की शैली का सबसे अधिक परिमार्जित रूप मिलता है । भास की भाषा सरल और सुबोध है । वाक्य छोटे-छोटे हैं । दो-चार पदों से अधिक के समास भी नहीं हैं । कहीं-कहीं शब्दालङ्कारों की छटा है । यथा—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढा ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ।। ४.३

इसमें म की चार बार अनुवृत्ति है प्रथम चरण में और व की तीन बार द्वितीय चरण में । स्वरों का अनुप्रास भी उपर्युक्त पद्य में है । म की पुनरावृत्ति के साथ ही आ की पुनरावृत्ति से संगीत-तत्त्व का सन्निवेश प्रत्यक्ष है । स्वरात्मकानुप्रास का विन्यास

१. इसमें कोई सन्देह नहीं कि वासवदत्ता की भावप्रवृत्तियाँ विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आती हैं, क्योंकि वह जानती थी कि मेरा वियोग अस्थायी है । फिर भी नायक से निस्यन्दित करुण की धारा में संगमित यह शृङ्गार अङ्ग बन कर ही रहा, अङ्गी नहीं ।

२. अभिनवभारती षष्ठाध्याय कारिका ३२ की व्याख्या से ।

नीचे लिखे पद्य में उत्कृष्ट है—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ।। १.६

इस पद्य के प्रथम तीन चरणों में श्रा की पुनरावृत्ति श्रनुप्रासात्मक है।

जिन ऐश्वर्यशाली दृश्यों से नेत्र श्रौर मानस को परितृप्ति हो, उनके लिए पद्य का माध्यम श्रपनाया गया है, भले ही उनके वर्णन में रस, श्रलंकार श्रौर व्यञ्जना का उत्कर्ष न हो। यथा,

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ।। १.१२

भास को पद्य प्रिय है। वे इतिवृत्तात्मक वाक्यों को भी पद्यबद्ध कर देते थे, यदि कथानक में उनका विशेष महत्त्व होता था। रूपक में साधारणतः पद्यों का प्रयोग भावुकता-प्रधान या गीतात्मक श्रभिप्रायों की रचना के लिए ही होना चाहिए। किन्तु भास के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं है। ऐसे पद्यों में श्रर्थगौरव की विशेषता साधारणतः वर्तमान है। यथा,

श्रनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ।। ४.५

हाँ, वे प्राकृत में पद्य लिखना नहीं चाहते थे। यही कारण है कि दूसरे श्रौर तीसरे श्रङ्क में पद्य नहीं है, क्योंकि उनमें केवल स्त्री पात्र हैं श्रौर स्त्रियाँ संस्कृत नहीं बोलतीं।

भास की रचनाश्रों में श्रर्थालङ्कारों की बहुलता नहीं है। श्रर्थान्तरन्यास के द्वारा श्रपनी शैली को उन्होंने कहीं-कहीं प्रभविष्णु बनाया है। यथा,

कातरा ये ऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।। ६.७

इसमें राजनीति-दर्शन का एक सिद्धान्त कवि को निःसंशय रूप से प्रतिपादित करना था। इसी प्रकार शैली को सशक्त बनाने वाले दृष्टान्त का प्रयोग है। यथा,

कः कं शक्तः रक्षितुं मृत्युकाले ।
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।। ६.१०

भास के उपमान साधारणतः वक्ता श्रौर श्रोता की साक्षात् ज्ञानपरिधि से चुने गये हैं, जैसा नीचे की तालिका से स्पष्ट है।

उपमान		उपमेय
चक्रारपंक्ति	१.४	भाग्यपंक्ति
शरच्छशाङ्क	४.७	काशपुष्पलव
यष्टि	५.१	अङ्ग
पद्मिनी	५.१	अवन्तिनृपतितनूजा
महार्णव	५.१३	युध्
तरङ्ग	५.१३	बाण

भास के युग में लौकिक जीवन में चित्रादि कला का महत्त्व सविशेष प्रतीत होता है। उन्होंने अपने अनेक रूपकों में अनावश्यक होने पर भी इन कलाओं की सोत्कर्ष प्रवृत्तियों की चर्चा की है। स्वप्नवासवदत्त में नायिका के आसन की कल्पना की गई है कि जिस लकड़ी के पर्वत पर वह बैठी होगी, उस पर मृग और पक्षियों के चित्र बने होंगे।[1] प्रतिज्ञायौगन्धरायण में चित्रफलक पर नायक और नायिका को निविष्ट करके उनका विवाह सम्पन्न करने का वृत्तान्त आ चुका है। उस की पुनरावृत्ति करना, और उसको माध्यम बनाकर वासवदत्ता की पहचान कराना स्वप्नवासवदत्त में आवश्यक नहीं था। वासवदत्ता को धात्री अधिकरण बनकर पहचान सकती थी, और वह वासवदत्ता की तथाकथित मृत्यु के पश्चात् केवल कुशलक्षेमनिवेदिका बनकर उदयन को आश्वस्त करने के लिए आ सकती थी। चित्र की उपर्युक्त सारी चर्चा से यही व्यंग्य है कि जैसे किसी की गृहभित्तियाँ चित्रित होती थीं, वैसे काव्यों को भी चित्रचर्चा-मण्डित होना ही चाहिए था।[2]

नायिका के उज्जयिनी में बने चित्र में स्निग्ध वर्ण और मुखमाधुर्य की विशेषता थी, जैसा नीचे लिखे श्लोक से व्यंग्य है—

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम्।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥ ६.१३

भास की शैली विशेषण-प्रधान है। जिस प्रयोजन से अन्य कवि अलंकारों की लड़ी गूँथते हैं, उसकी पूर्ति भास वर्णनात्मक विशेषणों से करते हैं। यथा,

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।

---

१. 'आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकम्' इत्यादि चतुर्थ अङ्क में।

२. परवर्ती युग में अनेक नाटकों और महाकाव्यों में आवश्यक बनाकर अथवा आवश्यकता न होने पर भी चित्रादि की चर्चा की गई है। उन पर भास का प्रभाव या युग का प्रभाव इस प्रवृत्ति का कारण है। इस प्रवृत्ति के उद्भावक भास प्रतीत होते हैं।

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १.१६

इस पद्य में खगा:, अग्नि: और रवि: की वर्णना उनके लिए प्रयुक्त विशेषण वासोपेता:, अवगाढ:, और संक्षिप्तकिरण: से की गई है।

भास की रचना में वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण और कैशिकी वृत्ति का लावण्य सर्वजनसुख-बोधाय है। भास के नाटक की वाणी हृदय की वाणी है, बुद्धि की नहीं।

भास की प्रभविष्णुता का आधार उनकी सटीक सूक्तियाँ भी हैं, जो गद्य और पद्य दोनों प्रकार के वाक्यों में प्रस्फुटित हुई हैं यथा—

चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। १.४
प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। १.७
सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम। प्रथमाङ्क से
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ ४.६

परस्परगता लोके दृश्यते तुल्यरूपता ॥ ४.१४
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते। ६.७
कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ ६०
साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। षष्ठ अंक से

ऐसी सूक्तियों से रचना बौद्धिक स्तर पर प्रभावशालिनी बनती है।

स्वप्नवासवदत्त में एकोक्तियाँ कम हैं। तृतीय अङ्क के आदि और अन्त में वासवदत्ता की एकोक्ति (Soliloquy) छोटी, किन्तु अनूठी है।

स्वप्नवासवदत्त में ५७ पद्य हैं, जिनमें २६ श्लोक या अनुष्टुप् छन्द में हैं। शेष में से वसन्ततिलका में ११, शार्दूलविक्रीडित में ६, आर्या और शालिनी में ३, पुष्पिताग्रा और शिखरिणी में २ तथा उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वैश्वदेवी और हरिणी में १ पद्य हैं। यह नाटक छन्दोवैविध्य से सुमण्डित है। बड़े छन्दों में शार्दूलविक्रीड़ित कवि को प्रिय रहा है।

स्वप्नवासवदत्त के कुछ दोषों की चर्चा की जाती है। कीथ के अनुसार छठें अंक में वासवदत्ता को उदयन आरम्भ में नहीं पहचानता। वह न पहचाने—इसके लिए कोई मञ्चीय व्यवस्था होनी चाहिए थी। कीथ का यह विचार साधार नहीं प्रतीत होता। इस नाटक में पहले ही कहा गया है कि वासवदत्ता पर पुरुष-दर्शन नहीं करती

थी। वह सर्वथा अवगुण्ठनवती थी और धात्री ने भी उसकी पहचान अवगुण्ठन हटा कर ही की होगी।[1]

स्वप्नवासवदत्त में ज्यों ही वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार पद्मावती आदि को मिलता है, त्यों ही उससे विवाह की उत्सुकता कठोर सी लगती है। कहाँ करुण की प्रवृत्ति है कि नायिका के वियोग में नायक सन्तप्त है और कहाँ शृङ्गार का उद्बोध कि पद्मावती के हाथ पीले हों--यह अनुचित है। यदि प्रथम अङ्क के पश्चात् पद्मावती के विवाह की उत्सुकता व्यक्त की जाती तो इस दोष का परिहार हो जाता। कथानक के अन्तिम अङ्क के अन्तिम भाग में यौगन्धरायण और राजा का संवाद अनाटकीय है। कथानक का अन्त वहीं हो जाना चाहिए था, जहाँ पद्मावती कहती है--अनुगृहीतास्मि।

कौशाम्बी का राजा मृगया करते हुए लगभग ४०० मील दूरस्थ उज्जयिनी के राजा द्वारा पकड़ा जाये, यह भी कुछ कठिनाई से समझ में आने वाली बात उचित नहीं प्रतीत होती।

स्वप्नवासवदत्त में व्याकरण की दृष्टि से चिन्त्य कुछ प्रयोग हैं। यथा--

(१) स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः १.५ में त्या के स्थान पर सन्धि त्य होना चाहिए।

(२) प्रथम अंक में ब्रह्मचारी आपृच्छामि कहता है। उसे आपृच्छे कहना चाहिए। प्रच्छ् धातु आ उपसर्ग से संयोजित होने पर आत्मनेपद हो जाती है। इसी प्रकार इस अंक में यौगन्धरायण को नोत्कण्ठिष्यति के स्थान पर नोत्कण्ठिष्यते कहना चाहिए

(३) प्रथम अंक में यौगन्धरायण कहता है--अपरिचयस्तु न श्लिष्यते मे मनसि। इस वाक्य में श्लिष्यति होना चाहिए। रुह्यते (१·१०) के स्थान पर रोहति होना चाहिये। इनमें धातुओं के पद अशुद्ध हैं।

(४) पञ्चम अंक में राजा कहता है--धरते खलु वासवदत्ता। धरते के स्थान पर ध्रियते होना चाहिए था। धृ धातु का प्रयोग भ्वादि गण में नहीं होना चाहिए था।

(५) प्रथम अंक में ब्रह्मचारी कहता है--अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये। यहाँ विश्रमयिष्ये के स्थान पर विश्रमिष्यामि होना चाहिए था।

---

१. भास के अनुसार राजदाराओं को साधारण परिस्थितियों में कोई देख नहीं सकता था, जैसा प्रतिमा १.२६ से स्पष्ट है।

(६) महार्णवाभे युधि नाशयामि १.१३ में युध् स्त्रीलिंग है। उसे पुंल्लिंग-वत् प्रयोग करना ठीक नहीं।

इनके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर तुमुन् और त्वा में अन्त होने वाले पदों का कर्ता कुछ अन्य ही रखा गया है और क्रिया का कर्ता कुछ अन्य ही है।

भास ने अनेक नाट्यशास्त्रीय विधानों की अवहेलना की है। यथा, 'अङ्कों में केवल दृश्य होना चाहिए, सूच्य नहीं' इस नियम को वे और परवर्ती नाटककार भी नहीं मानते। उन्होंने प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी के द्वारा लावाणकदाह का वर्णन कराया है। वह दृश्य न होने के कारण अङ्क में सन्निविष्ट नहीं किया जाना चाहिए था, अपितु अर्थोपक्षेपक द्वारा सूचित किया जाना चाहिए था।

उपजीव्यता

भास की उपजीव्यता परवर्ती युग में सविशेष रही है। कीथ ने कालिदास की रचनाओं में स्वप्नवासवदत्त का अनुहरण दिखाया है। यथा—

स्वप्नवासवदत्त	अभिज्ञानशाकुन्तल
१. प्रथम अङ्क में आश्रम की तापसी वासवदत्ता का स्वागत करती है और उसे अन्त में धन्यवाद देती है।	१. प्रथम अंक में राजा अनसूया से कहता है—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्
२. कंचुकी भट से कहता है— **न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्**	२. दुष्यन्त सेनापति से कहता है—यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धति तथा निषेद्धव्याः।
३. द्वितीय अङ्क में पद्मावती के विवाह की चर्चा उसकी सखियाँ करती हैं	३. प्रथम अंक में शकुन्तला की सखियाँ उसके विवाह की चर्चा करती हैं।
४. छठें अङ्क में नायिका की वीणा देख कर नायक के हृदय में सकरुण भावावेश होता है। इस प्रसङ्ग में ६.१,२ पद्य हैं	४. छठें अङ्क में नायिका की अँगूठी देख कर नायक का हृदय तज्जनित वियोग से सन्तप्त होता है। इस प्रसङ्ग के ६.११, १३ पद्य हैं

भास के अन्य रूपकों से भी कालिदास की रचनाओं की, विशेषतः अभिज्ञान-शाकुन्तल की, समानतायें देख कर कीथ का कहना है[1]—

There is primafacie the possibility that Kalidasa should be strongly affected by a predecessor so illustrious and of such varied achievement and the probability is turned into a certainty by the numerous coincidences between the two writers.

1. Sanskrit Drama p. 124

कीथ के बताये हुए प्रसङ्गों के अतिरिक्त भी अभिज्ञानशाकुन्तल के अनेक स्थल स्वप्नवासवदत्त से प्रभावित प्रतीत होते हैं। यथा—

(१) स्वप्नवासवदत्त के चतुर्थ अंक में लता की ओट से पद्मावती और वासवदत्ता सुनती हैं कि नायक का नायिका के विषय में क्या भाव है। इस प्रकरण में नायक और विदूषक की बातचीत नायिका के विषय में हो रही है। अभिज्ञान-शाकुन्तल के प्रथम अंक में राजा छिपकर शकुन्तला और उसकी सखियों की बातें सुनता है, फिर छठें अंक में नायक और विदूषक की नायिका के विषय में ऐसी ही बात-चीत हो रही है, जिसे शकुन्तला की सखी सानुमती लता की ओट से सुन रही है, विक्रमोर्वशीय में महारानी लताविटपान्तरित होकर राजा और विदूषक की बातें सुनती है।

(२) वियोग की तीव्र प्रखरता की अनुभूति होने पर दोनों नाटकों के नायकों के समक्ष चित्र प्रस्तुत किया जाता है। कालिदास के रघुवंश पर भी कहीं-कहीं स्वप्न-वासवदत्त की छाया दिखाई पड़ती है। यथा स्वप्नवासवदत्त में—

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि॥ ६.११

रघुवंश में

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥ ८.६७

भास की नाटचकला से बहुत कुछ अनुवासित है महेन्द्रविक्रम का मत्तविलास। रूपक का आरम्भ और अन्त, खरपट और उन्मत्तक आदि भास के रूपक के आदर्श पर मत्तविलास में मिलते हैं।

भास का सविशेष प्रभाव उत्तररामचरित पर पड़ा है। स्वप्नवासवदत्त और प्रतिमा नाटक इस दृष्टि से प्रथम अनुकार्य माने जा सकते हैं। स्वप्नवासवदत्त और उत्तररामचरित की कुछ समानतायें अधोलिखित हैं—

(१) दोनों नाटकों में नायक सोचते हैं कि नायिका मर गई, यद्यपि वे जीवित हैं।

(२) स्वप्नवासवदत्त में नायक को सोते समय नायिका का हस्तस्पर्श प्राप्त होता है और वह विदूषक से कहता है—**धरते खलु वासवदत्ता।** उत्तररामचरित में मूर्छित राम का स्पर्श सीता करती है और राम वासन्ती से कहते हैं—**किमन्यत्। पुनरपि प्राप्ता जानकी।** वासन्ती के यह कहने पर कि '**अयि देव, रामभद्र क्व सा।**' राम उत्तर देते हैं—**अपि खलु स्वप्न एष स्यात्।**

(३) दोनों नाटकों में चित्र का उपयोग किया गया है, स्वप्नवासवदत्त में नायक-नायिका के पुनर्मिलन के प्रसङ्ग में और उत्तररामचरित में नायक-नायिका को एक दूसरे से वियुक्त करने के प्रसङ्ग में।

परवर्ती युग में छायानाटय प्रबन्ध के लिए भास और भवभूति के ये चित्र-प्रकरण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। तीन प्रकार के छायानाटचों में चित्रात्मक छाया-नाट्य की चर्चा सर्वप्रथम तेरहवीं शती के उल्लाघराघव में है।

(४) दोनों नाटकों में नायिकाओं को नायक से अदृश्य रह कर अपने विषय में नायक के सकरुण प्रणय के उद्‌गार सुनने को मिलते हैं। भास इस नाट्य-विधान के परम गुरु हैं।

भास की कुछ शब्दों के प्रति विशेष अभिरुचि रही है, जैसा उनके अनेक रूपकों में उनके वारंवार प्रयोग से प्रमाणित होता है। चन्द्र और उसके पर्यायवाची शब्द चन्द्र-लेखा, शरच्छशांक, उदयनवेन्दु आदि में मिलते हैं। कवि की धर्माभिरुचि उसकी समुदाचार-प्रवणता और धर्मप्रिया, धर्मार्थ, धर्माभिराम-प्रिया, दृष्टधर्मप्रचारा आदि स्वप्नवासवदत्त के प्रथम अंक में प्रयुक्त पदों से प्रमाणित होती है। अन्य कई रूपकों में भास ने 'गो–ब्राह्मण-हिताय' इस धर्मघोष को महाभारत की परम्परा पर मुखरित किया है।

चारुदत्त

प्राचीन भारत में नागरक का जीवन किस प्रकार सम और विषम परिस्थितियों में उत्थान और पतन की ओर प्रवृत्त हो सकता था—यह चारुदत्त नामक प्रकरण में कथा के माध्यम से निरूपित किया गया है। यह रूपक अधूरा मिलता है। इसमें सम्प्रति चार अंक हैं। इसके आधार पर परवर्ती युग में शूद्रक ने मृच्छकटिक को उप-बृंहित किया।[१]

कथानक

नायक चारुदत्त के विभवहीन हो जाने पर उसका विदूषक मैत्रेय अपनी पुरानी गौरवगाथा का निदर्शन कर लेने के पश्चात् गृह-देवताओं की पूजा करते हुए नायक से मिलता है। वह अचिरागत दरिद्रता की चर्चा विदूषक से करता है। यथा,

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति॥

१. डा० पुरुषोत्तम लाल भार्गव का मत है कि मृच्छकटिक के आधार पर चारुदत्त की रचना हुई थी। उन्होंने अनेक उद्धरणों को लेकर सिद्ध किया है कि चारुदत्त के लेखक को पूरे मृच्छकटिक का ज्ञान था।

नायक कभी-कभी अपनी दरिद्रता का विस्मरण करके अपनी वर्त्तमान स्थिति का उदात्तीकरण करता है। यथा—

विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान् ।
सत्त्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ।। १.७

नायक के पड़ोस में सड़क पर नायिका वसन्तसेना नामक गणिका की शकार और विट से मुठभेड़ हो जाती है। किसी प्रकार गणिका उनके चंगुल से बच निकलती है और चारुदत्त के द्वार के एक ओर खड़ी हो जाती है। उसी समय चारुदत्त के घर से उसकी चेटी और विदूषक दीप लेकर चतुष्पथ पर मातृकाओं को बलि देने के लिए निकलते हैं। वसन्तसेना ने दीप बुझा दिया। विदूषक दीप जलाने के लिए घर लौट गया। विट ने जानबूझ कर शकार को चकमा देने वाली वसन्तसेना के स्थान पर रदनिका को पकड़कर उसे शकार को पकड़वा दिया। वह चेटी को त्रास देने लगा। चेटी भौचक्की रह गई। उसने पूछा कि आप लोग यह क्या कर रहे हैं? उसकी बोली सुन कर शकार को शंका हुई कि यह वसन्तसेना नहीं है। तभी विदूषक दीप लेकर आ गया। रदनिका छोड़ दी गई। इस बीच वसन्तसेना चारुदत्त के घर में प्रविष्ट हुई। शकार ने विदूषक से कहा कि चारुदत्त वसन्तसेना को कल प्रातःकाल घर से बाहर कर दे, अन्यथा उससे मेरी अनबन होगी।

इधर चारुदत्त ने अन्धेरे में वसन्तसेना को रदनिका समझा। उसने उसे प्रावारक दिया और अनेक बातें पूछीं, पर कोई उत्तर न मिला। उसी समय रदनिका भीतर आई तो चारुदत्त को ज्ञात हुआ कि कोई महिला घर में घुसी है। वसन्तसेना ने अपना परिचय दिया कि मैं शरणागत हूँ। चारुदत्त ने उसका स्वागत किया। वसन्तसेना ने कहा कि अलंकारों के कारण मैं सताई गई हूँ। आप इन्हें अपने घर में रख लें और मुझे अपने घर पहुँचवा दें। चेटी ने अलंकार रखे। ज्योत्स्ना छिटकने पर विदूषक के साथ वसन्तसेना अपने घर लौट गई।

वसन्तसेना चेटी से चारुदत्त के प्रति अपना गाढानुराग प्रकट करती है। इसी बीच किसी जुआरी से पीछा किये जाते हुए एक संवाहक वसन्तसेना की शरण में आकर अपनी दुर्दशा का वर्णन करता है कि अच्छे दिनों में आर्य चारुदत्त ने मुझे अपनी सेवा का अवसर दिया। उस गुणवान् को छोड़ कर अपने हाथ से किसी अन्य पुरुष का स्पर्श कैसे करूँ? अतएव मैं जुआरी बन गया हूँ और जुए में हार जाने पर मुझसे देय धन प्राप्त करने के लिए जुआरी मेरे पीछे लगा है। वसन्तसेना ने उसे आवश्यक धन देकर जुआरी से मुक्त कराया। वसन्तसेना का चेट उससे अपने पराक्रम की कथा सुनता है कि मैंने मङ्गलहस्ती के आक्रमण से एक परिव्राजक को बचाया है, जिससे प्रसन्न होकर किसी महापुरुष ने अपना दुःशाला मुझे पुरस्कार रूप में दे दिया

क्योंकि उसके पास अन्य कुछ देने को नहीं था। वह वसन्तसेना के घर के समीप से निकला। तभी वसन्तसेना ने देखा कि वह तो चारुदत्त ही है। वह उन्हें एक टक देखती रही, जब तक चारुदत्त आँखों से ओझल नहीं हो गया।

राजमार्ग पर विदूषक और चारुदत्त चलते हुए घोरान्धकार में अपने घर के निकट पहुँच रहे हैं। नायक वीणावादन की प्रशंसा करता है। विदूषक निद्रालु होने के कारण वीणा की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता। वे दोनों अपने घर पहुँचते हैं। वे सोते ही हैं कि चेटी विदूषक से कहती है कि आज से तुम्हें वसन्तसेना के अलंकारों को रखना है। इन्हें लो। विदूषक अलंकार की पेटी को ले लेता है। उसी रात चारुदत्त के घर में सज्जलक नामक चोर सेंध लगा कर प्रवेश करता है। वह आत्म-प्रशंसा करता है——

मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने
निद्रा सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने संसर्पणे पन्नगः।
माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग्देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु संकटे च तिमिरं वायुः स्थले नौर्जले ।। ३.११

चोर ने देखा कि घर में कुछ है नहीं। तभी उसे सोए हुए विदूषक का बड़बड़ाना सुनाई पड़ा कि यह सुवर्ण-भाण्ड लो। चोर उसे लेकर चलता बना। चोरी की बात सबको ज्ञात हुई। चारुदत्त की पत्नी ने निर्णय लिया कि मैं अपनी शतसहस्र-मूल्या रत्नावली वसन्तसेना को बदले में दे दूँगी। उसने उसे दान में विदूषक को दे दिया और कहा कि यह मेरे षष्ठी-उपवास का ब्राह्मण को उपहार है। चेटी ने विदूषक को इस दान का रहस्य बतला दिया कि इसके द्वारा चारुदत्त वसन्तसेना के ऋण से मुक्त होंगें।

वसन्तसेना ने अपने प्रणयी का प्रशंसनीय चित्र बनाया। वह चारुदत्त के प्रेम में विभोर है। तभी उसे लेने के लिए शकार की सवारी आ पहुँचती है। शकार ने उसके लिए अलंकार भी भेजे थे। माता की इच्छा होने पर भी वसन्तसेना ने शकार का अनुग्रह ठुकरा दिया। इसके पश्चात् चोर सज्जलक चुराई हुई अलंकार की पेटी के साथ आता है। वह वसन्तसेना की चेटी मदनिका को निष्क्रय देकर प्राप्त करना चाहता है।[1] वसन्तसेना भी सज्जलक और मदनिका की बातें सुनती है। निष्क्रय के लिए लाए हुए अलंकारों को देखकर मदनिका पहचान जाती है कि ये वसन्तसेना के हैं। वसन्तसेना भी उन्हें देखकर कहती है——ये तो मेरे अलंकारों के समान हैं। चेटी ने पूछा कि ये तुम्हें कहाँ मिले? सज्जलक ने कहा——चोरी करके। मदनिका ने कहा——

१. निष्क्रय वह धन है, जिसे देकर किसी दास-दासी को उसके स्वामी से मुक्त किया जाता है।

मेरे लिए तुम्हारे शरीर और चरित्र दोनों बिगड़े। सज्जलक ने कहा कि इन्हें वसन्तसेना को लौटा दो, किन्तु मदनिका ने कहा कि तुम इन्हें चारुदत्त को ही दे आओ। सज्जलक इसके लिए उद्यत नहीं था। उसे भय था कि कहीं रक्षी पुरुष उसे पकड़ न लें। फिर मदनिका ने कहा कि चारुदत्त की ओर से इसे वसन्तसेना को ही लौटा दो। सज्जलक ने इस योजना को मान लिया। फिर तो मदनिका इस विषय में वसन्तसेना से मिलने के लिए कामदेव-भवन में पहुँची, जहाँ वह पहले से ही पहुँच चुकी थी।

इसी बीच वसन्तसेना के पास चारुदत्त का विदूषक मुक्तावली लेकर आ पहुँचा। वह कहता है कि चारुदत्त आपके अलंकारों को जुए में हार गया। मूल्य-रूप में इस मुक्तावली को ग्रहण करें। वसन्तसेना को परिस्थितिवशात् उन्हें लेना पड़ा। चारुदत्त के महानुभाव के प्रति उसका समादर बढ़ता ही गया। मदनिका को यह प्रकरण नहीं ज्ञात हो सका। वह अपनी पूर्व योजना के अनुसार वसन्तसेना से बोली कि चारुदत्त के यहाँ से आया हुआ कोई पुरुष आप से मिलना चाहता है। फिर तो सज्जलक वसन्तसेना के पास आकर कहता है कि आपकी धरोहर चारुदत्त लौटा रहा है। वसन्तसेना ने कहा कि इन्हें चारुदत्त को दे आइये। आपने इन्हें उनके घर से चुराया है। उसी समय गाड़ी बुलवा कर वसन्तसेना ने मदनिका को अलंकृत करके सज्जलक के के हाथों सौंप कर उन्हें जाने की अनुमति दी। वह भी अपनी चेटी चतुरिका को लेकर चारुदत्त के साथ विहार करने निकल पड़ी।

भास का यह रूपक अधूरा है, क्योंकि, इसमें कथा के जो सूत्र भूमिका और पूर्वार्ध में अनुबद्ध हैं, उनकी परिणति समग्रता में नहीं देखने को मिलती है। प्रतिनायक के प्रयासों का समारम्भ मात्र दिखाई देता है, किन्तु, वह वसन्तसेना को पाने के लिए और किन कुटिल योजनाओं को कार्यान्वित करता है—इसकी चर्चा प्रकरण में नहीं मिलती। कथा के बीजानुसार भाग्यचक्र की उन्मुखता चारुदत्त के भाग्योदय से होना है। वह भी इसमें नहीं दिखाया जा सका है।

समीक्षा

चारुदत्त की कथा भास की प्रतिभा के चरम विन्दु से निःसृत हुई है। रामायण और महाभारत की कथाओं पर आश्रित रहकर भास ने कुछ रूपकों की रचनायें की, फिर महाभारत के वातावरण में पंचरात्र की रचना की। इसके पश्चात् भास की रचना-काल का उत्तरार्ध आता हैं, जिसमें उन्होंने लोक-कथाओं का आधार लेकर स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण में बृहत्कथा की कथाओं को कल्पना-द्वार से उपबृंहित किया। इसी समय उनकी कल्पना का प्रौढ पुष्प अविमारक और चारुदत्त में परिणत हुआ। चारुदत्त की अपूर्णता से यह सम्भावना की जाती है कि यह भास की अन्तिम रचना है।

चारुदत्त का बीज है—

भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति। १.५

चारुदत्त के इन चार अंकों में धन जाने का क्रम प्रवर्तित है। चारुदत्त का प्रावारक चला जाता है उपहार रूप में, उसके घर से वसन्तसेना का गहना चोरी चला जाता है और परिणामतः उसकी पत्नी की सहस्रमूल्या मुक्तावली भी चली जाती है और सम्भवतः उत्तरार्ध यदि कभी भास ने लिखा हो तो चारुदत्त का यश भी उसमें क्षीण कर दिया गया हो और उसके प्राण लेने की योजना भी प्रवर्तित की गई हो, जो बीच ही में रुक गई हो और उसे पुनः सर्वस्व की प्राप्ति हुई हो।

चारुदत्त में चार प्रकरियाँ हैं—(१) रदनिका की शकार से मुठभेड़ (२) संवाहक की वसन्तसेना की शरण में पहुँचकर याचना और जुआरी से छुटकारा पाना (३) सज्जलक का चारुदत्त के घर में चोरी करके वसन्तसेना से मदनिका को वधू-रूप में पाना (४) चेट का परिव्राजक को हाथी के आक्रमण से बचाना। इस प्रकार की प्रकरियों की भास के अन्य रूपकों में इतनी प्रचुरता नहीं है।

परवर्ती युग में कई अन्य महान् नाटककारों के द्वारा अपनाई गई भास की कुछ आख्यानात्मक विशेषतायें इस रूपक में निवेशित हैं यथा (१) स्वप्न को प्रमुखता प्रदान करना। नायक और विदूषक सोये हैं। विदूषक स्वप्न में बड़बड़ाता है। वह सज्जलक से स्वप्न में ही बातें करता है और उसे वसन्तसेना की धरोहर दे देता है। इस प्रकरण में महत्त्वपूर्ण है सज्जलक की प्रच्छन्नता या उसको भ्रान्तिवश चारुदत्त समझ लेना। (२) ओट से बातें सुनना। सज्जलक और मदनिका बातें करते हैं, जिसमें सज्जलक की चोरी और चारुदत्त का कुशल उसे ज्ञात होते हैं। (३) मनगढन्त बातें बना लेना, जिससे सत्य का दुराव हो। सज्जलक गहना तो चुरा कर लाता है, किन्तु मदनिका से सत्परामर्श पाकर वह वसन्तसेना से कहता है कि चारुदत्त ने इसे मेरे द्वारा भेजा है कि मैं इस धरोहर को आपको लौटा दूँ।[1] (४) चोरी, जुआ आदि अधोमुखी प्रवृत्तियों को कथानक की घटनावली में स्थान मिलना। (५) चारुदत्त में अन्य नाटकों से मिलते-जुलते प्रकरणों में हाथी की चपेट में आये हुए किसी परिव्राजक को बचाने की बात है। अविमारक और प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भी हाथी के उपद्रव को लेकर कथानक को आगे बढ़ाया गया है। (६) किसी पात्र को भ्रान्तिवश अन्य पात्र समझ लेना। प्रथम अङ्क में शकार रदनिका को वसन्तसेना समझकर उसका केश-पाश पकड़ कर वशीभूत करते हैं। वह शकार को ठोकर मारती है। शकार को बेवकूफ बनाने की यह योजना विट ने प्रवर्तित की थी। उसने इसका पूरा मजा ले लिया और अन्त

---

१. इसी प्रकार चारुदत्त के सिखाने पर विदूषक वसन्तसेना से झूठे ही कहता है कि चारुदत्त वसन्तसेना के गहने जुए में हार गया। चतुर्थ अंक से।

में कहा—यह वसन्तसेना नहीं है। (७) रूपक की कोटि का परिचय देने के लिए और समुदाचार के स्पष्टीकरण के लिए कथानक में परिवर्धन किया गया है। चारुदत्त प्रकरण कोटि का रूपक है, जिसमें यदि कुलजा और वेश्या दो नायिकायें हों तो दोनों को मिलना नहीं चाहिए और वेश्या को अन्तःपुर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। इस विधान को पाठक की दृष्टि में लाने के लिए भास ने नीचे लिखे अंश एक मात्र उपर्युक्त प्रयोजन से कथानक में निविष्ट किये हैं—

नायक—रदनिके (वास्तव में वसन्तसेना) तुम अभ्यन्तर चतुःशाल में जाओ।

गणिका—(आत्मगतम्) मैं वहाँ जाने की अधिकारी नहीं हूँ।

नायक—भीतर क्यों नहीं जाती ?

गणिका—(आत्मगतम्) अब क्या कहूँ।

नायक—देर क्यों कर रही हो ?

तृतीय अङ्क में पुनः उपर्युक्त विषय की चर्चा इस प्रकार है—

विदूषक—क्यों कर यह अलंकार अन्तःपुर-चतुःशाल में नहीं रखा गया ?

नायक—मूर्ख, वेश्या का अलंकार कुलजा पत्नी कैसे देखेगी ?

(८) कुछ ऐसे वृत्त कथानक में हैं, जो कहीं कहे नहीं गये, किन्तु कल्पना से उह्य हैं। यथा, तृतीय अंक में चारुदत्त की पत्नी का यह जानना कि वसन्तसेना किसी रात आई थी और वह अपने अलंकारों की धरोहर चारुदत्त के पास रख गई है। यह उससे रूपक में कोई नहीं कहता और वह कहीं सुनती भी नहीं है पर रदनिका से बातें करते समय वह इन सबकी चर्चा करती है। (९) नायिका और नायक का कामदेवोत्सव में परस्पर देखते ही प्रणयी बन जाना।[1]

(१०) कलाओं का परिचय देने के लिए कथांश में अभिवृद्धि करना। इसका उदाहरण तृतीय अंक में है सज्जलक का अपनी चोरी का विवरण देना। यह कथांश रूपक में अनपेक्षित होने पर भी इसी लिए जोड़ा गया कि भास कलाप्रिय थे, भले ही चौर्य कला क्यों न हो। (११) रात्रिकालीन वृत्तों की प्रधानता है कथानक में। शकार और वसन्तसेना का प्रकरण तथा सज्जलक की चोरी रात में होती है।[2]

भास ने कहीं-कहीं भावी घटना का क्रम व्यञ्जना से बताया है। वसन्तसेना की धरोहर को लेते समय विदूषक कहता है—'लाओ, चोरों के द्वारा ली जाती हुई

१. हर्ष ने रत्नावली में कामदेव-महोत्सव को नायक-नायिका के अनुराग-वर्धन की स्थली बनाया है।

२. बालचरित और अविमारक में भी रात्रिकालीन दृश्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रात्रि की गंभीरता से भास की काव्यप्रतिभा का सामञ्जस्य है।

को रख लेता हूँ।' इस वाक्य से प्रतीत होता है कि धरोहर चोरों के हाथ में जाने वाली है। रूपक के आरम्भ में चारुदत्त की यह उक्ति भी भावी घटनाक्रम का विन्यास करती है—

पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ।

चारुदत्त में भास विदूषकप्रिय है। अपने कई रूपकों में भास ने, जहाँ-कहीं अवसर मिला है, विदूषक को नायक के साथ रखा है। शृङ्गारित रूपकों में विदूषक विशेष फबता है। भास के अन्तिमयुगीन रूपक प्रायः शृङ्गारित हैं, जिनमें विदूषक पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रूप से प्रतिष्ठित है। चारुदत्त में विदूषक एक ही है, किन्तु अर्धविदूषक चार और हैं—शकार, विट, सज्जलक और सूत्रधार। ऐसा लगता है कि भास की प्रतिभा के दीप का यह ह्रास ही अन्तिम झलक थी। इसी प्रकरण में हास्य रस की चर्चा करते समय विदूषक और अर्धविदूषकों की हास-प्रवृत्ति का परिचय दिया जायेगा।

पात्रों को इस रूपक में थोड़ी ही देर के लिए प्रच्छन्न, अज्ञात या भ्रान्तिगूढ रख कर ही भास ने उनसे अपना काम निकाला है। रदनिका शकार के लिए भ्रान्ति-गूढ है। वह उसे वसन्तसेना समझता है। चारुदत्त वसन्तसेना को कुछ देर तक रद-निका समझने की भूल करता है। सबसे बड़ी भ्रान्ति है विदूषक का सज्जलक को चारु-दत्त समझना। वह इसी भ्रान्तिवश वसन्तसेना का अलंकार सज्जलक को दे देता है।

प्रायः अपने परवर्ती रूपकों में पात्रों को विशेषतः नायक-नायिका को विपत्ति में डालकर भास उनका उत्कर्ष प्रदर्शित करते हैं।[1] चारुदत्त दरिद्रता में विपन्न है। उसके घर से वसन्तसेना की धरोहर चोरी चली गई। वसन्तसेना पर पहले अंक में ही विपत्ति आती है कि शकार और विट उसके पीछे पड़े हैं। संवाहक पर भी विपत्ति थी कि चारुदत्त की सेवा से विमुक्त हो गया था और जुए का ऋण न चुका सकने पर उसे छिपना पड़ा था।

प्रतिनायक का रूप भास के कुछ ही नाटकों में निखरा है। ऐसे नाटकों में चारुदत्त सर्वोपरि है। नायिका वसन्तसेना को राजश्याल शकार प्राप्त करना चाहता है। उसने प्रथम अंक में ही चारुदत्त से अनबन की सम्भावना बताई। वह वसन्तसेना को प्राप्त करने के लिए चतुर्थ अंक में पुनः प्रयत्नशील है। उत्तरार्ध की कथा में चारुदत्त को अपने मार्ग से हटाने के लिए जो प्रयास शकार ने किये, वह वर्तमान अंश में नहीं मिलते।

---

१. स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन, प्रतिमा में राम, सीता और भरत, अविमारक में नायक और नायिका विविध प्रकार की विपत्तियों में उलझ कर सन्तप्त होने के पश्चात् अभ्युदयोन्मुख होते हैं।

चारुदत्त और वसन्तसेना का चरित्र-चित्रण इतना उदार है कि यही कहा जा सकता है कि न भूतो न भविष्यति। चारुदत्त ब्राह्मण सार्थवाह होने पर भी मूर्त्तिमान् सदाचार है और अद्भुत कला प्रेमी है। नायक के सर्वथा योग्य ही नायिका है।[1] वह गणिका वृत्ति छोड़ कर सर्वथा चारुदत्त की हो जाना चाहती है, क्योंकि केवल सौन्दर्य से ही नहीं, चारुदत्त के महानुभाव से भी वह प्रभावित है।

इस रूपक में पात्र प्रायः अछूते वर्ग से लिए गये हैं। चोर, शकार, संवाहक आदि पात्रों के जीवन में प्राकृतिक रस और चटपटापन देख कर भास ने उन्हें अपनी प्रतिभा से वासित किया है। यह प्रकरण परिभाषा के अनुरूप ही **"कितवद्यूतकारादि-विटचेटकसंकुलः"** है।

इस रूपक में शृङ्गार और दानवीर का अतिशय है, किन्तु उत्कर्ष है हास्य का।[2] इसमें सूत्रधार भी विदूषक की भाँति हँसोड़ है, जो प्रातःकाल सूर्योदय के पहले ही भूख से पीड़ित है। उसने अपने विषय में ठीक ही कहा है कि—**'बुभुक्षयौदनमयमिव जीवलोकं पश्यामि'**। उसकी नटी कहती है कि आवश्यकता है घी, तेल की तो वह समझ लेता है कि ये सब वस्तुयें घर में हैं। जब नटी कहती है कि बाजार से लाना है तो वह खिन्न होकर कहता है कि तुमने हमको पहाड़ से नीचे गिरा दिया। उसकी नटी ने ब्राह्मण निमन्त्रण करने के लिए भेजा तो उसे चारुदत्त का साथी विदूषक मैत्रेय मिला। उसका तो काम ही था हँसना और हँसाना। वह सूत्रधार के निमन्त्रण को अस्वीकार करके अपने आप अपने अतीत गौरव का स्मरण करता है—कभी चौराहे के साँड की भाँति मस्त पड़ा रहता था, और अब यत्र-तत्र घूम-फिर कर पेट भरता हूँ।

विदूषक को भास ने सुविज्ञ शब्दाधिकारी के रूप में चित्रित किया है, यही नहीं कि वह शाब्दिक मनोरजंन ही करता है। वह तो कुछ ऐसे काम भी कर सकता है, जिससे लोग हँस पड़ें। वह शकार को दीप से उद्वेजित करता है। जब वसन्तसेना और चारुदत्त उपचार की बातों में देर कर रहे हैं तो वह रदनिका से कहता है—**रदनिके प्रसीदतु, प्रसीदतु।**

---

१. संवाहक ने वसन्तसेना को प्रमाण दिया है कि जन्म से भले ही गणिका है, शील से नहीं। द्वितीयाङ्क से।

२. कथावस्तु प्रेमकहानी होने के कारण शृङ्गार की निष्पत्ति का अवसर प्रधान रूप से देती है। इसमें चारुदत्त और वसन्तसेना का चरित्र-चित्रण दानवीर रूप में किया गया है। अन्य पात्र प्रायशः हँसोड़ हैं, जो हास्य रस का प्रवर्तन करते हैं।

विदूषक की शब्दचातुरी है—'दीपिका गणिका की भाँति निःस्नेह है'। यह उस समय कहा जा रहा है, जब चारुदत्त वसन्तसेना पर लट्टू हो रहा था। चाहे जैसी भी विषम परिस्थिति हो विदूषक परिहास कर सकता था। चारुदत्त के घर चोरी हो गई। फिर भी वह चारुदत्त से कहता है कि एक प्रिय समाचार सुनाऊँ। प्रिय की बात सुनते ही चारुदत्त समझता है कि वसन्तसेना का आगमन-विषयक कुछ संवाद है। विदूषक कहता है—वसन्तसेना नहीं, वसन्तसेन। फिर तो रदनिका को ही वस्तुस्थिति बतानी पड़ी। वह अपने को गधा बना कर भी दूसरों को हँसाता है।[1]

शकार पक्का दुश्चरित्र और ऐंठू है।[2] उसकी अज्ञता दूसरों को हँसाने के लिए है। वह शान्त को श्रान्त समझता है। इसी से तङ्ग आकर उसके विट ने जानबूझ कर उसे रदनिका को दिखाकर कहा कि पकड़ो, यह वसन्तसेना है। रदनिका का यह प्रकरण हास्यास्पद है। शकार की मूर्खता से हँसिये—वह कहता है कि दुःशासन ने सीता का अपहरण किया था। वह कानों से गन्ध सूँघता है और अन्धकार में नासिका से कुछ भी नहीं देख पाता है।[3]

हँसाने वालों में सज्जलक कुछ पीछे नहीं है। पहले उसकी सूझबूझ की प्रशंसा करें। वह नितान्त सत्य कहता है कि नौकरी से अच्छी है चोरी, क्योंकि इसमें स्वाधीनता है।[4] उसकी चोरी में भी आदर्श सिद्धान्त रूप में लागू है। अब उसकी हँसी की बातें सुनिये—ब्रह्मसूत्र रात्रि में कर्मसूत्र बन जाता है, अर्थात् जनेऊ से सेंध की लम्बाई-चौड़ाई नापी जायेगी। यह ब्राह्मण धर्म पर फबती है, जन्मना जाति पर। फिर उसका नमस्कार भी हास्यास्पद है—नमः खरपटाय। चतुर्थ अङ्क में मदनिका के 'प्रियं मे' को सुनकर वह कामुकोचित अर्थ लगा कर हास्यास्पद बनता है।[5] इस प्रसंग में इस कलाकृति की रसनिर्भरता देखकर ही इसे अमृताङ्क नाटक और जागते हुए का स्वप्न कहा गया है।[6]

---

१. विदूषक चारुदत्त से कहता है—मैं बोझ लिए गधे की भाँति भूमि पर लोट रहा हूँ।

२. विट के शब्दों में वह 'पुरुषमयस्य पशोर्नवावतारः' है।

३. इस दृष्टि से शकार भाषाविज्ञान में सुप्रथित स्पूनर से मिलता-जुलता है।

४. स्वाधीना वचनीयतापि तु वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः। ३.६

५. 'प्रियं मे' से मदनिका का अभिप्राय है—जो संवाद दिया है, वह प्रिय है। सज्जलक ने अर्थ लगा लिया कि चारुदत्त को मदनिका अपना प्रिय बता रही है।

६. गणिका—पेक्ख जागरन्तीए मए सिविणो दिट्ठो एव्वं।
चेटी—प्रियं मे। अमुदंकणाडअं संवुत्तं।

डा० राइडर के अनुसार—S'udraka's humour is the third of his vitally distinguishing qualities. This humour has an American flavour in its puns and in its situations.

अनेक स्थलों पर इस रूपक में भावों का उत्थान-पतन स्वाभाविक ढंग से दिखाया गया है। इस का आरम्भ ही होता है सूत्रधार की इस उत्थान-पतनमयी उक्ति से––अह चण्डप्पवादलण्डिओ विअ वरण्डी पव्वदादो दूरं आरोविअ पाडिदोम्हि। अर्थात् मैं पर्वत से भी अधिक ऊँचाई पर चढ़ाकर नीचे गिरा दिया गया हूँ। तृतीय अंक में जब चारुदत्त वसन्तसेना के आगमन का संवाद सुनने के लिए उत्सुक है, तभी उसे सुनाई पड़ता है कि उसके घर में चोरी हो गई और वसन्तसेना की धरोहर चोर ले गया। इसी के समान ही है चतुर्थ अंक में वसन्तसेना का यह सुनना कि अलंकृत होकर प्रणय की याचना करने वाले से मिलने के लिये जाना है। वह पूछती है––क्या आर्य चारुदत्त मुझे अलंकृत करेंगे ? उत्तर मिलता है––नहीं, शकार ने आपको बुलाने के लिए सवारी भेजी है। इस प्रकार का तीसरा प्रकरण है सज्जलक का चोरी कर लेने पर यह सोचना कि अब मदनिका निष्क्रय-धन जुटा लेने पर प्रसन्न हो जायेगी। किन्तु उसकी धन जुटाने की कहानी सुनने पर वह काँपने लगती है। यह सब गड़बड़ होने पर भी उसे मदनिका पुरस्कार रूप में मिल ही जाती है।

भास की भाषा स्वभावतः सरल है। चारुदत्त की भाषा तो सर्वसाधारण के अतिशय समीप है। इसके पात्र साधारण लोक के हैं और भास पात्रोचित भाषा का प्रयोग करने में कुशल हैं।[1] फिर भी चारुदत्त में अनेक स्थलों पर अलंकारमयी कल्पना-लता का प्रसार असीम प्रतीत होता है। यथा

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना
मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ ४.३

इसमें भाव और शब्दों का वैविध्य और आनुविध्य अनुत्तम ही है। भावधारा को उत्प्रेक्षा की कल्पना मानो प्रत्यक्ष सी करती चलती है।

कवि को चन्द्रमा प्रिय था। उसके अगणित पर्यायों का प्रयोग स्थान स्थान पर है।[2] उपमा और रूपक द्वार से चन्द्रमा के विषय में कल्पना है––

उदयति हि शशाङ्कः किन्नखर्जूरपाण्डुर्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥

पद्यों में आख्यानात्मक चर्चा अभिनय की प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिए है। यथा––

---

१. उदाहरण के लिए प्रथम अङ्क में चारुदत्त कहता है––मारुताभिलाषी प्रदोषः। गणिका नायिका वसन्तसेना कहती है––अनुदासीनं यौवनमस्य पटवासगन्धः सूचयति।

२. प्रथम अङ्क में प्रभातचन्द्र, बहुलपक्षचन्द्र, चन्द्रलेखा (१.२७) शशाङ्क (१.२९) आदि।

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं सौदामिनीव जलदोदरसन्निरुद्धा ।
त्वां सूचयिष्यति हि वायुवशोपनीतो गन्धश्च शब्दमुखराणि च भूषणानि ।।

चारुदत्त में ५५ पद्य हैं, जिनमें शृंगारोचित वसन्ततिलका की संख्या १२ है । श्लोक छन्द में १७ पद्य हैं । उपजाति में ६ और शार्दूलविक्रीडित छन्द में ५ पद्य हैं ।

भास की कला है ऐसे पात्रों का परस्पर संवाद करा देना, जिनमें प्रत्यक्ष बातचीत की सम्भावना हो ही नहीं ।[1] चारुदत्त के तृतीय अंक में विदूषक और सज्जलक की बातचीत ऐसी ही है । इसमें सज्जलक चारुदत्त की भूमिका में है ।

चारुदत्त में भास की संवाद-कला की प्रशंसा प्रायः मिलती है । इसकी विशेषता है रसमयी बातें कहना, भले अर्थ स्वल्प हो । डा० जान्स्टन के अनुसार—The dialogue in the Charudatta, as compared with the Svapna and Pratijnayaugandharayana, is crisper, wittier, more idiomatic, with sharper outlines, the conversation of a cultured-gosthi refined to a high degree.

तृतीय अंक में सज्जलक की एकोक्ति नाट्य साहित्य को अद्भुत देन है । रंगमंच पर दो पात्र सोये हैं, पर सज्जलक की एकोक्ति निर्बाध है । इसमें वह चौर्यव्यापार का प्रतिपद प्रशंसात्मक वर्णन करता है, तथा चारुदत्त से सहानुभूति दिखाता है । एकोक्ति के बीच में शलभ द्वारा दीप बुझाना और विदूषक से सुवर्णालंकार लेने का कार्य होता है, साथ ही स्वप्न में बड़बड़ाने वाले विदूषक का एक-दो वाक्यों में वह उत्तर देता है ।

चारुदत्त में रात्रि में घटित कथांश पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं । ऐसे कथांश में अन्धकार का वर्णन स्वभावतः होना ही चाहिए । भास को अन्धकार प्रिय रहा है । उनके कई पात्र अन्धकार में विशेष क्रियाशील रहते हैं ।

सुलभशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ।। १.२०

---

१. प्रतिमा में रावण प्रच्छन्न वेश में परिव्राजक बन कर राम से बातें करता है । स्वप्नवासवदत्त के तृतीय अंक में उदयन की वासवदत्ता से बातचीत भास की इसी कला के बल पर सम्भव हुई है । राजा पूछता है—क्या तुम कुपित हुई हो ? वासवदत्ता उत्तर देती है—नहीं, नहीं । मैं दुःखी हूँ । उत्तररामचरित के तृतीय अंक में सीता को अदृश्य रख कर राम से संक्षिप्त बातचीत करने की कला इसी से विकसित है । सीता को अदृश्य रखना अविमारक के आदर्श पर सम्भव हुआ होगा ।

अन्धकार-सम्बधी वर्णनों से कथातत्त्व का अविदूर सम्बन्ध सम्भाव्य नहीं है। इससे भास की महाकाव्योचित वर्णना-शक्ति प्रमाणित होती है।

भास कलाओं के वर्णन या उल्लेख विशेष रुचि से करते हैं।[1] इस रूपक में भास ने चौर्यकला के प्रति प्रथम बार अभिनिवेश प्रकट किया है, जो नितान्त प्रगाढ कहा जा सकता है। चोर के मुख से ही उसका कार्य-कौशल ज्ञेय है—

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः॥ ३.५

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च।
यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि दुःखोपहतो न चित्ते॥ ३.७

सिंहाक्रान्तं पूर्णचन्द्रं झषास्यं चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणम्।
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्यमस्मत्पक्ष्या विस्मितास्ते कथं स्युः॥ ३.६

इन वर्णनों से ऐसा लगता है कि भास चोरों की विद्या के सिद्धान्त और कर्माभ्यास से परिचित थे।

वीणा की चर्चा भी ऐसी ही अनपेक्षित है, किन्तु भास वीणागायक की लम्बी चर्चा तृतीय अंक के आरम्भ में रुचिपूर्वक करते हैं। दुष्यन्त की मृगया की भाँति चारुदत्त की वीणा विदूषक को प्रिय नहीं हैं। वह स्पष्ट कहता है—**इमां हतवीणां न रमे।** किन्तु चारुदत्त के लिए वह वीणा है—

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम्।
किं वा प्रशास्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम्॥

चित्रकला तीसरी कला है, जिसकी चर्चा अनपेक्षित रूप से अथवा यों कहिए कि कला कला के लिए इस प्रयोजन से मिलती है। वसन्तसेना ने चारुदत्त का चित्र बनाया है। वह चारुदत्त के अतिसदृश था। उसमें चारुदत्त कामदेवरूप में प्रतीत होता था।

चित्र को चित्रितस्थानीय की भावना से भास ने प्रतिष्ठित कराया है। वसन्तसेना ने चेटी को आदेश दिया है कि चारुदत्त के चित्र को मेरी शय्या पर रख आओ।[2]

---

१. विशेष रुचि इसलिए कहा गया है कि यदि इन वर्णनों या उल्लेखों का सन्निवेश नहीं होता तो रूपक की गति में कोई त्रुटि नहीं आती।

२. इदं चित्रफलकं शयनीये मे स्थापय। चतुर्थ अङ्क में।

चारुदत्त में भास ने देवकुल की भी चर्चा की है ।[1]

चारुदत्त में अपने अनेक पूर्व रूपकों के समान ही भास ने समुदाचार का प्रवर्तन किया है। चारुदत्त ने वसन्तसेना का अनुनय करते हुए कहा है—**प्रेष्य समुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि** । समुदाचार का व्यावहारिक रूप अनेक स्थलों पर मिलता है। यथा द्वितीय अंक में वसन्तसेना संवाहक से कहती है—**गच्छत्वार्यः सुहृज्जनदर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम् । गच्छत्वार्यः पुनर्दर्शनाय ।** चतुर्थ अंक में वसन्तसेना कहती है—**अयुक्तं पररहस्यं श्रोतुम्** ।

चारुदत्त में अनुचित लगता है चारुदत्त की पत्नी को ब्राह्मणी कहना । उस युग की कामुकता-प्रधान-प्रवृत्ति से चारित्रिक पतन का संकेत मिलता है, जिसमें पत्नी का अनादर करके गणिका सम्मानित की जाय। इसी प्रकार बौद्धों को लांछित करना अनुचित प्रगमन है ।[2]

प्रथम अंक में नायक का प्रातःकाल से रात्रि तक रंगमंच पर रह जाना सम्भवतः किसी त्रुटि के कारण दिखाया गया है । ऐसा नहीं होना चाहिए था । इसी अंक में रदनिका बहुत समय तक बिना कुछ करते-धरते रंगमंच पर पड़ी रहती है ।

अनुप्रेक्षण

भास ने रूपक-रचना का समारम्भ सम्भवतः एकांकियों से किया और उनके कथानक अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ महाभारत से लिया । उनके अन्तिम रूपक सम्भवतः लोकप्रचलित कथाओं पर उपजीवित हैं। इन दोनों के अन्तराल में भास के रामायण पर आधारित रूपक अभिषेक और प्रतिमा हैं। भास के अन्तिम-युगीन रूपक शृङ्गार रस से विशेष परिषिक्त हैं, जहाँ पहले के रूपकों में शृङ्गार की चर्चा नाममात्र की ही है । ऐसा लगता है कि भास को बहुत देर में इस शाश्वत सत्य का प्रतिभास हुआ कि रूपक साहित्य के प्रति विशेष आकर्षण के लिए उसका शृङ्गारित होना आवश्यक है । फिर तो अविमारक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासवदत्त और चारुदत्त में उन्होंने अपनी पूर्वकालीन त्रुटि की कसर निकाली और उन्हें पूर्णतया शृङ्गारित किया ।

भास के समक्ष यदि भरत का नाट्यशास्त्र रहा हो तो यही कहा जा सकता है कि नाट्यशास्त्र के नियमों को वे सर्वथा अनुल्लंघनीय नहीं मानते थे । जिस प्रकार

---

१. देवकुलधूमेन रोदिता । तृतीय अङ्क से । मृच्छकटिक के द्वितीय अंक में प्रतिमा और देवकुल की चर्चा है ।

२. तृतीय अङ्क में विदूषक कहता है—अहं खलु तावत् कर्तव्यकरस्त्रीकृतसङ्केत इव शाक्यश्रमणको निद्रां न लभे ।

वे महाभारत और रामायण की कथाओं को अपनी कला के उन्मेष के लिए संशोधित और परिवर्धित कर लेते थे, वैसे ही कतिपय भारतीय विधानों को भी उन्होंने काव्य सौंदर्य की अभिवृद्धि के लिए यदि आवश्यक समझा तो नहीं माना। युद्ध और मृत्यु रंग-मंच पर नहीं होने चाहिए—यह भारतीय नियम भास को नहीं मान्य है। सम्भव है कि रामलीला जैसी अभिनय-परम्परा भास को त्याज्य नहीं थी, जिसमें रंगमंच पर युद्ध, मृत्यु आदि अभिनेय थे।

भास की नाट्यकला की कुछ विशेषतायें है, जो उनके अधिकांश रूपकों में प्रकट होती हैं। ये हैं (१) चित्रादि कला से सम्बद्ध वृत्तों का सन्निवेश (२) पात्रों को प्रच्छन्न रखना (३) स्वप्न में नायक को नायिका से मिलाना (४) गान्धर्व विवाह का प्रवर्तन करना (५) नायिका को नायक से अलग रखकर उनका पुनर्मिलन (६) मंत्रियों और रानी के परामर्श से योजनायें बनाकर उनको कार्यान्वित करना (७) आग लगा कर अपनी योजना को गति प्रदान करना (८) पताकास्थान के एक विशिष्ट प्रकार का प्रयोग (९) वियुक्त प्रियतमा की किसी वस्तु को देख कर नायक का उसके लिए सकरुण होना (१०) कथानक की भावी प्रवृत्तियों का संकेत करना और (११) हाथी द्वारा उपद्रव कराना।

भास के चरित्र-चित्रण, वर्णन, समुदाचार और रस-निष्पत्ति विषयक भी कुछ सूत्र प्रायः रूपकों में सर्वनिष्ठ हैं। इन सबसे हम इस परिणाम की सम्भावना कर सकते हैं कि इन सभी रूपकों का एक कवि की कृति होना और विशेषतः स्वप्नवासवदत्त के रचयिता भास की कृति समीचीन शोध है।[1]

भास ने परवर्ती कवियों को प्रत्यक्ष और गौण विधि से प्रभावित किया है। कालिदास ने भास का श्रद्धापूर्वक उल्लेख श्रेष्ठ नाटककार के रूप में किया ही है। कालिदास की रचनाओं पर भास का प्रभाव स्वप्नवासवदत्त और प्रतिमा के प्रकरण में विशेष रूप से दिखाया गया है। उत्तररामचरित की स्वप्नवासवदत्त से समता अनेक दृष्टियों से समुदित हुई है। उत्तररामचरित का करुण स्वप्नवासवदत्त पर

---

१. भास की व्याकरणात्मक भूलों का तथा रूपकों में छन्दों के प्रयोग सम्बन्धी साम्य का विचार करने से भी इसी परिणाम पर पहुँचा जा सकता है। समुदाचार वर्ण्य-विषय आदि के साम्य के पूर्ववर्ती निर्देशों से भी उपर्युक्त उद्भावना प्रमाणित होती है। डा० सरूप के शब्दों में–The community of technique, language, style, ideas, treatment and identity of names of dramatis personae, prose and metrical passages and scenes are so remarkable that the conclusion of their common authorship is inevitable. Hindustan Review 1927 p. 118.

आधारित प्रतीत होता है। पात्रों का श्वेतीकरण कला-साधना के लिए इतिहास प्रसिद्ध वृत्तों में परिवर्तन करना आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके लिए भास को अग्रणी मानना ही पड़ेगा ।

भास की रचनायें उदात्त चारित्रिक आदर्श की सम्प्रतिष्ठा के लिए हैं। उनके उत्तम और मध्यम वर्ग के पात्रों का आचार-विचार का स्तर अनुकरणीय है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उन्होंने समुदाचार-सम्बन्धी पद्धति का दिग्दर्शन कराया है। कवि का कौटुम्बिक आदर्श तो अनुत्तम ही है। सभी अवसरों पर किसी को कैसे व्यवहार करना चाहिए—यह भास से सीखने योग्य है। भास पाठक की वृत्तियों को उच्चाभिमुखी बनाने में सफल हैं।

भास के रूपकों में परवर्ती प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना मिलती है। स्थापना में सूत्रधार आशीर्वचन के पश्चात् नटी से ऋतु आदि के विषय में कुछ बातें करता है। उनकी अन्तिम बातचीत का सम्बन्ध उस रूपक की प्रारम्भिक घटना से जुट जाता है, जिसका अभिनय होना है। आशीर्वचन में भास सूत्रधार के मुँह से रूपक के प्रमुख पात्रों का और कभी-कभी उनकी प्रवृत्तियों का परिचय भी देते हैं।

भास के रूपकों में विष्कम्भक, प्रवेशक और आकाशभाषित का प्रयोग बहुशः हुआ है। इनके पताकास्थानक प्रायः भावी घटनाक्रम की सूचना देने के लिए प्रयुक्त हैं। एकोक्तियों (Salioquies) तथा 'आत्मगतम्' के प्रयोगों से रूपकों में मनोभावों की आन्तरिक प्रखरता की अभिव्यक्ति की गई है।

भास ने अपने रूपकों में कहीं-कहीं सम्भाव्यता का ध्यान न रखते हुए कुछ अलौकिक वृत्तों का अंकन किया है और कुछ पात्रों को उनके कार्य-सम्पादन के समय का ध्यान न रखते हुए झटपट पुनः मञ्च पर अनन्तरित विधि से सन्देश देते हुए प्रकट किया है। इतनी क्षिप्रता कल्पना बाह्य होती है। नृत्य-संगीतादि मनोरञ्जक कार्यक्रमों के सन्निवेश से भास के नाटकों की चारुता द्विगुणित हुई है। वे सारे समाज का सामूहिक नृत्य दिखा कर दर्शकों का हृदय-नर्तन करने में समर्थ थे।

भास के रूपकों में १७९२ पद्य हैं, जिनमें ४३७ श्लोक छन्द में हैं। श्लोक की रचना सरल होती है और इनका प्रतिशत जिन रूपकों में अधिक है, वे अवश्य ही भास की आरम्भिक रचना हैं—ऐसा कहना ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि स्वप्न-वासवदत्त में ५७ पद्यों में २६ श्लोकच्छन्द में और कर्णभार के २५ पद्यों में केवल चार श्लोकच्छन्द में हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि स्वप्नवासवदत्त कर्णभार से बहुत परवर्ती है। श्लोक के पश्चात् क्रमशः वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, मालिनी और पुष्पिताग्रा कवि को प्रिय थे। मेघमाला, दण्डक, वैतालीय और उपगीति छन्दों में प्रत्येक में केवल एक पद्य है।

भास की साम्प्रदायिक आलोचना-सम्बन्धी प्रचुर प्रशस्तियाँ मिलती हैं। कालिदास ने भास के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट करते हुए मालविकाग्निमित्र में कहा है--

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य----इत्यादि ।

बाण ने हर्षचरित में भास की रचनाओं की कुछ विशेषताओं का आकलन किया है--

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरपि ।।

दण्डी ने अवन्तिसुन्दरीकथा में भास के विषय में कहा है--

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

वाक्पतिराज ने गउडवहो में भास की चर्चा करते हुए कहा है--

भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ।।

राजशेखर ने भास की प्रशस्ति की है--

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।

जयदेव ने प्रसन्नराघव में भास की प्रशंसा की है--

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवति कविताकामिनी कौतुकाय ।।

अध्याय ४

कुन्दमाला

संस्कृत रूपकों में कुन्दमाला अपने रचयिता, रचना-काल और कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से सबसे बढ़कर समस्या-ग्रस्त है। इसके रचयिता दिङ्नाग हैं या और कोई? क्या यह भवभूति के उत्तररामचरित से पहले की रचना है अथवा भवभूति के पश्चात् की? क्या कुन्दमाला का नाट्योत्कर्ष उच्चातिशय है अथवा यह नाममात्र के लिए ही नाटक है, या यह गद्य-पद्यमिश्रित चम्पू है? इन बातों को लेकर प्रकाम मतान्तर है। तथापि इन सब विवादों के होते हुए भी एक बात सुनिश्चित है कि प्राचीन काल में दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक के सर्वोच्च नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने इससे उद्धरण लेकर यह निःसन्दिग्ध रूप से प्रमाणित कर दिया है कि प्राचीन साहित्याकाश में इस नाटक का नक्षत्रालोक अविनश्वर माना गया था।

लेखक

कुन्दमाला के लेखक के अनेक नाम अनेक स्रोतों से मिलते हैं, यथा दिङ्नाग, धीरनाग, वीरनाग नागय्य और रविनाग। इनमें से दिङ्नाग नाम सबसे अधिक प्रचलित है। मैसूर की हस्तलिखित प्रति में लेखक का दिङ्नाग नाम मिलता है। ये दिङ्नाग सम्भवतः प्रसिद्ध बौद्ध दिङ्नाग नहीं हैं। कुन्दमाला की विचारधारा सर्वथा वैदिक संस्कृति पर आश्रित है। ऐसा सम्भव है कि दिङ्नाग ने कुन्दमाला की रचना कर लेने के पश्चात् कभी बौद्धधर्म अपना लिया हो और बौद्धधर्म के विद्वान् से उनका तादात्म्य प्रमाणित हो। डा० मिराशी के अनुसार इसके कर्ता धीरनाग हैं।

दिङ्नाग के लंकावासी होने की सम्भावना की जाती है। कुन्दमाला के ज्योत्स्ना-निर्मोक आदि कुछ पद कुमारदास के जानकीहरण से मिलते हैं और इसमें ग्रीष्म, हाथी और नंगे पैर चलने की रीति के वर्णन से भी लंका का वातावरण व्यक्त होता है। लंका में अनुराधापुर कवि का निवास हो सकता है।

कुन्दमाला की सर्वप्रथम चर्चा दसवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में की है।[1] इससे इसकी रचना दसवीं शती या इसके पहले होनी ही चाहिए।

---

१. अध्याय १६ पृष्ठ ३५१, ३५३ गा० ओ०. सीरीज। अब तक इसके सर्वप्रथम उल्लेख की चर्चा ११वीं शती के भोज के श्रृंगारप्रकाश में मानी जाती थी। अभिनवभारती के उद्धरण से इसका प्रथमोल्लेख १०० वर्ष पहले ला दिया गया है।

यहाँ समस्या यह उपस्थित होती है कि कुन्दमाला क्या उत्तररामचरित के पश्चात् लिखी गई ? उलनर, सुब्रह्मण्य अय्यर, डे, गौरीनाथ शास्त्री आदि इसे भवभूति के द्वारा प्रभावित मानते हैं। कृष्णमाचार्य, वरदाचार्य, रामनाथ शास्त्री आदि भवभूति के उत्तररामचरित को कुन्दमाला से परवर्ती मानते हैं। वास्तव में कुन्दमाला के द्वारा उत्तररामचरित का कथानक प्रभावित है और ऐसी स्थिति में इसे भवभूति से पहले रखना होगा।[1]

दिङ्नाग भास के सन्निकट परवर्ती हैं। उनकी रचना का संविधान भास के रूपकों के निकट है। इसका सर्वप्रथम प्रमाण है कुन्दमाला में प्रतिमा शब्द का प्रयोग।[2] राजाओं की मूर्तियों के निर्माण का सर्वप्रथम उल्लेख भास के प्रतिमा नाटक में मिलता है। भास के प्रकरण में हम लिख चुके हैं कि किस प्रकार भास ने अपनी रचनाओं में कला-कृतियों को महत्त्व प्रदान किया है। ऐसी वस्तुओं में भास ने मूर्ति और चित्र की पुनः पुनः चर्चा की है। हम देखते हैं कि कुन्दमाला में कुन्द की माला कलाकृति है, जिसका सीता के अभिज्ञान के लिए प्रयोग हुआ है। वह प्रतिमा नाटक के अनुरूप है, जिसमें एक कलाकृति प्रतिमा से दशरथ की मृत्यु का ज्ञान होता है। कलाकृति के प्रति यह अभिनिवेश दिङ्नाग ने भास की प्रतिमा से ग्रहण किया होगा— यह सम्भावना की जा सकती है।[3]

जहाँ तक कुन्दमाला के उत्तररामचरित से पहले का होने का प्रश्न है—हमें एक ठोस प्रमाण मिलता है। भवभूति ने उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क को छायांक नाम दिया है। इस अंक में सीता की छाया तो है ही नहीं। भवभूति की छाया कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में पानी में पड़ी सीता की छाया का अनुहरण करती है।

उत्तररामचरित की कथा का सातिशय कलात्मक विन्यास कुन्दमाला की कथा की तुलना में अधिक सँवारा हुआ है। इससे यही प्रतीत होता है कि इस कथांश के विकास-लावण्य की जो प्रक्रिया बहुत पहले से चली आ रही थी, उसके संस्कारकों में दिङ्नाग पहले हैं और भवभूति पीछे। भवभूति ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया है। इन दोनों नाटकों में जहाँ-जहाँ समान वाक्य हैं, वहाँ भवभूति का उत्कर्ष उनका परवर्ती होना व्यक्त करता है।

---

१. इसकी चर्चा इसी अध्याय में पृष्ठ १४८-१५२ तक की गई है।

२. सुस्सुसिदव्वो पडिमागतो महाराओ। प्रथम अंक में।

३. इस आधार पर कुन्दमाला को प्रतिमा से पहले भी माना जा सकता है, किन्तु यह उचित न होगा। दिङ्नाग ने दशरथ और सीता की प्रतिमा का उल्लेख मात्र किया है, जो नाट्यतत्त्व की दृष्टि से नगण्य है। भास ने तो प्रतिमा प्रतिष्ठा करने के लिए प्रतिमा नाटक की रचना ही की है।

हम ने दिङ्नाग को कालिदास के पहले रखा है। नीचे दो पद्यों की तुलना करें—

> नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः ।
> तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि ।। रघु० १४.६९
>
> एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
> हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।
> नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
> तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः ।। कुन्दमाला १.१८

कालिदास का उत्कृष्टतर पद्य स्पष्ट ही दिङ्नाग के पद्य का अनुहरण करता है।

संस्कृत रूपकों के रूपात्मक विकास की दृष्टि से कुन्दमाला नाटक कालिदास के नाटकों से पहले का प्रतीत होता है। कालिदास के नाटकों का सन्धि, अर्थप्रकृति और अवस्थाओं का विन्याससौष्ठव कुन्दमाला में नहीं दिखाई पड़ता। यदि दिङ्नाग कालिदास के परवर्ती होते तो उन्हें अभिज्ञानशाकुन्तल का ज्ञान होता और वे कुन्दमाला में एक अतिसाधारण मुनि का नाम कण्व नहीं रखते। इस दृष्टि से कुन्दमाला भास के रूपकों के अधिक निकट प्रतीत होती है।

उपर्युक्त विचारणाओं के आधार पर दिङ्नाग को भास और कालिदास के बीच चतुर्थ शताब्दी में रख सकते हैं। यदि कुन्दमाला उत्तररामचरित के पश्चात् उसकी हीनतर अनुकृतिमात्र होती तो उसका कोई नामलेवा नहीं होता। इसके समादर से इसकी मौलिकता व्यक्त होती है।

कतिपय नाट्यशास्त्रीय विधानों का कुन्दमाला में पालन नहीं हुआ है। यथा, सीता रंगमंच पर राम के मूच्छित होने पर उनका आलिंगन करती है। यह नाट्य-शास्त्र के अनुसार वर्जित है। इससे प्रतीत होता है कि इसकी जब रचना हुई तो नाट्यशास्त्र के विधान पूरे प्रतिष्ठित नहीं हो पाये थे। इस आधार पर इसकी भास-युगीनता प्रतीत होती है।

कथानक

राम ने लोकापवाद समाप्त करने के लिए सीता को गंगा-तट पर वाल्मीकि आश्रम के समीप छोड़ने के लिए लक्ष्मण को आदेश दिया था। सीता को भी सगर्भा होने पर गंगा-स्नान और तपस्वियों के आश्रम देखने की उत्कट इच्छा थी। लक्ष्मण सीता-सहित रथ पर गंगा-तट पर पहुँच कर सीता को रथ से उतार कर उनसे कहने लगे—आपको राम ने वनवास दिया है। मैं भी आपको छोड़कर चला जाऊँगा। आगे पूछने पर लक्ष्मण ने सीता को राम का सन्देश सुनाया—मैं सीता को लोकापवाद से छोड़

रहा हूँ, दूसरा विवाह नहीं करूँगा और यज्ञ में सीता की प्रतिमा मेरी धर्मपत्नी रहेगी। सीता ने राम को सन्देश दिया--

सद्धर्मे स्वशरीरे सावधानो भव ।

और मेरा स्मरण रखकर मुझे अनुगृहीत करें ।

उधर आये हुए वाल्मीकि के शिष्यों ने उनसे बताया कि गंगा-तट पर कोई स्त्री बिलख-बिलख कर रो रही है। वाल्मीकि वहाँ आये और योगदृष्टि से सब कुछ जानकर सीता को अपने आश्रम पर ले गये। वहाँ से प्रस्थान करते समय सीता ने गंगा की स्तुति की--हे गंगे, यदि मुझे निरापद् प्रसव होगा तो मैं तुम्हें प्रतिदिन एक कुन्दमाला अर्पित करूँगी।

सीता के दो युगल पुत्र होते हैं, जो कालान्तर में मुनियों की गोद में विचरते हैं, रामायण पढ़ते हैं, सिंहों से लड़ते हैं और तपस्विनियों के हृदय को प्रसन्न करते हैं। गोमती-तट पर नैमिषारण्य में राम ने यज्ञ का समारम्भ किया, जिसमें सीता की प्रतिमा पत्नी के स्थान पर थी। इस यज्ञ में देशान्तर के अन्य मुनियों के साथ वाल्मीकि को सभी शिष्यों के साथ आमन्त्रित किया गया। वे सभी वहाँ पहुँचे। सीता कुश और लव को लेकर नैमिषारण्य में आ गई हैं। राम और लक्ष्मण भी वहीं आ चुके हैं। एक दिन वे वाल्मीकि के अस्थायी आश्रम में उनसे मिलने के लिए आ रहे थे। मार्ग में राम को सीता की स्मृति हो आई। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया--मेरा समुद्र बँधवाना व्यर्थ गया। मैंने सीता का परित्याग करते समय उसकी अग्निपरीक्षा का भी ध्यान नहीं किया। इक्ष्वाकुवंश की सन्तति की चिन्ता न की। उसी समय राम को गोमती में तैरती एक कुन्दमाला दिखाई पड़ी, जब लक्ष्मण उनका ध्यान सीता की ओर से हटाने के लिए उस नदी के सौंदर्य का वर्णन कर रहे थे। माला बहती हुई राम के चरणों के समीप आ गई। उसके रचना-कौशल को देखकर राम ने अनुमान किया कि इसको सीता ने गूँथा होगा। माला कहाँ से चली है, यह जानने के लिए वे दोनों नदी के प्रतिस्रोत की ओर बढ़ चले।

थोड़ी दूर पर लक्ष्मण को कुछ पदचिह्न दिखाई पड़े, जिन्हें देख कर राम ने कहा कि ये सीता के हैं। पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए वे दोनों वाल्मीकि-आश्रम की ओर चले। पुलिन-प्रदेश के बाहर सीता के पदचिह्न लुप्त हो गये। वहीं राम-लक्ष्मण छाया में विश्राम करने लगे। निकट ही सीता पूजा के लिए पुष्पावचय करती हुई उनकी बातें सुन रही थीं।

राम का सजलजलधरध्वनितगम्भीर स्वर सुनकर सीता रोमाञ्चित हो गईं। राम को भी सीता की करुण दशा का ध्यान करने से बड़ी उद्विग्नता हुई। उन्होंने

कहा—सीता पर दुःख ही दुःख तो पड़े। लक्ष्मण के पूछने पर उन्होंने बताया कि सीता कहीं निकट ही हैं।

सीता ने देखा कि राम बहुत उद्विग्न हैं। उनके मन में वितर्क उत्पन्न हुआ कि प्रकट होकर राम को आश्वासन दूँ या उन्हीं के निर्देशानुसार निर्वासित होकर उनसे दूर ही रहूँ। यहाँ मुझे कोई देख न ले। सीता राम से विना मिले आश्रम की ओर लौट गईं।

वाल्मीकि राम से मिलना चाहते थे। उन्होंने एक ऋषि को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। राम उनसे मिलने के लिए चल पड़े। इसी बीच वाल्मीकि के आश्रम में रामायण के संगीतक के लिए आई हुई तिलोत्तमा ने सीता का रूप धारण करके राम के सीता-सम्बन्धी अनुभावों को जानने की योजना बनाई। उसको राम के मित्र (विदूषक) कौशिक ने जान लिया और राम को यह सब बताने के लिए चल पड़ा। इधर तिलोत्तमा को ज्ञात हो गया कि कौशिक को मेरी योजना ज्ञात हो गई है। उसने अपनी योजना कार्यान्वित नहीं की।

राम अपने बालसखा कण्व के साथ वाल्मीकि से मिलने जा रहे थे। मार्ग में गोमती नदी पड़ी। राम को सीता के वियोग में सन्तप्त देखकर कण्व ने गोमती के सौन्दर्य का वर्णन करके उन्हें रिझाया, किन्तु उनके आँसू गिरते ही रहे। कण्व ने आगे एक दीर्घिका तट पर पहुँचने पर राम से कहा कि आप इसके जल से अपना अश्रुमलिन मुख धो डालें। यह कहकर वह स्वयं वाल्मीकि के पास चला गया। इधर राम दीर्घिका में मुँह धोने पहुँचे तो वहाँ जल में उन्हें सीता की छाया दिखाई पड़ी।[1] राम ने सोचा—क्या सीता भी यहीं हैं? सीता राम का आना देखकर चल पड़ीं। राम ने देखा कि छाया दूर होती जा रही है। उन्होंने उसे पकड़ना चाहा। सीता ने मन में सोचा कि मेरी छाया भी न दिखाई पड़ती तो अच्छा होता। वे इतनी दूर चली गईं कि छाया भी न दिखाई दे। यह देखकर राम मूर्छित हो गये। सीता से न रहा गया। उन्होंने राम का आलिंगन करके उन्हें पुनरुज्जीवित किया। राम के सचेत होने पर सीता पुनः दूर हट गईं। राम ने अपने को रोमाञ्चित देख कर समझ लिया कि सीता के स्पर्श के अतिरिक्त कोई अन्य स्पर्श मुझे रोमाञ्चित नहीं कर सकता। उन्होने सीता को वारंवार पुकारा। उन्होंने कहा—

१. राम के यज्ञ में उपस्थित पुरुषों की भीड़ हो जाने से वाल्मीकि के आश्रम की स्त्रियों का आश्रम के निकटवर्ती दीर्घिका में पूजा के लिए पुष्पावचय करना कठिन हो गया था। इसे जान कर वाल्मीकि ने अपनी योगशक्ति से ऐसा कर दिया कि आश्रम दीर्घिका के परिसर में स्त्रियाँ पुरुषों को दिखाई नहीं देती थीं। सीता उस दिन प्रातः काल से ही उस दीर्घिका-तट पर विचरण कर रही थीं।

बाहूपधानेन पटान्तशयने पुनः
गमयेयं त्वया सार्धं पूर्णचन्द्रां विभावरीम् ।। ४.१

यह कह कर वे पुनः अचेत हो गये। सीता ने अपने उत्तरीय के अंचल से उनके लिये पंखा किया। राम ने सचेत होने पर उनका अंचल पकड़ लिया। उसी उत्तरीय से राम ने आँसू पोंछे। सीता ने उत्तरीय छोड़ ही दिया। उसे राम ने ओढ़ लिया और अपना निजी उत्तरीय आकाश में फेंक दिया, जिसे ऊपर ही ऊपर अदृश्य सीता ने पकड़ लिया। राम ने समझ लिया कि उत्तरीय को ग्रहण करने वाली सीता ही होगी।

राम सोचने लगे कि सीता से कैसे मिलूँ। सीता उन्हें इस स्थिति में अकेले छोड़कर नहीं जाना चाहती थीं। इसी समय राम का मित्र विदूषक कौशिक आ गया और सीता राम को ससहाय देखकर चलती बनीं। राम ने उसे सीता के मिलने की बात बताई।

विदूषक ने राम को बताया कि तिलोत्तमा नामक अप्सरा आई होगी। उसकी इस प्रकार की योजना को मैं सबेरे ही सुन चुका हूँ। राम को विश्वास पड़ गया कि यह सब तिलोत्तमा का खेल है।

राम मुनियों को प्रणाम करने के लिए आये हुए हैं। उनके मन में कुन्दमाला की घटना थी और सीता-छाया का वृत्तान्त था। विदूषक ने उनसे कहा था कि वह तिलोत्तमा थी। राम ने सोचा कि सब कुछ तिलोत्तमा कर सकती है, किन्तु अपने अञ्चल से वह मेरे लिए पंखा नहीं झल सकती——

रामं कथं स्पृशति हन्त पटान्तवातैः।

इधर विदूषक भी सीता की दुर्दशा का विचार करके रोने लगा। तभी मुनियों के सभामण्डप में आने के पहले ही दो होनहार मुनिकुमार रामचरित का गान करने के लिए वाल्मीकि द्वारा भेजे हुए वहाँ आ पहुँचे। अन्तःपुर के पुराने कर्मचारियों ने देखा कि वे बालकपन में राम और लक्ष्मण के सदृश हैं। उन्हें देखते ही राम की आँखों में आँसू भर गये। राम ने उन्हें आलिंगन करके अपने साथ सिंहासन पर बैठाया। वे सिंहासन पर नहीं बैठना चाहते थे तो राम ने उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया। उन्हें देखकर राम को सीता के गर्भवती होने का स्मरण हो आया कि उनका पुत्र भी इन्हीं की अवस्था का होगा। राम के इन्हीं विचारों के उथल-पुथल के बीच विदूषक ने बताया कि इन्हें सिंहासन से उतारिये। जो रघुवंश का नहीं है, उसके सिर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, यदि वह इस सिंहासन पर बैठता है। राम ने उन्हें उतार तो दिया, किन्तु उनके मन में यह बात घर कर गई कि यदि ये रघुवंशी नहीं हैं तो इनका सिर सौ टुकड़े क्यों नहीं हुआ?

राम ने उन मुनिकुमारों से बातचीत करके जान लिया कि वे सूर्यवंशी हैं, यमल हैं, उनके पिता को उनकी माता निरनुक्रोश कहती है, अपने पिता से उनकी कभी भेंट न हुई और उनकी माता को मुनिजन देवी और वाल्मीकि-वधू कहते हैं। राम की अन्तरात्मा कहने लगी कि ये सीता के पुत्र हैं।

सभामण्डप में राम-लक्ष्मण तथा पुर और जनपद के सभी लोग इकट्ठे हैं। कुश और लव ने रामविषयक संगीतक सुनाना आरम्भ किया—

पुरा दशरथो नाम सूर्यवंश्यो महारथः ।
कोसलानामभूद् राजा विख्याततनयपौरुषः ।। ६.३
उपयेमे ततस्तिस्रो धर्मपत्नीर्महीपतिः ।
कौसल्यामथ कैकेयीं सुमित्रां च सुमध्यमाम् ।। ६.४
कौसल्या सुषुवे रामं[1] कैकेयी भरतं ततः ।
सुमित्रा जनयामास यमौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ।।[2] ६.५

इसी क्रम में कैकेयी के द्वारा राम के वनवास की चर्चा आती है तो राम कह देते हैं कि सीतापहरण के पश्चात् का प्रकरण गायें। इसमें उत्तररामचरित का प्राधान्य निवेदित किया गया—

वाष्पपर्याकुलमुखीमनाथां शोकविक्लवाम् ।
उद्वहन्तीं च गर्भेण पुण्यां राघवसन्ततिम् ।। ६.१३
सीतां निर्जनसम्पाते चण्डश्वापदसंकुले ।
परित्यज्य महारण्ये लक्ष्मणोऽपि न्यवर्तत ।। ६.१४

राम और लक्ष्मण को उन्होंने बताया कि हमारी गीति तो यहीं समाप्त हो जाती है। फिर तो उन्हें लगा कि सीता मर चुकी है, क्योंकि अप्रिय का कथन करने से डर कर कवि ने कहानी समाप्त कर दी है। इस कथा से राम-लक्ष्मण को विषाद-ग्रस्त देखकर कुश ने उनसे पूछा कि आप ही राम-लक्ष्मण हैं क्या? उनके रहस्य उद्घाटित करने पर उसने पूछा कि गर्भवती सीता का क्या हुआ? इसकी

---

१. इसके पश्चात् गद्य में है—लक्ष्मणः प्रणमति। ऐसे अवसरों पर इस प्रकार का समुदाचार भासोचित है।

२. इसमें पिता का नाम निश्चयपूर्वक जानकर राम और लक्ष्मण नमस्कार करके आसन से उतर जाते हैं। स्वप्नवासवदत्त में सप्तम अंक में उदयन श्वसुर का नाम सुनकर खड़े हो गये। पंचरात्र में विराट ने ज्यों ही सुना कि भीष्म भी लड़ने के लिए आये हुए हैं, वे उनका नाम सुनते ही उठ खड़े हुए। दूतघटोत्कच में धृतराष्ट्र कृष्ण का नाम सुन कर उठ खड़े हुए। यह प्रवृत्ति अन्यत्र नहीं मिलती।

जानकारी के लिए कण्व को बुलाया गया। उन्होंने आगे की कथा बताई कि किस प्रकार वाल्मीकि ने तपोवन में उनकी रक्षा की। उनसे दो पुत्र हुए।[1] इनका नाम कुशलव है। फिर तो कुशलव को ज्ञात हुआ कि राम हमारे पिता हैं और सीता हमारी माता हैं। बाप-बेटे परस्पर आलिंगन करके मूर्छित हो जाते हैं। वाल्मीकि और सीता वहाँ उपस्थित होते हैं। वाल्मीकि से आज्ञा लेकर सीता उन्हें देखती हैं।[2] वह कुशलव को और वाल्मीकि राम-लक्ष्मण को समाश्वस्त करते हैं। सचेत होने पर राम सीता से कहते हैं कि इतने दिनों के पश्चात् दिखाई देने पर भी प्रसन्न मुख से प्रवृत्त नहीं हो रही हो। फिर तो वाल्मीकि ने राम का कच्चा चिट्ठा खोलते हुए क्रोधपूर्वक कहा——

हे राजन्, धृतसौहार्द, महाकुलीन, समीक्ष्यकारिन्, किं युक्तं तव प्रतिपादितां जनकेन, गृहीतां दशरथेन, कृतमंगलामरुन्धत्या विशुद्धचरित्रां वाल्मीकिना, भावितशुद्धिं विभावसुना, मातरं कुशलवयोः, दुहितरं भगवत्याः विश्वम्भराया देवीं सीतां जनापवादमात्रश्रवणेन निराकर्तुम्।

सीता को राम के प्रति आक्षेप सुन कर कष्ट हो रहा था। उन्होंने कान बन्द कर लिए।

राम के उत्तर से वाल्मीकि का क्रोध शान्त न हुआ। उनकी धारणा बन गई कि राम बहका रहे हैं। उन्होंने सीता को आदेश दिया——

गृहाण कुशलवौ। गच्छामः स्वाश्रमपदम्।

और चलने लगे। राम गिड़गिड़ाने लगे। वाल्मीकि के कहने से सीता ने अपने चरित्र का सत्यापन किया। सीता की स्तुति करने पर स्वयं भगवती वसुधा प्रकट हुईं। उन्होंने कहा——

रामं दाशरथिं मुक्त्वा न जातु पुरुषान्तरम्।
मनसापि गता सीतेत्येवं विदितमस्तु वः॥ ६.३५

राम ने वाल्मीकि के कहने पर सीता का हाथ पकड़ लिया। लक्ष्मण के वहीं युवराज-पद पर अभिषेक न चाहने पर कुश को सम्राट् पद पर और लव को उनके युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दिया गया।

---

१. इस संवाद को सुनकर कुशलव ने कहा——वर्धतां राघवकुलम्। संस्कृत साहित्य में विरल ही ऐसे स्थल हैं, जहाँ बेटा बाप को पुत्र-जन्म के लिए बधाई देता हो। यही नाटकीय कला है।

२. सीता से वाल्मीकि ने कहा कि राम को देखो मूर्च्छित हैं। सीता ने कहा कि मुझे रामदर्शन की आज्ञा नहीं है। यहाँ कवि ने कुछ भूल की है। सीता तो तृतीय अंक में ही राम को देख चुकी थीं। वहाँ उनके मन में कोई ऐसी बात नहीं थी। नाटकीय चमत्कार के लिए इस त्रुटि को सम्भवतः जानबूझ कर अपनाया गया है।

राम और लक्ष्मण दोनों को वेत्राधिकार प्राप्त हुआ।[1]

समीक्षा

उत्तररामचरित और कुन्दमाला की कथाओं में अन्तर है। भवभूति के अनुसार सीता राम की दृष्टि में मर चुकी है और दिङ्नाग के अनुसार सीता सर्वथा जीवित है।[2] भवभूति की करुणाश्रयणी कथा निस्सन्देह परवर्ती है।

सीता और राम की कथा के विकास के तीन क्रम हैं—(१) मूल रामायण में युद्धकाण्ड तक, जिसमें लङ्काविजय के पश्चात् सीता से मिलने पर उनका प्रथमतः प्रत्यादेश करते हैं और उनकी अग्निपरीक्षा के पश्चात् उन्हें प्रतिग्रहण करते हैं। (२) उत्तरकाण्ड में सीता-विषयक अपवादात्मक बातें सुन कर उनको गंगातीर पर छोड़ने के लिए लक्ष्मण को राम नियोजित करते हैं, परित्याग के पश्चात् सीता वाल्मीकि-आश्रम में रहती हुई पुत्र प्रसव करती हैं। इधर राम नैमिषारण्य में यज्ञ करते हैं, जिसमें पुत्रों के सहित सीता और वाल्मीकि आते हैं और सीता के पुत्र कुश और लव उनकी आज्ञानुसार रामायण गान करते हैं। राम ने सीता को शुद्धि का प्रत्यय दिलाने के लिए वाल्मीकि के साथ अपनी परिषद् में बुलवाया। वाल्मीकि के कहने पर राम ने मान लिया कि सीता शुद्ध हैं। सीता को शपथ लेना पड़ा—

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ उत्तर० ९७.१६

पृथ्वी देवी आईं और सीता को लेकर रसातल चली गईं।

ब्रह्मा ने राम की सीता को पृथ्वी से बलात् प्राप्त करने की योजना सुनकर उन्हें समझाया—

स्वर्गे ते सङ्गमो भूयो भविष्यति न संशयः ॥ ९८.१५

और (३) पुनः संगम के लिए स्वर्ग में जाना आवश्यक न रहा। इस शपथादि के पश्चात् सीता को राम ने स्वीकार कर लिया। पृथ्वी उन्हें रसातल में नहीं ले गईं।

सीता के पुनर्वनवास की योजना क्यों ? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि उस युग में किसी चरितनायक के चरित्र में सर्वोत्कृष्ट निखार लाने के लिए उसे सतत त्याग और सन्ताप का जीवन बिताते हुए अपनी उदात्त वृत्तियों को अक्षुण्ण रखना आवश्यक माना जाता था।

---

१. रामः—आवयोस्तर्हि वेत्राधिकारः

२. राम ने सीता के विषय में स्पष्ट कहा है—

नूनं तस्यां दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी। ३.६

पत्नी के वियोग में सर्वाधिक सन्ताप होता है, राज्यभ्रंश से भी उतना ताप नहीं होता--यह रामायण में सीताहरण के प्रकरण में राम के विलाप से स्पष्ट ही है। राज्य न मिलने पर उन्हें कोई कष्ट न हुआ। सौन्दरनन्द में नन्द सुन्दरी के वियोग में तो रोता-धोता है, किन्तु कभी राजधानी से वियुक्त होने की वह चर्चा नहीं करता। लक्ष्मण ने राम की वास्तविक स्थिति का परिचय देते हुए कहा है--

> **पुरा रामः पितुर्वाक्याद् दण्डके विजने वने**
> **उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ।।**
> **ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम्**
> **पौराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ।।** उत्तर० ५०.६-७

आगे चल कर यह योजना भास ने स्वप्नवासवदत्त और अविमारक में अपनाई है। इसके द्वारा स्वप्नवासवदत्त संस्कृत का सर्वोत्तम नाटक बन सका है। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय में दुष्यन्त और पुरुरवा को अपनी प्रेयसियों से अलग करके उनके चरित्र को लोकावर्जक बनाया है। इन सभी नाटकों में नायकों को उनकी पत्नियाँ मिल जाती हैं। यह प्रवृत्ति सुखान्त नाटकों में अनिवार्य सी है, क्योंकि नायक को त्याग का फल मिलना ही चाहिए अथवा कालचक्र की महिमा इसी बात में है कि दुःख के पश्चात् सुख मिलता है। कवि का कर्तव्य है कि इन नियमों का अपवाद न होने दे। ऐसा लगता है कि सीता की वियोगाग्नि में राम को परिपूत करके सीता से उनका पुनर्मिलन करा देने की सर्वप्रथम कल्पना करने वाला नाटचकार दिङ्नाग ही है। उसने कुन्दमाला में अपनी कल्पना को जो समञ्जसित रूप दिया, उसे पूर्णता प्रदान करने वाला महाकवि भवभूति हुआ।

दिङ्नाग ने कुन्दमाला में अपने अभिनव कथांश को छोड़ शेष सारी कथा वाल्मीकि रामायण से ली है। रामायण के अनुसार रघुवंश की तत्सम्बन्धी कथा भी रूपित है।

कुन्दमाला और उत्तररामचरित के पौर्वापर्य पर विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर विद्वानों की धारणा है कि उत्तररामचरित के आधार पर कुन्दमाला नामक एक घटिया रचना हुई। यह मत सर्वथा असंगत लगता है। जिस युग की यह रचना है, उसमें उच्चकोटि के कवियों में भी होड़ रहती थी कि किसी सम्मान्य ग्रन्थकार की रचना से बढ़ कर उससे मिलते-जुलते विषय पर मेरी कृति हो जाय तो मेरी कीर्ति भी चिरस्थायी हो। भास के चारुदत्त से बढ़कर उसके आधार पर शूद्रक ने मृच्छकटिक लिखा। भारवि की होड़ में माघ ने शिशुपालवध की रचना की। इसी पद्धति पर भवभूति ने उत्तररामचरित की रचना अपने युग के सुसम्मानित नाटक कुन्दमाला के आदर्श पर की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तररामचरित कुन्दमाला से उच्चतर कोटि की रचना है, पर साथ ही यह भी निस्संदेह है कि उत्तररामचरित के होते हुए भी कुन्दमाला कई शताब्दियों तक संस्कृत

का एक अमर नाटक माना गया। यही कारण है कि इसके अगणित उद्धरण और चर्चायें प्राचीन विद्वानों ने की हैं। दसवीं शती में अभिनवगुप्त की अभिनव भारती से लेकर १४वीं शती में विश्वनाथ के साहित्यदर्पण तक के लगभग ५०० वर्षों का अन्तराल कुन्दमाला के द्वारा सुवासित है।[१] इसकी लोकप्रियता देखकर भवभूति ने यशःप्राप्ति के लिए इसी कथावस्तु को लेकर उच्चतर कोटि की रचना की। उत्तररामचरित के अनुसार जब लक्ष्मण ने सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ दिया तो वे पुत्रप्रसव के लिए गंगा में कूद पड़ीं। वहाँ से गंगा और भागीरथी उन्हें पुत्रों के साथ रसातल ले गईं। स्तन्य-त्याग करने पर उन शिशुओं को गंगा ने वाल्मीकि को दे दिया। यह परिवर्तित कथा कुन्दमाला के पश्चात् की है।

सीता का गंगा की शरण में रहना राम के उत्तरचरित का कल्पित अंश है, जो वाल्मीकि रामायण और कुन्दमाला और रघुवंश से भिन्न है। इसके उद्भावक परवर्तियुगीन भवभूति हैं।

कुन्दमाला की कथा में प्रथम अभिनव तत्त्व है सीता का यह बताना कि निर्विघ्नपुत्र-प्रसूति होने पर मैं गङ्गा को प्रतिदिन एक कुन्दमाला अर्पित करूँगी। इसका मूल वाल्मीकि रामायण में अयोध्याकाण्ड में मिलता है, जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण गंगा पार कर रहे हैं और सीता गंगा से कुछ कहती हैं—

सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वां प्रयता देवि पुरीं पुनरुपागता।

कुन्द की माला के प्रसङ्ग में जोड़ा हुआ सारा कथांश नवीन है। इसको पाकर इसका मूल स्थान ढूँढ़ते हुए राम वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ सीता छिपी हुई पुष्पावचय कर रही थीं। सीता का स्मरण करते हुए राम का करुण-विप्रलम्भ निष्पन्न होता है। एक बार और वाल्मीकि के आश्रम की ओर जाते हुए राम जलकुण्ड में सीता की छाया देखते हैं और उनको भ्रम होता है कि सीता हैं, किन्तु हमें दिखाई नहीं पड़तीं। राम का सीता की स्मृति से मूर्च्छित होना, सीता का उन्हें आलिङ्गन द्वारा सचेत करना, सीता का उत्तरीय से उनके लिए पंखा करना, राम का उस उत्तरीय को ले लेना, राम के उत्तरीय का सीता द्वारा ग्रहण आदि बातें कुन्दमाला में अभिनव तत्त्व हैं। इन सब कथांशों में राम को यह प्रतीति होती है कि सीता जीवित हैं।[२] ऐसा कुछ उत्तररामचरित में नहीं होता।[३]

---

१. इस बीच बारहवीं शती में बहुरूप मिश्र ने दशरूपक की टीका रूपदीपिका में, १३ वीं शती में शारदातनय ने भावप्रकाशन में, सागरनन्दी ने १०वीं शती में नाटक-लक्षण-रत्नकोश में और १२वीं शती में रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में कुन्दमाला का उल्लेख किया है।

२. यह भावना तब दूर होती है, जब विदूषक उनसे कहता है कि यह तिलोत्तमा का खेल था।

३. उत्तररामचरित में राम कहते हैं—व्यक्तं नास्त्येव और क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता। ३.२८

सीता को वनवास के अवसर पर राम का सन्देश भी एक नया तत्त्व है, जिससे यह प्रतीत होता है कि राम सोचते हैं कि निर्वासन-काल में सीता मरने वाली नहीं हैं।

कुन्दमाला की कथा का कलात्मक विन्यास उत्तररामचरित की अपेक्षा हीनतर है। इससे सिद्ध होता है कि उत्तररामचरित में कुन्दमाला की कथा का विकसित रूप है। प्रश्न है कि कुन्दमाला की कथा के अभिनव तत्त्वों का स्रोत क्या है? कालीकुमारदत्त का कहना है कि वाल्मीकि-रामायण का कोई प्राचीनतर संस्करण रहा होगा, जिसके आधार पर कुन्दमाला की कथा गढ़ी गई है। दिङ्नाग को सीता का पुर्नमिलन न होने वाली कथा का ज्ञान नहीं था।[१]

उपर्युक्त मत में एक त्रुटि प्रतीत होती है। हमें दिङ्नाग को इस बात का श्रेय देना चाहिए कि उस युग में प्राचीन कथा को काव्यानुरूप बनाने के लिए कल्पना के आधार पर नये तत्त्वों के संयोजन का प्रकाम प्रचलन था। भास के प्रतिमा, अभिषेक और पंचरात्र नाटकों में क्रमशः रामायण और महाभारत की कथाओं का प्रायः अधिकांश कविकल्पित रूप है। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी महाभारत की कथा का एक निराला ही नया रूप कालिदास के द्वारा कल्पित है। भवभूति के महावीरचरित में रामकथा अतिशय विपरिवर्तित है। इन सबको दृष्टि में रखते हुए यही माना जा सकता है कि कुन्दमाला की कलात्मक नवीनतायें उस युग की कल्पनात्मक उर्वरता का परिचायक हैं। कुन्दमाला में भास के नाटकों की भाँति नायक और नायिका की जो गान्धर्व लीलायें मिलती हैं, वे वात्स्यायन के नागरक जीवन की झलक प्रस्तुत करती हैं।[२] इसकी कथावस्तु स्वप्नवासवदत्त के साँचें में ढली है।

उत्तररामचरित और कुन्दमाला में केवल दो ही अभिनव कथांश उभयनिष्ठ हैं। वे हैं (१) वाल्मीकि के आश्रम में मिलने से पहले अदृश्य सीता से राम का मिलन और इस अवसर पर राम का करुणोद्गार और (२) राम को पुनः सीता की प्राप्ति। केवल इन दो बातों के लिए भवभूति को दिङ्नाग पर आश्रित मान सकते हैं। इनके अतिरिक्त उत्तररामचरित की कथा में भवभूति ने अपनी कल्पना से अनेक नये तत्त्वों

---

१. We See, therefore, that it is the older form of Valmiki's epic that is the source of the Kundamala. The author of our drama was most probably not aware of the tragic version of the story. Kundamala of Dinnaga. P. 177

२. इससे कुन्दमाला की पुरातनता प्रतीत होती है।

को जोड़ा है, जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते और कुन्दमाला तथा रघुवंश में भी नहीं हैं।[1]

जहाँ तक कुन्दमाला और उत्तररामचरित के वाक्यों की समानता का प्रश्न है, ऐसे प्रत्येक उदाहरण से यह साक्षात् व्यक्त होता है कि कुन्दमाला के वाक्यों से उत्तर-रामचरित के तत्सदृश वाक्य अधिक सजे-धजे हैं। यथा—

कुन्दमाला में

स्वजनविश्रम्भनिर्विशङ्कां देवीमादाय गृहहरिणीमिव वध्यभूमिं वनमुनयामि। प्रथम अङ्क में।

उत्तररामचरित में इसका समकक्ष है—

विश्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम्।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि॥ १.४९

कुन्दमाला में

त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे। प्रथम अङ्क में।

उत्तररामचरित में इसका समकक्ष है—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। ३.२६

कुन्दमाला में राम कहते हैं—

दुःखे सुखेष्वप्यपरिच्छदत्वा-
दसूच्यमासीच्चिरमात्मनीव।
तस्यां स्थितो दोषगुणानपेक्षो
निर्व्याजसिद्धो मम भावबन्धः॥ ५.५

---

१. अष्टावक्र की घटना, ऋष्यशृंग का १२ वर्ष का यज्ञ, भित्तिचित्र-दर्शन, जृम्भकास्त्र-प्रदान, युग्म की गंगा में उत्पत्ति, सीता का वाल्मीकि-आश्रम में न रहना, अपितु गंगा की शरण में रहना, जनक आदि का वाल्मीकि के आश्रम में मिलना और वहाँ उनका लव से मिलना, अश्वमेध के घोड़े की रक्षा करते हुए चन्द्रकेतु का वाल्मीकि-आश्रम के समीप लव से युद्ध करना, और गर्भाङ्क—ये बातें भवभूति की कल्पना से प्रसूत हैं।

इसके समकक्ष राम ने उत्तररामचरित में कहा है—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रम्भो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ।। १.३४

कुन्दमाला में प्रथम वार राम की स्वरलहरी सुनकर सीता कहती हैं—

को नु खल्वेष सजलधर-ध्वनितगम्भीरेण स्वरविशेषणात्यन्तदुःखभाजनमपि मे शरीरं रोमाञ्चयति । तृतीय अङ्क में

इससे मिलता-जुलता है उत्तररामचरित में प्रथम वार सीता के राम की स्वर-लहरी सुनने पर—

जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो न्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाण कर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति ।

ऐसे अनेक अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि भवभूति की उत्कृष्ट प्रतिभा ने दिङ्नाग के मूल काव्याङ्कुरों का अभिषेचन करके विकसित किया है ।

भास का कथाविन्यास-शिल्प कुन्दमाला में अनेक स्थलों पर अपनाया गया है। भास ने अपने अनेक रूपकों में प्रमुख पात्रों के द्वारा भी छिपकर या अदृष्ट रह कर दूसरे पात्रों की बातें सुनने का विधान अपनाया है । इसका बड़ा ही स्पष्ट रूप कुन्दमाला में है । यथा सीता के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए थक कर राम और लक्ष्मण छाया में विश्राम करने लगे और निकट ही सीता पूजा के लिए पुष्पावचय करती हुई उनकी बातें सुन रही थीं । पात्रों के अदृश्य रहने का रङ्गमञ्च पर सर्वप्रथम प्रयोग भास के अविमारक में मिलता है । अविमारक नामक नायक को विद्याधर ने एक अँगूठी दी थी, जिसे पहन कर वह अदृश्य बन सकता था और अपनी नायिका से मिल सकता था । भास के प्रतिमानाटक से दिङ्नाग ने राजा दशरथ की प्रतिमा की कल्पना की है । ऐसा लगता है कि भास के नाटकों के वातावरण में कुन्दमाला का प्रणयन हुआ है ।[1] निःसन्देह कालिदास की अपेक्षा दिङ्नाग भास के अधिक निकट हैं ।

हम पहले लिख चुके हैं कि भास ने रङ्गमञ्च पर कुछ ऐसे तत्त्वों का विनिवेश किया था, जो आगे चल कर गर्भाङ्क के रूप में परिणत हो सके । कुन्दमाला का सङ्गी-

---

१. शब्दों के प्रयोग भी कुछ ऐसा ही प्रमाणित करते हैं । समुदाचार शब्द का भास की भाँति ही दिङ्नाग ने बहुशः प्रयोग किया है । कौशल्यामातः शब्द का कुन्द-माला में राम के लिए प्रयोग हुआ है । भास ने सुमित्रामातः आदि शब्द लक्ष्मण आदि के लिए दिया है ।

तक भास की योजनाओं और गर्भाङ्क के बीच की स्थिति को द्योतित करता है। गर्भाङ्क की भाँति इसमें भी सङ्गीतक के प्रेक्षक स्वयं अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रंग-मञ्च के पात्ररूप में निर्दशित हैं।

अपने सम्बन्धियों से अपरिचित रहकर उनसे जो बातें की जाती हैं, उनमें मनोरञ्जन की सामग्री होती है। भास ने ऐसे प्रयोग मध्यमव्यायोग और पंचरात्र आदि में किये हैं। कुन्दमाला में इसका चर्मोत्कर्ष मिलता है, जहाँ छठें अङ्क में बेटा बाप को पुत्रजन्म-विषयक बधाई देता है।[1]

पत्नी के वियोग में पति के विलखने का करुणोद्गार सर्वप्रथम रामायण और सौन्दरनन्द महाकाव्य में मिलता है। काव्य की दृष्टि से यह प्रकरण अतिशय चमत्कार पूर्ण माना गया है। सर्वप्रथम भास ने नायक में इसका विनियोग किया है। स्वप्न-वासवदत्त और अविमारक में नायक का नायिका के लिए विलखना या सन्तप्त होना उनकी रसनिर्भरता की एक अभिनव दिशा थी। कुन्दमाला में स्वप्नवासवदत्त के आदर्श पर राम का सीता के लिए सन्तप्त होना दिखाया गया है। इसी तत्त्व का सर्वोच्च परिपोष करके भवभूति ने उत्तररामचरित का प्रणयन किया, जिसके विषय में कवि की यह उक्ति चरितार्थ है—

एको रसः करुण एव

दिङ्नाग ने इस कृति में रामकथा को सुखान्त क्यों किया? इसका उत्तर स्वयं लेखक ने यह कह कर दिया है—

अप्रियाख्यानभीतेन कविना संहृता कथा।

अर्थात् किसी कवि को अपने नायक और नायिका के वृत्त की परिणति उनके अप्रिय में नहीं करनी चाहिए। इसी उद्देश्य से राम के कारुण्य का अवसान कराया गया है और उन्हें सीता पुनः मिल जाती है।

पात्रों के एक दूसरे से प्रच्छन्न होने के कारण कतिपय स्थलों पर अतिशय नाटकीयता की सृष्टि की गई है।[2] यह सुशिल्प नीचे लिखे संवाद में प्रस्फुटित हुआ है—

कुशः—(अपवार्य) अयि वत्स लव, कासौ वाल्मीकितपोवने सीता नाम।
लवः—न काचित्। केवलं गीतिनिबन्धनानि सीता सीतेत्यक्षराणि।

---

१. कुशलवौ—जयतु महाराजः पुत्रजन्मना।

२. यह प्रच्छन्नता वस्तुतः अस्वभाविक है। कुन्दमाला के अनुसार वाल्मीकि को छोड़ कर कोई यह नहीं जानता था कि सीता कौन है? उसके पुत्र भी नहीं जानते थे कि मेरी माँ कौन है। नाटक में इस प्रकार का संघटन-विशेष चमत्कार का सर्जक होने के कारण स्पृहणीय है।

कथावस्तु का इस प्रकार विन्यास किया गया है कि दर्शक को भावी प्रवृत्तियों का सङ्केत मिलता चलता है। वाल्मीकि सीता को आशीर्वाद देते हैं—'**वीरप्रसवा भव। भर्तुश्च पुनर्दर्शनमवाप्नुहि।**' इन वक्तव्यों से ज्ञात होता है कि आगे चल कर सीता को सन्तानोत्पत्ति होगी और सीता का राम से पुनर्मिलन होगा।

सीता का राम से पुनर्मिलन के पहले दो बार उनके निकट आना नाट्य-कला की दृष्टि से व्यर्थ सा है। अच्छा तो यह रहा होता कि केवल दूसरी बार की ही सन्निकटता को पर्याप्त मान कर कुन्दमाला के प्रकरण की उपेक्षा की गई होती। हमें तो ऐसा लगता है कि जैसे प्रतिमानाटक में प्रतिमा-सम्बन्धी चर्चा व्यर्थ है, वैसे ही कुन्दमाला नाटक में कुन्दमाला-सम्बन्धी प्रकरण सर्वथा अनावश्यक है। भास को प्रतिमा से अनुराग था और दिङ्नाग को कुन्दमाला से। इसी कारण इन्होंने नाटकों में इन अनावश्यक प्रकरणों की योजना की है।

पात्रोन्मीलन

कुन्दमाला के नायक राम को कवि ने आवश्यकतानुसार मानवस्तर पर अथवा देवस्तर पर रखा है। मानवस्तर के लिए नीचे लिखा पद्य उदाहरण है—

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्या निशीथकलहे हरिणेक्षणायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्॥ ४·२०

राम का देवस्तर है—

मन्दं वाति समीरणो न परुषा भासो निदाघार्चिषो
न त्रस्यन्ति चरन्त्यशङ्कमधुना मृग्योऽपि सिंहैः सह।
मध्याह्नेऽपि न याति गुल्मनिकटं छाया तदध्यासिता
व्यक्तं सोऽयमुपागतो वनमिदं रामाभिधानो हरिः॥ ३.१४

न केवलमतिमानुषेण प्रभावेण, आकारेणापि शक्यत एव निश्चेतुम्।

कवि ने राम को अपना ही आलोचक बना रखा है। अपनी आलोचना करते समय वे परिहास-प्रिय प्रतीत होते हैं। जब कुशलव ने रामकथा सुनाई कि राम ने सीता का निर्दयतापूर्वक निर्वासन कर दिया तो राम ने कहा—

रामपराक्रमाः खल्वेते गीयन्ते।

इस नाटक में ऋषियों का पद सर्वथा उच्च मिलता है। राम से मिलने के लिए वाल्मीकि के भेजे हुए जो ऋषि आये, उन्हें राम ने अभिवादन किया और ऋषि ने आशीर्वाद दिया—विजयी भव। वाल्मीकि की बात बड़ी ही ऊँची है। सीता ने जब उनसे

कहा कि राम की आज्ञा के बिना मैं कैसे उनसे मिलूँ तो वाल्मीकि ने उत्तर दिया—**मयि स्थिते को वान्यानुज्ञायाः प्रतिषेधस्य वा। गच्छ, अभ्यनुज्ञातासि वाल्मीकिना मयैतद्दर्शने।**

एक अन्य अवसर पर वाल्मीकि ने राम को डाँट बताई—

किं युक्तं तव प्रतिपादितां जनकेन, गृहीतां दशरथेन, कृतमंगलामरुन्धत्या, विशुद्ध-चरित्रां वाल्मीकिना, भावितशुद्धिं विभावसुना, मातरं कुशलवयोः दुहितरं भगवत्या विश्वम्भरायाः, देवीं सीतां जनापवादमात्रश्रवणेन निराकर्तुम्

और राम की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। कवि के शब्दों में—

रामः—वैक्लव्यं नाटयति।

रस

उत्तररामचरित में तीसरे अङ्क में राम समझते हैं कि सीता मर चुकी है, चौथे अंक में जनक कहते हैं—

तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः।

इससे सीता की मृत्यु ही जनक के मन में स्पष्ट है। किन्तु कुन्दमाला में कहीं यह प्रकट नहीं होता कि राम ने सीता को मृत समझा हो।[1] ऐसी स्थिति में कुन्दमाला में विप्रलम्भ-शृङ्गार ही मानना समीचीन है। इसी विप्रलम्भ के बीच कवि ने कहीं-कहीं शृंगार की भी मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है। यथा राम कहते हैं—

अद्यास्माकं रमयति मनो गोमतीतीरवायु-
र्नूनं तस्यां दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी॥ ३.६

कदा बाहूपधानेन पटान्तशयने पुनः।
गमयेयं त्वया सार्धं पूर्णचन्द्रां विभावरीम्॥ ४.१७

शृङ्गारात्मक विलास के लिए उद्दीपन विभाव के रूप में अनेक वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। यथा—

मरकतहरितानामम्भसामेकयोनि-
र्मदकलकलहंसीगीतरम्योपकण्ठा।
नलिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्
नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम्॥ ३.५

---

१. राम का सीता के विषय में अधिक से अधिक यही कहना है—

पातयति सा क्व दृष्टिं कस्मिन्नासाद्य चित्तमाश्वसिति।
जीवति कथं निराशा श्वापदभवने वने सीता॥ ३.४

अर्थात् सीता जीवित है।

सुरभिकुसुमगन्धैर्वासिताशामुखानां
फलभरनमितानां पादपानां सहस्रैः
विरचित-परिवेश-श्यामलोपान्तरेखो
रमयति हृदयं ते हन्त कच्चिद् वनान्तः ।। ४.३

अन्यत्र शान्तरस का उद्दीपन-विभाव प्रभविष्णु है। यथा वनप्रदेश में

अस्मिन् कपोलमदपानसमाकुलानां
विघ्नं न जातु जनयन्ति मधुव्रतानाम् ।
सामध्वनिश्रवणदत्तमनोऽवधान-
निष्पन्दमन्दमदवारणकर्णतालाः ।। ४.१०

अस्मिन् सन्निवसन् महेश्वरशिरस्ताराधिपज्योत्स्नया
मिश्रीभूय कवोष्णतामुपगतस्तिग्मो निदाघातपः ।
न म्लानिं तरुपल्लवेषु सरसां तोयेषु नैव क्षयं
संन्तापं न जनस्य किन्तु जनयत्यालोकमात्रं दृशाम् ।। ४.६

संवाद

दिङ्नाग ने संवाद-कला भास के नाटकों से ली है, जिसमें दो पात्र बातचीत करते हैं और उन्हें तीसरे पात्र की उपस्थिति का ज्ञान नहीं होता, किन्तु रङ्गमञ्च पर उनसे सम्बद्ध उस तीसरे पात्र का वाचिक और सात्त्विक अभिनय प्रेक्षकों के लिए दृश्यमान होता है। इस कला का उत्कर्ष उन प्रसंगों में प्रतीत होता है, जहाँ प्रच्छन्न पात्र किसी अन्य पात्र की बातों का उत्तर देता चलता है, जिसे वह पात्र नहीं ग्रहण कर पाता। तीसरे अंक में राम और लक्ष्मण रंगमञ्च पर हैं। सीता की उपस्थिति का उन्हें ज्ञान नहीं है। संवाद इस प्रकार प्रवर्तित है—

रामः—हा वनवाससहायिनि ।
सीता—अप्येतन्न साम्प्रतम् ।
रामः—हा क्व गतासि ।
सीता—यत्र मन्दभागा गच्छति।
रामः—देहि मे प्रतिवचनम् ।
सीता—असंभावनीये जने कीदृशं प्रतिवचनम् ।
रामः—(शोकं नाटयति)
लक्ष्मणः—आर्य, ननु विज्ञापयामि—अलं शोकेनेति ।
रामः—कथं न शोचामि शोचनीयां वैदेहीम् ।

कहीं-कहीं संवादों के द्वारा अभिनय का संकेत किया गया है। यथा लक्ष्मण सीता से कहते हैं—

अत्यन्तविश्रान्तमनुष्यसंचारतया दुरवतारास्तटप्रदेशाः । तस्मात् प्रपदमास्थाय सम्यक् ।

वामेन वानीरलतां करेण जानु समालम्ब्य च दक्षिणेन ।
पदे पदे मे पदमादधाना शनैः शनैरेतु मुहूर्तमार्या ॥ १.६

संवाद में कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य और वक्रोक्ति हैं ।

संवादों की मनोरंजकता उन स्थलों पर सविशेष है, जहाँ ऐसे पात्र परस्पर बातचीत करते हैं, जो निकट सम्बन्धी होते हुए भी यह नहीं जानते कि हम सम्बन्धी हैं। राम और कुशलव आदि का संवाद इसी कोटि का है । यह कला भी भास ने विकसित की थी और उसका उपयोग कुन्दमाला और उत्तररामचरित में हुआ है ।

कुन्दमाला एकोक्ति-संकुल है । इसमें एकाकिनी सीता रंगमञ्च पर अपनी मानसिक वृत्तियों की गाथा सुनाती है । प्रथम अङ्क में लक्ष्मण के उसे वन में अकेले छोड़ देने पर और द्वितीय अङ्क के प्रवेशक के पश्चात् अपने मरण-व्यवसाय की भूमिका रूप में उसकी एकोक्तियाँ अनूठी हैं

शैली

दिङ्नाग की शैली वैदर्भी रीति और प्रसादगुण से मण्डित है । कैशिकी वृत्ति की इस रचना में वैदर्भीरीति का सामञ्जस्य यथायोग्य ही है । कहीं-कहीं पदशय्या समान प्रकरणों में भास का स्मरण कराती है । यथा—

वाल्मीकिः—(प्रतिनिवृत्य) कथमिक्ष्वाकुवंशमुदाहरति । तदनुयोक्ष्ये, वत्से । किञ्च दशरथस्य वधूः ।

सीता—जं भअवं आणवेदि ।

वाल्मीकिः—किञ्च विदेहाधिपतेर्जनकस्य दुहिता ?

सीता—अथ किम् ।

वाल्मीकिः—किञ्च सीता ।

सीता—न हि सीता भगवन्, मन्दभागिनी ।[1]

---

१. इस प्रकार की संवाद की पदशय्या प्रतिज्ञायौगन्धरायण के द्वितीय अङ्क में है । यथा—

काञ्चुकीयः—तत्र भवतामात्येन शालङ्कायनेन गृहीतो वत्सराजः ।

राजा—(सहर्षम्) किमाह भवान् । उदयनः ।

काञ्चुकीयः—अथ किम् ।

राजा—शतानीकस्य पुत्रः ।

काञ्चुकीयः—दृढम् ।

राजा—सहस्रानीकस्य नप्ता ।

काञ्चुकीयः—स एव ।

कुन्दमाला में स्वर-सादृश्य के द्वारा अनुप्रास की योजना कतिपय स्थलों पर की गई है। यथा—

स एष रामो नयनाभिरामः सीता सुताभ्यां समुपास्यमानः ।
यदृच्छया तिष्यपुनर्वसुभ्यां पार्श्वस्थिताभ्यामिव शीतरश्मिः ॥

इसमें आ स्वर की अनेकशः आवृत्ति है।[1]

कहीं-कहीं व्यञ्जनों की पुनः पुनः आवृत्ति अतिशय रमणीय प्रतीत होती है। यथा—

आपातमात्रेण कयापि युक्त्या
सम्बन्धिनः सन्नमयन्ति चेतः ।
विमृश्य किं दोषगुणानभिज्ञ-
श्चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्तः ॥

इस पद्य के अन्तिम चरण में अनुप्रास का श्रेणीबद्ध लावण्य है।

अर्थालङ्कारों का सातिशय प्रयोग तो इस नाटक में दिखाई ही नहीं पड़ता, किन्तु जहाँ-कहीं इनका प्रयोग मिलता है, वहाँ इनकी अर्थव्यञ्जकता और प्रभविष्णुता उल्लेखनीय है। यथा,

भवति शिशुजनो वयोऽनुरोधाद्
गुणमहतामपि लालनीय एव ।
व्रजति हिमकरोऽपि बालभावात्
पशुपतिमस्तककेतकच्छदत्वम् ॥

---

१. स्वरानुप्रास के कुछ अन्य उदाहरण हैं—
(क) किं नीता त्वया सीता (ख) अपि भवन्तौ रामायणकथानायकौ रामलक्ष्मणौ। षष्ठ अङ्क में।

अध्याय ५

मृच्छकटिक

मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक का प्रादुर्भाव कब और किस प्रदेश में हुआ—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। उसके विषय में प्राचीन काल में अनेक ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से लिखे गये और बहुत से ग्रन्थों में उसके जीवन-चरित के विषय में चर्चायें मिलती हैं, पर इन पुस्तकों की प्रामाणिकता निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं है और इनमें शूद्रक-सम्बन्धी जो विवरण मिलते हैं, वे परस्पर साधक नहीं बाधक हैं।[1] यह भी सम्भावना निर्मूल नहीं कि अनेक शूद्रक हुए हों। फिर भी शूद्रक नाम की इस प्रतिष्ठा से स्पष्ट है कि वह राजा रहा हो या न रहा हो, वह कविराज तो अवश्य ही था। उसकी विमल कीर्ति की पताका चिरकाल तक दिग्दिगन्त में फहराती हुई, कवियों और लेखकों को उसका चरित निबद्ध करने के लिए चपल बनाती रही। इस महाकवि का प्रादुर्भाव चौथी शताब्दी ई० में हुआ था। इन्हें भास और कालिदास के अन्तराल में रखना समीचीन है। कवि के ऊपर भारतीय नाट्यशास्त्र का नियन्त्रण अधिक नहीं है। वह रङ्गमञ्च पर ही नायक चारुदत्त को शूली चढ़ाने तक का दृश्य दिखा सकता है। परवर्ती युग के नाटकों में भारतीय नाट्यशास्त्र की मान्यता के कारण ऐसा दृश्य रङ्गमञ्च पर अपवादात्मक ही है।

शूद्रक के विषय में परवर्ती युग के अभिनेता कवि ने प्रशस्ति लिखी—हाथी की भाँति उसकी मस्त चाल थी। उसके नेत्र चकोर के समान थे। मुख पूर्ण चन्द्र के समान था। शरीर सुन्दर था। वह श्रेष्ठ क्षत्रिय था।[2] उसका सत्त्व असीम था। उस राजा शूद्रक को युद्ध करने का चाव था। उसे प्रमाद नहीं था, वह वेदज्ञों में निपुण था, तपस्वी था, वह बाहु-युद्ध के लिए उत्सुक रहता था। कवि ने शूद्रक के सम्पूर्ण जीवन का विलास नीचे के श्लोक में दे डाला है—

---

१. शूद्रक-चरित आख्यायिका है। रामिल और सौमिल ने मिलजुल कर शूद्रक-कथा का प्रणयन किया। पंचशिख ने प्राकृत भाषा में शूद्रक-कथा नामक काव्य का प्रणयन किया था। विक्रान्तशूद्रक में शूद्रक का चरित नाटक रूप में वर्णित है। इनके अतिरिक्त हर्षचरित, कादम्बरी, दशकुमारचरित, कथासरित्सागर, राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों में शूद्रक के संक्षिप्त उल्लेख मिलते हैं। अवन्ति-कथासुन्दरी के अनुसार शूद्रक स्वयं आर्यक है और बन्धुदत्त इस प्रकरण का चारुदत्त है।

२. कतिपय विद्वान् शूद्रक को ब्राह्मण मानते हैं। विण्टरनित्ज का मत है कि शूद्रक ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं था। उनका कहना है—In this drama we find revolution heralding in matters relating to manners and costumes, and in it a

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ।।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि शूद्रक के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास हुआ था। वह कोरा कवि या विद्वान् ही नहीं था, वह युद्ध-भूमि में शत्रुओं के छक्के भी छुड़ाता था, नागरक था, कला विलासी था और मृगया करते समय स्वयं हस्ति-चालन करता था। उसके सत्त्व और तप अनुपम ही थे। इन सभी विशेषणों से शूद्रक नाटककारों की परम्परा में वैदिक ऋषियों के समान अभ्युदित दिखाई देता है। इस प्रकरण में पदे-पदे शूद्रक के उपर्युक्त व्यक्तित्व की व्यक्त और अव्यक्त रूप से प्रतीति होती है।

शूद्रक इस कृति में कलाकार के रूप में सर्वोच्च प्रतिष्ठित हैं। चारुदत्त के घर में सेंध लगी है। क्या ले गया वह चोर—यह बताना शूद्रक को अभीष्ट नहीं। यह तो पीछे भी जाना जा सकेगा। पहले तो कवि को यह बताना है कि सेंध किस खूबी से बनाई गई है। यह वर्णन सविस्तर देकर ही शूद्रक आगे बढ़ते हैं। यह शूद्रक की कलाप्रियता है, जिसके द्वारा उसने प्रकरण के अन्त में वध्य-पटह-ध्वनि को विवाह-पटह-ध्वनि के समान निरूपित कर दिया।

कथानक

मैत्रेय नामक विदूषक नायक चारुदत्त के दारिद्रय की चर्चा करता है। उसे एक प्रावारक नायक को देना है। उसके मिलने पर नायक उससे अपनी दीन दशा का रोना रोता है कि समृद्धि से च्युत होकर दरिद्रता के पाश में ग्रस्त होना मानो मृत्यु ही है। उसे सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि धनहीन का कोई मित्र नहीं रह जाता। चारुदत्त समाधि लगा लेता है। उधर से तभी वसन्तसेना नामक गणिका के पीछे पड़े हुए विट, शकार और चेट आ पहुँचते हैं। वसन्तसेना के परिजन भी साथ नहीं रह गये थे। उसके पूछने पर शकार ने बताया कि मुझे तुम अपना प्रेमी मान लो। वसन्तसेना ने उसे

case of removal of a legitimate king by a cowherd has been described; besides we find predilection for Prakrit dialects in it and not for straight standard sanskrit and notice certain deviations from the strict rules of dramaturgy, and lastly strong Buddhist spirit is permeating it. All this appears to go to point out that the author of the Mrcchakatika does not belong to any of the two highest Brahmanical class. History of Indian Lit. Vol. III Pt. I P. 225-226

दुत्कारा। विट ने उसे समझाया कि तुम तो सबकी हो, फिर शकार से चिढ़ क्यों? वसन्तसेना ने उत्तर दिया कि गुणों से प्रेम उत्पन्न होता है, बलात्कार से नहीं। शकार ने बताया कि जब से इसने कामदेवायतन में चारुदत्त को देखा है, तभी से मुझसे विरक्त हो गई है, चारुदत्त का घर पास ही बाईं ओर है। कहीं यह उसके घर न चली जाय। वसन्तसेना को इस सङ्केत से अपनी रक्षा का उपाय सूझा और वह चारुदत्त के घर के पक्षद्वार के पास पहुँच गई। उसी समय चारुदत्त के विदूषक मैत्रेय और चेटी रदनिका दीप लेकर मातृकाओं को बलि देने के लिए उस द्वार से बाहर निकले। दीप को वसन्तसेना ने आँचल से बुझा दिया। तब विदूषक दीप को जलाने के लिए घर के भीतर चला गया और बलि के साथ रदनिका द्वार पर वहीं खड़ी रही। शकार ने उसे वसन्तसेना जानकर बलात् पकड़ कर उसे वश में करना चाहा। रदनिका विरोध करती रही। विदूषक दीप लेकर निकला। उसने शकार को डाँटा कि यह सब क्या कर रहे हो? विट ने विदूषक के पैर पर गिर कर क्षमा माँगी और प्रार्थना की कि यह सब चारुदत्त से न कहियेगा। वह चलता बना। शकार ने विदूषक से कहा कि तुम चारुदत्त से कह देना कि वसन्तसेना तुम्हारे घर में जा छिपी है। उसे मेरे हाथों में सौंप दो तो तुमसे मैत्री रहेगी, अन्यथा मरणान्तक वैर रहेगा।

वसन्तसेना को चारुदत्त ने रदनिका समझकर उसे अपने प्रावारक में लपेटकर अपने पुत्र रोहसेन को भीतर ले जाने के लिए कहा। फिर तो विदूषक ने आकर उसे पहचाना कि यह वसन्तसेना है। चारुदत्त ने कहा—

यया मे जनितः कामः क्षीणे विभवविस्तरे। १.५५

चारुदत्त ने उससे क्षमा माँगी कि मैंने तुम्हें दासी समझा। वसन्तसेना ने उससे क्षमा माँगी कि मैं छिप कर आपके घर में घुस आई। उसने अपने गहने उचक्कों से बचने के लिए चारुदत्त को रखने के लिए दे दिया और स्वयं चारुदत्त के साथ उसी रात अपने घर लौट गई।

वसन्तसेना ने मदनिका के पूछने पर चारुदत्त से अपने हार्दिक प्रेम की चर्चा की और बताया कि उसके पास अभिसार इसलिए नहीं करती हूँ कि प्रत्युपकार करने में असमर्थ होने के कारण चारुदत्त का दर्शन दुर्लभ हो जायेगा। उसी समय संवाहक नामक जुआरी वसन्तसेना के घर में घुस आया। उसे सभिक और द्यूतकर ऋणशोधन के लिए पकड़ना चाहते थे। संवाहक पहले एक देवकुल में छिप गया था। वहीं पीछा करने वाले जुआ खेलने लगे। पाँसों की गड़गड़ाहट से खिंच कर संवाहक स्वयं वहाँ खेलने के लिए आ गया था। फिर उसकी अच्छी मरम्मत हुई। उसे दर्दुरक ने बचाया और उसे वसन्तसेना के घर में शरण मिली। वहाँ ऋणशोधक उसे पकड़ने के लिए पहुँचे। चारुदत्त का सेवक होने के नाते संवाहक पर वसन्तसेना की विशेष कृपा हुई और उसने

अपना हस्ताभरण देकर संवाहक को ऋणमुक्त किया । संवाहक वसन्तसेना की सेवा करना चाहता था । वह ऐसा नहीं चाहती थी। संवाहक ने कहा कि तब तो मैं शाक्य-श्रमण बन जाऊँगा, क्योंकि इन जुआरियों के हाथों मेरी इतनी अप्रतिष्ठा हुई । श्रमण हो जाने पर मैं समादर पूर्वक राजमार्ग पर घूम सकूँगा। संवाहक चलता बना ।

वसन्तसेना का सेवक कर्णपूरक आ पहुँचा । उसने वसन्तसेना के पूछने पर बताया कि आपका हाथी खूँटा तोड़कर उज्जयिनी में घूमते हुए एक बुड्ढे परिव्राजक को मारने ही वाला था कि मैंने उसे लोहदण्ड से मार कर दूर भगाया और उसकी प्राणरक्षा की । उस समय किसी महापुरुष ने अपने सभी अङ्गों को आभरण हीन देख कर मुझे अपना प्रावारक ही उपहार में दे डाला । उस पर चारुदत्त का नाम था । कर्णपूरक को वसन्तसेना ने पारितोषिक दिया और कर्णपूरक ने उसे वह प्रावारक दे डाला ।

रात में गान्धर्व सुनने के पश्चात् विदूषक और चारुदत्त बहुत देर में लौटे। सोने के पहले विदूषक ने वसन्तसेना की आभरण-पेटी रखने के लिए दी । विदूषक ने कहा—इसके लिए रात में मेरी गाढ़ी नींद हराम हो जाती है। इसे कोई चुरा भी नहीं ले जाता ।

दोनों के सो जाने पर शर्विलक नामक चोर वहाँ आया और सेंध लगाकर उस कमरे में पहुँचा, जहाँ वे सोये थे । उसने पूरा निरीक्षण किया और समझ लिया कि यह दरिद्र का घर है। वह लौट जाने ही वाला था कि विदूषक स्वप्न में बड़बड़ाया—मैं सेंध देख रहा हूँ, चोर देख रहा हूँ । तुम तो स्वर्णाभरण की पेटी ले लो । शर्विलक ने उसे ले लिया ।[1] सवेरा होते ही उसके भाग जाने पर चोरी का ज्ञान हुआ । विदूषक तो चाहता था कि वसन्तसेना के गहने को उसे लौटाने का कष्ट नहीं किया जाय । उसके न्यास का प्रमाण ही क्या है ? पर चारुदत्त ने कहा—

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम् ।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ।। ३.२६

चारुदत्त की पत्नी धूता को चोरी का समाचार चेटी रदनिका ने दिया । वह आई और बोली—कुछ भी नहीं हुआ, स्वामी तो स्वस्थ बचे। चोरी की बात सुनकर वह अचेत हो गई। फिर सचेत होने पर उसने कहा—मेरे स्वामी पर कोई चोरी न लगाये । मैं अपनी माता के घर से मिले रत्नावली को उसके स्थान पर देकर स्वामी को अपवाद से बचाऊँगी । उसे धूता ने विदूषक को दान रूप में दिया । चारुदत्त ने उसे वसन्तसेना के पास विदूषक के हाथों भेज दिया और कहा कि उससे मेरी ओर से कह देना कि उसके आभरणों को अपना समझकर जुए में मैं हार गया ।

---

१. यह दृश्य अविमारक के उस दृश्य के अनुरूप है, जिसमें नायिका अपनी सखी से कहती है कि तुम मेरा आलिंगन करो और उसके स्थान पर नायक उसका आलिंगन करता है ।

वसन्तसेना ने चारुदत्त का चित्र बनाया है । वह उसमें अतिशय अनुरक्त है । उसी समय उसकी माता मदनिका नामक चेटी से सन्देश भेजती है कि तुम राजश्याल के रथ में बैठकर विहार करने के लिए जाओ। उसने १०,००० स्वर्ण मुद्राओं के अलंकार तुम्हारे लिए भेजे हैं। वसन्तसेना उसके साथ जाना अस्वीकार कर देती है। उसने मदनिका से कहा इस चित्र को मेरी शय्या पर रख देना और पंखा लेकर आना।

इसी अवसर पर शर्विलक आ पहुँचा। उसने धन देकर वसन्तसेना से उसकी चेटी मदनिका को अपने लिए प्राप्त करने के उद्देश्य से रात में चारुदत्त के घर चोरी करके वसन्तसेना के रखे हुए अलंकारों को प्राप्त कर लिया था। उन्हें वसन्तसेना को ही देने के लिए वह आया था। उसे मदनिका मिली और दृष्टि से प्रेमव्यवहार हुआ। वह वहीं शर्विलक से बातचीत करती हुई कुछ देर के लिए रुकी रही। वसन्तसेना ने देखा कि वे प्रेममयी मुद्रा में बात कर रहे हैं। उनकी बातचीत में अपनी चर्चा सुन कर वह कान देकर खिड़की के पास छिपकर सुनने लगी। मदनिका ने कहा कि स्वामिनी विना निष्क्रय के ही हमें मुक्त करने को उद्यत हैं। शर्विलक ने पूछने पर अपने धन का आगम बताया कि साहस-कर्म से धन मिला है। उसने अपना चौराचार बताया—

> नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
> विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम् ।
> धात्र्युत्सङ्गगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्
> कार्याकार्यविचारिणी मम मति चौर्येऽपि नित्यं स्थिता ॥ ४.६

उसने कहा कि ये अलंकार वसन्तसेना को उपहार रूप में दे दो और कहो कि ये आप की ही नाप से बने हैं। मदनिका ने देखा कि ये अलंकार तो कहीं पहले के देखे हुए हैं। उसके पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे चारुदत्त के हैं। यह सुनते ही मद-निका और वसन्तसेना मूर्च्छित होने लगीं। शर्विलक को सन्देह हुआ कि मदनिका को चारुदत्त से वास्तविक प्रेम है। बस, उसने मदनिका से कहा कि अब उसे खतम करता हूँ। मदनिका ने उसे समझाया कि ये अलंकार तो वसन्तसेना के ही हैं, उन्हें चारुदत्त के घर रखा गया था। वसन्तसेना को प्रतिभास हुआ कि शर्विलक ने अनजान में यह चोरी की है। फिर क्या किया जाय? मदनिका ने शर्विलक को सुझाया कि आप चारुदत्त का आदमी बनकर इन अलङ्कारों को वसन्तसेना को दें। उसने वसन्तसेना से जाकर कहा कि चारुदत्त के यहाँ से कोई आया है। शर्विलक वसन्तसेना के समक्ष पहुँचा और बोला कि चारुदत्त ने यह आभरण-पेटी भेजी है, क्योंकि उसके जर्जर घर में इनकी रक्षा कठिन है। वसन्तसेना ने कहा कि आप मदनिका को स्वीकार करें। चारुदत्त ने कहा था कि जो पुरुष यह पेटी लाये, उसे मदनिका दे दी जाय। उसने प्रवहण पर बैठा कर मदनिका को शर्विलक के साथ चलता कर दिया।

शर्विलक का मित्र था चरवाहा आर्यक, जिसे वहाँ के राजा पालक ने बन्दी बना लिया, क्योंकि किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी कर दी थी कि वह राजा बनेगा। यह समाचार शर्विलक को उसी समय मिला, जब वह अपनी नववधू मदनिका के साथ अपने घर जा रहा था। वह मदनिका को कहाँ जाना है—यह बताकर स्वयं अपने मित्र को छुड़ाने के लिए प्रवहण से उतर पड़ा।

इधर विदूषक चारुदत्त के यहाँ से रत्नावली लिये आ पहुँचा। उसका भव्य स्वागत हुआ। उसने वसन्तसेना से चारुदत्त की बातें कहीं कि मैं जुए में आप के आभरण हार गया। उसके बदले में यह रत्नावली भेज रहा हूँ। वसन्तसेना की इच्छा तो हुई कि शर्विलक के द्वारा दिये हुए वे गहने दिखा दूँ। पर वह रुक गई। उसने रत्नावली ले ली और विदूषक को प्रतिसन्देश दिया कि आज सन्ध्या के समय चारुदत्त से मिलने आऊँगी। वसन्तसेना अभिसार करने के लिए चल पड़ी।

घनघोर दुर्दिन है। आकाश में घटायें छाई हैं। ऐसे समय में विदूषक वसन्तसेना के यहाँ से लौटा। पूछने पर उसने चारुदत्त से बताया कि वसन्तसेना ने थोड़े मूल्य के अपने गहनों के लिए आपकी इतनी बहुमूल्य रत्नावली ले ली। ऊपर से मुँह छिपा कर मेरे ऊपर हँसती रही। आप तो उस वेश्या को छोड़िये। चारुदत्त ने भी कह दिया कि मेरे पास धन नहीं तो अब उससे मुझे क्या सम्बन्ध रहा? पर विदूषक ने देखा कि चारुदत्त तो उसकी उत्कण्ठा से लम्बी साँसें ले रहा है। उसने कहा कि आज सन्ध्या के समय वह आपके पास आ ही रही है। वसन्तसेना का भेजा चेट वहाँ आया। उसने विदूषक का ध्यान एक ढेला फेंक कर अपनी ओर आकृष्ट किया। उसने बताया कि वसन्तसेना आई है। चारुदत्त की आज्ञानुसार चेट जब वसन्तसेना को बुलाने गया तो विदूषक ने कहा कि वह रत्नावली को कम मूल्य का जान कर आप से कुछ अधिक प्राप्त करने के उद्देश्य से आ पहुँची।

वसन्तसेना चेट के साथ एक ओर से रंगमंच पर प्रवेश करती है। उसके आने का समाचार चारुदत्त को मिलता है और उसको देखते ही चारुदत्त कहता है—

सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः
सदा च मे निश्वसतो गता निशा।
त्वया समेतस्य विशाललोचने
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः॥ ५·३७

वसन्तसेना की ओर से सर्वप्रथम वह अलंकार-पेटिका दिखाई गई, जिसे शर्विलक दे गया था और जिसके विषय में विदूषक ने झूठमूठ कहा था कि उसे चारुदत्त जुए में हार गये। उसकी कहानी का रहस्योद्घाटन हुआ। अन्त में वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणयक्रीडा आरम्भ हुई।

रात्रि समाप्त होने के पहले ही चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक अपने जीर्णोद्यान में चला गया और अपनी गाड़ी हाँकने वाले वर्धमानक को आदेश दे गया कि थोड़ी रात रहते ही वसन्तसेना को गाड़ी से मेरे पास लाना।

वसन्तसेना ने चारुदत्त की पत्नी धूता की रत्नावली चेटी द्वारा उनके पास भिजवाई पर धूता ने कहलवा दिया कि यह मेरे स्वामी का तुम्हारे लिए प्रसाद है। इसे लेना मेरे लिए ठीक नहीं है। मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ आभरण मेरे स्वामी ही हैं। इसके पश्चात् रदनिका नामक चेटी चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को मिट्टी की बनी शकटिका के साथ खेलने के लिए लेकर आई। रोहसेन ने कहा कि मिट्टी की गाड़ी से क्यों खेलने लगा। मुझे तो सोने की गाड़ी चाहिए। रदनिका ने उससे कहा कि अब सोने की गाड़ी से खेलने का समय नहीं रहा। अपने पिता को फिर समृद्ध होने दो तो सोने की गाड़ी से खेलना। वह रोहसेन का विनोद करने के लिए उसे वसन्तसेना के पास लाई। वसन्तसेना ने यह जानकर कि यह चारुदत्त का पुत्र है, उससे बहुत स्नेह किया। उसे रोता देखकर पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह सौवर्णशकटिका से खेलना चाहता है। वसन्तसेना को दैन्याभिभूति से रोना आ गया। उसने कहा कि बच्चे तुम सोने की गाड़ी से खेलोगे। रोहसेन को रदनिका से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वसन्तसेना मेरी माँ है। उसने झट से प्रत्याख्यान किया कि तुम झूठ बोलती हो। यदि हमारी माता है तो गहने क्यों पहनी हुई है। वसन्तसेना ने यह सुनकर करुणावश रोती हुई अपने गहने उतार डाले और कहा लो, अब तो तुम्हारी माँ बन गई। इन गहनों को लो और इनसे सौवर्णशकटिका बनवा लो। रोहसेन ने कहा कि तुम तो रो रही हो। मैं तुम्हारे गहने नहीं लेता। वसन्तसेना ने आँसू पोंछ लिए और कहा कि अब नहीं रो रही हूँ। जाओ और खेलो। उसने मिट्टी की गाड़ी अपने गहनों से भर दी। रदनिका उसे लेकर चल दी। तभी चेट वर्धमान ने आकर उससे कहा कि वसन्तसेना को भेजो। मेरी गाड़ी से उसे चलना है, जो पक्षद्वार पर खड़ी है।

वसन्तसेना को अपना प्रसाधन करने में कुछ देर लगने वाली थी। इसी बीच वर्धमानक अपनी गाड़ी पर ही बैठकर घर पर छूटे हुए आस्तरण आदि लेने चला गया। उसके जाने के पश्चात् राजश्याल संस्थानक की गाड़ी वहाँ आई। वह भी भीड़-भाड़ के कारण चारुदत्त के घर के पक्षद्वार पर रुक गई और उसका वाहक स्थावरक थोड़ी दूर जाकर राजमार्ग पर भीड़ करने वाली गाड़ियों को हटाने चला गया। इस बीच वसन्तसेना उसे चारुदत्त की गाड़ी समझ कर उस पर जा बैठी और स्थावरक अनजाने ही उसे लेकर चला गया।

उसी समय यह घोषणा सुनाई पड़ी कि दौवारिक अपने गुल्मों पर सावधान रहें। आज राजा के द्वारा वन्दीगृह में डाला हुआ आर्यक बन्दीगृह को तोड़ कर बन्दीगृहाध्यक्ष

को मार कर और अपने बन्धन को तोड़कर भाग गया है। उसे पकड़ो।' आर्यक भागता हुआ चारुदत्त के घर के पक्षद्वार से आ घुसा। उसी समय वहाँ पर वर्धमानक वसन्तसेना के लिए गाड़ी लेकर आ पहुँचा, जो पहले से ही चली गई थी। उस गाड़ी को नगर के बाहर पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर जाते सुनकर आर्यक उस पर पीछे से आ बैठा। उसकी बेड़ी की झुनझुन सुनकर वर्धमान ने समझा कि वसन्तसेना आ बैठी और वह आर्यक को गाड़ी पर लेकर चलता बना। मार्ग में राजपुरुष मिले, जो प्रत्येक वाहन में आर्यक को ढूँढ़ रहे थे। तभी वर्धमानक की गाड़ी निकली। पूछने पर उसने बताया कि इसमें वसन्तसेना चारुदत्त के साथ वन-विहार के लिए पुष्पकरण्डक उद्यान जा रही है। चन्दनक नामक राजपुरुष ने उसका अवलोकन किया। उसके भीतर आते ही आर्यक ने उससे कहा कि शरणागत हूँ। प्राण बचायें। चन्दनक शर्विलक का मित्र होने के नाते आर्यक को बचाने के लिए सन्नद्ध था। उसने बाहर निकल कर वीरक नामक राजपुरुष से कहा कि इसमें वसन्तसेना है। उसके कहने के ढंग से वीरक को सन्देह हुआ और उसने पुनः स्वयं अवलोकन करना चाहा। चन्दनक ने उससे कलह करके उसके बाल पकड़ कर उसे धराशायी कर दिया और वर्धमानक से कहा कि तुम तो जाओ और कोई पूछे तो कह देना कि इसे वीरक और चन्दनक ने देख लिया है। उसने आर्यक को एक तलवार दी यह कहते हुए—**अज्जे वसन्तसेणे इमं च अहिण्णाणं दे देमि।**

लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् वर्धमानक की गाड़ी चारुदत्त को दिखाई पड़ी, जिससे आर्यक निकला—

> **करिकरसमबाहुः सिंहपीनोन्नतांसः**
> **पृथुतर-समवक्षास्ताम्रलोलायताक्षः**
> **कथमिदमसमानं प्राप्त एवंविधो यो**
> **वहति निगडमेकं पादलग्नं महात्मा ॥**

उसे देखते ही चारुदत्त ने कहा—शरणागत आप को मैं छोड़ नहीं सकता। आर्यक की बेड़ी वर्धमानक ने काट कर अलग की। उसे गाड़ी से उतरना भी न पड़ा और उसी से वह अपनी रक्षा के लिए चारुदत्त की अनुमति लेकर चलता बना। वसन्तसेना के न आने से चारुदत्त को अनेक प्रकार की आशङ्कायें हो रही थीं।

पुष्पकरण्डक उद्यान राजा पालक के साले शकार या संस्थानक का था। वह वहीं था, जब वहाँ कोई भिक्षु पुष्करिणी में अपने वस्त्रों को धोने की तैयारी कर रहा था। संस्थानक को भिक्षुओं से स्वाभाविक वैर था। वह किसी प्रकार उससे बचा। तभी वह गाड़ी आई, जिस पर वसन्तसेना बैठी थी। विट ने छिपाना चाहा और कहा कि इस पर राक्षसी बैठी है। पर अन्त में वसन्तसेना पहचान ली गई। शकार के स्नेह जताने पर उसने उसके सिर पर लात मारी। शकार ने पहले तो विट से कहा कि इसे

मार डालो। उसके न तैयार होने पर उसने चेट से कहा कि इसे मार डालो । वह भी इस नीच कर्म के लिए नहीं तैयार हुआ । फिर तो शकार उसे मारने को स्वयं तैयार हुआ । विट ने उसे झटक दिया । कुछ देर तक वह मूर्छित पड़ा रहा । उसने विट को भी वहाँ से हटाने के लिए कहा कि चेट को बुला लाओ । पर विट वहीं निकट ही छिपकर देखने को उत्सुक था कि कहीं वह वसन्तसेना की जान तो नहीं लेगा। उसने देखा कि शकार प्रेम करने की मुद्रा में है और चलता बना । इधर वसन्तसेना ने जब शकार के प्रेम को ठुकराया तो वह उसकी जान लेने पर उतारू हो गया । वसन्तसेना चिल्लाई भी नहीं, क्योंकि **वसन्तसेनोर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीयं खल्वेतत्** । शकार ने गला दबाकर उसे मारने का प्रयास किया । वसन्तसेना मूर्छित होकर गिर पड़ी । तभी विट चेट को लेकर लौट आया । शकार ने पूछने पर बताया कि देखो, वह मरी पड़ी है । यह देखकर विट भी मूर्छित हो गया । उसे डर था कि शकार इस हत्या को मेरे मत्थे न मढ़े । वह वहाँ से दूर जाने लगा तो शकार ने उसे रोक लिया और मनाने लगा । विट ने कहा--तुम्हारे जैसे पापी के साथ न रहूँगा ।

विट को सूझा कि अब उस स्थान पर जाऊँ जहाँ शर्विलक और चन्दनक आदि राजविद्रोही हैं और चलता बना । शकार ने सोचा कि एक गड़बड़ तो हुआ कि इस हत्या को जानने वाला विट दूर भगा । इस चेट को अपने घर में ही बेड़ी पहना कर बन्दी बनाकर रखूँगा। फिर मेरे अपराध को कौन जानेगा ? उसने वसन्तसेना को पत्तों से ढक दिया और निर्णय किया कि अब चारुदत्त पर न्यायालय में अभियोग चलाऊँगा कि उसने आभरणों के लिए मेरे पुष्पोद्यान में वसन्तसेना को मार डाला है । तभी उस भिक्षु का उसे दर्शन हुआ, जिसे वह फटकार चुका था। उसे देखते ही हत्या के साक्षी से डर कर वह भाग निकला। वह भिक्षु अपने धुले वस्त्रों को सूखने के लिए डालने के उद्देश्य से उन्हीं पत्तों के ढेर के पास आया, जिसके नीचे वसन्तसेना को मरा जान कर शकार ने छिपाया था । यह वही भिक्षु था, जो पहले संवाहक नामक जुआरी था और जिसे सभिक के चंगुल से छुड़ाने के लिए वसन्तसेना ने १० स्वर्णमुद्रायें दी थीं । वह वसन्तसेना का प्रत्युपकार करने के लिए अवसर ढूँढ़ रहा था ।

इस बीच वसन्तसेना सचेत हो गई थी। उसके हिलने-डुलने से पत्ते खड़खड़ाये। उसने हाथ उठाये, जिसे उस भिक्षु ने देखा और पहचान लिया कि यह वसन्तसेना है । उसने पानी माँगा । भिक्षु ने अपने भीगे वस्त्रों को निचोड़ कर उस पर पानी डाला। वसन्तसेना ने कहा कि मेरे जीवन का अन्त ही हो गया होता तो अच्छा होता। भिक्षु उसे विश्राम कराने के लिए विहार में ले गया।

शकार अधिकरण-मण्डप (न्यायालय) में पहुँचा । उसे देखते ही शोधनक (झाड़-पोंछ करने वाले) और अधिकरणिक (न्यायाधीश) ने समझ लिया कि आज कुछ

गड़बड़ काम होगा। पहले तो उससे कह दिया गया कि तुम्हारा व्यवहार (अभियोग) आज सुनने का समय नहीं है, पर उसके ऐंठ दिखाने पर उसकी बात सुनी गई कि चारुदत्त के द्वारा पुष्पकरण्डक नामक मेरे उद्यान में वसन्तसेना की हत्या उसके गहनों के लिए कर दी गई है। वसन्तसेना की माँ बुलाई गई। उसने कहा कि मेरी कन्या चारुदत्त के घर गई है। चारुदत्त ने कहा कि वसन्तसेना तो अपने घर गई। उसी समय वीरक चन्दनक पर अभियोग लगाने वहाँ आया कि आज चारुदत्त की वसन्तसेना जिस गाड़ी से जा रही थी, उसका जब मैं अवलोकन करने जा रहा था, तब चन्दनक ने मुझ पर पाद-प्रहार किया। अधिकरणिक ने उसे आदेश दिया कि तुम तो तब तक जाकर देख आओ कि क्या पुष्पकरण्डकोद्यान में कोई स्त्री मरी पड़ी है। वीरक ने कहा कि हाँ, एक स्त्री के शव को जानवर खा रहे हैं। चारुदत्त ने कहा कि अभियोग सच्चा नहीं है——

योऽहं लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतोराकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि ।
सोऽहं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि ॥

तभी विदूषक काँख में पोटली लिये वहाँ आ पहुँचा। उसे चारुदत्त ने वसन्तसेना के गहने लौटाने के लिए भेजा था, जिसे उसने रोहसेन के लिए सोने की गाड़ी बनाने के लिए दिया था। वसन्तसेना के घर जाते समय मार्ग में उसे समाचार मिला कि चारुदत्त को तो अधिकरण-मण्डप में जाना पड़ा है। वह मार्ग से ही चारुदत्त से मिलने आ गया था। उसे ज्ञात हुआ कि शकार ने अभियोग चलाया है। वह शकार से लड़ पड़ा और उसकी पोटली काँख से गिर पड़ी, जब वह अपने डण्डे से शकार के सिर पर प्रहार कर रहा था। शकार ने कहा कि ये वसन्तसेना के वे ही आभरण हैं। अधिकरण-मंडप के पदाधिकारी श्रेष्ठी और कायस्थ ने वसन्तसेना की माँ से पूछा कि ये क्या तुम्हारी कन्या के आभरण हैं। उसने कहा कि वैसे ही हैं, पर वे नहीं हैं। चारुदत्त ने पूछने पर कहा कि ये वसन्तसेना के हैं और मेरे घर से लाये गये हैं। शकार ने कहा कि अब स्पष्ट हो गया कि चारुदत्त ने उसे मारा है। उसे मृत्यु-दण्ड दिया जाय। न्यायाधीशों ने कहा कि ब्राह्मण है, अतएव निर्वासन मात्र का दण्ड हम दे सकते हैं। राजा, जो चाहे, घटाये-बढ़ाये। शोधनक को इस विषय में राजाज्ञा के लिए भेजा गया। उसने आकर बताया कि राजा का कहना है कि वसन्तसेना के आभरणों को अभियुक्त के गले में बाँधकर उसके पीछे डुग्गी पिटवाते हुए दक्षिण श्मशान में उसे फाँसी दे दी जाय। जो कोई दूसरा ऐसा पाप करे उसे ऐसा ही दण्ड दिया जाय। चारुदत्त ने कहा कि राजा अविमृश्यकारी है। इस प्रकार तो सहस्रों निर्दोष व्यक्तियों की हत्या हो जायेगी। चारुदत्त ने शाप दिया——

विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य ।

अथ रिपुवचनाद्वा ब्राह्मणं मां निहंसि
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः ॥९.४३

चाण्डालों के साथ चारुदत्त की वध्यभूमि के लिए यात्रा आरम्भ हुई ।[1] लोग मार्ग में नारा लगाते थे—चारुदत्त स्वर्ग प्राप्त करो ।

मार्ग में विदूषक और चारुदत्त का पुत्र उससे मिलने आये । चारुदत्त ने पुत्र को अपना यज्ञोपवीत देते हुए कहा—

अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।
देवतानां पितॄणां च भागो येन प्रदीयते ॥ १०.१८

चारुदत्त के पुत्र ने चाण्डालों से कहा—तुम लोग मेरे पिता को छोड़ दो और मुझे मार डालो । चारुदत्त ने पुत्र को गले लगा कर कहा—

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥ १०.२३

विदूषक ने भी कहा कि मेरे मित्र को छोड़ दो और उसके स्थान पर मुझे मार डालो ।

वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक उद्यान ले जाने वाले स्थावरक नामक चेट को शकार ने प्रासाद के दूसरे तल पर निगडित कर रखा था । उसने घोषणा सुनी कि वसन्तसेना की जान लेने के अपराध में चारुदत्त को फाँसी लगाई जाने वाली है । उसने चिल्ला कर वहीं से कहा कि यह सब झूठ है । उसे मैं उद्यान ले गया था और उसे मारने वाला शकार है । जब दूरी के कारण किसी ने उसकी बात न सुनी तो वह वहीं से कूद पड़ा यह सोच कर कि मैं मर ही जाऊँगा तो क्या हुआ ? यह सज्जनों का आश्रय न मरे । कूदने में उसकी बेड़ी टूट गई और वह दौड़ा-दौड़ा चाण्डालों के पास पहुँच कर बोला कि ऐसा-ऐसा हुआ है । चाण्डालों के पूछने पर उसने यह भी बता दिया कि मुझे प्रासाद-बालाग्रप्रतोलिका पर इसलिए बाँध कर रखा गया था मैं यह सब कहीं कह न दूँ ।

शकार अपने स्थान पर प्रासाद-बालाग्रतोलिका पर खड़ा-खड़ा प्रसन्नता से सोचता था कि शत्रु को खूब मारा । तभी उसके घर के नीचे घोषणा बन्द हो गई । उसने देखा कि मेरे द्वारा बाँधा हुआ चेट स्थावरक भी वहाँ नहीं है । कहीं भंडा-फोड तो नहीं हो गया । वह स्थावरक को ढूँढ़ने निकला । उसे देखते ही चाण्डाल ने कहा—

---

१. इस दशम अङ्क की कथा-वस्तु के आदर्श पर विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के अन्तिम अंक की कथा-वस्तु का विन्यास किया है ।

अपसरत दत्त मार्गं द्वारं पिधत्त तूष्णीकाः ।
अविनयतीक्ष्णविषाणो दुष्टबलीवर्द इत एति ।। १०.३०

उसने स्थावरक से कहा--पुत्र स्थावरक, आओ चलें। स्थावरक ने कहा--'अरे पापी, तू केवल वसन्तसेना को मार कर सन्तुष्ट न हुआ। अब महान् चारुदत्त को मारने के लिए सब व्यवसाय कर चुके हो।' उसी समय सब ने एक स्वर से चिल्लाकर कहा-तुमने वसन्तसेना को मारा है, चारुदत्त ने नहीं, जैसा इस स्थावरक चेट ने बताया है। तब तो शकार ने छिपाकर एक स्वर्ण कंकण स्थावरक को दिया और कहा कि अपनी बात को झुठला दो। उसने लोगों को दिखाया कि देखो, यह मुझे घूस दे रहा है। शकार ने बात बना ली। उसने कहा कि यह तो वही आभरण है, जिसकी चोरी करने पर मैंने उसे पीटा था। इसीलिए यह मुझ से वैर करके मिथ्यारोप लगा रहा है। तब तो स्थावरक रोकर कहने लगा--

'हन्त ईदृशो दासभावः यत्सत्यं कथमपि न प्रत्याययति। आर्य चारुदत्त एतावान् मे विभवः।'

यह कह कर वह चारुदत्त के पैरों पर गिर पड़ा। चाण्डालों ने उसे मार कर दूर भगाया। शकार ने कहा कि चाण्डालो, इस चारुदत्त को मारपीट कर शीघ्र ले जाओ। इसे सुन कर चारुदत्त के पुत्र ने कहा--मुझे मारो, मेरे पिता को छोड़ो। शकार ने आज्ञा दी--बाप-बेटे दोनों को मारो। चारुदत्त ने देखा कि इस दुष्ट के लिए कुछ भी अकार्य नहीं है। उसने विदूषक से कहा कि लड़के के साथ तुम लौट जाओ। उसने उत्तर दिया कि तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। अभी इसे माता के पास छोड़कर मैं स्वयं मर कर तुम्हारे पीछे-पीछे स्वर्ग में पहुँचता हूँ।

तीसरे घोषणा-स्थान पर यात्रा पहुँची। वहाँ यह निर्णय लिया जाने लगा कि दोनों चाण्डालों में से कौन चारुदत्त का प्राण ले। पहले ने कहा कि यदि मुझे मारना है तो मैं तो देर करूँगा। मरते समय मेरे बाप कह गये थे कि किसी वध्य के लिए अन्तिम समय धन देकर छुड़ाने वाला आ जाता है और वह छूट जाता है। कभी-कभी राजा का पुत्र होने से वध्य छूट जाता है। महोत्सव में सब छूट जाते हैं। कभी हाथी अपना बन्धन तोड़कर सम्भ्रम मचा देता है, जिसमें वन्दी भाग निकलने का अवसर पाते हैं और कदापि **राजपरिवर्तो भवति। तेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति।**

चतुर्थ घोषणा-स्थान पर वसन्तसेना और उसका रक्षक भिक्षु आ पहुँचे। उन्होंने कुछ दूर से ही घोषणा सुनी थी। वध्य-शिला पर चारुदत्त को सुलाया जा रहा था। चाण्डालों ने उस पर कृपा की थी कि एक ही प्रहार में तुमको स्वर्ग पहुँचा देंगे। तलवार का प्रहार होने ही वाला था कि चाण्डाल के हाथ से तलवार छटक कर दूर जा गिरी। उसने कहा कि इसका अर्थ तो यह है कि चारुदत्त नहीं मारा जायेगा।

दुर्गा ने इसकी रक्षा कर ली—**भगवति सह्यवासिनि प्रसीद, प्रसीद । अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्, तदानुगृहीतं त्वया चाण्डालकुलं भवेत् ।**

वसन्तसेना ने पहुँच कर कहा—मुझ अभागिनी के कारण चारुदत्त मारा जा रहा है। उसे देखकर चाण्डालों ने कहा कि अब तो हम लोग इस वृत्तान्त को राजा से कहें। शकार वसन्तसेना को देखकर भय से भाग निकला, क्योंकि अब तो उसे ही मारे जाने की आशंका थी। चाण्डालों ने कहा कि राजाज्ञा है कि जिस-किसी ने ऐसा किया है, उसे ही मारा जाय, तो अब शकार को पकड़ो। वे चारुदत्त को छोड़ कर शकार को ढूँढने चले। चारुदत्त का वसन्तसेना से पुनर्मिलन हुआ।[1] वसन्तसेना ने कहा—**सैवाहं मन्दभागा** । नायक ने कहा—

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति ।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः ।। १०·४४

चारुदत्त को बचाने के लिए तभी राजा को मार कर और आर्यक को राजा बनाकर शर्विलक वहाँ आ पहुँचा—

हत्वा तं कुनृपमहं हि पालकं भो-
स्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम् ।
तस्याज्ञां शिरसि निधाय शेषभूतां
मोक्ष्येऽहं व्यसनगतं च चारुदत्तम् ।। १०.४७

उसने चारुदत्त से बताया कि जिस आर्यक को आपने अपनी गाड़ी में बचाया था, उसने आज यज्ञवाट में बैठे हुए पालक को बलि चढ़ा दी है। पालक ने आपको उज्जयिनी-प्रदेश में वेणातट पर कुशावती का राज्य उपहार-रूप में दिया है।

शकार के हाथों को पीठ पर बाँध कर तभी लाया गया। उसने चारुदत्त से शरणागति की प्रार्थना की—**परित्रायस्व** । चारुदत्त ने उसे क्षमा किया, पर जनता का नारा था—शकार को मार डालो। इस पापी को क्यों जीने दिया जाय।

वसन्तसेना ने वध्यमाला को चारुदत्त के सिर से उतार कर शकार के ऊपर फेंक दिया। शर्विलक तो उसे मारने पर उतारू था। उसे अन्त में छोड़ना पड़ा।

---

१. यह दृश्य स्वप्नवासवदत्त में वासवदत्ता और उदयन के मिलने के समान है। उत्तररामचरित में सीता और राम का पुनर्मिलन हुआ है। इन दोनों में नायक समझते हैं कि नायिका मर चुकी है। कुन्दमाला में नायक और नायिका का पुनर्मिलन होता है, किन्तु नायक समझता है कि नायिका मरी नहीं है।

तभी सुनाई पड़ा की चारुदत्त की पत्नी धूता अपने लड़के को अलग करके आग में कूद कर सती होने जा रही है। यह समाचार चन्दनक ने दिया। उसने कहा कि मैंने धूता से कहा कि चारुदत्त मरा नहीं है, किन्तु मेरी कौन सुनता है या विश्वास करता है। इसे सुनकर चारुदत्त अचेत हो गया। वसन्तसेना ने चारुदत्त से कहा कि आप जाकर धूता का प्राण बचायें। रंगमंच पर धूता की साड़ी पकड़े उसका लड़का रोहसेन उसे अलग खींच रहा है। विदूषक और रदनिका साथ हैं। धूता कहती है कि पति की मृत्यु का समाचार सुनने के पहले मैं अग्नि में कूद पड़ूँगी। विदूषक ने अड़ङ्गा लगाया कि ब्राह्मण स्त्री के लिए पति के शव के साथ ही सती होने का विधान है। धूता ने कहा कि भले शास्त्र का उल्लघंन हो, किन्तु पति की मृत्यु का समाचार नहीं सुन सकती। रदनिका ने कहा कि मैं भी आग में कूद पड़ूँगी। विदूषक ने कहा कि ब्राह्मण को पहले अवसर मिलना चाहिए। मैं पहले आग में कूदूँगा। प्रश्न था कि कौन रोहसेन को पकड़े और धूता तब आग में कूदे।

तभी चारुदत्त वहाँ आ पहुँचा। उसने अपने पुत्र का आलिंगन किया। वहीं वसन्तसेना को देख कर धूता ने कहा कि अपनी बहिन को सकुशल देखकर मैं धन्य हूँ। शर्विलक ने कहा कि राजा आर्यक प्रसन्न होकर आप (वसन्तसेना) को वधू शब्द से अनुगृहीत करते हैं। उस समय वसन्तसेना को वधू का अवगुण्ठन पहना दिया गया। भिक्षु को सभी विहारों का कुलपति बना दिया गया। चन्दनक को दण्डपालक बना दिया गया। शकार को भी पदच्युत नहीं किया गया। शर्विलक ने कहा कि उसे तो मैं मारना चाहता हूँ। चारुदत्त ने कहा कि यह शरणागत है, मारो मत। शर्विलक ने कहा—**किं ते भूयः प्रियं करोमि।**

समीक्षा

रूपकों की कथाओं का विस्तार दो प्रकार का होता है प्राक्कलित और यदृच्छोपपन्न या दैवगमित। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और मुद्राराक्षस प्रथम कोटि के उदाहरण हैं, जिनमें सारी कथा यौगन्धरायण और चाणक्य द्वारा पूर्वनियोजित क्रम से विकसित होती है। इसके विपरीत मृच्छकटिक की कथा दैव या दुर्दैववशात् विकसित है, जिसमें मानव का निर्देशन नहीं है।

मृच्छकटिक नाम उस मिट्टी की गाड़ी के नाम की प्रमुखता से दिया गया है, जिसे लेखक नाटयसाहित्य को अपनी बड़ी देन मानता है। भास ने प्रतिमा को इसी प्रकार नाटयसाहित्य के लिए देन मानकर प्रतिमा नाटक नाम रखा। आगे चल कर कुन्दमाला नाम कुन्द की माला के कारण और अभिज्ञानशाकुन्तल नाम अभिज्ञान (अँगूठी) के वैशिष्टय के कारण रखे गये। मुद्राराक्षस में मुद्रा शब्द ऐसे ही समञ्जसित है। शकटिका, प्रतिमा, माला, अभिज्ञान और मुद्रा संविधानक हैं।

मृच्छकटिक १० अङ्कों का अतिविशाल प्रकरण है। इसका अभिनय कुछ घण्टों में और एक दिन में होना असम्भव है। ऐसा लगता है कि इसका अभिनय, क्रमशः कई दिनों में सम्पन्न होता होगा। इसके अनेक दृश्यों के लिए रंगमंच भी ऐसा खुला होना चाहिए, जिस पर बैलगाड़ी चल सके और जिसके एक ओर अभिनय करते हुए पात्र दूसरी ओर के पात्रों को दिखाई देते हुए न प्रतीत हों।

मृच्छकटिक की कथा के पूर्वार्धका स्रोत भास का चारुदत्त प्रतीत होता है। इसका सबसे सबल प्रमाण है कि चारुदत्त और मृच्छकटिक के उभयनिष्ठ चार अंकों में चारुदत्त संक्षिप्त है और मृच्छकटिक उसका बृहत् रूप है। प्रश्न है कि क्या मृच्छकटिक के बृहत् रूप से चारुदत्त का संक्षिप्त संस्करण कर लिया गया है? ऐसा ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उभयनिष्ठ स्थलों में चारुदत्त मृच्छकटिक से फीका पड़ता है। जो ग्रन्थ लघु संस्करण होता है, उसमें मूलग्रन्थ के सर्वोत्तम अंश साधारणतः ज्यों के त्यों रख लिये जाते हैं।[1] मृच्छकटिक की प्राकृत चारुदत्त की प्राकृत से नवीनतर है। इससे भी चारुदत्त की प्राचीनता सिद्ध होती है।

मृच्छकटिक को चारुदत्त का उपबृंहित संस्करण मान लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि शूद्रक के समक्ष चारुदत्त के पूरे दसों अङ्क रहे होंगे, केवल चार ही नहीं। प्रथम चार और अन्तिम छः अङ्कों में वस्तुविन्यास, चरित्र-चित्रण आदि का वर्त्म समग्रतः एक ही है। उदाहरण के लिए शकार का बोलने का ढंग देखिये—वह प्रथम अङ्क में जैसे शब्दों के अनेक पर्यायों का प्रयोग करता है, वैसा ही आठवें अङ्क में भी करता है।

मृच्छकटिक में बहुरंगी वृत्त संख्या में अगणित हैं। इन सबको चूल में चूल मिला कर एक सुवीत नाट्यकथा के रूप में प्रस्तुत कर देने का कौशल एक अनुत्तम सा सफल प्रयास प्रतीत होता है। इसमें चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम को लेकर एक कथा है और दूसरी कथा है शर्विलक के नेतृत्व में राजविप्लव की, जिसमें राजा पालक मारा जाता है और आर्यक राजा बनता है। दोनों कथाओं का संग्रन्थन कलापूर्ण है।

---

1. In each case the expression of the Charudatta appears to be the original, upon which the author of the Mricchakatika improved afterwards; the Charudatta does not read at all anywhere as an abridgement; for an abridgement generally retains the good points of the original, while we find that they are absent in the Charudatta. The Mricchakatika invariably offers better readings and fine conceits, the worse and common place ones being found in the Charudatta. *Kale*: Introduction, Mricchakatika. Page 41.

शूद्रक ने कथा की भावी प्रवृत्तियों का संकेत देते हुए कथा-विन्यास किया है। प्रथम अङ्क में शकार का सन्देश आता है कि यदि चारुदत्त वसन्तसेना को मुझे सौंप देता है तो सब ठीक, अन्यथा न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी। आगे आने वाले अधिकरण-प्रकरण की यह पूर्वसूचना है। वसन्तसेना के गहने की चोरी की पूर्वसूचना प्रथम अङ्क में विदूषक के इस वाक्य से दी गई है—

यद्येवं तदा चौरैर्ह्रियताम् ।

दर्दुरक ने संवाहक से कहा—'**कथितं मम प्रियवयस्येन शर्विलकेन यथा किल आर्यक नामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति** ।' इससे आगे आने वाले राजविप्लव की पूर्व सूचना दी गई है। इसी प्रकार चारुदत्त का कहना कि '**शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता**' भावी प्रवृत्तियों की सूचना के लिए है।

पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर राजश्याल की गाड़ी पर बैठते ही वसन्तसेना की दाहिनी आँख का फड़कना भी भावी विपत्तियों की पूर्व सूचना है।[1]

दसवें अङ्क में प्रथम चाण्डाल कहता है कि 'सहसा किसी को शूली पर नहीं चढ़ा देना चाहिए। कभी-कभी राज्य में क्रान्ति हो जाती है और सभी वध्यों को छुटकारा मिल जाता है।' इस कथन से भावी क्रान्ति और चारुदत्त के छूटने की पूर्व सूचना दी गई है।

कथानक में कई बातें व्यर्थ ही कही गई हैं। यथा, चारुदत्त और विदूषक गान्धर्व सुनकर लौटे हैं। उस समय चरुदत्त का पैर चेट धोता है और फिर विदूषक का पैर धोता है। इस घटना का पूरे रूपक से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। इसे व्यर्थ जोड़ा गया है। रूपक का यह दोष माना जाता है कि उसमें अनावश्यक घटनाओं की चर्चा की जाय। यदि आवश्यक ही हुआ और नीरस हुआ तो उसे अर्थोपक्षेपकों से व्यक्त करते हैं। यह तो नीरस भी है और अनावश्यक भी है, फिर भी इसको कथा का अभिनयांश बनाया गया है। यह असमीचीन है।

शर्विलक की चोरी का लम्बा-चौड़ा वर्णन तो जैसे-तैसे एक बहुमूल्य विज्ञान का सार्वजनिक बोध कराने की दृष्टि से ठीक ही है। उसे एक साँप ने काटा और उसने जनेऊ से कटी अँगुली को बाँधा और फिर दवा लगाई—यह सब सर्वथा अनपेक्षित है। वैसे ही अनपेक्षित है यह बताना कि शर्विलक को यह भ्रान्ति हो गई कि मदनिका को चारुदत्त से प्रेम हो गया है। उसे आवेश होता है और वह स्त्रियों की भर पेट निन्दा करता है। सम्भवतः यही निन्दा कवि को अभिप्रेत थी। वह जहाँ-तहाँ स्त्रियों की और विशेषतः साधारण स्त्रियों की निन्दा करता है।

---

१. शकार को देखते ही नवम अङ्क में अधिकरणिक कहता है—सूर्योदय उपरागो महापुरुषनिपातमेव कथयति' इसमें चारुदत्त के कलंकित होने की सूचना है।

कवि ने अपनी बहुज्ञता का परिचय वर्णनों के द्वारा देने का उपक्रम किया है। उसे अपने ज्योतिष के ज्ञान की चर्चा करनी है और छठें अङ्क में छठें से लेकर दसवें पद्य तक मारकेशों की चर्चा की गई है। यह सर्वथा अनावश्यक विवरण है।

शूद्रक सरल मार्ग से घटना-प्रवाह चलने देने के पक्ष में नहीं है। कथानक को चटपटा बना देने के लिए छोटी-मोटी लड़ाइयाँ रंगमंच पर करा देने में कवि निपुण है। छठें अंक में वीरक और चन्दनक में हाथापाई हो गई और वैसी ही हाथापाई विट और शकार में आठवें अङ्क में हो गई। इन दोनों अवसरों पर भरपूर रस मिलता है। इनमें से पहली हाथापाई तो उद्देश्यपूर्ण है कि उसके सम्बन्ध में अभियोग करने के लिए वीरक न्यायालय में गया और उसने वहाँ जो बातें कहीं, उनका महत्त्व है। किन्तु विट और शकार की हाथापाई केवल मनोरंजनार्थ है।

मृच्छकटिक में कथा का अधिकांश रंगमञ्च पर अभिनय द्वारा प्रस्तुत करने योग्य है। कथानक में वृत्त का केवल कहना-सुनना या आख्यान मात्र पर्याप्त नहीं समझा गया है, जैसा मुद्राराक्षस या वेणीसंहार में अधिकांश है। वृत्तात्मक आख्यान मात्र से बचने के लिए शूद्रक ने अर्थोपक्षेपकों तक का प्रयोग नहीं किया है। अर्थोपक्षेपक के योग्य वृत्तों को भी वह उनसे सम्बद्ध पात्रों के द्वारा एकोक्ति-रूप में प्रस्तुत करता है।

पात्रोन्मीलन

अनेक दृष्टियों से मृच्छकटिक चरित्र-चित्रण-प्रधान रूपक है।[1] कवि ने पात्रों का रूपमात्र ही चित्रित नहीं किया है, अपितु उनकी प्रवृत्तियों, भावों और चातुर्दिश वातावरण का प्रत्यक्षीकृत निरुपण किया है। हिमालय के समान उदात्त नागरक नायक से लेकर मूर्तिमान् नरक शकार तक तीस से अधिक ऊँच-नीच पात्रों की चर्चा है। नायक स्वयं उच्च ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ, किन्तु वह कुल सम्प्रति अपने ब्राह्मणत्व के लिये प्रसिद्ध नहीं है। चारुदत्त का पितामह विनयदत्त सार्थवाह था और उसका पिता सागरदत्त भी सार्थवाह ही था। पैतृक व्यवसाय-परम्परा चारुदत्त को सफल न बना सकी, क्योंकि सार्थवाह में जिस बुद्धि-सौष्ठव का प्रकर्ष होना चाहिये, वह चारुदत्त के पास स्वभावतः नहीं था। इसके विपरीत उसके पास हृदय था, जिसमें दया, सहानुभूति, उदारता आदि का उत्कर्ष था और सबसे बढ़कर उसमें नागरक का कला-विलास था। उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न पुरुष के द्वारा लक्ष्मी का अर्जन असम्भव ही था। हाँ, उसने अपनी सारी सम्पत्ति का व्यय दूसरों का दुःख दूर करने में तथा कला की चारुता को अपने व्यक्तित्व से चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के लिये कर दिया। उसने पुरस्थापन, विहार, आराम, देवालय, तडाग, कूप, यूप

---

१. प्रायशः नाटक घटना-प्रधान होते हैं। इस प्रकरण में शूद्रक ने पात्रों के व्यक्तित्व का अन्तर्दर्शन किया है।

आदि के निर्माण से उज्जयिनी को अलंकृत कर दिया था। सच्चे ब्राह्मण की झलक चारुदत्त में तब मिलती है, जब वह अन्याय का प्रतिकार करने पर अधिकरणिक को शाप देता है।[१]

वैभव की क्षीणता के युग में चारुदत्त का वसन्तसेना नामक गणिका से परिचय हुआ और कामदेवायतनोद्यान में प्रथम दर्शन में वसन्तसेना उसके रूपसौन्दर्य, चारित्र्यौदार्य और यशोविश्रुति से उसकी हो गई।[२] यह उस समय की बात है जब नायक को—

निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात्परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ।। १.१५

इसका नायक चारुदत्त अपनी दीनावस्था में भी उदार रहता है। जब एक प्रमत्त गज का दमन कर्णपूरक ने किया और इस प्रकार परिव्राजक को उसके दाँतों के बीच से बचा लिया तो—

एकेन शून्यान्याभरणस्थानानि परामृश्य ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्यायं प्रावारको ममोपरि क्षिप्तः ।

यह वही चारुदत्त था। कर्णपूरक का पराक्रम देखा और शरीर को आभरण रहित देखा तो प्राचीन वैभव के स्मारक अपने कम्बल को ही पुरस्कार रूप में दे डाला। वह इतना दीन हो गया था कि घर में दीपक जलाने के लिए तेल का प्रश्न उठ खड़ा होता था। पर उसके नाम लेने मात्र से वसन्तसेना के घर में संवाहक का आदर बढ़ा तो सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—

साधु आर्य चारुदत्त, साधु, पृथिव्यां त्वमेको जीवसि । शेषः पुनर्जनः श्वसिति ।

अर्थात् अकेले चारुदत्त ही पृथिवी पर जीता है, शेष लोग तो केवल श्वास लेते हैं। क्यों ?

चारुदत्त के सम्पर्क में जो कोई आया, उसे चारुदत्त ने चारुता प्रदान की। वसन्तसेना भी चारुदत्त से मिलने के पहले शकारादि की प्रेयसी, वैभव-विलासिनी साधारण स्त्री थी। उसे चारुदत्त ने देवी बना दिया। शकार प्रतिनायक भी चारुदत्त के द्वारा गान्धीजी की रीति से सुधारा ही गया। चारुदत्त तो पारसमणि है।

---

१. मृच्छकटिक ९.४३.

२. आर्यक ने चारुदत्त के विषय में कहा है—
न केवलं श्रुतिरमणीयो दृष्टिरमणीयोऽपि । चारुदत्त ने भी आर्यक के विषय में कहा है—करिकरसमबाहुः इत्यादि ७.५ जिनसे प्रतीत होता है कि चारित्रिक श्रेष्ठता का शरीर-सौष्ठव से सामञ्जस्य कवि को मान्य था।

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः ।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ।। १.४८

वसन्तसेना ने अपने आभरण लुटेरों के भय से चारुदत्त के घर पर छोड़ दिये थे । रात में वे चोरी चले गये । चारुदत्त को एक उपाय सुझाया गया कि झूठ बोल कर बच निकले । चारुदत्त ने उत्तर दिया––

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रिया-
मनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ।। ३.२६

यह चारुदत्त का रक्त बोल रहा था, सार्थवाह का नहीं । ब्राह्मण भिक्षा माँग कर वसन्तसेना की क्षति पूरी करेगा, पर झूठ नहीं बोलेगा । झूठ से चरित्र-पतन जो हो जाता है ।

दु:खियों का दु:ख देखकर चारुदत्त द्रवीभूत हो जाता था । उसने आर्यक नामक भावी राजा को कारागार से भागते समय शरण देते हुए कहा––

अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् । ७.६

इन्हीं सब गुणों के कारण चारुदत्त की आकृति में वह सौम्यता थी कि न्याया-धीश के मुँह से उसके व्यवहार का निर्णय करते समय अनेक बार निकला––

घोणोन्नतं मुखमपाङ्गविशालनेत्रम्
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम् ।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
नह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ।। ९.१६

न्यायाधीश का मत था––

तुलनं चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम् ।
ग्रहणं चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम् ।। ९.२०

यदि वायु को पकड़ लेना सम्भव हो, तभी यह सम्भव हो, सकता है कि चारु-दत्त कोई अपराध करे ।

चारुदत्त कितना दयालु है, यह उसी के मुँह से सुनिये––

योऽहं लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतो-
राकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि । ९.२८

चाण्डालों ने भी चारुदत्त को जाना था कि वह सत्पुरुष है और सुजनों का आश्रयदाता है। तभी तो उसके वध्यस्थान पर ले जाते समय महिलाओं और पुरुषों के नेत्र से इतना अश्रुपात हुआ कि उज्जयिनी की सड़कों पर धूल ही नहीं उड़ती थी—

वध्ये नीयमाने जनस्य सर्वस्य रुदतः
नयनसलिलैः सिक्तो रथ्यातो नोन्नमति रेणुः ॥ १०.१०

चारुदत्त को यश प्रिय है, जीवन नहीं। उसने इस सम्बन्ध में अपनी मानसी वृत्ति का परिचय दिया है—

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः ।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥ १०.२७

चारुदत्त का विश्वास है क्षमा करने में। वह अपने मारक शत्रु शकार को भी क्षमा कर देता है। इसे कहते हैं—उपकारहत कर देता है।

चारुदत्त का चरित्र-चित्रण ऊपर किया गया है। इससे शूद्रक की अप्रतिम चरित्र-चित्रण-कला का आभास मिलता है। इस कला द्वारा पात्रों के साथ तादात्म्य की प्रतीति होने पर पाठक उनके साथ सुखी और दुःखी होता है। यही कला मैत्रेय, शर्विलक, संवाहक अधिकरणिक आदि पुरुषों और वसन्तसेना, मदनिका, धूता, आदि स्त्रियों के चरित्र-चित्रण में प्रस्फुटित हुई है। शूद्रक ने शर्विलक और संवाहक का चारित्रिक विकास दिखाया है। चरित्र-चित्रण की इन विशेषताओं को परिलक्षित करके विलसन ने मृच्छकटिक के विषय में लिखा है—

There is something strikingly Shakespearean in the skilful drawing of characters, the energy and life of the large number of personages in the play, and in the directness and clearness of the plot itself.

किसी पात्र को सजीव और साक्षात् उसके पूर्णरूप में खड़ा कर देने के लिए शूद्रक उदग्र है, चाहे उसके लिए कथावस्तु और वर्णनों में अनावश्यक विस्तार ही क्यों न करना पड़े।

शूद्रक ने पात्रों के प्रति पाठक की सहानुभूति उत्पन्न कर दी है। चारुदत्त से जब व्यवहार-मण्डप में पूछा जाता है कि गणिका वसन्तसेना से तुम्हारा मैत्रीभाव है तो वह कहता है—

'मया कथमीदृशं वक्तव्यम्—यथा गणिका मम मित्रम्। अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।

उसने स्वयं अपने विषय में कहा है—**अथवा न युक्तं परकलत्रदर्शनम्।**

इसी प्रकार चतुर्थ अंक में शर्विलक चोरी करता है, किन्तु उसकी बुद्धि कार्याकार्यविचारिणी होने के कारण परिशोधित है। उसे दोष दें तो कैसे दें, जब उसने व्रत ही बना लिया है—

नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
धात्र्युत्संगगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्
कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता॥ ४.६

वही शर्विलक आगे चलकर कहता है—

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यम् आदि

ऐसा लगता है कि शूद्रक ने अपने प्रायशः पात्रों को अपनी कोटि के लोगों के लिए आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने के उद्देश्य से निर्मित किया है। सार्थवाह, गणिका, चोर, चाण्डाल आदि को अपना चरित्र चारुदत्त, वसन्तसेना, शर्विलक और आहीन्त के समान बना कर लोक को पावन करना चाहिए।

यदि पात्र में कोई दूषण है तो वह अस्थायी है। शर्विलक यह भी तो कह सकता है—

द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च।
सम्प्रति तु सुन्दरीणां शतादपि सुहृद्विशिष्टतमः॥ ४.२५

चरित्र-चित्रण के द्वारा समुदाचार की शिक्षा दी गई है। यथा चारुदत्त का नाम संवाहक से सुनते ही वसन्तसेना आसन से उठ खड़ी होती है।

शूद्रक ने प्रायः सभी पात्रों में अदृष्ट या भविष्य के प्रतिभास की शक्ति आरोपित की है। यथा वीरक का कथन लें—

अपहरति कोऽपि त्वरितं चन्दनक शपे तव हृदये॥ ६.११

वैसे ही आर्यक को निगडित देखने के पहले ही विदूषक वसन्तसेना के विषय में कहता है, वह उतर क्यों नहीं आती? क्या उसके पैरों में बेड़ी है?

सामाजिक दशा

मृच्छकटिक तत्कालीन संस्कृति तथा समाजिक दशा के ज्ञान के लिए विश्वकोष है। उस समाज में गणिका का अतिशय सम्मान था, यद्यपि उसका सौन्दर्य ही उसके जीवन और प्रतिष्ठा के लिए घातक हो सकता था। वर्णव्यवस्था का मनु-सम्मत आदर्श क्वचित् ही परिपालित होता था। कलाविलास को जीवन का प्रधान उद्देश्य मानने वाले ब्राह्मण-युवक येन-केन प्रकारेण ऐन्द्रियक परितुष्टि के लिए प्रयत्नशील

देखे जा सकते थे। शर्विलक और संवाहक तथा विदूषक और चारुदत्त इस प्रवृत्ति के पूर्ण परिचायक हैं। वन-क्रीड़ा, द्यूत-क्रीड़ा आदि का प्रचलन श्रेष्ठ मनोरंजन के रूप में था। उसमें बड़े-छोटे सभी व्यापृत हो सकते थे। वैदिक धर्म के इष्टापूर्त के लिए धार्मिक पुण्य की दृष्टि से समृद्धिशाली लोग प्रचुर व्यय करते थे। यज्ञों का विशेष प्रचलन था। धनियों के प्रासाद के साथ ही साथ दरिद्रों की वस्त्रहीनता की ओर भी कवि ने ध्यान आकृष्ट किया है। सम्भवतः ऐसी ही सामाजिक पृष्ठभूमि में वात्स्यायन ने कामशास्त्र की रचना की।

राजकीय शासन अव्यवस्थित था। प्रजापालन की वृत्ति दुर्बल थी। राजा स्वयं राज-काज में स्वल्प रुचि लेता था। बौद्ध श्रमणक अशुभ-सूचक माने जाते थे। दास-प्रथा, द्यूत का मनोरंजन, गणिका-सम्मान आदि प्राचीन काल से ही प्रवर्तित प्रचलन थे।

शैली

शूद्रक ने प्रयोजन और पात्र की गरिमा के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है।[1] कवि का संस्कृत और विविध प्राकृत भाषाओं पर अधिकार था। नाटक के लिए जिस सरस बोलचाल की भाषा की अपेक्षा रहती है, वह शूद्रक को पूर्ण रूप से मिली थी। नाटक के आरम्भ में ही सूत्रधार कहता है—

अनेन चिरसंगीतोपासनेन ग्रीष्मसमये प्रचण्डदिनकरकिरणोच्छुष्क पुष्करबीजमिव प्रचलिततारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायते।

इस वाक्य में 'खट-खटायते' शब्द कवि की शैली पर प्रकाम प्रकाश डालता है। इस पद का अर्थ ध्वनिमूलक है और नेत्रों का खटखटाना भाव को मूर्त रूप देने में कितना समर्थ है—यह सहृदय पाठक समझ सकते हैं। नाटककार को प्राकृतों से अद्भुत प्रेम था। आठ प्रकार की प्राकृत भाषायें नाटक में प्रयुक्त हैं। अन्यत्र सूत्रधार साधारणतः संस्कृत बोलते हैं, पर मृच्छकटिक का सूत्रधार—**कार्यवशात् प्रयोजनवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्तः।** शूद्रक की प्राकृत में भी वरण्डलम्बुक जैसे शब्दों का प्रयोग है। कविवर कहाँ-कहाँ से शब्द ढूँढ़कर उनका संयोजन करते हैं—यह कल्पनातीत ही है।

---

१. चतुर्थ अंक में नियमानुसार प्राकृत बोलने वाली वसन्तसेना विदूषक का सम्मान करने के उद्देश्य से संस्कृत बोलती है और वही आत्मगतम् प्राकृत में है। वह सखी से प्राकृत में बोलती है। पंचम अंक में वह वर्षा-वर्णन संस्कृत में करती है।

कहीं-कहीं शब्दों के उलट-फेर से हास्य उत्पन्न किया गया है। यथा, **चौरं कर्तयित्वा सन्धिर्निष्कान्तः**।[1]

कवि ने भाषा पात्रोचित रखी है। शकार की भाषा पर्यालोचनीय है। वह वसन्तसेना का वर्णन करते हुए कहता है—

एशा णाणकमूशिका मकशिका मच्छाशिका लाशिका
णिण्णाशा कुलणाशिका अवशिका कामस्स मंजूशिका।
एशा वेशवहू शुवेशणिलआ वेशंगणा वेशिआ
एशे शे दशणामके मयि कले अज्जावि मंणेच्छदि॥ १.२३

इस पद्य में शकार का बाहुल्य है, क्योंकि इसका वक्ता शकार है।[2] शकार नाम ही सम्भवतः इस कोटि के पात्र की भाषा में श के बाहुल्य के कारण दिया गया है।

शब्दालंकार में स्वरों के साम्य से भी चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यथा,

अन्धस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्धिरिव सिद्धिरिवालसस्य॥ १.४९

इसमें इ की अनुवृत्ति है।

शूद्रक अर्थालङ्कारों के संयोजन में अतिशय निपुण हैं। चन्द्रमा के अस्ताचल की ओर जाने का प्रसंग है। कवि कहता है—

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम्॥ ३.६

उपमाओं के क्रम-विन्यास में कवि ने दूरदर्शिनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। शर्विलक की अपने सम्बन्ध में उक्ति है—

भुजग इव गतौ गिरिः स्थिरत्वे पतगपतेः परिसर्पणे च तुल्यः।
शश इव भुवनावलोकनेऽहं वृक इव च ग्रहणे बले च सिंहः॥ ३.२१

शर्विलक ने इन उपमाओं के द्वारा अपने व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों का जो परिचय दिया है, वह उसके भावी कार्यों के लिए अपेक्षित शक्ति का रहस्योद्घाटन करने के लिए प्रतीक-रूप में है।

श्लेषालङ्कार की भित्ति पर अर्थालङ्कारों का प्रासाद बनाने की शूद्रक की योजना बाण की शैली का पथ निर्माण करती है। यथा,

---

१. ऐसे प्रयोगों से अंगरेजी में प्रसिद्ध स्पूनर की स्मृति हो आती है।

२. अभिनवभारती (ना० शा० १२.१२८) के अनुसार शकारबहुला यस्य भाषा स शकारः।

एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं मेघान्धकारं नभो
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी ।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः ॥ ५.६

अनेक पद व्यञ्जना का प्रासाद खड़ा कर देते हैं। पञ्चम अंक में विदूषक वसन्तसेना से बताता है कि चारुदत्त शुष्कवृक्षवाटिका में हैं। यहाँ शुष्कवृक्षवाटिका है वह स्थान, जहाँ 'न खाद्यते न पीयते'। अर्थात्—Dry Area

कवि ने व्यक्तियों के स्वभाव का चित्रण करने के लिए उनके उपमानों का अत्यन्त सूझ-बूझ से चयन किया है। यथा,

हित्वाहं नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्ति-व्यसनमहार्णवंमहान्तम् ।
पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनाद्भ्रमामि ॥ ६.१

भावी राजा को इस पद्य के अनुसार गज इव होना ही चाहिए।

शूद्रक ने कहीं-कहीं भावोत्कर्ष के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। यथा,

पञ्चजना येन मारिता स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षितः ।
अबलः क्व चाण्डालो मारितोऽवश्यमपि स नरः स्वर्गं गाहते ॥

इस पद्य में पञ्च जन, स्त्री, ग्राम, और चाण्डाल क्रमशः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, अविद्या, शरीर और अहंकार हैं।

रूपकों के संचयन में शूद्रक की दृष्टि समतावादी प्रतीत होती है। यथा,

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशंखाकुलं
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्राश्रयम् ।
नानावाशककङ्कपक्षनिचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥ ९.१४

कुछ पात्रों की भाषा केवल उन्हीं की विशेषता प्रकट करने के लिए है। शकार-बहुला संस्थानक की भाषा में पर्यायवाची शब्दों की बहुलता है, जो अन्य किसी पात्र की भाषा में नहीं मिलती। यथा,

शकुनिखगविहंगा वृक्षशाखासुलीनाः
नरपुरुषमनुष्या उष्णदीर्घं श्वसन्तः । ८.१२

इसमें शकुनि, खग और विहंग तीन पद पर्यायवाची हैं और वैसे ही हैं नर, पुरुष और मनुष्य। कहीं-कहीं एक बात को पुनः पुनः अनेक वाक्यों में कहा जाता है।[1]

१. राजश्वसुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता ।
राजश्यालोऽहं ममापि भगिनीपती राजा ॥ ९.६
शकार के कामों और भाषणों से हास्य उत्पन्न करना कवि का उद्देश्य है।

मृच्छकटिक की विशेषता प्राकृतों में देशी और अनुकरणात्मक शब्दों की भरमार है। इससे पात्रों के अनुकूल भाषा का अनन्य आदर्श मिलता है। यथा,

मंशं च खादुं तह तुष्टि कादुं ।
चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहूत्ति ।। ८·२२

यदि गाली सीखना हो तो मृच्छकटिक का पारायण उपयोगी हो सकता है। मूर्ख, काणेलीमातः, दासीपुत्र, काकपदशीर्षमस्तक आदि चलती-फिरती गालियाँ हैं। शकार के शब्दों में उसका विट वृद्धकोल है

अर्थान्तरन्यासों के द्वारा शूद्रक ने अपनी शैली को प्रभविष्णु बनाया है। यथा,

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ।। ८·२९

श्री काले ने शूद्रक की शैली की विशेषताओं का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है—

On the whole his writing is vigorous, pointed and forcible; he avoids ungrammatical forms, involved contructions, elaborate Alankaras, as also difficult puns. And to crown all, he has a facile power of dexterously clothing homely proverbs and simple morals in sentences of great beauty and stanzas of haunting melody; many of these have obtained currency in the common language of the people, by whom they are treasured up as Subhasitas.

शूद्रक की भाषा सूक्तियों के प्रयोग से प्रभविष्णु है। सूक्तियों की रमणीय चयनिका इस प्रकार है—

१. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते। १·१०
२. रत्नं रत्नेन संगच्छते। १·३२
३. न हि चन्द्रादातपो भवति।
४. निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् । १·३७
५. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो। भवति। १.४२
६. पुरुषेषु न्यासाः निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु। १·५६
७. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति। २·१४
८. स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः ।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ।। ४.१९
९. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्। ९.४१
१०. सर्वत्रार्जवं शोभते। १०.४९

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकरण में कवि का एक उद्देश्य था सूक्तिसंचयन।

शूद्रक की भाषा सरल और सौष्ठवपूर्ण है। वैदर्भी रीति का अनुसरण करते हुए कवि ने केवल इनेगिने स्थलों पर अपने गद्यों में या गीतात्मक पद्यों में कुछ लम्बे समासों का सन्निवेश किया है।

मृच्छकटिक में रसनिष्पत्ति की अपूर्व निर्झरिणी प्रवाहित की गई है। इसमें अङ्गीरस शृंगार है। रस का सर्वोच्च उत्स दसवें अङ्क में चारुदत्त का अपने पुत्र रोहसेन से मिलने का वर्णन है। पिता वध्यभूमि की ओर खींचा जा रहा है और पुत्र कहता है—**'व्यापादयत माम्। मुञ्चत पितरम्'** इसमें वात्सल्य और करुण का मञ्जुल सामञ्जस्य है। मृच्छकटिक हास्यरस का भण्डार है। विदूषक हास्यरस की निर्झरिणी प्रवाहित करता है। जब चारुदत्त पूछता है कि क्या वसन्तसेना आई थी तो वह कहता है, नहीं वसन्तसेन आया था। इसका अभिप्राय है कि चोर आया था। आरम्भ में ही नटी की नट से परिहासात्मक नोंकझोंक होती है। प्रथम अंक में शकार, विट और चेटी अर्ध-विदूषक प्रतीत होते हैं। विट का तो काम ही था हँसाना। शकार की मूर्खता और गलतियाँ हास्य उत्पन्न करती हैं। विदूषक हास्य का शाश्वत स्रोत है। वसन्तसेना की माता का वर्णन अतिशय हास्यपूर्ण और मनोरंजक है। यथा,

यदि म्रियते अत्र माता भवति शृगाल-सहस्रपर्याप्ता[1]। ४.३०

अपने संवादों में, पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में और वर्णनों में कवि ने हास्य को निवेशित किया है। परिस्थितिवशात् पात्रों के द्वारा असत्य भाषण कराकर अनेक स्थलों पर हास्य की निष्पत्ति कराई गई है। यथा, चतुर्थ अंक में मदनिका वसन्तसेना से कहती है कि चारुदत्त के यहाँ से कोई आया है। वसन्तसेना को इस झूठ पर हँसी आ गई।

भावों का उत्थान-पतन

इस प्रकरण में दर्शक की उत्सुकता जागरित करने के लिए शूद्रक ने स्थान-स्थान पर भावों का उत्थान-पतन दिखाया है। यथा, चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में वसन्तसेना अपने बनाये हुए चारुदत्त के चित्र को अनुरागनिविष्ट दृष्टि से देख रही है। तभी उसे अपनी माता का सन्देश मिलता है कि तुम राजश्याल के साथ जाओ। स्मरण रहे कि राजश्याल को वसन्तसेना कुत्ते से भी गया-गुजरा समझ कर घृणा करती थी।

शर्विलक को विवाह के पश्चात् पहली बार मदनिका के साथ जाते समय मार्ग में प्रवहण से उतर कर गोपाल की रक्षा के लिए जाना भी ऐसा ही उत्थान-पतन का निदर्शक है।

---

१. ऐसा लगता है कि मरने के पश्चात् सभी जलाये नहीं जाते थे।

पाँचवें अंक में चारुदत्त तो वसन्तसेना से मिलने के लिये उत्कण्ठित है और विदूषक गणिका-प्रसङ्ग की निन्दा करते हुए उसकी शृंगारित भावातिरेक की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना चाहता है। जब नायक कह देता है—'ननु त्यक्तैव सा मया' तब कहीं जा कर वह बताता है कि वह आज सन्ध्या के समय आने वाली है।

सप्तम अंक में वसन्तसेना के लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने वाले चारुदत्त को उसके स्थान पर आर्यक मिला।[1] फिर तो वसन्त-क्रीडा की डाल से गिर पड़ने वाले चारुदत्त की क्या मनोदशा हुई, यह कल्पनातीत ही है। विदूषक ने उससे कहा था—गाड़ी में वसन्तसेना तो नहीं है, इसमें तो वसन्तसेन हैं।

शकार ने चेट को प्रलोभन देकर उससे वसन्तसेना की हत्या कराना चाहा। उसने उसके द्वारा प्रस्तावित पाँच कामों के लिए स्वीकृति दी, पर छठें कार्य के सम्बन्ध में कह दिया कि यह अकार्य है।

सबसे बढ़ कर भावों का उत्थान-पतन है नायक के गले में शूलीपाश के स्थान पर नायिका का बाहुपाश, जो प्रकरण की चरम परिणति है।

गीतितत्त्व

शूद्रक की प्रतिमा गीतप्रवण है। प्रथम अंक में विट द्वारा वसन्तसेना का वर्णन उच्चकोटि के गीतकाव्य का आदर्श प्रस्तुत करता है। यथा,

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षविसृष्टदृष्टि-
र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि ॥ १.१७

शूद्रक ने गीतात्मक भावों को तदनुकूल छन्दों से मण्डित किया है। यथा,

जलधर निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम्।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः परामृशसि ॥ ५.२८

इसमें आर्या छन्द है, जो गीतों के लिए सुप्रयुक्त है।

गर्ज वा वर्ष वा शक्र मुञ्च वा शतशोऽशनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ ५.३१
यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः।
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥ ५.३२

---

१. चारुदत्त की मनोवृत्ति उस समय थी—न कालमपेक्षते स्नेहः। स्वयमेव (वसन्तसेनाम्) अवतारयामि और गाड़ी से निकला आर्यक।

कहीं-कहीं शूद्रक अमरुक की पद्धति का आदर्श प्रस्तुत करता है। यथा,

एषा फुल्लकदम्बनीपसुरभौ काले घनोद्भासिते
कान्तस्यालयमागता समदना हृष्टा जलार्द्रालिका ।
विद्युद्वारिदगर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकांक्षिणी
पादौ नूपुरलग्नकर्दमधरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता ।। ५.३५

संस्कृत साहित्य में प्रकृति-वर्णन के सामञ्जस्य में शृंगारित गीत का सर्वोच्च निदर्शन करें—

वर्षोदकमुद्गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन ।
एकः स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराज्ये ।। ५.३८
एतैः पिष्टतमालवर्णकनिभैरालिप्तमम्भोधरैः
संसक्तैरुपवीजितं सुरभिभिः शीतैः प्रदोषानिलैः ।
एषाम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत् समालिंगति ।। ५.४६

नीचे लिखे पद्य में रात्रि का मानवीकरण करके संवाद रूप में गीतितत्त्व प्रस्तुत है—

मूढे निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र ।
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशासपत्नी ।। ५·१५

इसमें रात्रि वसन्तसेना की सपत्नी है ।

अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है, मानो कवि मेघदूत का पथनिर्माण कर रहा है। यथा,

एह्येहीति शिखण्डिनाम्पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
प्रोड्डीयेव बलाकया सरभसं सोत्कण्ठमालिंगितः ।
हंसैरुज्झितपंकजैरतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः
कुर्वन्नञ्जनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठति ।। ५·२३

वर्णन

शूद्रक वर्णनों के अतिशय प्रेमी हैं। निःसन्देह यह महाकवि महाकाव्य की रचना करने के लिये भी अत्यन्त समर्थ रहा होगा । यद्यपि इस कोटि के साहित्य में विस्तृत वर्णनों के लिये समीचीन अवसर नहीं रहता, फिर भी कवि को वसन्तसेना के प्रकोष्ठों के वर्णन का गद्य माध्यम से तथा वर्षा-ऋतु के वर्णन का पद्य-माध्यम से विस्तार करने

में सफलता मिली है। पाँचवे अंक में कवि को मानों विस्मृत हो गया है कि वह रूपक रच रहा है। इसमें ३७ श्लोक वर्षा-वर्णन के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये श्लोक प्रत्येकशः विभिन्न भावों, छन्दों और कल्पनाओं को ग्रहण करने के कारण और साथ ही कथा के साथ सामञ्जस्य रखने के कारण अतीव मनोरम हैं। इस अंक का नाम दुर्दिन रख दिया गया है। स्थान-स्थान पर दरिद्रता का वर्णन उसकी प्रखरता का परिचय देता है। दरिद्रता का निरूपण करने के लिये शूद्रक ने ४० स्थलों पर गद्य और पद्य के मध्यम से लिखा है। वर्णनों के साथ अभिनय का सामञ्जस्य विरल ही है। इस रूपक में वर्णन की अतिशयता दोष प्रतीत होती है। वस्तुतः वर्णन कथावस्तु की प्रवृत्ति में अवरोध है।

वर्णनों में कवि की पैनी दृष्टि और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय मिलता है, जिससे उसने अनेक स्थलों पर मानवीकरण की कल्पना की है। यथा,

विद्युत् जिह्वेयं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन
जलधरविवृद्धहनुना विजृम्भितमिवान्तरिक्षेण
अभ्युदयेऽवसाने तथैव रात्रिदिवमहतमार्गा।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रत्येषितुं याति ॥

शूद्रक ने द्वितीय अंक में जुआरियों के जीवन और उनकी मनोवृत्ति का, तृतीय अंक में चोरी का, नवम अंक में अपशकुन और व्यवहार-विधि का तथा दशम अंक में वध्यभूमि-प्रयाण का मानो स्वानुभूत, किन्तु अनावश्यक रूप से अतिविस्तृत, वर्णन किया है। इनमें द्यूतकारों की भाषा में ही उनकी वृत्तियों का वर्णन सजीव है और उनकी गुण्डागर्दी का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत है।

किसी काम के करते समय मन में जो विचार उत्पन्न होते हों, उनका सविस्तार वर्णन करा देना शूद्रक का प्रयोजन है। प्रकरण की कथावस्तु से उस विचार-सरणि का संबंध होना आवश्यक नहीं है। हाँ, अपने आप में उन विवरणों को रोचक होना चाहिए। शर्विलक ने अपने कर्म सेंध लगाने आदि का सांगोपांग वर्णन किया है। वस्तुतः इसके लिये नाटकीय दृष्टि से कोई स्थान इसमें नहीं होना चाहिए।

कुछ वर्णन तो मृच्छकटिक में स्वाभाविकता और दुर्बलता की दृष्टि से अद्वितीय ही हैं। यथा, निद्रा का—

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अदृश्यरूपा चपला जरेव या मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्धते ॥ ३·८

कवि ने वर्णनों को अतिशय तीखा वनाने के लिये व्यञ्जना का भी सहारा लिया है। उसे चारुदत्त की दरिद्रता की मूर्ति गढ़नी है। इसके लिये वह कह देता है कि उसके घर में दीप जलाने के लिए तेल नहीं है। वर्णनों में सब कुछ प्रस्तुत-अप्रस्तुत

कह देने की प्रवृत्ति शूद्रक में सविशेष है। ऐसा लगता है कि शूद्रक महाकवि बाण के वर्णनों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं।

वसन्तसेना से मिलने के लिए जाते समय मार्ग का वर्णन जिस पद्धति पर निष्पन्न है, उसी पर हर्षचरित में बाण का हर्ष से मिलने जाते समय का वर्णन है।

कवि को प्रकृति के सभी पक्षों का वर्णन करना है, चाहे वे अप्रासङ्गिक ही क्यों न हों। वर्षारात्र का वर्णन है। नीचे के पद्य में इस प्रसङ्ग में कहा गया है कि आकाश ने सूर्य को पी लिया है और उसी के साथ यह भी कहा गया है कि बादलों ने ज्योत्स्ना का भी अपहरण कर लिया है।

एतैरार्द्रतमालपत्रमलिनैरापीतसूर्यं नभो
वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः।
विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसंचारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता॥ ५.२०

सूर्य और ज्योत्स्ना को एक ही पद्य में दिखाने वाले कवि के विषय में श्री करमर का कहना है—Such absurdities abound in this tediously long description of rain and cloud.

कवि ने वर्षारात्र में इन्द्रधनुष का भी दर्शन करा दिया है, जो सापवाद ही है।[1] प्रकृति-विषयक कवि की कल्पनायें अद्वितीय हैं। यथा,

एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधराः साधारा गां रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति॥ ५.२१

अर्थात् बादल हाथी हैं और वे पृथ्वी को अपनी धारा-रूपी चाँदी की रस्सी से पकड़ कर उठा रहे हैं।

---

१. विद्युज्जिह्वेनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन।
जलधरविवृद्धहनुना विजृम्भितमिवान्तरिक्षेण॥ ५.५१

विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न है रात्रि में इन्द्रधनुष असम्भव नहीं है, किन्तु व्यवहार रूप में रात्रिकालिक इन्द्रधनुष इतना अपवादात्मक है कि इसका वर्णन करना असंगत लगता है। इसके साथ ही यह भी ज्ञेय है कि अभी प्रदोष है, जब वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुँची। उस प्रदोष वेला में कहाँ की ज्योत्स्ना और कहाँ का इन्द्रधनुष? जैसा आगे चलकर विदूषक ने बताया है, उस रात चन्द्रमा का प्रकाश था ही नहीं, किन्तु कवि को तो अपने वर्णन को सर्वांगीण बनाना था।

बादलों का केवल मानवीकरण ही नहीं किया गया है, उनको शृंगारित भी दिखाया गया है । यथा,

जलधर निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम् ।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः परामृशसि ॥

कालिदास का मेघ भी प्रेम-प्रक्रियाओं में निष्णात था ।[१] विद्युत् और आकाश की प्रणय-लीला है--

एतैः पिष्टतमालवर्णकनिभैरालिप्तमम्भोधरैः
संसक्तैरुपवीजितं सुरभिभिः शीतैः प्रदोषानिलैः ।
एषाम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत् समालिंगति ॥ ५.४६

इसका प्रयोग उद्दीपन-विभाव के रूप में किया गया है। उसके ठीक पश्चात् ही शूद्रक का कहना है--

वसन्तसेना शृंगारभावं नाटयन्ती चारुदत्तमालिङ्गति ॥

वर्णनों में वक्ता की दृष्टि का महत्त्व है । अभिसारिका वसन्तसेना को वर्षर्तु के विविध दृश्यों में प्रकृति की प्रेमान्विति दिखाई देती है । सार्थवाह चारुदत्त को उद्यान में बाजार दिखाई देता है । यथा,

वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि ।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकरपुरुषाः प्रविचरन्ति ॥ ७.१

वर्णनों के द्वारा वक्ता का चरित्र-चित्रण करने का सफल प्रयास इस प्रकरण में अनेक स्थलों पर दिखाई देता है । आठवें अङ्क में शकार उपवन और सूर्य का वर्णन कर रहा है--

द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः पनसफलानीव वानरा ललन्ति ॥ ८.८
नभोमध्यगतः सूर्यो दुष्प्रेक्षः कुपितवानरसदृशः ॥ ८.१०

इन दोनों पदों में वानर को देखने वाले शकार का चरित्र वानर के समान था--यह शूद्रक का अभिप्राय है ।

स्वभाव और मनोविज्ञान

मनुष्य के स्वभाव का सूक्ष्म परिचय स्थान-स्थान पर दिया गया है। यथा मन की चञ्चलता का चित्र है--

१. पञ्चम अंक जैसा वर्षर्तु का रमणीय वर्णन अन्यत्र अप्राप्य है। यह मत गाट शैल-का है ।(Poetik, 2Aufl, 186,)

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति ।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ।। ५·८

जातीय स्वभाव का एकत्र समाचार है विदूषक के शब्दों में **अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिक्, अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः, अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते ।**

अर्थात् बनिया ठग, सोनार चोर, ग्रामसभायें झगड़ालू और गणिकायें लालची होती ही हैं ।

स्त्रियों के स्वभाव की आलोचना स्त्री के मुख से ही सुनिये । वसन्तसेना ने कहा है—

किमनया स्त्रीस्वभावदुर्विदग्धयोपालब्धया

अर्थात् स्त्रियाँ स्वभावतः दुर्विदग्ध होती हैं ।

और उनका प्रेमपथ पर सत्याग्रह है—

मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुंचन्त्वशनिमेव वा ।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ।। ५·१६

कामशास्त्रीय मनोविज्ञान का उपदेश देने में भी शूद्रक चूका नहीं है यथा,

विटः—सकलकलाभिज्ञाया न किञ्चिदिह तवोपदेष्टव्यमस्ति । तथापि स्नेहः प्रलापयति । अत्र प्रविश्य कोपोऽत्यन्तं न कर्तव्यः ।

यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन विनाथवा कुतः कामः ।
कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ।। ५·३४

विट ने कामशास्त्रानुसार कामियों के स्त्रियों द्वारा अवमानित होने पर प्रतिक्रिया का वर्णन किया है—

स्त्रीभिर्विमानितानां का पुरुषाणां विवर्धते मदनः ।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुर्नैव वा भवति ।। ८·९

साधारण लोग कितने स्वार्थी होते हैं—यह चारुदत्त की विगलित स्थिति की वाणी में सुनिये[1]—

---

१. ऐसा लगता है कि शूद्रक की रीति है कि सभी प्रकार की बातें उचित या अनुचित कह ही डालनी चाहिए । नगर के लोगों ने उसे देखकर आँसू का पनाला बहाया था तब चारुदत्त से ऐसा कहलवाना कि उसके मित्र उसे देखकर मुँह मोड़ लेते थे । उचित नहीं है ।

अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः प्रयान्ति मे दूरतरं वयस्याः ।
परोऽपि बन्धुः समसंस्थितस्य मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य ।। १०·१६

काम-सम्बन्धी मानसी वृत्ति की चर्चा करते हुए शूद्रक ने कहा है--

विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः ।। ८·३०

अर्थात् प्रेम अकेले में ही होता है ।

जीवन का आदर्श

मृच्छकटिक में जीवन को सुव्यवस्थित रखने की सीख देने वाला विदूषक है । चाहे परिहास में हो या गम्भीरता पूर्वक, वह बातें ऐसी कहता है, जिससे चरित्र-निर्माण हो । आज की दुनिया में बाहरी तड़क-भड़क का जो बोलबाला है, उसकी आलोचना विदूषक ने चतुर्थ अङ्क में वसन्तसेना के भाई की चर्चा करते हुए की है--

मा तावद्यद्यप्येष उज्ज्वलः स्निग्धश्च सुगन्धश्च ।
तथापि श्मशानवीथ्यां जात इव चम्पकवृक्षोऽनभिगमनीयः ।।

अर्थात् किसी व्यक्ति की क्षणिक शोभा पर मत रीझिये, उसके परिसर को भी देखिये, कहाँ तक उसमें आभिजात्य है ।

विदूषक शराबियों के विषय में कहता है कि ये अपने को तो मार ही रहे हैं, साथ ही अपने कुटुम्बियों की भी दुर्दशा के कारण हैं । उनके लिए उसने विशेषण दिया है--**अवधीरित पुत्रदारवित्ता** । वसन्तसेना की मोटी माँ पीते-पीते मृत्यु-मुख में ढुलकने वाली है । उसके विषय में विदूषक सूचना देता है--

सीधुसुरासवमत्तिआ एआवत्थं गदा हि अत्तिआ ।
जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआलसहस्सपज्जत्तिआ ।।

अर्थात् वह मरने पर १००० स्यारों का भोजन बनेगी ।

विदूषक ने पुनः पुनः गणिका की निन्दा की है । उसने चारुदत्त को गणिका-वृत्ति से हटाने की आद्यन्त चेष्टा की है, पर यदि वह गणिका-वृत्ति से हट जाता तो यह प्रकरण कैसे रचा जाता ?

विट ने भी महिलाओं को अपनी सत्प्रतिष्ठा बनाये रखने की सीख देते हुए कहा है--

विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्र सन्तिष्ठते ।

'अयश विष के समान है' कोई उदात्त पुरुष अपने पूर्वजों की यशःप्रतिष्ठा को उत्तराधिकार रूप में पाकर उसे अक्षुण्ण रखना चाहता है । चारुदत्त का कहना है--

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे
सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।
मम मरणदशायां वर्त्तमानस्य पापै-
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ।। १०·१२

उसके विषय में चाण्डालों के श्लोक हैं—

एष गुणरत्ननिधिः सज्जनदुःखानामुत्तरणसेतुः ।
असुवर्णं मण्डनकमपनीयतेऽद्य नगरीतः ।। १०·१४

मनुष्य के हीन या उच्च कुल में उत्पन्न होने से कुछ नहीं होता । वह अपने कर्तव्यों का सुचारु रूप से परिपालन करते हुए महान् बनता है । अभिजात पुरुष भी हीन कर्म करने से हीन बन जाता है । यह बात चाण्डालों की नीचे लिखी उक्ति द्वारा चरितार्थ की गई है—

न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि ।
येऽभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः ।। १०·२२

कवि ने दरिद्रता की भरपूर निन्दा की है । उसका मन्तव्य प्रतीत होता है कि दरिद्र अपनी दरिद्रता से घबड़ा जाता है, किन्तु इस दरिद्रता में कुछ ऐसी पावक शक्तियाँ उत्पन्न होतीं हैं जो दरिद्र को महान् बनाती हैं । वास्तव में दरिद्रता परीक्षा के लिए है । उसमें उत्तीर्ण होने पर पुरुष चमकता है ।

सत्य की विजय होकर ही रहती है—कवि ने यह अपने प्रकरण द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया है । आरम्भ में सत्य भले ही विपत्ति का कारण बन जाय, किन्तु अन्ततोगत्वा वह मनुष्य को चमका देता है ।

विचारौदार्य

आधिभौतिक परिग्रहों के ऊपर हार्दिक विलास का परिकल्पन अत्यन्त उत्तमता पूर्वक इस नाटक में निर्वाहित है । गणिका वसन्तसेना कहती है··'**गुणः खल्वनुरागस्य कारणम्**' अथवा '**हृदये गृह्यते नारी** । शूद्रक ने निर्धनता में हार्द गुणों का सौरभ संवर्धित सा प्रदर्शित किया है । उसका कहना है···

सुजनः खलु भृत्यानुकम्पः स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते ।। ३·१

शरणागत की रक्षा का सर्वोच्च आदर्श है चारुदत का कहना—

अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् । ७·६

यद्यपि कतिपय वेश्याओं की चर्चा इस प्रकरण में मिलती है, तथापि लेखक का मन्तव्य चरित्र-भ्रंश की विपत्तियों का निदर्शन करके तथाकथित नागरक को सुपथ पर लाना है । शर्विलक स्वयं अपनी अनुभूति का निरूपण करता है—

अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः ।
नराणां यत्र हूयन्ते यौनानि धनानि च ।। ४·११

न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति
न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति ।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो
न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गनाः ।। ४·१७

अन्तिम निर्णय शर्विलक का ही है ।

तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन ।
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ।। ४·१४

किसी सत्पुरुष के गुणों की वारंवार चर्चा करके समाज की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना शूद्रक का इस नाटक में एक प्रयोजन प्रतीत होता है। चारुदत्त या वसन्तसेना का अतिशय गुणगान इसी उद्देश्य से किया गया है । कवि की यह प्रवृत्ति शर्विलक के मुख से ज्ञेय है—

न खलु मम विषादः साहसेऽस्मिन् भयं वा ।
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधोर्गुणास्त्वम् ।। ४·२०

मृच्छकटिक नाटक का प्रमुख सन्देश अभिधावृत्ति से शूद्रक के शब्दों में ही है

शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ।। १·८

अर्थात् मानव पुत्रवान् बने, अच्छे मित्र रखे, बुद्धि-वैभव का संवर्धन करे और दरिद्रता को पास न फटकने दे । यद्यपि दरिद्रता की सर्वाधिक निन्दा की गई है, पर मृच्छकटिक में दरिद्रों के ही पराक्रम से महान् उत्कर्ष की उपलब्धि प्रदर्शित की गई है । पात्र प्रायः दरिद्र हैं, पर उनका हृदय धनासक्त नहीं है । वे हृदय के धनी हैं । मृच्छकटिक का एक व्यावहारिक सन्देश तो यही माना जा सकता है कि सर्वशून्य दरिद्र ही सर्वोच्च पराक्रम कर सकता है।

संवाद

शूद्रक की संवाद-शैली सफल है । संवादों में केवल भाषा ही नहीं, भाव भी पात्रोचित्र रखे गये हैं । उदाहरण के लिए प्रथम अङ्क में शकार का अप्रासंगिक सा वक्तव्य उसी के व्यक्तित्व के अनुरूप है—

कुष्माण्डी गोमयलिप्तवृन्ता शाकं च शुष्कं तलितं खलु मांसम् ।
भक्तं च हैमन्तिकरात्रिसिद्धं लीनायां च वेलायां न खलु भवति पूति ।।

संवाद के लिए कहीं-कहीं 'आकाशभाषित' की रीति अपनाई गई है। संवाहक को दस सुवर्णमाषक के लिए बेचना है—इस प्रकरण में संवाहक रंगमंच पर अवर्तमान पुरुष से प्रश्नोत्तर करता है।

संवाद को रुचिकर बनाने के लिए कहीं-कहीं पहेली का उपयोग किया गया है। चेट ने विदूषक को वसन्तसेना का आगमन पंचम अङ्क में पहेली के द्वारा सुझाया है—'**कस्मिन् काले चूता मुकुलिता भवन्ति**' तथा '**ग्रामाणां का रक्षां करोति।**'

ऐसे संवादों का मुख्य प्रयोजन हास्य है।

संवादों को चटुल बनाने के लिए कवि कथानक-सूत्र को ढीला करने में निपुण है। पाँचवें अङ्क में चेट यह समाचार देने के लिए आया है कि वसन्तसेना आ गई है। पर उसकी विदूषक से नोक झोंक होती है—

चेट—अले एशा शा

विदूषकः—का एसा का

चेटः—एशा शा

इत्यादि।

संवाद में हास्य की सृष्टि के लिए कवि ने प्राकृत भाषा के कतिपय अंशों में श्लेष के द्वारा वक्ता का अभिप्राय कुछ भिन्न होना और श्रोता का अर्थग्रहण कुछ और ही होना दिखाया है। अष्टम अंक में भिक्षु ने शकार को उवाशक (उपासक), धण्ण (धन्य), पुण्ण (पुण्य) कह दिया तो उसने अर्थ समझा उपासक का नाई, धण्ण (धन्य) का चारवाक और पुण्ण (पुण्य) का कुम्भकार।

कलाओं की चर्चा

स्थान-स्थान पर कलाकृतियों की चर्चा मृच्छकटिक में मिलती है, विशेषत: चित्रकला की। वसन्तसेना के तृतीय प्रकोष्ठ में गणिकायें इधर-उधर घूम रही थीं और उनके हाथ में चित्रफलक थे। चारुदत्त को आकाश में चित्र ही चित्र या मूर्तियाँ दिखाई पड़ती हैं—

संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना ।।५·५

चारुदत्त ने अपने घर की भित्तियों पर बने हुए चित्रों का उल्लेख किया है।

संक्लिन्ना सलिलभरेण चित्रभित्तिः ।। ५·५०

संगीत-कला की सर्वोपरि चर्चा है। वसन्तसेना के चतुर्थ प्रकोष्ठ में मृदङ्ग, कंसताल, वंश, वीणा आदि बज रहे थे। वहीं पर गणिका-दारिकायें नृत्य, और शृंगारित नाट्य के अभिनय का अभ्यास कर रहीं थीं। छठें प्रकोष्ठ का तोरण इन्द्रधनुष

की भाँति दीख रहा था। चारुदत्त की दृष्टि में ताली, विटप, शिला, सलिल आदि पर गिरती हुई जलधारा वीणागान उत्पन्न करती है।[1]

प्रसाधन-शिल्प की चर्चा वसन्तसेना के छठें प्रकोष्ठ के वर्णन में की गई है। वहाँ बहुविध अलंकार असंख्य प्रकार के रत्नों से बनाये जा रहे थे। केसर और कस्तूरी का शोधन हो रहा था। वहीं चन्दनरस और सुगन्धित द्रव्यों का निर्माण हो रहा था।

छन्दोयोजना

मृच्छकटिक में २४८ पद्य संस्कृत में हैं और इन सब में २१ छन्द प्रयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त लगभग १०० पद्य प्राकृत में हैं, जो आर्या तथा अन्य प्राकृत छन्दों में हैं। संस्कृत के पद्यों में ८३ अनुष्टुप् में, ४० वसन्ततिलका में और ३२ शार्दूलविक्रीडित में हैं। इनके अतिरिक्त २० पद्यों में उपजाति, १४ में पुष्पिताग्रा, १३ में मालिनी, १० में प्रहर्षिणी और वंशस्थ, ६ में इन्द्रवज्रा, ५ में शिखरिणी तथा स्रग्धरा, २ में हरिणी और औपच्छन्दसिक हैं। विद्युन्माला, वैश्वदेवी, प्रमिताक्षरा और सुमधुरा छन्दों में एक-एक पद्य है।

त्रुटियाँ

वसन्तसेना प्रस्तुत प्रकरण की नायिका है। वह गणिका है। इसमें नायिका की गणिका जाति या वेश्याओं के विरोध में साधारणतः कुछ कहना नहीं चाहिए था। कवि ने वेश्या की जो खुली निन्दा की है, चाहे वह उसका सन्देश ही क्यों न हो, अप्रासंगिक है और इस प्रकरण में इसका स्थान नहीं होना चाहिए था।

चतुर्थ अङ्क में शर्विलक नामक चोर की महामात्य यौगन्धरायण की तुलना में नीचे लिखे पद्य में ला बैठाना सर्वथा असंगत लगता है—

ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्
राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः॥ ४·२६

वस्तुतः शूद्रक ने शर्विलक के चरित्र-चित्रण में अपनी कला का उत्कर्ष व्यक्त किया है, जिसके द्वारा उसके चरित्र का सर्वंकष विकास दिखाया गया है।[2]

नाटयशास्त्र की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है पात्रों का किसी ऐसे काम के लिए दूर जाना, जिसमें स्वभावतः अधिक समय लगे, किन्तु उस काम के करने में समय का

१. तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रुक्षं सलिलेषु चण्डम्।
संगीतवीणा इव ताडयमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः॥ ५·५२

२. प्रकरण के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते शर्विलक का यौगन्धरायण बनना कई दृष्टियों से सटीक है, किन्तु चतुर्थ अंक तक तो वह चोर है।

व्यवधान न दिखा कर उस पात्र को पुनः रंगमंच पर **'इति निष्क्रान्तः, प्रविश्य च'** कह कर तुरन्त ला देना। नवम अङ्क में अधिकरणिक वीरक से कहता है कि जाओ पुष्पकरण्डक उपवन में देख आओ कि क्या वहाँ कोई स्त्री मरी पड़ी है ? वीरक ने कहा--जो आज्ञा (**इति निष्क्रान्तः प्रविश्य च**)। इसी अंक में शोधनक को अधिकरणिक राजा के पास भेजते हैं। वह भी तत्क्षण लौटकर **'इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'** की रीति द्वारा अपनी बातें जारी रखता है।

कहीं-कहीं चाण्डालों तक से बहुत ऊँची बातें कहलाई गई हैं। यथा आहीन्त नामक चाण्डाल कहता है--

न च रोदित्यन्तरिक्षं नैवानभ्रे पततिं वज्रम्।
महिलासमूहमेघान्निपतति नयनाम्बु धाराभिः॥ १०.६

यह अस्वाभाविक लगता है।

रंगमंच को दो भागों में विभक्त करके एक भाग में पात्रों को अभिनय करते हुए दिखाना और दूसरे भाग के पात्रों को कुछ न करते हुए रखना इस प्रकरण में अनेक स्थलों पर त्रुटि प्रतीत होती है। यथा, पञ्चम अङ्क में १२वें पद्य के पहले चारुदत्त और विदूषक दो पात्र रङ्गमंच पर हैं और उनका संवाद समाप्त हो जाने पर भी वे वहीं बने रहते हैं। इसी समय रंगमंच पर एक ओर से वसन्तसेना और विट का प्रवेश होता है और १२ वें पद्य से ३४वें पद्य तक उनका पद्यात्मक संवाद होता है, जिसे चारुदत्त और विदूषक सुनते भी नहीं। ये दोनों रंगमंच पर क्या करते रहे, यह प्रश्न होता है। रंगमंच पर इतनी देर तक पात्रों को मूर्तिवत् रखना नाटचकला की दृष्टि से दोष है। डा० विल्सन का मत है कि रंगमंच चौड़ाई में पर्दों से विभक्त रहता था, पर इतने से भी उपर्युक्त दोष का निराकरण नहीं होता।[1]

कोई पात्र अकेले रंगमंच पर लम्बे-चौड़े भाषण गद्य या पद्य में दे--यह अभिनयात्मक एकोक्ति कला की दृष्टि से उपादेय है। पञ्चम अंक के आरम्भ में रंगमंच पर अकेले चारुदत्त छः पद्यों का पाठ करता है। इस एकोक्ति को छोटा होना चाहिए था।

अनेक अर्थों में इस प्रकरण का गुण है कि इससे तत्कालीन सामाजिक संस्कृति का प्रकाम रूप से विस्तृत परिचय मिलता है। संस्कृति का अनुसन्धान करने वाले विद्वानों के लिए इसमें अनेक अनूठे तत्त्व मिलेंगे। पर ऐसा होना रूपक-साहित्य के लिए

१. श्री काले का मत है--.All the difficulties of understanding the staging of the drama would disappear if we bear in mind that some such arrangement must have been made on the stage, without which the effect would be highly ludicrous indeed. P. 56 Introduction. मृच्छकटिकः। ऐसा लगता है कि ऐसे प्रकरण पढ़ने के लिए विशेष रूप से थे। अभिनय के लिए इनका पृथक् संस्करण होगा।

कोई अच्छी बात थोड़े ही है, क्योंकि प्रायशः शूद्रक को ऐसे सांस्कृतिक रत्नों को पिरोने के लिए कथा-सूत्र को इतना लम्बायमान करना पड़ा है कि वस्तु-विन्यास की नाटकीयता शिथिल प्रतीत होती है। डा० राइडर का मत है कि इस प्रकरण का द्वितीय अंक मुख्य कथा से असम्बद्ध है।[1] यह मत समीचीन लगता है, भले ही इसकी घटनाओं से वसन्तसेना और चारुदत्त के चरित्र पर प्रकाम प्रकाश पड़े।

कवि दरिद्रता का घोर निन्दक है। वह कहीं न कहीं से अवसर निकाल कर दरिद्रता की निन्दा करता है। दरिद्रता की लगभग ५२ श्लोकों में निन्दा करना और लगभग ४० स्थलों पर उसकी चर्चा करना उचित नहीं प्रतीत होता। दरिद्रता क्या इतनी निन्दनीय है? इस सम्बंध में दो मत हो सकते हैं। वस्तुतः दरिद्रता को निन्दनीय समझना ही चारुदत्त के ब्राह्मणत्व से पतित होने का कारण है। कहाँ ब्राह्मण और कहाँ गणिका-विलास ?

चतुर्थ अङ्क में वसन्तसेना के प्रकोष्ठों का और पंचम अंक में वर्षा का कादम्बरी की शैली पर वर्णन करते जाना नाटकीय कला की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त है। नाटकों में ऐसे वर्णनों का तो प्रयोग ही नहीं होना चाहिए, जिसकी तात्कालिक या दूरस्थ संगति से कोई अभिनव चमत्कार उत्पन्न न होता हो। वास्तव में काव्य की दृष्टि से ये वर्णन अनुत्तम हैं, किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से अति विस्तृत होने के कारण त्याज्य हैं।

शूद्रक का उपदेशक रूप इस रूपक में कहीं-कहीं प्रस्फुटित हुआ है। नाट्यकला की दृष्टि से अनपेक्षित होने पर भी यदि कोई उदात्त विचारधारा अथवा भावुकतापूर्ण कल्पना उठती तो कवि सारी नाट्यशास्त्र की मर्यादाओं का अतिक्रमण करके पहले अपनी बात कहना आवश्यक मानता है। यथा,

दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेव-
मस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये
ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम्। १.३८

आठवें अङ्क के आरम्भ में तो वह बौद्ध धर्म की दीक्षा देने पर उतारू है। इसी प्रकार चतुर्थ अंक में शर्विलक ने वेश्या स्त्रियों की आठ पद्यों में निन्दा की है, जो पंचतन्त्र की शैली पर उपदेश मात्र है। शकार का सांस्कृतिक स्तर अतिशय हीन है। उससे प्रथम अंक में विट का इतनी ऊँची बातें कहना भैंस के आगे वेणु बजाना था। ऐसा लगता है कि इस प्रसंग में चारुदत्त की प्रशंसा करने के लिए कवि बलात् अवसर निकाल रहा है।

पंचम अंक में रंगमंच पर नायिका द्वारा नायक के आलिंगन का अभिनय अभारतीय है।

---

१. The second act "has little connection with the main plot."

अध्याय ६

मुद्राराक्षस

कविवर विशाखदत्त ने संस्कृत साहित्य को मुद्राराक्षस नामक एक अनूठे नाटच-रत्न से मण्डित किया है। नाटक की प्रस्तावना में कवि ने अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार उसके पिता महाराज पृथु और पितामह सामन्त वटेश्वरदत्त थे।[1] कवि कब और कहाँ हुए—यह अब भी विवादास्पद है। इतना तो निश्चित है कि विशाखदत्त भास के पश्चात् हुए, क्योंकि उनके मुद्राराक्षस पर भास के कतिपय नाटकों का प्रत्यक्ष प्रभाव है, जैसा इसी अध्याय में अन्यत्र दिखाया जायेगा। इससे प्रमाणित होता है कि विशाखदत्त चौथी शती के उत्तरार्ध या पाँचवीं शती के पूर्वार्ध में हुए। कीथ के मतानुसार विशाखदत्त नवीं शती के पश्चात् नहीं हो सकते, क्योंकि इस नाटक की भूमिका में बुधयोग के कारण चन्द्रग्रहण न होने की जो चर्चा है, वह याकोबी के द्वारा ८६० ई० की संघटना प्रमाणित की गई है।[2]

विशाखदत्त का समय उनकी दूसरी रचना देवीचन्द्रगुप्त के उल्लेखों से इंगित होती है। नाट्यदर्पण में इसके सात उद्धरणों के अनुसार समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र रामगुप्त राजा हुआ, जिसका भाई चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आगे चलकर राजा हुआ।[3]

चन्द्रगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी थी। चन्द्रगुप्त का यशोगान करने के लिये कवि ने देवीचन्द्रगुप्त लिखा है और उसके सनामक चन्द्रगुप्त मौर्य विषयक मुद्राराक्षस नाटक के भरतवाक्य में अपने प्रियनायक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के ऊपर म्लेच्छों के उद्वेग से पृथ्वी

---

१. कुछ प्रतियों में पिता का नाम भास्करदत्त मिलता है। सम्भव है, पृथु का उपनाम भास्करदत्त हो।

२. There is nothing that prevents a date in the ninth century, though the work may be earlier. Sanskrit Drama P.204

३. इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इस नाटक में कम से कम पाँच अङ्क थे। अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में और भोज ने शृंगार-प्रकाश में इस नाटक से एक-एक उद्धरण लेखक के नाम के बिना ही दिया है। अभिनवगुप्त ने विशाखदेव के तीसरे रूपक अभिसारिका-वंचितक का उल्लेख किया है। इसकी कथा के अनुसार पद्मावती के द्वारा अपने पुत्र की हत्या का सन्देह होने से उदयन का उसके प्रति जो दुर्भाव था, उसे पद्मावती ने अभिसारिका बनकर दूर किया।

की रक्षा करने का भार दिया है ।[1] चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को परास्त करके कवि की उपर्युक्त प्रशस्ति को सार्थक किया था ।[2] इस प्रसङ्ग में म्लेच्छ पद को हूणों के लिए प्रयुक्त मानना निराधार है। नाटक के प्रथम अंक में कश्मीर, कुलूत, मलय, सिन्ध और फारस के राजाओं को म्लेच्छ कहा गया है । कवि की दृष्टि में मलयकेतु भी म्लेच्छ है ।

विशाखदत्त ने कुछ पात्रों के नाम अपनी ओर से रखे हैं। इन नामों का क्षत्रियों के लिये सेन और ब्राह्मणों के लिए शर्मा शब्दों से युक्त होना तथा वैश्यों और शूद्रकों के लिए दास और क में अन्त होना तृतीय और चतुर्थ शताब्दी में विशेष प्रचलित नाम पद्धति से मेल खाता है, जैसा तत्कालीन साहित्य से प्रमाणित होता है।

चन्द्रग्रहण की घटना के आधार पर विशाखदत्त का समय नवीं शती में निर्धारित करना निराधार है। नाटक में यह तो कहीं कहा ही नहीं गया है कि यह समसामयिक घटना है, कि बुधयोग से चन्द्रग्रहण नहीं हो रहा है। यह तो केवल एक सैद्धान्तिक चर्चा है। इस सैद्धान्तिक चर्चा का विरोध वराहमिहिर ने पांचवी शती के अन्तिम भाग में किया था। इससे भी मुद्राराक्षस का उसके पहले लिखा जाना संकेतित होता है।

विण्टरनित्ज ने विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन होने की सम्भावना बताते हुए कहा है कि मुद्राराक्षस की अनेक बातों में भास के चारुदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण से, शूद्रक के मृच्छकटिक से और तन्त्राख्यायिका (जो आगे चलकर पंचतन्त्र नाम से विख्यात हुई) से सादृश्य प्रतीत होता है, जिससे संकेत मिलता है कि मुद्राराक्षस की रचना इन ग्रन्थों के बहुत पश्चात् नहीं हुई होगी। वास्तव में इसकी

---

१. म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः ।
सश्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ।। ७·१६
कुछ पुस्तकों में चन्द्रगुप्त के स्थान पर दन्तिवर्मा, अवन्तिवर्मा आदि पाठ मिलते हैं। यहाँ विचारणीय है कि यह प्रशस्ति विक्रमादित्य के अतिरिक्त अन्य किसी राजा के लिए समीचीन नहीं है ।

२. चन्द्रगुप्त के शासनकाल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना उसके द्वारा शकों की पराजय थी, जिसके पश्चात् पश्चिमी भारत गुप्त-साम्राज्य का अङ्ग बना। काले का यही मत है—Our poet lived in the fifth century A.D. and was the ruler of some small kingdom in Bengal under Chandra Gupta II of Magadha.

कुछ सम्भावना है कि विशाखदत्त उसी चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में हुए, जिसमें कालिदास ने अपने ग्रन्थों की रचना की।[१]

संविधान, शैली और विषय-निर्वाह की दृष्टि से संस्कृत के नाटकों से इन सभी कृतियों की अप्रतिम भिन्नता भी इन्हें कवि भास के युग में ले जाती है, जब ऐसा होता था।

मुद्राराक्षस पर परवर्ती युग की किसी रचना का प्रभाव नहीं प्रमाणित होता है। कीथ ने रघुवंश और शिशुपालबध का जो प्रभाव बताया है, वह नितरां सन्दिग्ध है। मुद्राराक्षस का नाट्यशास्त्रीय विधानों के सर्वथा अनुरूप न होना उसकी प्राचीनता की ओर संकेत करता है।[२] कुछ विद्वान् मुद्राराक्षस में क्वचित् प्रयुक्त गौडी रीति को कम से कम सातवीं शती की शैली से सम्बद्ध करते हुए इसको चौथी-पाँचवी शती में नहीं रखते। यह निराधार कल्पना है। गौडी रीति का जन्म बहुत पहले ही हो चुका था। पहले भी द्वितीय शती में सुदर्शनतडाग-सम्बन्धी लेख में गौडी रीति का प्रयोग हुआ है। इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त डा० उलनर का मत है—

So far it has not been possible to establish a history of Sanskrit style and vocabulary that makes it possible to date a given work within a century or so by its technique.[३]

कथावस्तु

मुद्राराक्षस की कथावस्तु समझने के लिए उसकी भूमिका का परिचय अपेक्षित है। चाणक्य नामक कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण का अनादर नन्दवंश के राजा महापद्म ने किया था। चाणक्य ने शिखा खोल कर प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्दवंश का समूल विनाश नहीं कर दूँगा, तब तक शिखा नहीं बाँधूगा। चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता से उसे सफलता

---

१. Several points of contact with Bhāsa's Daridra Charudatta and the Mricchakatika still more with the Pratijna yaugandharayana of Bhāsa and also with the Tantrākhyāyikā, that later became so famous under the title Pancatantra is shown by the Mudrārāksasa ...... These points of contact suggest the hypothesis that this drama as well need not have been altogether widely separated from those works even in respect of time. And in fact there is some possibility in favour of the supposition that Visākhadatta lived under the same Chandragupta II during the period of whose reign, as we have assumed, falls the age of the works of Kālidasa.
History of Indian Lit. VOL. III pt. I P. 232.

२. It does not conform to the normal model. Keith Sanskrit Drama, P.205

३. Date of Kalidasa ABR IXV.

मिली। फिर तो नन्द वंश के सहायकों और चन्द्रगुप्त के शत्रुओं को भी मिटाना था। चन्द्रगुप्त के विरुद्ध मलयकेतु नामक राजा था, जो महापद्म के मन्त्री राक्षस के साथ मिलकर षड्यन्त्र करता था। इसके पश्चात् नाटक की कथा आरम्भ होती है।

मलयकेतु के पिता पर्वतक को चाणक्य ने मरवा डाला था। राक्षस उससे सन्धि करके म्लेच्छों की सेना लेकर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करने के लिए सज्जित हो रहा था। यह समाचार पाटलिपुत्र के लोगों को विदित हो चुका था। चाणक्य इस अनर्थ को मिटाने के लिए सन्नद्ध था। उसने योजना बनाई—राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना है। यह काम तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक नन्द-वंश में कोई रह जाता है। इसीलिए नन्दवंशीय सर्वार्थसिद्धि को उसने मरवा डाला था, यद्यपि वह वन में चला गया था।[1] चाणक्य कहता है—राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के लिए मैं प्रयास कर रहा हूँ। मैंने यह प्रवाद फैला दिया है कि विषकन्या के प्रयोग से राक्षस ने हमारे उपकारी मित्र पर्वतक को मरवा डाला है। दूसरी ओर भागुरायण से पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को, यह कहलवा कर कि तुम्हारे पिता को चाणक्य ने मरवा डाला है, भगा दिया है। अभी मुझे मलयकेतु को दण्ड नहीं देना है। नहीं तो राक्षस के ऊपर उसके पिता के मारने का कलङ्क धुल जायेगा। मैंने गुप्तचरों को भी नियुक्त कर रखा है कि वे अपने पक्ष और विपक्ष के लोगों का परिचय प्राप्त करें कि कौन किधर है। मैंने चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए भद्रभटादि विश्वस्त पुरुषों को नियुक्त कर दिया है। मेरा सहपाठी इन्दुशर्मा नन्दवंशी राजा के सभी मन्त्रियों का विश्वासपात्र बन चुका है। वह क्षपणक (जीवसिद्धि) के वेष में अब राक्षस का अभिन्न मित्र है। वह मेरा काम बनायेगा।[2]

निपुणक नामक गुप्तचर यमपट्टिक के वेश में आकर बताता है कि राजधानी में तीन ही व्यक्ति राक्षस के पक्ष में हैं—जीवसिद्धि, शकटदास तथा चन्दनदास। इनमें से जीवसिद्धि तो चाणक्य द्वारा नियुक्त गुप्तचर था। शकटदास कायस्थ (लेखक) था, जिसके घर पर चाणक्य ने सिद्धार्थक को उसका मित्र बनाकर रखा था। मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास के घर पर राक्षस ने अपना परिवार छोड़ रखा था। यह बात उस मुद्रा (अंगूठी) से प्रमाणित हुई, जो निपुणक को यमपट दिखाते हुए वहीं गिरी पड़ी मिली थी। मुद्रा को देखते ही चाणक्य की समझ में वह सारा आगे का कार्यक्रम आ गया, जिससे राक्षस उसके हाथों में आये। इसी बीच उसे प्रतीहारी से चन्द्रगुप्त का समाचार मिला कि चन्द्रगुप्त विषकन्या से मारे गये पर्वतेश्वर के आभूषण ब्राह्मणों को देना चाहता है। उसे लेने के लिए चाणक्य ने विश्वावसु को भेजा।

---

१. यह नन्द का सम्बन्धी था। राक्षस ने महापद्म के पश्चात् उसे राजा बनाया, पर वह राज्य छोड़ कर वानप्रस्थ हो गया।

२. इस स्वगत में अर्थोपक्षेपक की भाँति सूच्य प्रस्तुत है।

चाणक्य ने एक पत्र लिखा, जिसका उत्तरार्ध पहले प्रणीत हुआ। पूर्वार्ध लिखते समय उसे उन पाँच म्लेच्छ राजाओं का स्मरण हो आया, जो राक्षस के अभिन्न मित्र बन कर उसका अनुसरण करते थे। पत्र के लेख से इन पाँचों का अन्त होना है। इस पत्र को चाणक्य ने सिद्धार्थक के माध्यम से शकटदास के अक्षरों में लिखवाया, क्योंकि चाणक्य के अक्षर कुछ अच्छे नहीं थे। सिद्धार्थक को किसी से यह नहीं कहना था कि इसे चाणक्य ने लिखा है। चाणक्य ने सोच लिया कि इस पत्र का प्रभाव यह होगा कि मलयकेतु भी जीत लिया जायेगा।

लेख सुन्दर अक्षरों में शकटदास से लिखवाकर सिद्धार्थक ले आया। उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्रित किया गया। सिद्धार्थक को चाणक्य ने आदेश दिया—पहले तुम्हें वध्य-स्थान में सूली पर चढ़ाये जाते हुए शकटदास को आँखों के संकेत से घातकों को भगाकर बचाना है। फिर उसे राक्षस के पास पहुँचाना है। अपने मित्र शकटदास की रक्षा करने वाले तुमको राक्षस पुरस्कार देगा। उसे ले लेना है। कुछ दिनों तक राक्षस की सेवा में रहना है। जब शत्रु हमारे निकट आ जायँ तो तुम्हें ऐसा करना है (कान में कुछ कह देता है)। उसे मुद्रित लेख देकर कार्यसिद्धि के लिए विसर्जित करता है।

चाणक्य ने जीवसिद्धि नामक अपने गुप्तचर पर यह आरोप लगवाया कि इसने विषकन्या का प्रयोग पर्वतक पर किया है। इस अपराध में नगर से उसका निर्वासन हुआ। उसने आज्ञा दी कि शकटदास राजद्रोही होने के अपराध में शूली पर चढ़ा दिया जाय और उसके परिवार को कारागार में डाल दिया जाय।

चन्दनदास को चाणक्य ने अपने यहाँ बुलवाया। उसने राक्षस परिवार की सुरक्षा का प्रबन्ध करके चाणक्य से भेंट की। चाणक्य ने उससे कहा कि तुमने राजद्रोही राक्षस-परिवार को अपने घर में छिपा रखा है। उसे हमें सौंप दो। शकटदास ने कहा कि उसका परिवार पहले कभी हमारे घर में था, अब नहीं है। इसी बीच चाणक्य को चन्दनदास के सामने ही सूचना मिलती है कि जीवसिद्धि का निर्वासन हो रहा है और शकटदास को राजद्रोह में शूली पर चढ़ाने के लिए वध्य-स्थान में पहुँचाया जा रहा है। चाणक्य ने चन्दनदास से कहा कि देख लो, राजद्रोह का फल इन्हें क्या मिल रहा है। तुम तो राक्षस-परिवार को हमें सौंप ही दो। चन्दनदास ने कहा कि यदि राक्षस-परिवार मेरे घर में होता तो भी नहीं देता। अब तो है ही नहीं तो देने का प्रश्न ही नहीं उठता। चाणक्य ने मन ही मन चन्दनदास के उदात्त भाव की प्रशंसा की, पर ऊपर से क्रोध करके कहा कि राजा के क्रोध का फल भोगो। उसने चन्दनदास के सामने ही आज्ञा दी कि इस बनिये का सारा धन छीन कर इसे अपने सभी कुटुम्बियों के साथ पकड़ लिया जाय। राजा स्वयं इसे प्राणदण्ड दे। चाणक्य ने उसके चले जाने पर कहा कि अब तो राक्षस हाथ में है। चन्दनदास का प्राण बचाने के लिए राक्षस दूर नहीं रह सकेगा।

चाणक्य को तभी सूचना मिलती है कि सूली पर चढ़ाये जाते हुए शकट-दास को लेकर सिद्धार्थक भाग गया। ऊपर से क्रोध करते हुए उसने आज्ञा दी कि भागुरायण उन्हें शीघ्र पकड़े। सूचना मिलती है कि भागुरायण भी भाग गया। उसने भद्रभटादि वीरों को आज्ञा दी कि भागुरायण को जैसे हो पकड़ लाओ। सूचना मिलती है कि वे सब भी तो प्रातःकाल ही भाग गये हैं। चाणक्य ने मन में सोचा कि ये सब मेरा काम बनाने के लिए चले गये हैं। वह कहता है कि राक्षस अब कहाँ जाओगे? अपनी बुद्धि की रस्सी से तुम्हें बाँधकर रहूँगा।

चाणक्य के मन्त्रित्व से चन्द्रगुप्त अजेय लगता है और राक्षस के मन्त्रित्व से मलय-केतु चन्द्रगुप्त पर विजयी होता प्रतीत होता है––यह मत है सँपेरे के वेश में राक्षस के पास पहुँचने वाले जीर्णविष नामक गुप्तचर का, जिसका वास्तविक नाम विराधगुप्त है। इसी बीच मलयकेतु के कंचुकी ने अपने शरीर से उतारे हुए उसके आभरणों को राक्षस को दिया और कहा कि मलयकेतु चाहते हैं कि आप इन्हें धारण करें, आभरण-रहित न रहें। राक्षस ने उन्हें धारण कर लिया। विराधगुप्त ने बताया कि चन्द्रगुप्त के नन्द के प्रासाद में प्रवेश करते समय प्रासाद को सुसज्जित करना था। चाणक्य को ज्ञात हुआ कि यह काम दारुवर्मा ने पहले ही सम्पन्न कर दिया है। चाणक्य ने समझ लिया कि यह चन्दगुप्त को मारने के लिए किया गया है। उसने चाल चली और पर्वतक के भाई वैरोचक को चन्द्र-गुप्त के साथ एक आसन पर बैठाकर उसे आधा राज्य देने का अभिनय किया। उसका अभिषेक करके उसे इस प्रकार सजाया गया कि वह चन्द्रगुप्त लगे और चन्द्रगुप्त की हथिनी चन्द्रलेखा पर बैठा कर नन्दभवन में प्रवेश करते समय उसे चन्द्रगुप्त को मारने के लिए दारुवर्मा के यान्त्रिक प्रयोग से मरवा डाला। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए अभयदत्त नामक जिस वैद्य को आपने नियुक्त किया था, उसके दिये हुए औषध को विषमय जान-कर चन्द्रगुप्त को उसे पीने से चाणक्य ने रोक दिया और उसे अभयदत्त को पिलाकर मरवा डाला। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए आपके द्वारा नियुक्त शयनाधिकारी प्रमोदक पहचान लिया गया और उसका भी चाणक्य ने वध करा दिया। सोते समय चन्द्रगुप्त को मारने के लिए आपने बीभत्सकादि को सुरङ्ग में छिपा कर रखवाया था। उनको भी अपनी सूक्ष्म बुद्धि से छिपा हुआ जानकर चाणक्य ने शयन-गृह में आग लगा कर जला कर मार डाला। आपके अन्य विश्वासपात्र लोगों को दण्ड दिया जा रहा है। जीवसिद्धि नामक क्षपणक को इस योजना के अनुसार चाणक्य ने निर्वासित कर दिया है। शकटदास ने दारुवर्मा से यह सब षड्यन्त्र रचवाया है––यह कह कर उसे शूली पर चढ़ा दिया गया है। यह घटना सुनकर चन्दनदास ने आपके परिवार को अपने घर से हटा कर कहीं अन्यत्र भेज दिया। उसे चाणक्य ने कारागार में डाल दिया है।

इसी समय शकटदास सिद्धार्थक के साथ आ पहुँचा और राक्षस से बताया कि सिद्धार्थक ने मेरे प्राणों की रक्षा की है। राक्षस ने अपने शरीर से उतार कर उन गहनों

को सिद्धार्थक को दे दिया, जिसे मलयकेतु ने उसके पास भेजा था।[1] सिद्धार्थक को इन्हीं गहनों को पाने के लिए चाणक्य ने नियुक्त किया था। उन गहनों को सिद्धार्थक ने राक्षस की उस मुद्रा से मुद्रित करके राक्षस के कोश में ही रखवा दिया, जो चाणक्य को यमपट्टिक से मिली थी। सिद्धार्थक के पूछने पर उसने राक्षस को बताया कि यह मुझे चन्दनदास के द्वार पर मिली थी। सिद्धार्थक ने वह मुद्रा राक्षस को दे दी और राक्षस ने उसे शकटदास को यह कह कर दे दिया कि आप इसी मुद्रा से अपने अधिकार का प्रयोग करें। सिद्धार्थक चाणक्य की योजना के अनुसार वहीं राक्षस की सेवा में रहने लगा।

राजधानी में राजा और प्रजा का समाचार बताते हुए विराधगुप्त ने बताया कि इधर चन्द्रगुप्त और चाणक्य में मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया है, क्योंकि ये अब एक दूसरे को पीड़ा दे रहे हैं। राक्षस ने विराधगुप्त को आदेश दिया कि पुनः राजधानी में जाकर राजा और मन्त्री के वैमनस्य को बढ़ाने के लिए मेरे सहायक स्तनकलश को सूचित करो कि वैतालिक रूप में वह ऐसे पद्यों का पाठ करे, जिससे राजा और मन्त्री का विरोध बढ़े। कोई कार्य हो तो मेरे पास करभक से सन्देश भेजना। उसी समय तीन अलंकार बिकने के लिए आये, जिन्हें राक्षस ने क्रय कर लिया।

चन्द्रगुप्त राज्य-परिपालन की कठिनाइयों को बता कर चाणक्य के एक आदेश की सूचना देता है कि मुझे बनावटी झगड़ा करके कुछ दिनों तक चाणक्य से विमुख होकर रहना है। वह सुगाङ्ग प्रासाद में जा पहुँचता है। वहाँ शरद् की शोभा देखकर उसे स्मरण हो आता है कौमुदी-महोत्सव का। कंचुकी से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि चाणक्य ने कौमुदी-महोत्सव पर निषेध लगा रखा है। चन्द्रगुप्त ने कंचुकी से चाणक्य को बुलवाया। चाणक्य अपनी उधेड़-बुन में था कि कैसे राक्षस हाथ में आये। कंचुकी के सन्देश देने पर वह चन्द्रगुप्त से मिला। पूछने पर बताया कि मैंने कौमुदीमहोत्सव का सप्रयोजन निषेध किया है। उसी समय वैतालिक ने श्लोक-पाठ किया कि राजा को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होना चाहिए। चाणक्य ने समझ लिया कि वैतालिक राक्षस से मिला हुआ है। चन्द्रगुप्त ने उसे पुरस्कार दिलवाया। चाणक्य ने पूछा कि यह क्या कर रहे हैं। चन्द्रगुप्त ने कहा कि राजा पर ऐसा नियन्त्रण आप क्यों लगायें। हमें अपना काम करने दीजिये। चाणक्य ने कहा कि हम भी यथेच्छ अपना काम करेंगे। चन्द्रगुप्त ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो बताइये आपने कौमुदीमहोत्सव क्यों रोका? चाणक्य ने कहा कि प्रयोजन यही था कि तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन हो। बात बढ़ती गई। उसी समय चाणक्य ने भद्रभटादि का वह पत्र पढ़ा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि हम लोग

---

१. प्राणों की रक्षा करने वाले कर्णपूरक को मृच्छकटिक में चारुदत्त अपने शरीर से आभरण देना चाहता था।

मलयकेतु का आश्रय प्राप्त कर रहे हैं। चन्द्रगुत से उनके पलायन का कारण बताया। चन्द्रगुप्त ने पूछा कि उनको रोकने का उपाय क्यों नहीं आपने किया ? चाणक्य ने कहा कि विशेष प्रयोजन से ऐसा भी नहीं किया। ऐसा समय, जब हमारे सहायक भी मलयकेतु के पास जा रहे हैं और शत्रु आक्रमण करने को उद्यत है, कौमुदी-महोत्सव मनाने का नहीं है, अपितु युद्ध के लिए सज्जित होने का है। चन्द्रगुप्त ने कहा कि सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु को आपने भागने ही क्यों दिया ? चाणक्य ने उत्तर दिया कि उसे यहाँ रहने देने पर आधा राज्य देना पड़ता और दण्ड देने में यह आशंका थी कि उसके पिता की हत्या का आरोप हम लोगों पर पड़ता। चन्द्रगुप्त ने पूछा कि राक्षस को क्यों जाने दिया ? चाणक्य ने कहा कि उसके जाने में कल्याण है। उसे दण्ड नहीं देना है, उस योग्य पुरुष को किसी प्रकार वश में करना है। चन्द्रगुप्त ने कहा कि तब तो राक्षस ही अच्छा है। चाणक्य ने कहा कि तुम मुझसे ईर्ष्या करते हो। यह क्यों भूलते हो कि नन्दों का नाश मैंने किया है। चन्द्रगुप्त ने कहा कि यह सब दैव ने किया। चाणक्य बिगड़ा। उसने कहा—क्या फिर शिखा खोलूँ ? चन्द्रगुप्त ने उसे मनाया। चाणक्य ने कहा कि यदि तुम उसे ही योग्य मानते हो तो उसे मन्त्री बना लो। मैं यहाँ से चला। चन्द्रगुप्त ने घोषणा करा दी कि अब राज्य-शासन चन्द्रगुप्त स्वयं करेगा। चाणक्य कोई नहीं रहा।

चन्द्रगुप्त की राजधानी से चाणक्य के परामर्शानुसार भागुरायण, भद्रभटादि मलयकेतु के आश्रय में आ पहुँचे। एक दिन राक्षस के शिरोवेदना से पीडित होने पर मलयकेतु भागुरायण के साथ उससे मिलने गया, जब करभक नामक गुप्तचर उसे राजधानी का संवाद दे रहा था। भागुरायण और मलयकेतु छिपकर उनकी बातें सुनने लगे, जिससे भागुरायण की बातों से उत्पन्न कराया हुआ मलयकेतु का राक्षस के प्रति सन्देह जड़ पकडता गया कि वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य से मिल गया है। जब मलयकेतु राक्षस से मिला तो उसे बताया गया कि चन्द्रगुप्त सचिव-व्यसन से ग्रस्त होने के कारण दुर्बल है। चाणक्य से उसकी अनबन हो गई है। उस पर आक्रमण कर देना चाहिए। मलयकेतु ने भी आक्रमण का समर्थन किया। उसके चले जाने के पश्चात् राक्षस अपने मित्र जीवसिद्धि नामक ज्योतिषी से मिला और उससे प्रयाण की तिथि का विमर्श किया।

सिद्धार्थक शकटदास के साथ आया था। उसे चाणक्य ने अपना काम बनाने के लिए भेजा था, जिसके लिए उसे साधन प्राप्त थे—एक तो शकटदास के अक्षरों में चाणक्य का पत्र, जिससे मलयकेतु के सहायक राजाओं को मरवाना था और दूसरे मलयकेतु के द्वारा राक्षस को दिये हुए आभरण, जिन्हें उसने सिद्धार्थक को पुरस्कार रूप में दे दिया था, जब उसने शकटदास को वधिकों से बचाकर राक्षस के पास पहुँचा दिया था। इन दोनों साधनों का उपयोग करने के उद्देश्य से वह राक्षस की सेवा से

निवृत्त हो कर उसकी प्रयाण करती हुई सेना के स्कन्धावार से बाहर निकल जाना चाहता था। इसी समय जीवसिद्धि भी राक्षस के स्कन्धावार से राजधानी पहुँच जाना चाहता था। पहले जीवसिद्धि भागुरायण के पास मुद्रा के लिए पहुँचा। भागुरायण से बातें करते हुए उसने बताया कि विषकन्या से मलयकेतु के पिता को मेरे मित्र राक्षस ने मरवाया। मित्र होने के नाते मैं राजधानी से निर्वासित हुआ। मित्रता का ध्यान न रखते हुए राक्षस मुझे यहाँ से भी भगा रहा है। उसे मुद्रा मिल गई। उसकी भागुरायण से जो बातचीत हुई, उसे मलयकेतु ने सुन लिया और उसे विश्वास सा हो गया कि राक्षस धूर्त है और उसने मेरे पिता को मरवाया है। शंका थी कि राक्षस को मलयकेतु मरवा डालता। भागुरायण को चाणक्य ने आदेश दिया था कि राक्षस कहीं मारा न जाय। भागुरायण ने मलयकेतु को समझाया कि परिस्थिति-वशात् राक्षस ने आपके पिता को मरवाया था। अब परिस्थिति परिवर्तित है। आप पुरानी बातों को भूल जायँ। जब आप विजयी हो जायँ, तब जो चाहें करें।

सिद्धार्थक बिना मुद्रा के ही भागते हुए पकड़कर भागुरायण के पास लाया गया। वह यही चाहता था। उसने बताया कि मैं राक्षस का सेवक हूँ। आवश्यक कार्यवश राजधानी भेजा जा रहा हूँ। उसके पास वही चाणक्य द्वारा प्रदत्त राक्षस की मुद्रा से अङ्कित लेख था। मलयकेतु ने वह लेख खोलवा कर पढ़ा, जिसके अनुसार 'राक्षस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली थी और मलयकेतु के पाँच सहायक राजाओं को भी चन्द्रगुप्त के पक्ष में फोड़ लिया था। चन्द्रगुप्त ने तीन आभरण राक्षस के लिए भेजे थे'। साथ ही उस पत्र के साथ कुछ आभरण चन्द्रगुप्त के लिए राक्षस द्वारा भेजे गये थे।[1] बहुत कुछ बातें पत्रवाहक से मौखिक ही कथनीय थीं। सिद्धार्थक ने पीटे जाने पर चाणक्य की योजनानुसार बताया--यह सब राक्षस ने हमें चन्द्रगुप्त को देने के लिए दिया है। मौखिक सन्देश है--जैसे चाणक्य को निकाल कर महाराज ने मेरा प्रिय किया, वैसे ही पाँच राजाओं का उपकार करें। उनमें से तीन को मलयकेतु का राज्य और दो को उसके कोश और हाथी चाहिए।

सेना अभी पाँच-छः दिनों में राजधानी पहुँचने वाली थी। सेना में कौन कहाँ रह कर व्यूह बनाये--यह सब राक्षस निर्धारित कर रहा था। इसी समय उसे मलयकेतु ने बुलवा भेजा। सिद्धार्थक की उपस्थिति में ही उससे पूछा कि आप इसे राजधानी भेज रहे थे। सिद्धार्थक ने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि पीटे जाने पर मैं राक्षस का सन्देश गुप्त न रख सका। मुद्रित लेख और आभरण-पेटिका देख कर राक्षस विस्मित रह

---

१. ये वे ही आभरण थे, जिन्हें मलयकेतु ने राक्षस को और राक्षस ने सिद्धार्थक को उपहार रूप में दिया था। सिद्धार्थक ने उन्हें राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करा रखा था।

गया । उसने कहा कि यह शत्रु का प्रयोग है, पर उसकी बात सुनने वाला वहाँ कौन था । सिद्धार्थक ने बताया कि लेख लिखा शकटदास ने । भागुरायण ने कहा कि शकटदास के किसी अन्य लेख से मिलान कर लिया जाय । सब कुछ कर लेने पर यह निर्णय हुआ कि यह शकटदास का ही लिखा है । मलयकेतु ने राक्षस से पूछा कि जो तीन आभरण चन्द्रगुप्त ने भेजे हैं, उनमें से एक आपने धारण कर रखा है । वह तो मेरे पिता का है । राक्षस ने बताया कि इसे बनिये से क्रय किया था । उस आभरण के पहचाने जाने पर राक्षस ने कहा कि चाणक्य के द्वारा प्रयुक्त बनिये ने इसे मुझे बेंचा होगा ।[1] मलयकेतु ने कहा कि यह सब विश्वसनीय नहीं है । राक्षस ने मन में सोचा कि शत्रु-प्रयोग चूल-चूल बैठ गया । मलयकेतु ने पूछा कि आप क्यों चन्द्रगुप्त के लिए उतावले हैं, जब मेरे साथ आपको अधिक लाभ है । मलयकेतु के नीचे लिखे श्लोक ने दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया ।

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया
विस्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम् ।
सम्प्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपोः
प्रारब्धाः प्रणयाय मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम् ॥ ५·२१

मलयकेतु ने शिखरसेन नामक अपने सेनापति से उन सहायक राजाओं को मरवा डाला, जो तथाकथित राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त के लिखे गये पत्र के अनुसार मलयकेतु से विद्रोह करके चन्द्रगुप्त से मिल चुके थे ।

भागुरायण के निर्देशानुसार मलयकेतु को राजधानी पर आक्रमण में विलम्ब नहीं करना चाहिए था । राक्षस शत्रुओं के विनाश और चन्दनदास को छुड़ाने के लिए प्रयत्न में जुट गया ।

घटनाचक्र ने एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया । मलयकेतु ने जब पाँच राजाओं को मरवा दिया तो अन्य राजाओं ने भी अपने प्राण संशय में समझ कर उसे छोड़कर पलायन किया । चन्द्रगुप्त के पक्ष के भागुरायणादि, जो कृत्रिम मैत्रीभाव से मलयकेतु के साथ हो गये थे, उसे बन्दी बनाने में सफल हुए । फिर तो चाणक्य ने अपनी सेना से मलयकेतु की नेतृत्वहीन सेना को वश में कर लिया ।

राक्षस ने मलयकेतु की पादाक्रान्त सेना से भाग कर चन्दनदास को बचाने के लिए राजधानी में प्रवेश किया । उसके पीछे चाणक्य द्वारा नियुक्त उन्दुरक नामक दूत लगा था । चाणक्य की योजनानुसार चन्दनदास को सूली देने के लिए सिद्धार्थक और उसके मित्र समिद्धार्थक चाण्डाल वेष में उसे ले जाने वाले थे ।

---

१. आभरण को नाटकीय कथावस्तु में अन्यथा-सिद्धि के प्रमाणक रूप में मुद्राराक्षस के पहले मृच्छकटिक में प्रयुक्त किया गया है ।

उन्दुरक की सूचनानुसार चाणक्य ने अपने किसी पुरुष को उस जीर्णोद्यान में भेजा, जिधर से राक्षस चन्दनदास को छुड़ाने के प्रयत्न में आने वाला था। वह पुरुष चाणक्य के निर्देशानुसार स्वयं आत्महत्या करने के लिए फाँसी लगाने लगा। चिन्ता-निमग्न राक्षस ने उसे ऐसा करते देखा और उससे पूछा—यह क्या कर रहे हो ? उसने बताया कि मेरा मित्र जिष्णुदास सेठ है। वह चन्दनदास का मित्र है। उसने चन्द्रगुप्त से कहा कि मेरा धन लेकर चन्दनदास को छोड़ दिया जाय। चन्द्रगुप्त ने कहा कि धन के लिए इसे नहीं बन्दी बनाया गया है। इसने राक्षस-परिवार को छिपाया है और नहीं दे रहा है। न देने पर उसे आज शूली पर चढ़ा दिया जायेगा। जिष्णुदास उसके मरने के पहले स्वयं मरना चाहता है और मैं जिष्णुदास के मरने के पहले मरना चाहता हूँ। राक्षस ने उससे कहा कि तुम जिष्णुदास को मरने से रोको। मैं चन्दनदास को बचाने जा रहा हूँ। वह अपना प्राण देकर चन्दनदास को बचाने के लिए चल पड़ा।

चन्दनदास शूली चढ़ाया जाने ही वाला था। उसकी पत्नी करुण क्रन्दन कर रही थी कि बचाओ। तभी राक्षस वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा कि चन्दनदास को छोड़ो, मैं शूली पर चढ़ूँगा। चाणक्य को ऐसी सूचना भी दे दी जाय। एक चाण्डाल चाणक्य को बुला लाया। उसने आते ही राक्षस की प्रशंसा की और उसका अभिवादन किया। राक्षस ने उत्तर दिया कि चाण्डालों ने मुझे छू रखा है। स्पर्श न करें। कहाँ के ये चाण्डाल हैं। आपका परिचित सिद्धार्थक प्रथम चाण्डाल बना हुआ है। दूसरा सुसिद्धार्थक नामक राजपुरुष चाण्डाल बना है। इन्हीं से मैत्री करवा कर शकटदास से न जानते हुए कपटलेख लिखाया गया। चाणक्य ने अपनी नीति का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—

भृत्या भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थकः
तच्चालङ्करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्तः किल ।
जीर्णोद्यानगतः स चार्तपुरुषः क्लेशः स श्रेष्ठिनः
सर्वं मे वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः ॥ ७.६

तभी चन्द्रगुप्त ने आकर चाणक्य का अभिवादन किया और उसके निर्देशानुसार फिर पितृकुलीन मंत्री राक्षस का अभिवादन किया। राक्षस ने उसे आशीर्वाद दिया—**राजन् विजयस्व**। चाणक्य ने राक्षस से कहा कि यदि चन्दनदास का प्राण बचाना चाहते हैं तो चन्द्रगुप्त का मन्त्री आपको बनना पड़ेगा। राक्षस को मन्त्रिपद स्वीकार करना पड़ा। उस समय समाचार मिला कि मलयकेतु बाँधकर लाया गया है। चाणक्य ने कहा कि इनका क्या हो—यह राक्षस निर्णय करें। राक्षस ने कहा—इनके प्राणों की रक्षा की जाय। उसको चाणक्य ने उसका राज्य भी दे दिया। चन्दनदास को नगर सेठ बना दिया गया। चाणक्य ने सब को बन्धन विमुक्त करके अपनी शिखा बाँधी।[1]

---

१. चाण्डालों द्वारा शूली देने का दृश्य और अन्त में चन्दनदास को नगर सेठ बनाना मलयकेतु को पैतृक राज्य देना—यह सब मृच्छकटिक से मिलता-जुलता है।

समीक्षा

संस्कृत-नाट्य-साहित्य में प्राक्कलित वृत्त-प्रपञ्च का सर्वोत्तम आदर्श मुद्राराक्षस में मिलता है। इसमें चाणक्य ने राक्षस की मुद्रा मिलते ही इतिवृत्त के प्रत्येक अङ्गोपाङ्ग का प्राक्कलन कर लिया है।

चन्द्रगुप्त मौर्यवंश का प्रथम पराक्रमी सम्राट् था। उसका प्रथम मन्त्री चाणक्य नामक कूटनीतिज्ञ हुआ, जिसने राजकीय कार्यप्रवर्तन का विवेचन अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ में किसी राजा के द्वारा अपने शत्रुओं का उन्मूलन, शत्रुपक्ष में फूट डालना, शत्रु को विष-प्रयोग आदि से मरवा डालना, गुप्तचर आदि का प्रच्छन्न रह कर शत्रुपक्ष में मिलकर असाध्य की भी सिद्धि कर लेना आदि बहुविध कामों के लिए जिन योजनाओं की चर्चा की गई है, उनका व्यावहारिक रूप इस नाटक में समञ्जसित है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है कूटलेख का प्रयोग करके शत्रुपक्ष के सहायक प्रधान पुरुषों को प्रतिपक्ष से मिला हुआ बताकर उनको मरवा डालना। यथा राक्षस को मलयकेतु से पृथक् करने के लिए

प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्री ग्राहयेत्। असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः सम्भाषते। अर्थशास्त्र १२·३

(राजा को गुप्तचर उसका सेवक बन कर कहे कि उसका मन्त्री शत्रुओं के दूतों से साक्षात्कार करता है।) राक्षस को अपना बनाने के लिए

मित्रं चेन्न सन्धिमिच्छेदभीक्ष्णमुपजपेत्। ततः सत्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत। अर्थशास्त्र ९·६

(यदि मित्र सन्धि करना नहीं चाहता हो तो वारंवार उसे सनकाना चाहिए। गुप्तचरों को साधन बना कर शत्रु से उसे पृथक् करके अपना बना लेना चाहिए)

मलयकेतु को अन्य राजाओं से पृथक् करने के लिए

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत्। अर्थशास्त्र ९·६

ज्योतिषी, लेख और आभरणोपहार का उपयोग—

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसम्पन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात्। 'ममान्तिकाय पत्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकाहृतमिति। अर्थशास्त्र १२·२

ज्योतिषी के वेष में कोई व्यक्ति मन्त्री से कहे कि आप राजा के लक्षणों से युक्त हैं।...(गुप्तचर नायिका कहे) मेरे पास परिव्राजिका से राजा ने यह लेख और आभरणोपहार भेजा है।

राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त को लिखे कूटपत्र में पंचविधि साम है।[1]

गुणसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानं परस्परोपकारसन्दर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति। अर्थशास्त्र २·१०

मुद्राराक्षस नाटक में मुद्रा का सर्वाधिक महत्त्व है। राक्षस की मुद्रा पाकर चाणक्य ने अपने सारे कूटोपाय का भावी कार्यक्रम बना डाला। भागुरायण मलयकेतु का मुद्राध्यक्ष बन कर ही जीवसिद्धि नामक क्षपणक तथा सिद्धार्थक के सम्पर्क में आकर अपनी योजनानुसार उन्हें राक्षस के पृथक्करण के लिए उपयोग में लाता है। मुद्राध्यक्ष के विषय में अर्थशास्त्र का विवेचन है—

मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात् ॥ २·३४

वैरोचक को मारने के लिए जो योजना मुद्राराक्षस में मिलती है, उसका सूत्र अर्थशास्त्र में है—

यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत, तमेहि राजानं त्वा करिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत्।

(आओ तुम्हें राज्य दूंगा—यह कह कर बुलाये और आने पर मरवा दे।) ५·६

मलयकेतु के सम्बन्ध में चाणक्य की नीति का सूत्र है—

सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत्। भेददण्डाभ्यां बलवतः।···प्रकाशकूटतूष्णींयुद्ध-दुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत्।···एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत्। न च हतस्य द्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत। अर्थशास्त्र ७·१६

(साम और दान से दुर्बलों को वश में करे। बलवानों को भेद और दण्ड से जीते। प्रकाश-कूट-तूष्णी युद्ध करते हुए शत्रु को पकड़े। पराजित शत्रु को सेनादि देने में समर्थ देखकर उसे पुनः स्थापित कर दे। मरे राजा के धन, पुत्र, स्त्री आदि को अपनाने की चेष्टा न करे।)

राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो उपाय किये, उनमें से कुछ के सूत्र नीचे लिखे हैं—

यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत्। कवाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत्। १२·५

(यन्त्र को हटा कर गूढ भित्ति या शिला को (सिर पर) गिरा दे। भित्ति में लगे परिघ को उसके ऊपर गिरा दे।)

---

१. यह पत्र चाणक्य ने स्वयं लिखा था, जिस पर पूरे मुद्राराक्षस नाटक की भित्ति निर्मित हुई। पत्र का सन्दर्भ पंचम अङ्क में है।

राक्षस ने भित्ति में बीभत्सक को छिपवा कर उसके द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने की योजना की थी। उसका सूत्र अर्थशास्त्र में है—

प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टा तीक्ष्णा हन्युः। गूढप्रणिहिता वा रसेन। (भूमिगृह, सुरुङ्गा या गूढ भित्ति में प्रवेश किये हुए तीक्ष्ण गुप्तचर शत्रु राजा को मार डालें।)

भागुरायण के कार्यकलाप का सूत्र है—

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान् वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत्। ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसन्दध्युः। भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः। अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः॥

अथैकममात्यं निष्पातयेत्। स परमाश्रित्य गापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान् वा परस्योपहरेत्। आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघातमस्योपहरेत्। अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा। दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा संधत्त इति। अथ पश्चाभित्यक्तशासनैरेनान् घातयेत्। अर्थशास्त्र १३·३

(राजा शत्रु का साथ देने के कूट अपराध में दुर्ग, राष्ट्र, सेना आदि के प्रधान अधिकारी को निकाल दे। वे शत्रु से जा मिलें और युद्ध आदि की स्थिति में उस शत्रु को पकड़ लें। अथवा शत्रु-पक्ष में फूट डालें और इस प्रयोजन से विशेष रूप से सिखाये हुए झूठे साथी प्रस्तुत करें।

राजा किसी अमात्य को निकाल दे। वह अपने साथ बहुत से स्तेन, घातक आदि को लेकर शत्रु से जा मिले और उसका विश्वस्त बन कर कहे कि आपके अन्तपाल आदि शत्रु से मिले हैं। फिर उनको मरवा डाले।)

शत्रुपक्ष में अनेक व्यवसाय के लोगों को नियुक्त करने का सूत्र—

कारु-शिल्प-पाषण्ड-कुशीलव-वैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान् वा परदुर्गे प्रणिदध्यात् अर्थशास्त्र १३·३

(कलाकार, शिल्पी, साधु, नट, व्यापारी और शस्त्रधारियों को शत्रु के दुर्ग में रख दे)

ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र के उपर्युक्त सूत्रों को अथवा ऐसे ही अन्य ग्रन्थों से राजनीति के सिद्धान्तों को मुद्राराक्षस के नाटकीय कथानक में व्यावहारिक रूप दिया गया है।[1] इस नाटक में वस्तुतः चन्द्रगुप्त और चाणक्य ऐतिहासिक हैं,

१. विशाखदत्त ने नीचे लिखे पद्य में राजनीति का रूपक द्वारा मानवीकरण करके इस नाटक में उसके व्यावहारिक तत्त्वानुशीलन की व्यञ्जना की है—

गुणवत्युपायनिलये स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य
मद्भवननीतिविद्ये कार्यादार्ये द्रुतमुपेहि॥ १·५

पर इनका प्रतिपक्ष मलयकेतु और राक्षस आदि क्या ऐतिहासिक पुरुष हैं, अथवा क्या इनसे सम्बद्ध कोई कथा लोकप्रचलित थी—यह कहना कठिन है। मुद्राराक्षस की अधिकांश कथा विशाखदत्त के द्वारा कल्पित प्रतीत होती है।[१] समकालिक साहित्य में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध की चर्चा नहीं मिलती सैकड़ों वर्ष परवर्ती विष्णुपुराण में कहा गया है—

तान् (महापद्मपुत्रान्) नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति । तेषामभावे मौर्याश्च पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति । ४·२४

यही कौटिल्य चाणक्य है।

उपर्युक्त स्थिति में सम्भावना यही है कि राक्षस और चाणक्य के संघर्ष का सारा कथानक कविकल्पित है और कथा-प्रतान का जाल अर्थशास्त्र के कुछ प्रमुख सूत्रों को लेकर बुना गया है।

मुद्राराक्षस मूलतः भेदनीति का नाटक है। जिस भेदनीति का समाश्रय विशाखदत्त को अभीष्ट है, वह सूक्ष्मता में अनेक स्थलों पर अर्थशास्त्र की अर्थशास्त्रीय-नीति से बढ़-चढ़कर प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए राक्षस की मुद्रा को लीजिये। मुद्रा का जितना कापटिक उपयोग इस नाटक में मिलता है, वह अर्थशास्त्र के रचयिता के लिए कल्पनातीत है। कूटोपाय की अनवरत सुसम्बद्ध शृंखला भी अर्थशास्त्र में नहीं दीखती और यही मुद्राराक्षस में वस्तु-विस्तार की सबसे बड़ी विशेषता है।

दृश्य-श्रव्य-विश्लेषण

मुद्राराक्षस में रंगमंच पर संवाद के द्वारा अधिकांश वृत्त और वर्तिष्यमाण घटनाओं का परिचय दिया गया है। रङ्गमञ्च पर अभिनय द्वारा उन घटनाओं को प्रत्यक्ष नहीं किया गया है।[२] नाटचशास्त्रीय शब्दावली में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि वस्तु-विस्तार अधिकांशतः संवाद द्वारा आख्यात है और इसका स्वल्पांश ही दृश्य है। इसे नाटक का दोष माना गया है, क्योंकि आख्यात अंश में घटना से साक्षात् सम्बद्ध पात्रों की भावात्मक

---

१. विण्टरनित्ज़ का कथन है—According to the commentary on the Daśarupa 1.29 the story may have been taken from the Bṛhatkathā. But in case in the Bṛhatkathā, there was nothing more about Chāṇakya than what we have in the Kathāsaritsāgara, the entire plot probably appears as Viśākhadatta's own creation. Page 236, History of Indian Literature.

२. कवि के लिए ऐसा करना अनिवार्य था, क्योंकि इस नाटक में इतनी घटनायें हैं कि उनका अभिनयात्मक प्रपञ्च करने पर इससे लगभग दस गुना बड़ा नाटक बन जाता।

प्रतिक्रिया का उद्भेद नगण्य सा रहता है और कहने-सुनने वाले पात्र सम्बद्ध घटना की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर जो प्रतिक्रिया करते हैं, वह विरले ही प्रखर होती है ।[1]

मुद्राराक्षस का लेखक घटनाओं के नाटकीय अभिनय की स्वल्पता को जानते हुए कतिपय स्थलों पर ऐसे आख्यातांशों में भी रंगमञ्च पर अभिनय का प्रदर्शन प्रस्तुत करा देता है । यथा, द्वितीय अंक में राक्षस अपनी भ्रान्ति के कारण ऐसा अभिनय प्रस्तुत करता है––

राक्षस––(शस्त्रमाकृष्य ससम्भ्रमम्) अयि, मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति । प्रवीरक, प्रवीरक, क्षिप्रमिदानीं––

> **प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां**
> **द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।**
> **त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले**
> **ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः ॥ २·१३**

विराधगुप्त––अमात्य, अलमावेगेन । वृत्तमिदं वर्ण्यते ।

इस प्रकार वृत्त के वर्णन में कार्याभिनय का सन्निवेश किया गया है । अन्य प्रकरण है चन्दनदास को बचाने के सम्बन्ध में––

पुरुषः––अथ पुनः केनोपायेनार्यश्चन्दनदासं मरणान्मोचयति ।

राक्षसः––(खड्गमाकृष्य) नन्वनेन व्यवसायसुहृदा निस्त्रिंशेन पश्य––

> **निस्त्रिंशोऽयं सजलजलदव्योमसङ्काशमूर्ति-**
> **र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण ।**
> **सत्त्वोत्कर्षात् समरनिकषे दृष्टसारः परैर्मे**
> **मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुंक्ते । ६·१९**

यहाँ तलवार खींच लेना अभिनय-रहित वाग्व्यापार से ऊबे हुए दर्शक का वीर रसोचित कार्याभिनय से अनुरञ्जन करना अभिप्रेत है ।

मुद्राराक्षस के द्वितीय अंक में नाम मात्र के लिए ही कार्याभिनय है । प्रायः पूरे अंक में घटित और भावी घटनाओं का संवादात्मक आख्यान ही है ।

कथाप्रवृत्ति

मुद्राराक्षस में कथा-प्रतान में प्रायशः आश्चर्य में डाल देने वाले रहस्यात्मक सूत्रों का सहारा लिया गया है । इसमें पूर्वसूचना द्वारा दर्शक को एक ऐसी घटना का होना बता

---

१. नाटक में अङ्कों को 'प्रत्यक्षनेतृचरित' होना चाहिए, अर्थात् विष्कम्भक, प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपकों से व्यतिरिक्त अङ्क में घटनाओं की प्रतिपत्ति अभिनीत होनी चाहिए, केवल आख्यात नहीं ।

दिया जाता है, जिसका होना उनकी कल्पना-परिधि के बाहर है। उस घटना के प्रति उनकी उत्सुकता जागरित होती है। यथा, राक्षस की अँगूठी चाणक्य को मिलती है। वह उसे मिलते ही कहता है—यह अँगूठी हाथ में नहीं आई, राक्षस ही हाथ में आ गया।[1] फिर चाणक्य ने एक पत्र लिखा और पत्र में जिन पाँच राजाओं की चर्चा की, उनके विषय में कहता है कि इनकी अब इहलोक लीला समाप्त हुई।

नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु। १·२०

बस पाठक के मन में उस लम्बी कथा के प्रति उत्सुकता होती है, जिसमें यह सम्भव होता है।

नाटक में नृपचरित ही इतिवृत्त होना चाहिए। भरत का कहना है—

नृपतीनां यच्चरितं नानारसभावसम्भृतं बहुधा।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तन्नाटकं नाम ।। १८·१२

मुद्राराक्षस में नृप-चरित का सर्वथा अभाव है।[2] शास्त्रीय दृष्टि से इसका इतिवृत्त नाटकोचित नहीं कहा जा सकता। इसके इतिवृत्त को परोक्ष रूप से ही नृपचरित-सम्बद्ध मान सकते हैं।

मुद्राराक्षस में कथा का प्रतान अतिशय सुश्लिष्ट है। आदि से अन्त तक एक ही उद्देश्य को लेकर सभी पात्रों की कार्य-पद्धति और उनके संवाद रूपित किये गये हैं। और सारी कथा प्रवर्तित है कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना है। विलसन ने मुद्राराक्षस की इस विशेषता का आकलन करते हुए लिखा है—

It may be difficult in the whole range of dramatic literature to find a more successful illustration of the rule.

चाणक्य की कार्यपद्धति निन्दनीय है। इसे कुछ विद्वान् ऐसा नहीं मानते। वे चाणक्य के द्वारा उद्दिष्ट राष्ट्रीय संघटन को साध्य मान कर उसके लिए प्रवर्तित चाणक्य की दुर्नीति को अनवद्य मानते हैं। गान्धी ने यह नहीं सिखाया। केवल साध्य को देखना तो हीन आलोचकों का काम है। साधन को भी देखना चाहिए। जो कुछ चाणक्य का साध्य था, वह इतनी दुर्नीति के विना भी सिद्ध हो सकता था। बुरी बात तो यह है कि दूषित मनोवृत्ति के लोगों को चाणक्य के उदाहरण को लेकर अपने पाप के कामों को लोकहित में बताकर उच्छृंखल आचरण के लिए अवसर मिलता है। इसमें

१. चाणक्य—(मुद्रामवलोक्य राक्षसस्य नाम वाचयति। सहर्षं स्वगतम्) ननु वक्तव्यं राक्षस एवास्मदंगुलिप्रणयी संवृत्त इति।

२. इसमें अमात्यचरित प्रमुख है। चाणक्य और राक्षस दोनों मन्त्री हैं। इन्हीं का कार्यव्यापार महत्त्वपूर्ण है।

तो कोई सन्देह नहीं कि मुद्राराक्षस भेदनीति, मायात्मक व्यापार और धोखाधड़ी अपनाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है।

कथा में प्रच्छन्न पात्र प्रायशः बतलाते चलते हैं कि मैं प्रच्छन्न हूँ। दर्शक जानता है कि कौन पात्र प्रच्छन्न रूप से क्या बना हुआ है। यदि यह ज्ञान दर्शक को प्रच्छन्न पात्र के अपना काम करने के पश्चात् कराया जाता तो उनका विस्मय कुछ और बढ़ता। उदाहरण के लिए छठें अङ्क में दर्शक को ज्ञात हो जाता है कि सिद्धार्थक और समिद्धार्थक चाण्डाल बन कर चन्दनदास को सूली चढ़ायेंगे। यदि यह न बताया गया होता तो कोई हानि न होती और सप्तम अंक में चाणक्य का उनका भेद खोलना विशेष कौतुक-पूर्ण होता।

पात्रानुशीलन

जहाँ तक पात्रों का सम्बन्ध है, मुद्राराक्षस परवर्ती नाटकों से अनेक दृष्टियों से बहुत भिन्न है। मुद्राराक्षस में शृङ्गार रस की उपेक्षा के साथ ही स्त्री-पात्रों की भी अल्पता प्रत्यक्ष है।[1] इसमें मन्त्री चाणक्य का राजा चन्द्रगुप्त से अधिक महत्त्व है। चन्द्रगुप्त मन्त्री के सामने उसके भृत्य के रूप में है। मन्त्री बनने पर राक्षस कहता है—

> द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि ।
> नेतुर्यशस्विनि पदे नियता प्रतिष्ठा ।। ७·१४

अर्थात् चाणक्य नेता है और चन्द्रगुप्त उसका अनुयायी। यह विशेषता भास के कुछ रूपकों में मिलती है। परवर्ती युग में मन्त्रियों की प्रभुता क्षीणप्राय है।

प्रच्छन्न पात्रों की दृष्टि से मुद्राराक्षस अद्वितीय ही है। कुछ पात्र केवल भावतः प्रच्छन्न हैं, अर्थात् वे हृदय से किसी और के साथ हैं और लगे हुए हैं बनावटी सहायक बनकर किसी अन्य के साथ, यथा भागुरायण। अनेक पात्र अपना रूप, नाम और व्यवसाय आदि बदल कर शत्रु से जा मिले हैं और चाणक्य का काम बनाते हैं। ऐसे पात्रों के कार्यकलाप विश्वासघात करते समय दर्शक को विस्मय में डाल देते हैं। चाणक्य

---

१. शृंगार की उपेक्षा कालिदास के पूर्ववती नाटकों में ही मिलती है। परवर्ती नाटकों में शृंगार को येन केन प्रकारेण कम से कम अंग रस बनाया गया है। मुद्राराक्षस में तीन स्त्री पात्र हैं—शोणोत्तरा (मौर्यसम्राट की प्रतिहारी), विजया (मलयकेतु की प्रतीहारी) और कुटुम्बिनी (चन्दन दास की पत्नी)। अनेक इतिहासकारों ने भूल से लिखा है कि इसमें एक ही स्त्री पात्र है। कीथ ने लिखा है—The one female figure in the play. P. 209 Sanskrit Drama. डा०कुन्हन राजा का कहना है—Except the wife of a merchant named Chandanadāsa there are no women characters in the drama P. 178 Survey of Sanskrit Lit.

ऐसे पात्रों में सर्वोपरि है। वह प्रत्यक्षतः राक्षस का शत्रु है, किन्तु प्रच्छन्न रूप से उसे अपना कर उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बना देना चाहता है। चाणक्य की भावगुप्ति का उदाहरण तृतीय अङ्क में मिलता है--

चाणक्य--(कृतककोपं संहृत्य) वृषल, वृषल, अलमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो गरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम्।

और चन्द्रगुप्त भी भावगुप्ति में निपुण है। वह कहता है--

राजा--आर्य वैहीनरे, अतः प्रभृत्यनादृत्य चाणक्यं चन्द्रगुप्तः स्वयमेव राज्यं करिष्यतीति गृहीतार्थाः क्रियन्तां प्रकृतयः।[१]

मुद्राराक्षस का नायक कौन है--यह निर्णय कर लेना कठिन है। विण्टरनित्ज के अनुसार चाणक्य नायक है।[२] काले के अनुसार चन्द्रगुप्त नायक है।[३] डा० कुन्हन राजा ने चन्द्रगुप्त को नायक माना है।[४] वास्तव में विशाखदत्त ने नायक के विषय में कभी शास्त्रीय विधानों पर ध्यान ही नहीं दिया। अनेक दृष्टियों से चाणक्य नायक प्रतीत होता है किन्तु राजा के रंगमंच पर रहते मन्त्री को नायक मानना असंगत है। भले ही इस नाटक में मन्त्री राजा का अभिवादन करे। चाणक्य को प्रधान पात्र और चन्द्रगुप्त को नायक मान लेने पर कुछ शास्त्रीय संबाधाओं का निराकरण हो जाता है।

चन्द्रगुप्त नाटक में कई अङ्कों में दिखाई नहीं पड़ता। उसका कर्तृत्व भी नगण्य है। वह मन्त्री के द्वारा प्रेरित होने पर केवल दो बार रंगमंच पर आता है। उसे धीरोदात्त भले कहा जाय, उसमें लक्षण तो धीरललित के हैं, क्योंकि वह सचिवायत्तसिद्धि है। चाणक्य ने उसके विषय में कहा है--**वृषल एव केवलं प्रधानप्रकृतिरस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभारः सततमुदास्ते।**[५] राक्षस ने चतुर्थ अङ्क में उसे सचिवायत्तसिद्धि कहा है।[६]

ब्राह्मण होने के कारण और चारित्रिक सौष्ठव के अभाव में चाणक्य को

---

१. चाणक्य और चन्द्रगुप्त का यह द्वन्द्व नाटक के गर्भ में नाटक का उदाहरण है। वे दोनों द्वन्द्व का अभिनय मात्र करते हैं।

२. The hero of the drama is Chanakya P. 234 History of Indian Literature. Vol. III 1963.

३. The hero is Chandragupta, possessed of the qualities of the Dhīrodātta. P. XXIII Preface of Mudrārāksasa.

४. Survey of Sanskrit Literature P. 179.

५. तृतीय अंक में १५वें पद्य के आगे। स्वयं चन्द्रगुप्त ने कहा है--
स्वपतोऽपि ममैव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।

६. चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेवावस्थितश्चक्षुर्विकल इवाप्रत्यक्षसर्वलोकव्यवहारः कथमिव स्वयंप्रति विधातुं समर्थः स्यात्।

नायक मानना भारतीय धारणाओं के विरुद्ध है। मुद्राराक्षस में चाणक्य के कार्यकलाप महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु उनमें औचित्य का अभाव है। राक्षस उसे दुरात्मा कहता है, यद्यपि वह स्वयं कोई कम दुरात्मा नहीं था। चन्दनदास उसे नृशंस और दुष्ट कहता है। वह अतिशय विकत्थन है[1]। यथा,

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।
केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे
भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः॥ ७·६

ऐसा विकत्थनपरायण पात्र धीरोदात्त नहीं हो सकता और न वह भारतीय दृष्टि से नाटक का नायक होने योग्य है, जो कहता है—

श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां सन्ततैः शोकधूमैः
कामं मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनहृतं मोहभस्म प्रकीर्य।
दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नन्दवंशप्ररोहान्
दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्निः। १·११

चाणक्य धीरोद्धत कोटि का पात्र है।[2]

चन्द्रगुप्त को नायक मानना ही पड़ेगा, यद्यपि इस नाटक में वह आद्यन्त प्रधान पात्र चाणक्य से सर्वथा अभिभूत है। ऐसा होने पर भी नाटचशास्त्र के अनुसार फल उसी को मिलता है। वह नाटक के अनेक अङ्कों में अनुपस्थित है और नाटक के वृत्त से उसका दूरतः ही सम्बन्ध है।[3] कवि ने चन्द्रगुप्त के चरित्र को कहीं-कहीं नायकोचित गौरव से अभिन्न नहीं रखा है। राक्षस उसे दुरात्मा कहता है—**चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा।**[4] राक्षस के लिए ऐसा कहना शोभा नहीं देता और यह चन्द्रगुप्त के नायकत्व की मर्यादा से नीचे स्तर की चर्चा है। ऐसा लगता है कि विशाखदत्त ने राक्षस को सर्वत्र एक

---

१. चाणक्य के विकत्थन-परायणता-द्योतक कुछ अन्य पद्य हैं—आरुह्यारूढकोप इत्यादि ३.२७ तथा गृध्रैराबद्धचक्रं इत्यादि ३·२८।

२. दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः॥
प्रायः ये सभी लक्षण चाणक्य में पाये जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखें कि नायक का केवल धीरोदात्त होना आवश्यक नहीं है। नाटचदर्पण में ठीक कहा गया है—नाटकेषु धीरललितादीनामपि नायकानां दर्शनात्।

३. नाटक में 'सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यः'। नाटचशास्त्र १८·२९ के अनुसार प्रत्येक अङ्क में चन्द्रगुप्त को होना चाहिए था। यह दोष है।

४. चतुर्थ अङ्क में पद्य १२ के आगे।

उदात्त प्रतिरोधी के रूप में न चित्रित करके उसे समयानुसार अपने विचार बदलने वाला बनाया है। अन्यथा सातवें अङ्क में वह चन्द्रगुप्त का इतना प्रशंसक क्यों कर बन जाता--

बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावितमहोदयः
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः ॥ ७.१२

और भी

राक्षस--(स्वगतम्) स्पृशति मां भृत्यभावेन कौटिल्यशिष्यः। अथवा विनय एवैष चन्द्रगुप्तस्य मत्सरस्तु मे विपरीतं कल्पयति।

चाणक्य और राक्षस

मुद्राराक्षस में चाणक्य और राक्षस प्रधान पात्र हैं। इन दोनों में समता और विषमता प्रत्यक्ष है। चाणक्य ने एक सम्राट् महानन्द को उखाड़ फेंका था और राक्षस वर्तमान सम्राट चन्द्रगुप्त को समाप्त करना चाहता था। राजनीतिज्ञ-शिरोमणि चाणक्य और राक्षस दोनों आत्मा और परमात्मा की चिन्ता न करके झूठ-सच, धोखा-धड़ी अथवा अन्य कोई भी कुत्सित और जघन्य योजना को कार्यान्वित करके सदोष या निर्दोष किसी भी मनुष्य की हत्या करने में निपुण हैं, यदि वह उनकी योजनाओं को कार्यान्वित करने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित करता है। उन दोनों के लिए कुछ भी अकार्य नहीं है। दोनों यह सब अपने निजी हित के लिए नहीं करते, अपितु चाणक्य चन्द्रगुप्त को भारत-सम्राट् पद पर प्रतिष्ठित रखने के लिए और राक्षस मलयकेतु को नन्दवंश की राजगद्दी पर अभिषिक्त करने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील होकर पाप-पुण्य की भावना से विनिर्युक्त हो चुके हैं। चाणक्य और राक्षस दोनों अपने मनोनीत राजा के लिए सब कुछ करते हैं। उनका अपना स्वार्थ नगण्य है[1]। दोनों के चरित्र में प्रकाम अन्तर है। चाणक्य की बुद्धि अतिशय प्रखर और दूरावगाहिनी है। राक्षस की मुद्रा मिलते ही सारे नाटक के भावी घटना-क्रम के जाल को कुछ क्षणों में बुन लेने वाली खोपड़ी के सर्जन का श्रेय भारत में एक मात्र विशाखदत्त को ही दिया जा सकता है।[2] वह पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ शतरंज की गोटियाँ बिछाता है और उन्हें चलाता है, जिसमें प्रत्येक पद पर वह सफलता के निकट पहुँचता है। उसे अपने ऊपर पूर्ण संयम है, किन्तु वह अतिशय विकत्थन है, जो उसके चारित्रिक लक्षणों से मेल नहीं खाता।

---

१. अभिनवभारती नाटयशास्त्र १६.१३ पर। इसके अनुसार मन्त्रियों को फल मिलता ही नहीं।

२. इसी के बल पर वह ऐसी स्थिति ला देता है कि जिस मलयकेतु के लिए राक्षस अपना सर्वस्व होम करने के लिए उद्यत है, वही उसे मार डालने के लिए उद्यत हो जाता है।

चाणक्य में अतिशय तेजस्विता है ।[1] उसे तलवार उठाने की आवश्यकता नहीं। वह प्रज्ञा से ही निग्रह करता है, जिसकी वर्णना चाणक्य के शब्दों में है—

एका केवलमेव साधनविधौ सेना शतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा..................बुद्धिः ।। १.२५

उसकी वाणी मात्र से ही शत्रु थर्रा उठता है; जब वह कहता है—

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणमिव कलां शशलाञ्छनस्य ।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ।। १.८

वह समझता है कि मेरी कोपाग्नि में शत्रु-शलभ जलने वाले हैं । स्वयं वह कभी घबड़ाता नहीं ।

चाणक्य अतिशय गुणग्राही है, चाहे वे शत्रुभाव ही क्यों न रखें । वह राक्षस के विषय में कहता है—**साधु अमात्य राक्षस, साधु । साधु श्रोत्रिय साधु । साधु मन्त्रि-बृहस्पते, साधु ।** इसी प्रकार चन्दनदास की हार्दिक प्रशंसा के वह पुल बाँध देता है। उसे आदमी की पहचान पक्की है। वह अपने कुशल कार्यकर्ताओं को परिश्रमानुरूप फल प्रदान करता है । उसका निजी कर्तृत्व इतना उदात्त है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त भी '**शीर्षे कमलमुकुलाकारमञ्जलिं निवेश्य**' उससे कोई बात करते हैं ।

चाणक्य की काम करने की क्षमता असीम है । उसने राजकीय व्यवस्था की सारी प्रकृति का सूत्रसञ्चालन किया है और वह भी इस प्रकार कि एक ही क्षण में उसे दस आदमियों से दस प्रकार के काम कराते हुए हम देखते हैं। उसके साथ सारी दुनिया नाचती है । उसका शिष्य भी उसके नियोजन में कर्मकर है ।[2]

चाणक्य एक कुशल अभिनेता भी था । वह चन्दनदास के विषय में जानता था कि यह राक्षस का सहायक है, किन्तु उससे भी प्रेमपूर्वक सम्भाषण कर सकता था । और तो और, उसकी योजना के अनुसार सिद्धार्थक के शकटदास को लेकर भाग जाने पर कृत्रिम क्रोध करता है, केवल अपने शिष्य से यह छिपाने के लिए कि सिद्धार्थक मेरी योजना को कार्यान्वित कर रहा है। चाणक्य अपनी योजनाओं को सम्बद्ध लोगों तक ही सीमित रखता है । चन्द्रगुप्त के साथ कौमुदी-महोत्सव को लेकर उसका चन्द्रगुप्त से झगड़ पड़ना अभिनय का चरम शिखर है । चाणक्य का पुरुषार्थ में विश्वास था, दैव में नहीं ।[3]

---

१. चाणक्य के शब्दों में यह उसकी कोपज्वाला है ।

२. यह शिष्य पढ़ता क्या होगा, भगवान् जाने । चपरासी का काम कुशलता से करता था । विशाख को चाहिए था कि चाणक्य को एक चपरासी दे देते । तब तो शिष्य की मर्यादा क्षीण नहीं होती ।

३. चाणक्य—दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति । तृतीय अंक में ।

तथापि वह दूसरों को प्रसन्न करने के लिए प्रयोजनवशात् दैव और भाग्य का नाम लेता था।

चाणक्य में शिष्टाचार की मात्रा विशेष थी, यद्यपि यह कहना कठिन है कि उसका शिष्टाचार स्वाभाविक था प्रयोजनवशात्। वह चन्दनदास से सौहार्द-पूर्ण शिष्टाचार बरतता है और राक्षस से पहली बार मिलने पर कहता है——**भो अमात्य राक्षस, विष्णुगुप्तोऽहमभिवादये।**

राक्षस के गुणों की प्रशंसा चाणक्य भी करता है और उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बना देना चाहता है। इतने से ही उसकी योग्यता प्रमाणित होती है। तथापि विशाख को दिखाना है कि यदि राक्षस श्रेष्ठ वनगज है तो चाणक्य उसे पकड़कर उपयोग में लाने वाला है।[1] इस प्रकार यदि वनगज को पकड़ना है तो उसमें कुछ चारित्रिक दुर्बल-तायें होनी चाहिए और वह है राक्षस का मनुष्यों की ठीक परख न होना। वह जिस जीवसिद्धि को अपना विश्वस्त चर समझता है[2], वह चाणक्य का सहपाठी इन्दुशर्मा है, जिसे उसने राक्षस को पकड़वाने में सहायता पहुँचाने के लिए नियुक्त किया था। राक्षस की परख मलयकेतु के विषय में घातक सिद्ध हुई। वह ऐसे दुर्बल चरित्र को अपना राजा बनाना चाहता था, जो कहता है:——

सत्त्वभंगभयाद्राज्ञा कथयन्त्यन्यथा पुरः।
अन्यथा विवृत्तार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः॥ ४·८

राक्षस में आत्मविश्वास का अभाव है वह स्वयं कहता है——

चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिं दिवं जाग्रतः।
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते॥ २·४

वह भाग्य को अपने पराक्रम से अधिक प्रबल माने बैठा है——

तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म।
वर्मी भवेद्यदि न दैवमदृश्यरूपम्॥ २·८

उसके साथी भी समझते हैं कि राक्षस सफलता की ओर नहीं बढ़ पा रहा है। कंचुकी उसके विषय में कहता है——

१. चाणक्य कहता है——

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया-
मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि॥ १·२६

२. प्रतिक्षणमरातिवृत्तान्तोपलब्धये तत्संहतिभेदनाय च व्यापारिताः सुहृदो जीवसिद्धिप्रभृतयः। द्वितीय अङ्क में।

अन्त में राक्षस को स्वीकार करना पड़ा——

हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम्। पंचम अंक में

लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च । २·६

अर्थात् राक्षस को सफलता नहीं मिल रही है।

राक्षस का आभरण-क्रय उसके अनवधान को व्यक्त करता है। क्या किसी मन्त्री को इस प्रकार अनजान लोगों का बिना परीक्षण कराये अपने लिए आभरण-क्रय करना चाहिए था ?

राक्षस वीर था ।[1] उसे अपने अस्त्र-शस्त्र और सेना के सामर्थ्य में विश्वास था। वह अवसर न होने पर भी तलवार भांजता था । ऐसे लोगों को पक्का राजनीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता ।[2] राजनीतिज्ञ तो भेदनीति से शत्रु को निर्बल करके उस पर हावी होता है । दुर्भाग्यवश राक्षस नन्दों के जीवन-काल में और उनके मरने के पश्चात् भी ऐसा करने में असमर्थ रहा ।

राक्षस का मैत्री भाव उदात्त था । चन्दनदास की रक्षा करने के लिए उसे आत्म-संमर्पण करना पड़ा था ।

कहते हैं 'राक्षस काव्य प्रेमी था' किन्तु वह जीवसिद्धि के द्वारा चतुर्थ अङ्क में कहे हुए श्लेषात्मक सन्देश को नहीं समझ पाया कि उसे मलयकेतु का साथ छोड़कर चन्द्रगुप्त का साथ पकड़ लेना चाहिए ।[3]

रस

मुद्राराक्षस में वीररस अङ्गी है। इस नाटक में युद्ध का वातावरण मात्र है, किन्तु वास्तविक युद्ध नहीं होता है । इसमें वीररस का आलम्बन विभाव विजेता चाणक्य और विजेतव्य राक्षस हैं। उद्दीपन विभाव हैं इनके नय, विनय, बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप और प्रभाव।[4] इन दोनों का उत्साह आस्वाद्य है । वीररस साधारणतः चार प्रकार

१. स्वयं चाणक्य ने राक्षस की वीरता की प्रशंसा की है—

माहात्म्यात्तव पौरुषस्य मतिमन् दृप्तारिदर्पच्छिदः
पश्यैतान् परिकलपनाव्यतिकरप्रोच्छूनवंशान् गजान् ।। ७.१५

२. विचारे राक्षस ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं चाणक्य की चालों को नहीं समझ पा रहा हूँ ।

अथ न कृतकं तादृक्कष्टं कथं नु विभावये-
दिति मम मतिस्तर्कारूढा न पश्यति निश्चयम् ।। ६·२०

३. लग्नं भवति सुलग्नं सौम्ये ग्रहे यद्यपि दुर्लग्नम् ।
वहसि दीर्घां सिद्धिं चन्द्रस्य बलेन गच्छन् ।। ४·२१

४. सन्धि आदि का आयोजन नय है, इन्द्रियजय विनय है, बल सेना है, पराक्रम शत्रु के ऊपर आक्रमण करके उसका विनाश है, युद्ध करने की सामर्थ्य शक्ति है, प्रताप है शत्रु को सन्तप्त करना तथा उच्चकुल, धन, मन्त्री आदि प्रभाव के अन्तर्गत आते हैं।

के माने जाते हैं—युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर। मुद्राराक्षस में युद्ध न होने से युद्धवीर के अंगी होनेकी सम्भावना नहीं हो सकती। दान, धर्म और दया वीर की भी कोई सम्भावना नहीं है। इसमें प्रधान पात्रों को अपनी कुटिल नीति के प्रवर्तन में उत्साह है। इस दृष्टि से यह कहना समीचीन है कि मुद्राराक्षस में नयवीर अङ्गीरस है।[1]

मुद्राराक्षस के अङ्ग रसों में अद्भुत प्रधान है। अद्भुत के विभाव हैं—

यत्त्वतिशयार्थयुक्तं वाक्यं शिल्पं च कर्मरूपं वा ।
तत्सर्वमद्भुत्रसे विभावरूपं हि विज्ञेयम् ।। ना० शा० ६·७६

इन सभी विभावों की मुद्राराक्षस में अतिशयता है। अद्भुत रस की इतनी प्रचुरता इस नाटक में है कि इसे अङ्गी रस मानना अनुचित न होगा।[2]

मुद्राराक्षस में युद्धवीर के प्रकरण स्वल्प हैं। ऐसे कथानक के साथ युद्धवीर का सामञ्जस्य विरल ही हो सकता है। फिर भी कवि ने जैसे-तैसे युद्धवीर के कुछ पद्यों का सन्निवेश किया ही है। यथा,

निस्त्रिंशोऽयं सजलजलदव्योमसंकाशमूर्ति-
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण ।
सत्त्वोत्कर्षात् समरनिकषे दृष्टसारः परैर्मे
मित्रस्नेहाद् विवशमधुना साहसे मां नियुंक्ते ।। ६·१९

शृङ्गारित वर्णन भी क्वचित् सन्निवेशित हैं। यथा,

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे विवृत्तानना
स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः ।
गाढालिङ्गनसङ्गपीडितमुखं यस्योद्यमाशंकिनी-
मार्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीस्तनम् ।। २·१२

कहीं-कहीं भावों का उत्थान-पतन प्रभावपूर्ण है। यथा नीचे लिखे उद्धरण में राक्षस को आशा के शिखर से गिरा कर निराशा के गर्त्त में पहुँचा दिया गया है—

विराधगुप्त—सर्वमनुष्ठितम् ।
राक्षस—(सहर्षम्) किं हतो दुरात्मा चन्द्रगुप्तः ।
विराध०—अमात्य, दैवान्न हतः ।

---

१. रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार वीररस है—स च अनेकधा युद्ध-धर्म-दान-गुण-प्रतापावर्जनाद्युपाधिभेदात्। नाटचदर्पण पृ० १४९ गायकवाड़ सीरीज में।

२. कठिनाई यह है कि नाटचशास्त्र वीर और शृङ्गार के अतिरिक्त किसी अन्य रस को नाटक में अङ्गी नहीं स्वीकार करता।

एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा। दश० ३·३३।

व्यञ्जना

व्यञ्जना का सर्वाधिक क्षेत्र मुद्राराक्षस में स्वाभाविक है। नीति-विशारदों और उनके अनुचरों को अतिशयार्थ युक्त वाक्यों को कहने-सुनने का साधारण अभ्यास होता है। ऐसे पात्र अपने बुद्धि-लाघव से दूर की कौड़ी लाते हैं। चाणक्य का उदाहरण लीजिये। उससे जितना कहा जाता है, उससे वह अधिक समझता है और जो उत्तर वह देता है उसका अभिधेयार्थ ग्रहण करने वाला कहीं का नहीं रह जाता। चाणक्य से सूत्रधार ने कहा—**'आर्य प्रथममेव देवस्य चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशमुपलभ्य सूत्रधारेण दारुवर्मणा कनकतोरणन्यासादिभिः संस्कारविशेषैः संस्कृतं प्रथमराजभवनद्वारम्।'**

इसका उत्तर दिया चाणक्य ने

'अचिरादस्य दाक्ष्यस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि दारुवर्मन्निति'।

वह फल जो दारुवर्मा को चाणक्य के हाथों मिला, वह था मृत्युदण्ड।

कहीं-कहीं छोटे वाक्यों में व्यञ्जना से गम्भीर अर्थ निगूढ है। यथा पञ्चम अङ्क में राक्षस कहता है—

रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम्

इसका व्यंग्य अर्थ है मेरे चारों ओर शत्रुओं का जाल मित्र रूप में बिछा है।

व्यञ्जना की प्रतिष्ठा विशाखदत्त ने अपनी सूक्तियों के द्वारा भी की है। यथा,

अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः।
कायस्थ इति लघ्वी मात्रा।
मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि।
शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।

अलङ्कार

विशाखदत्त की शब्द-सम्पत्ति निःसीम प्रतीत होती है, जिसके बल पर पद्यों में केवल व्यञ्जनों का ही नहीं, स्वरों का भी साथ ही साम्यसन्धान सम्भव हो सका है। यथा,

नन्दकुलकालभुजगीं कोपानलबहुलनीलधूमलताम्। १·९

इसमें छः ल हैं, जो सभी अकारान्त हैं। ऐसे ध्वनि-साम्य से संगीत की निष्पत्ति होती है।

यही प्रवृत्ति कवि ने शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा भी प्रकट की है। यथा,

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दि सलिलं
श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममलिमुखराः कल्लोलमुखरम्।
स्रोतः खातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः
शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयोऽपास्यन्तु शतशः॥ ४·१६

इसमें तुङ्ग, सलिल, मुखर, तट और शोण शब्दों की पुनरावृत्ति साभिप्राय है। कवि **'योग्यं योग्येन योजयेत्'** के मञ्जुल आदर्श को चरितार्थ कर रहा है। इसका एक अन्य उदाहरण लें—

कौमुदी कुमुदानन्दे जगदानन्दहेतुना
कीदृशी सति चन्द्रेऽपि नृपचन्द्र त्वया विना ॥ ४·९

चन्द्र के साथ नृपचन्द्र का होना अभीष्ट है।[1] चाहे अनेक पृष्ठों में कोई वर्णन करके प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास करे, किन्तु क्या वह विशाखदत्त की नीचे लिखी एक पंक्ति की तुलना कर सकता है—

सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात् पातितम् ॥ १·१२

इसमें भावों का एक अविरल प्रवाह अपनी त्वरा, गरिमा और महिमा के साथ पाठक के मानस पटल पर अचिर द्युति के समान आता है, किन्तु अपनी चिरच्छाया छोड़ जाता है।

कहीं-कहीं शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार के सम्मिश्रण का मधुर मिश्रण शिखरिणी में आबद्ध है। यथा,

पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
पतिं पापे मौर्यं यदसि कुलहीनं वृतवती ।
प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी ॥ २·७

इसमें उपमालङ्कार से संसृष्ट अर्थान्तरन्यास है और प की ११ वार अनुवृत्ति है।

प्रच्छन्न पात्र कहीं-कहीं श्लेषात्मक भाषा के द्वारा अपने मूल और कृत्रिम व्यक्तित्वों से सम्बद्ध अर्थ एक ही पद्य से प्रकट करते हैं। यथा,

जाणन्ति तन्तजुत्तिं जहट्ठिअं मण्डलं अहिलिहन्ति ।
जे मन्तरक्खणपरा ते सप्पणराहिवे उवअरन्ति ॥ २·१

इसका वक्ता सँपेरा प्रच्छन्न है। वह मूलतः गुप्तचर है। उसके वक्तव्य में प्रत्यक्ष रूप से सँपेरे से सम्बद्ध अर्थ निकलता है, किन्तु श्लेष द्वारा राजनीति-पटु गुप्तचर-सम्बंधी अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

कहीं-कहीं श्लेष के द्वारा भावी घटनाओं की सूचना व्यंग्य है। यथा,

ता लग्गे होइ सुलग्गे कूलग्गहं पत्तिहलिज्जासु ।
पाविहि दीहं लाहं चन्दस्स बलेण गच्छन्ते ॥ ४.२१

---

१. कालिदास का यह काव्यकौशल प्रथम भाग में निदर्शित है।

इसमें प्रसङ्गानुसार राक्षस के लिए प्रयाण का काल बताया गया है, किन्तु श्लेष द्वारा राक्षस को चन्द्रगुप्त से मैत्री करने का सन्देश है।

मुद्राराक्षस में अनेक स्थलों पर कल्पना की परिधि असीम है। यथा नीचे के पद्य में समुद्र के तिमियों और तट के तमालों की चर्चा--

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनाना-
मा पारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम्।
मालेवाज्ञा सपुष्पा तव नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः
सा मय्येव स्खलन्ती प्रथयति विनयालंकृतं ते प्रभुत्वम्॥ ३·२४

उपमान बनाने के लिए कवि की कल्पना प्रायशः हाथी पर टिकती है।

इस नाटक में कहीं-कहीं गौडी रीति की छटा दिखाई देती है, जिसमें बड़े-बड़े समासों का बाहुल्य है। यथा,

प्रणतसम्भ्रमसमुच्चलितभूमिपालमौलिमालामाणिक्यशकलशिखापिशङ्गीकृतपाद-पद्मयुगलः। तृतीय अङ्क में।

किन्तु ऐसे लम्बे समस्त पद विरल ही हैं।[1] इसमें विशेषता तो प्रसादमयी वैदर्भी रीति की है, जिसमें असमस्त या लघु समासों वाली प्राञ्जल पदावली का प्राचुर्य है। वास्तव में गौडी रीति किसी भी नाटक में अपवाद रूप से ही किसी विभ्राजमान ऐश्वर्य का चित्रण करने के लिए प्रयुक्त हो सकती है। नाट्योचित भाषा तो विशद और सुबोध वैदर्भी की ही हो सकती है। विशाखदत्त की भाषा प्रायशः पात्रोचित और सुबोध है। उनको गद्य से बढ़ कर पद्य के प्रति अभिरुचि थी। कहीं-कहीं पद्यात्मक भाषा में ऐसे भावों का वर्णन है, जो गद्य ही में होने चाहिए। यथा,

प्रस्थातव्यं पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनु व्यूह्यसैन्यै-
र्गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः।
पश्चाद् गच्छन्तु वीरः शकनरपतयः सम्भृताश्चीणहूणैः
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि परिवृणुयाद्राजलोकः कुमारम्॥ ५·११

---

१. कुछ विद्वानों का मत है कि मुद्राराक्षस में गौड़ी रीति का आधिक्य है। यथा काले का--The style of the play which is Gaudi for the most part also shows that the poet belonged to the Gauda country and not to Kashmira. P. XIII of the Preface of the Mudrārāksasa.
यह मत सर्वथा निराधार है।

कीथ के शब्दों में विशाखदत्त की पदावली प्रभावशालिनी और स्पष्ट है। उनकी शैली में चटुल प्रवाह है और अलंकारों का विनियोजन कलात्मक विधि से सुसंयमित है।[1]

भाषा को भावों और पात्रों के अनुकूल प्रवर्तित करने में विशाख को विशेष दक्षता प्राप्त थी। चन्द्रगुप्त के शब्दों में चाणक्य के क्रोध का वर्णन है—

संरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामयापि
भ्रूभङ्गोद्भेदधूमं ज्वलितमिव पुरः पिङ्गया नेत्रभासा ।

राक्षस के परम पराक्रम और साहस के अनुकूल है अधोलिखित पद्य की भाषा—

निस्त्रिंशोऽयं विगतजलदव्योमसङ्काशमूर्ति-
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण ।
सत्त्वोत्कर्षात् समरनिकषे दृष्टभारः परैर्मे
मित्रस्नेहाद् विवशमधुना साहसे मां नियुंक्ते ॥ ६·१९

इसमें गुरु मात्राओं विशेषतः आ के प्रयोग से वीरोचित विस्फार की प्रतीति होती है।

मुद्राराक्षस में संस्कृत के साथ शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृतों का प्रयोग पात्रों की दृष्टि से किया गया है। जैन क्षपणक सिद्धार्थक, समिद्धार्थक तथा कुछ अन्य छोटे लोग मागधी बोलते हैं। प्राकृत में गद्य और पद्य के लिए शौरसेनी और महाराष्ट्री का प्रयोग समीचीन है।

वीररस के इस नाटक में शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक आवल्गन स्वाभाविक ही है। इस छन्द में ३९ पद्य हैं, जिसमें से सबसे अधिक १० पद्य द्वितीय अङ्क के मार-पीट के वातावरण की अभिव्यक्ति करने के लिये प्रयुक्त हैं। अन्य प्रधान छन्द स्रग्धरा, वसन्ततिलका, शिखरिणी और श्लोक क्रमशः २४, १९, १८ और २२ पद्यों में प्रयुक्त हैं।

मुद्राराक्षस में सात्त्वती वृत्ति की प्रधानता है। इसमें गभीरोक्तियों के द्वारा संलापक और मन्त्र, अर्थ और दैव की शक्तियों से संघभेदन करके सांघात्य नामक सात्त्वती के अंग परिस्फुटित हैं। कैशिकी वृत्ति का तो सर्वथा अभाव है। आरभटी वृत्ति नाम मात्र के लिए है।[2]

---

१. Viśākhadatta's diction is admirably forcible and direct. The martial character of his drama reflects itself in the clearness and rapidity of his style, which eschews the deplorable compounds, which disfigure Bhavabhūti's works. An artist in essential, he uses images, metaphors and similes with tasteful moderation.

The Sanskrit Drama. P.209.

२. कैशिकी में गीत, नृत्य और विलासात्मक काम होते हैं। आरभटी में युद्ध, माया, इन्द्र-जाल आदि का प्रदर्शन होता है।

संवाद तथा एकोक्ति

विशाखदत्त कहीं-कहीं भूल जाते हैं कि मुझे नाट्योचित संवादों की योजना करनी है। प्रथम अङ्क में प्रकोष्ठशालागत चाणक्य की ६० पंक्तियों की एकोक्ति है, जिसमें ६ पद्य हैं। रंगमंच पर इसका कोई श्रोता भी नहीं है, क्योंकि एकोक्ति है। इसे किसी प्रकार नाटचोचित नहीं कहा जा सकता।[1] इसमें नाटक की भूमिका के रूप में सूचनाओं की जो भरमार है, उसे विष्कम्भक द्वारा बताया जाना समीचीन होता। इस नाटक में एकोक्तियों (Soliloquy) का महत्त्व विशेष बढ़-चढ़ कर है।

संवादों में कतिपय स्थलों पर स्वाभाविकता का विशेष प्रतिफलन हुआ है। बातचीत करते हुए कोई व्यक्ति पहले इधर-उधर की चर्चायें करके अन्त में अपने विशिष्ट अभिप्राय पर आता है। यह स्वाभाविक नियम प्रथम अङ्क में चाणक्य और चन्दनदास की वार्त्ता में दिखाई देता है, जो इस प्रकार है--

चाणक्यः--भोः श्रेष्ठिन् चन्दनदास, अपि प्रचीयन्ते संव्यवहाराणां वृद्धिलाभाः।

चन्दनदासः--(स्वगतम्) अत्यादरः शङ्कनीयः। (प्रकाशम्) अथकिम्। आर्यस्य प्रसादेन अखण्डिता मे वाणिज्या।

चाणक्यः--न खलु चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणानधुना स्मारयन्ति प्रकृतीः।

चन्दनदासः--(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। शारदनिशासमुद्गतेनैव पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रियाधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः।

आगे चलकर चाणक्य अपना विशिष्ट अभिप्राय प्रकट करता है--

चाणक्यः--अयमीदृशो विरोधः। यत्त्वमद्यापि राजापथ्यकारिणः अमात्यराक्षसस्य गृहजनं स्वगृहे रक्षसि।

मुद्राराक्षस के संवाद में गण्ड का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। इसके द्वारा भावी घटनाओं की पूर्व सूचना प्रस्तुत की गई है। चतुर्थ अङ्क में राक्षस कहता है--**तदपि नाम दुरात्मा चाणक्यवटुः** और दौवारिक आकर कह देता है--**जयतु**। यह वाक्चातुर्य यहीं पूरा नहीं होता। राक्षस वाक्य पूरा करता है--**अतिसन्धातुं शक्यः स्यात्**। दौवारिक ने अपने शब्दों से वाक्य पूरा किया--**अमात्यः**। राक्षस ने इस सांयोगिक वाग्विधान को वागीश्वरी का प्रतिपादन माना है। जिन्हें वागीश्वरी में विश्वास नहीं है, वे आलोचक विशाखदत्त की वाक्शक्ति से चमत्कृत हुए बिना नहीं रहेंगे।[2]

---

१. द्वितीय अंक में आहितुण्डिक की एकोक्ति के बाद राक्षस की एकोक्ति भी अति दीर्घ है।

२. इस वाग्विधान में उत्तर-प्रत्युत्तर को क्रमशः १,२ और ३,४ मान कर १,३,२,४, के क्रम से विन्यस्त करने पर भावी घटनावक्र की पूर्व सूचना होती है। पूर्व सूचना विशाख का नितरामभीष्ट संयोजन है।

अन्यत्र राक्षस पद्य में प्रश्न पूछता है और पुरुष गद्य में उत्तर देता है——

राक्षसः——किमौषधपथातिगैरुपहतो महाव्याधिभिः ।

पुरुषः——नहि नहि ।

राक्षसः——किमग्निविषकल्पया नरपतेर्निरस्तः क्रुधा ।

पुरुषः——आर्य शान्तं पापं शान्तं पापम् । चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न नृशंसा प्रतिपत्तिः ।

राक्षसः——अलभ्यमनुरक्तवान् किमयमन्यनारीजनम् ।

पुरुषः——(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । अभूमिः खल्वेषोऽविनयस्य ।

राक्षसः—किमस्य भवतो यथा सुहृद एव नाशोऽवशः ॥ ६·१६

उपर्युक्त संवाद की अस्वाभाविकता प्रत्यक्ष है । इससे यह प्रमाणित होता है कि कविवर को पद्य का इतना चाव था कि जहाँ गद्य उचित होता, वहाँ भी संवादों में पद्य की रचना की गई है[1] ।

द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ अङ्क में वेणीसंहार के चतुर्थ अङ्क की भाँति पूर्ववृत्त का वर्णन कहते-सुनते हुए जहाँ क्रमशः विराधगुप्त, करभक और पुरुष की बात सुनकर राक्षस को प्रायः ततस्ततः कह कर काम चलाना चाहिए था, वहाँ संवाद को कलात्मक बनाने के लिए विराधगुप्त और पुरुष से बातें इस प्रकार कहलाई गई हैं कि राक्षस प्रसङ्गानुसार कुछ अपनी बातें 'आत्मगत' रूप में अथवा टीका करते हुए कहता चलता है या ऐसे वाक्य कहता है——**अथ किम्, कथमिव, भद्र अपि सत्यम्, किं तस्य, कथय किमिति, भद्र ततस्तथाभिहितेन किं प्रतिपन्नं मौर्येण,** इत्यादि। इस प्रकार ततस्ततः के दोष से संवाद विनिर्मुक्त है। वैसे राक्षस ने भी कभी-कभी 'ततस्ततः' किया है।

श्रोता और प्रेक्षक के मानस-पटल पर बातों का पूरा प्रभाव पड़े——इस दृष्टि से कहीं-कहीं संक्षेप में कहने योग्य बात को भी संवाद में अतिशय विस्तारपूर्वक और दीर्घकाल तक कहा गया है । पुरुष की बात का प्रभाव राक्षस पर अतिगभीर हो——इस उद्देश्य से छठें अंक में उनकी बातचीत को पर्याप्त प्रस्तार आदि से अन्त तक पदे पदे दिया गया है। छोटे-मोटे दोषों के होने पर भी विशाखदत्त की संवाद-कला सफल है। उसमें प्रायशः प्रभविष्णुता, स्वाभाविकता, समीचीनता और प्रासंगिकता है । मलयकेतु को राक्षस के ऊपर सन्देह है । कवि चाहता है कि यह सन्देह प्रगाढतर हो । वह इस उद्देश्य से राक्षस से ऐसे वाक्य कहलवाता है, जो राक्षस के लिए स्वाभाविक हैं किन्तु मलयकेतु के सन्दिग्ध मानस में उन वाक्यों से व्यञ्जना होती है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से मिलना चाहता है। यथा,

सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतोऽपि न मर्षयेत्
किमु लोकाधिकं तेजो बिभ्राणः पृथिवीपतिः ॥ ४·१०

---

१. यह कथांश प्रकरण-वक्रता का अनूठा उदाहरण है । वक्रोक्ति ४·११

संवाद का एक दोष है अपशब्दों का प्रयोग। चाणक्य, राक्षस और चन्दनदास सभी दुरात्मन् शब्द का प्रयोग करते हैं।

छिप कर बातें सुनना और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की पद्धति पाँचवें अङ्क में अपनाई गई है। इसमें एक ही रंगमंच पर वक्ता और श्रोता के दो वर्ग दो स्थानों पर रहते हैं।

रङ्गमंच

मुद्राराक्षस में जिस रङ्गमञ्च की प्रकल्पना है, वह अवश्य ही बहुत लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। चतुर्थ अङ्क के कार्यव्यापार से रङ्गमञ्च की कल्पना की जा सकती है। इस रङ्गमञ्च पर पहले पुरुष (करभक) और दौवारिक राक्षस के द्वार पर बातचीत करते हैं। उस समय रङ्गमञ्च पर राक्षस अपने शयन-गृह में शकटदास के साथ है। फिर एक पुरुष आगे आता है और उसके पश्चात् मलयकेतु और भागुरायण कंचुकी के साथ रंगमञ्च पर आते हैं। वे दोनों राक्षस और उसके गुप्तचर की बात सुन रहे हैं और परस्पर बातें भी कर रहे हैं।[1] उनकी बातें राक्षस और गुप्तचर नहीं सुन सकते। इसके लिए बहुत बड़े रंगमञ्च की आवश्यकता होगी और बहुविध सज्जा से ही यह सम्भव होगा कि दो स्थानों पर बात हो सके।

सन्देश

मुद्राराक्षस में पदे-पदे पाठक को उदात्त बनाने वाली शिक्षायें मिलती हैं। यथा,

किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।
किं त्वंगीकृतमुत्सृजन्कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते
निर्व्यूढप्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्॥ २·१८

विशाखदत्त की शरद् सभी लोगों के लिए विनयी होने का आदर्श प्रस्तुत करती है–

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदां
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले।
मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो
कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा॥ ३·८

चन्दनदास की मैत्री का आदर्श अनुत्तम है—

शिवेरिव समुद्भूतं शरणागतरक्षया
निचीयते त्वया साधो यशोऽपि सुहृदा विना॥ ६·१८

---

१. सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि इस प्रकार एक साथ ही रंगमंच पर संवादों का संयोजन परवर्ती गर्भाङ्क का मूल तत्त्व है।

राजपुरुषों की सच्चरित्रता का मानदण्ड है—

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये ।
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ॥ १·१५

मनुष्य को दासता से विनिर्मुक्त होना चाहिए। इस सम्बन्ध में विशाख का सन्देश है—

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभाद् धनवति ।
तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति ॥ ५·४

मन्त्री को राजा के अभ्युदय के लिए किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए—यह सीख चाणक्य और राक्षस के चरित से मिलती है।

वर्णन

मुद्राराक्षस में वर्णनों की प्रासंगिकता और औचित्य सविशेष हैं। वर्णनों में प्रायशः वक्ता के व्यक्तित्व की छाया प्रतिफलित होती है। राक्षस राजा का मन्त्री (भृत्य) है। उसके सन्ध्या-वर्णन में चर्चा है कि वृक्ष प्रातःकाल में उदीयमान सूर्य का प्रत्युद्गमन करते हैं, और सन्ध्या के समय उसे त्याग देते हैं, जैसे भृत्य राजा को—

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पत्रच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा ।
एते तस्मान्निवृत्ताः पुनरपरककुप्प्रान्तपर्यस्तबिम्बे
प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः ॥ ४·२२

राजा व्यवस्था और विनय का प्रवर्तक है। उसके शरद्वर्णन में इन्हीं की छटा है। यथा,

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले ।
मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो
कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा ॥ ३·८

राक्षस के व्यक्तित्व और मानसिक स्थिति की प्रतिच्छाया छठें अङ्क में उद्यान-वर्णन में स्पष्ट है। यथा,

अन्तःशरीरपरिशोषमुदग्रयन्तः कीटक्षतिं शुचमिवातिगुरुं वहन्तः ।
छायावियोगमलिना व्यसने निमग्ना वृक्षाः श्मशानमुपगन्तुमिव प्रवृत्ताः ॥

मुद्राराक्षस में शृंगार के अभाव की पूर्ति वर्णनों की शृंगार-वृत्ति से कतिपय स्थलों पर की गई है। यथा,

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् ॥ ३·९

इसमें प्रकृति का मानवीकरण है ।

त्रुटि

मुद्राराक्षस में इतिहास की दृष्टि से एक त्रुटि है मलयकेतु की सेना में हूणों का होना । यह घटना चतुर्थ शताब्दी ई०पू० की है, जब हूणों का किसी भारतीय राजा से सम्बन्ध होना असम्भव था ।

रंगमञ्च पर अनेक पात्र अनेक स्थलों पर निष्क्रिय होकर पड़े रहते हैं ।

नाम

कुन्तक ने प्रकरण-वक्रता का पर्यालोचन करते हुए बताया है कि इस नाटक का नाम संविधानाङ्क है ।[1] इसमें प्रधान संविधान मुद्रा का उपयोग है । अतएव इसके नाम में मुद्रा का सन्निवेश है ।

---

१. आस्तां वस्तुषु वैदग्ध्यं काव्ये कामपि वक्रताम् ।
प्रधानसंविधानाङ्कनाम्नापि कुरुते कविः ॥ ४·२४

अध्याय ७

कालिदास

गुप्तकाल के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के पाँचवीं शती के पूर्वार्ध में रचे हुए तीन रूपक अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र मिलते हैं।[1] इनमें कौन पहले लिखा गया और कौन पीछे—यह विद्वानों के विवाद का विषय भले ही हो, किंतु इतना तो निर्विवाद है कि अभिज्ञानशाकुन्तल कालिदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यदि हम कालिदास की प्रतिभा का मानव लोक से देवलोक की ओर उत्तरोत्तर विकास कालक्रम से मानें तो उनके रूपकों में मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल का क्रम स्पष्ट प्रतीत होता है। इस आधार पर रघुवंश और कुमारसम्भव में रघुवंश मानवलोक से सम्बद्ध होने के कारण देवलोक से सम्बद्ध कुमारसम्भव से पहले का मानना ही पड़ेगा। काव्य-कौशल की दृष्टि से

---

१. कालिदास के अन्य काव्यों की चर्चा प्रथम भाग में की जा चुकी है। उनको कतिपय विद्वान् प्रथम शती ईसवी पूर्व में रखने का आग्रह करते हैं। मेरी दृष्टि में उनकी मान्यता के विरोध में सबसे बड़ा प्रमाण है कालिदास का रघुवंश ४·६८ में हूणों की चर्चा करना कि वे वंक्षु या सिन्धु-तट पर प्रतिष्ठित थे। इतिहासकारों के अनुसार वंक्षु के तट पर हूण तीसरी शती ई० के पहले नहीं हो सकते थे। इस संबंध में ऐतिहासिक मत उल्लेखनीय हैं:—

This is further confirmed by the History of the Oxus region itself wherein we have no mention of the Hunas from about second century B.C. to the third century A.D. Their presence during this period is not supported by any evidence whatsoever.

It is generally agreed that by the middle of the fifth century A.D. they had founded a powerful empire in the Oxus basin whence they carried their conquest down to the Gandhar and beyond the Indus in the south.

Upendra Thakur:—The Hunas in India P.59 and 62.

Although presumably the name of the Huns appears as early as the geography of Ptolemy (III.5.10), applied to a tribe in South Russia, we cannot find any other evidence for Huns' in the near East or South Russia before the fourth century A.D.

Richard N. Frye: The Heritage of Persia P. 226.

समान प्रकरणों की तुलना करने पर कुमारसम्भव रघुवंश से परवर्ती प्रतीत होता है।[1]

अभिज्ञानशाकुन्तल

कालिदास की सर्वातिशायी महिमा का प्रधान स्तम्भ अभिज्ञानशाकुन्तल है। केवल भारत ने ही नहीं, अपितु अखिल विश्व ने मुक्तकण्ठ से उसकी रमणीयता प्रगुणित की है। इसमें प्रधान रूप से शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रणय-गाथा है।

कथावस्तु

धनुर्बाण से मृगया करते हुए रथ पर राजा दुष्यन्त और सूत हिमालय पर्वत की उपत्यका में किसी मृग के पीछे दौड़ रहे हैं।[2] मृग कहीं रुक कर रथ को देख लेता है और फिर ऊँची छलांग मार कर भागता है। रथ के घोड़े मानो हरिण से होड़ लगाकर बहुत प्रखर गति से दौड़ रहे हैं। राजा मृग पर बाण चलाने ही वाला है कि बीच में तपस्वी आकर रोक देते हैं कि यह आश्रम-मृग है। राजा ने धनुष उतार लिया। तपस्वी ने राजा को आशीर्वाद दिया—

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव ।
पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ।। १·१२

अर्थात् आपको चक्रवर्ती पुत्र हो।

तपस्वी ने राजा से कहा कि मालिनी तट पर कण्व का आश्रम है। वहाँ जाकर आतिथ्य ग्रहण करें। राजा के पूछने पर उसने बताया कि आज ही आश्रम के कुलपति कण्व शकुन्तला को अतिथि-सत्कार के लिए नियुक्त करके उसके प्रतिकूल विधि-विधान को शान्त करने के उद्देश्य से सोमतीर्थ चले गये हैं। राजा शकुन्तला से महर्षि कण्व के प्रति अपनी भक्ति निवेदन कराने के लिये उससे मिलने के लिए चल देते हैं। उन की धारणा है कि पुण्याश्रम के दर्शन से अपने को पवित्र करूँगा। रथ से आगे बढ़ने पर तपोवन के चिह्न मिलते हैं। रथ छोड़कर राजा धनुर्बाण और राजोचित अलंकार से विरहित होकर विनीत वेष में आश्रम में प्रवेश करता है। सूत वहीं रथ और घोड़े के साथ विश्राम करता है।

---

१. उदाहरण के लिए कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग के ६४,६६,७६,७७,८२,८८ को रघुवंश के ७वें सर्ग के क्रमशः १२, १६,२१,२२,२७,२८ से तुलना करें। कुमारसम्भव के श्लोक उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं।

२. रथ पर बैठे-बैठे वन में हरिण की मृगया कवि ही करा सकता है। कवि यदि आकाश में रथ उड़ा सकते थे तो बीहड़ बन में उनके रथ क्यों न चलते ? वस्तुतः वन में यह रथ-चालन अनुचित है।

आश्रमद्वार के समीप राजा को बाहुस्फुरण से भावी शृङ्गारोपलब्धि की व्यंजना होती है। राजा कहता है—

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र । १·१६

उसी समय उपवन में वृक्षों को सींचती हुई मुनि-कन्याओं की बातचीत सुनाई पड़ी, जिसे सुनने के लिए राजा वृक्षान्तरित होकर छाया में खड़ा हो गया। राजा को वे कन्यायें अपने अन्तःपुर की रमणियों से सुन्दर लगीं। अनसूया नामक सखी से बातचीत करती हुई शकुन्तला ने बताया कि इन वृक्षकों के प्रति मेरा भाई-बहिन का सा प्रेम है। शकुन्तला को देखते ही राजा को मुनि के व्यवसाय के प्रति अनास्था हुई। उन्होंने कहा—

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं सनीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।। १·१८

राजा उन्हें देखता रहा। वल्कलधारिणी भी शकुन्तला राजा को मनोज्ञ लगी। शकुन्तला जब केसर वृक्ष के पास पहुँची तो प्रियंवदा नामक उसकी सखी ने कहा कि इसके पास तुम लता जैसी लग रही हो। राजा ने समर्थन किया—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।। १·२०

शकुन्तला नवमालिका और आम के विवाह की चर्चा करती है। शकुन्तला के शरीर में ही नहीं बातों में भी नवतारुण्यावतार प्रतिभासित होता है। वह आम के विषय में कहती है—

उपभोगक्षमः सहकारः ।

उसी समय पानी डालने से एक भौंरा उड़कर शकुन्तला के मुँह के चारों ओर चक्कर काटने लगा। राजा को भौंरे से ईर्ष्या हो आई कि इस सुंदरी का सामीप्य उसे अनायास ही मिला है। व्याकुल होकर शकुन्तला ने सखियों को पुकारा तो उन्होंने कहा कि दुष्यन्त को पुकारो। वही प्रजा का रक्षक है। इसी अवसर पर राजा प्रकट हुआ। भौंरा तो उड़ गया। राजा ने शकुन्तला से पूछा—

अपि तपो वर्धते ।

राजा को अतिथि रूप में आदर मिला। सभी कन्यायें पास बैठ गईं। शकुन्तला मन में सोचती है कि इन्हें देखकर मेरे मन में शृंगारित भाव क्यों उठ रहे हैं? परिचय पूछने पर दुष्यन्त ने गोलमटोल कह दिया कि "मैं दुष्यन्त के द्वारा धर्माधिकारी नियुक्त हूँ। आश्रमीय धर्मव्यवस्था देखने के लिए आ गया हूँ।" शकुन्तला के शृङ्गारित भावों को देखकर उसकी सखियाँ कहती हैं कि यदि आज यहाँ कण्व होते तो तुम्हें इस अतिथि को दे देते।

राजा को शकुन्तला का वृत्तान्त ज्ञात हुआ कि वह मुनि-कन्या नहीं है, अपितु विश्वामित्र से मेनका नामक अप्सरा की कन्या है, जिसे नवजात छोड़ देने पर कण्व ने पाला है। वे उसे योग्य वर को दे देना चाहते हैं। शकुन्तला इन बातों को सुनकर कुछ बनावटी क्रोध करके चल देना चाहती थी। उसकी सखियों ने कहा कि अतिथि को छोड़कर कैसे जाओगी ?

उसी समय नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि दुष्यन्त की सेना की हलचल से घबड़ाकर एक जंगली हाथी तपोवन में आ घुसा है। राजा को अपनी सेना से मिलने के लिए जाना पड़ा। जाते समय तपस्विनियों ने राजा से कहा कि आज आपका आतिथ्य नहीं हुआ। फिर दर्शन दें। राजा ने मन में सोचा कि शकुन्तला विषयक प्रवृत्तियों से अब छुटकारा नहीं है। यहीं कहीं आश्रम के निकट डेरा डाल लेता हूँ।

मृगया बन्द कर दी गई, जिससे आश्रमवासियों का जीवन पुनः निर्बाध हो गया। राजा ने विदूषक से शकुन्तला विषयक प्रथम प्रणय की चर्चा की। विदूषक ने कहा कि उसे किसी वनवासी ऋषि कुमार से बचाइये, अर्थात् अपनी बनाइये। राजा ने कहा कि अभी उसके गुरुजन कण्व नहीं हैं। कैसे आश्रम में कुछ दिन ठहरा जाय——इस विषय पर वे दोनों विमर्श करते हैं। तभी दो ऋषिकुमारों ने आकर राजा से कहा कि यज्ञ में राक्षस बाधा डाल रहे हैं। आप कुछ दिन और रहकर यज्ञ की रक्षा करें। राजा ने स्वीकृति दे दी। उसी समय राजधानी से राजमाता के द्वारा भेजा हुआ दूत आया। उसने समाचार दिया कि राजमाता ने अपने व्रत के पारण के अवसर पर आपको उपस्थित रहने के लिए कहा है। राजा स्वयं तो वन में रह गया और उसने विदूषक को अपना प्रतिनिधि बनाकर राजधानी में भेज दिया। जाते समय उससे कह दिया कि शकुन्तला की बातें केवल परिहासात्मक थीं।

इधर शकुन्तला दुष्यन्त के विरह में सन्तप्त थी। उससे मिलने के लिए व्यग्र राजा मालिनी-तट के लतामण्डप के समीप दुपहरी में पहुँचा। राजा ने वृक्षान्तरित होकर देखा कि नायिका शिलापट्ट पर पुष्पशय्या पर लेटी हुई है। सखियाँ उसे ठंडक पहुँचा रही हैं। राजा ने सखियों से शकुन्तला की बात सुनी कि जब से राजर्षि को देखा है, तभी से मेरी यह स्थिति है। कोई उपाय करो कि राजा मेरे ऊपर अनुकम्पा करें।

सखियों ने उपाय सोचा कि शकुन्तला का प्रेमपत्र देवप्रसाद के बहाने पुष्प से छिपाकर राजा को दिया जाय। शकुन्तला ने तदनुसार नलिनी के पत्ते पर नख से पत्र लिखा——

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवावि रतिम्मि ।
णिग्घिण तवइ वलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं ।। ३·१४

शकुन्तला ने पत्र ज्यों ही सखियों को सुनाया कि राजा उछलकर उसके पास पहुँचे। वे उसके पास बैठे। प्रियंवदा और अनसूया के चिन्ता व्यक्त करने पर राजा ने कहा--

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ।। ३·१८

शकुन्तला और दुष्यन्त का गान्धर्व विवाह हुआ। राजा यज्ञ समाप्त होने पर शकुन्तला को अपनी नाम-मुद्रिका देकर और यह कहकर चलता बना कि राजधानी से कोई व्यक्ति भेजकर तुम्हें बुला लूंगा।[1] गर्भवती शकुन्तला आश्रम में रह गई।

एक दिन दुर्वासा शकुन्तला की कुटी पर आये। शकुन्तला ने उनकी पुकार नहीं सुनी। दुर्वासा ने शाप दिया--जिसके ध्यान में मेरी उपस्थिति का ध्यान तुम्हें नहीं है, उसे तुम्हारी सुधि नहीं आयेगी। प्रियंवदा और अनसूया पास ही पूजार्थ पुष्पचयन कर रही थीं। प्रियंवदा दुर्वासा को मनाने चली। घबड़ाहट में दौड़ती हुई अनसूया को ठोकर लगी। उसके पुष्प गिर गये। प्रियंवदा ने अनसूया को बताया कि मेरी प्रार्थना पर दुर्वासा ने शाप की अवधि नियत कर दी है कि अभिज्ञान का आभरण दिखाने पर शाप समाप्त हो जायेगा। किसी ने यह अनिष्ट बात शकुन्तला को बताई नहीं।

कण्व तीर्थ करके लौट आये। शकुन्तला की कोई खबर दुष्यन्त ने न ली। अनसूया ने चिन्तित होकर सोचा कि दुष्यन्त को अँगूठी भेजकर स्मरण दिलाया जाय। तभी प्रियंवदा ने बताया कि आज शकुन्तला का पतिगृह के लिए प्रस्थान होना है। आकाशवाणी से कण्व को ज्ञात हो चुका था कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हो चुका है। सभी शकुन्तला के प्रस्थान-योग्य सज्जा करने लगे। तपस्विनियों ने आशीर्वाद दिये--महादेवी बनो, वीरप्रसविनी बनो, समादृत बनो। सखियों ने मंगल शृंगार किये। कण्व ने लता-वृक्षों से कुसुम मंगाये तो--

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतम्
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।। ४·५

ऋषि-कण्व को पिता जैसा भाव सकरुण बना रहा था। उन्होंने आशीर्वाद दिया--

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ।। ४·७

कण्व ने तपोवन के तरुओं से कहा कि तुम इसे पतिगृह जाने की अनुमति दो। वृक्षों ने कोकिल की कूक के द्वारा अनुमति दी।

---

१. मुद्रिका का यह अभिज्ञान मृच्छकटिक के षष्ठ अङ्क में चन्दनक के द्वारा तथाकथित वसन्तसेना को खड्ग के अभिज्ञान का अनुहरण करता है।

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ।। ४·१०

वनदेवियों की ओर से आकाशवाणी हुई--

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूल पवनश्च शिवश्च पन्थाः ।। ४·११

प्रस्थान के समय हरिणियों ने मुँह से घास गिरा दी, मोरों ने नाचना छोड़ दिया और लताओं ने आँसू के समान पीले पत्ते गिराये ।

शकुन्तला वन-ज्योत्स्ना लता से मिली । उसने सखियों से कहा कि इस गर्भ-मन्थरा हरिणी के प्रसव का समाचार भेजना । शकुन्तला के पालित मृगशावक ने अपने को उसके परिधान में लपेट लिया । उसे शकुन्तला ने कण्व को सौंपा । जलाशय तक शकुन्तला को ले जाकर मुनि ने राजा को सन्देश दिया कि इसे दारोचित-आदर-पूर्वक देखें । शकुन्तला को सिखाया--

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
पत्युर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपंगमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।। ४·१८

शकुन्तला कण्व के पैरों पर गिर पड़ी । मुनि ने कहा--वानप्रस्थ लेकर फिर यहाँ आ जाना । शकुन्तला ने कहा--मेरी अधिक चिन्ता न कीजियेगा । कण्व ने निःश्वास लेकर कहा--

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ।। ४·२१

शार्ङ्गरव और शारद्वत नामक दो शिष्य गौतमी नामक तपस्विनी के साथ शकुन्तला को पहुँचाने के लिए हस्तिनापुर के मार्ग पर बढ़ चले ।

एक दिन राजा को संगीतशाला से अपनी पत्नी हंसपदिका का गाया गीत सुनाई पड़ा--

अहिणवमहुलोलुवो भवं तहपरिचुम्बिअ चूअमञ्जरीं ।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिओसि णं कहं ।।

इसके द्वारा रानी ने उपालम्भ दिया था कि कभी मुझसे प्रेम करके अब आपने मेरा विस्मरण कर दिया । गीत को सुनकर राजा को एक रहस्यमय उत्कण्ठा हुई ।

उसने सोचा कि पूर्व जन्म का कोई प्रेमसम्बन्ध है, जो इस उत्कण्ठा का कारण है। उसी समय राजा को सूचना मिली कि कण्व का सन्देश लेकर स्त्रीसहित कुछ तपस्वी आये हैं। वे स्वागत-सत्कार के पश्चात् राजा के पास लाये गये। शकुन्तला की दाहिनी आँख फड़की, जिससे उसको शृङ्गार-पथ में बाधा की अभिव्यक्ति हुई। राजा ने शकुन्तला को देखा तो वह उन्हें पीले पत्तों के बीच किसलय सी प्रतीत हुई। औपचारिक प्रश्नोत्तर के पश्चात् शार्ङ्गरव ने कहा—

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ।। ५·१५

राजा ने कहा—आप लोग यह सब क्या कह रहे हैं? क्या इनसे मेरा विवाह हो चुका है? गौतमी ने शकुन्तला से कहा कि मुख का आवरण हटाओ। ऐसा करने पर भी शकुन्तला राजा के स्मृति-पथ में न आ सकी। शार्ङ्गरव बिगड़ा कि आप ऋषि के भोलेपन का लाभ उठा रहे हैं। शारद्वत ने शकुन्तला से कहा कि तुम्हीं राजा को विश्वास दिलाओ। शकुन्तला ने कहा कि राजन्, मुझे धोखा देना उचित नहीं है। मैं पहचान दिलाती हूँ। पर कोई पहचान भी नहीं रह गई थी। राजा के द्वारा दी हुई उसकी अंगूठी भी शक्रावतार तीर्थ में अनजाने गिर गई थी। फिर शकुन्तला ने नवमालिका-मण्डप में दीर्घापाङ्ग नामक मृगशावक की कथा बताई कि कैसे उसने आपके हाथ से तो पानी नहीं पिया और फिर मेरे हाथ से पिया तो आपने कहा था कि सभी सगे को पहचानते हैं। राजा को इसकी भी स्मृति नहीं थी। शकुन्तला ने राजा के द्वारा कही हुई अपमानजनक बातों को सुनकर उन्हें खोटीखरी सुनाई। शारद्वत ने कहा कि यह पत्नी आपकी है। रखिये या छोड़िये। हम लोग चले। पुरोहित से परामर्श कर राजा ने निर्णय लिया कि शकुन्तला पुरोहित के घर में तब तक रहे, जब तक इसको पुत्र नहीं होता। यदि पुत्र चक्रवर्ती हो तो वह आपका माना जायेगा और यह स्वीकृत होगी। अन्यथा उसे कण्व के पास भेज दिया जायेगा।

पुरोहित के पीछे जाते हुए शकुन्तला ने कहा—**भगवति वसुन्धरे देहि मे विवरम्।** उसी समय एक ज्योति आई और उसे उठा कर उड़ गई। राजा ने अपनी मानसिक द्विविधा का वर्णन किया है—

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मे हृदयम् ।। ५·३१

एक दिन किसी मछुए को रक्षियों ने पकड़ा, जब वह राजमुद्रिका बेच रहा था। उसने बताया कि शक्रावतार में मुझे एक मछली मिली, जिसके पेट से यह अंगूठी निकली है। नागरिक (कोतवाल) उस अंगूठी को राजा को दिखाने गया। उसे देखते ही शाप विगलित हो जाने पर राजा को शकुन्तला की स्मृति हो आई। वे उसकी स्मृति में अतिशय सन्तप्त रहने लगे।

शकुन्तला की माता मेनका ने सानुमती नामक अप्सरा से अपनी कन्या का दु:ख मिटाने के लिए उपाय करने के लिए कहा था। समय निकाल कर वह दुष्यन्त के प्रमदवन में सब स्थिति जानने के लिए अदृश्य रहकर विचरण करने लगी। वसन्त ऋतु होने पर भी वहाँ वसन्तोत्सव पर रोक लगी थी। तत्सम्बन्धी राजाज्ञा को वृक्ष और लताओं ने तथा पशु-पक्षियों ने भी मानकर वासन्तिक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन नहीं किया। यथा,

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूर्णार्धकृष्टं शरम्॥ ६.४

थोड़ी देर के पश्चात् राजा भी वहीं आ गये। विदूषक उनके साथ था। वे प्रिया-विरह में लताओं के बीच मनोविनोद करना चाहते थे। सानुमती अदृश्य रहकर उनकी विरहातुर प्रवृत्तियाँ देख रही थी। राजा विदूषक से शकुन्तला-विषयक इतिवृत्त आदि से अन्त तक भावुकतापूर्ण शब्दों में कह रहे थे। विदूषक ने आश्वासन दिया कि उससे भेंट होगी। राजा ने कहा––मैंने शकुन्तला से कहा था––

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम्।
तावत्प्रिये मदवरोध गृहप्रवेशं नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति॥६.१२

राजा अंगूठी को डाँटने लगे।

उसी समय राजा के द्वारा निर्मित शकुन्तला और उसकी सखियों का चित्र चेटी ने लाकर उसके समक्ष रखा। चित्र देखकर राजा ने कहा कि इसमें जो वस्तुयें छूट गई हैं उन्हें पूरा करना है। चेटी वर्त्तिका-करण्डक आदि लेने गई। उसमें क्या बनाना था––

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥

एक भौंरा उस चित्र पर बना था, जो शकुन्तला के मुखमण्डल पर मंडरा रहा था। राजा ने उसे दण्ड देने की बात कही तो विदूषक ने कहा कि यह तो चित्र है। यह सुनकर राजा के नेत्र आँसू से भर आये।

इधर चेटी वर्तिका-करण्ड लेकर आ रही थी कि बीच ही में महारानी वसुमती ने उसे छीन कर कहा कि मैं स्वयं ले जाऊँगी। उसका आना सुनकर विदूषक चित्र लेकर मेघप्रतिच्छन्द-भवन में जा छिपा।

तभी प्रतीहारी ने अमात्य का पत्र दिया कि धनमित्र नामक निःसन्तान व्यापारी मर गया है। उसकी सम्पत्ति राजकोश में आनी चाहिए। राजा ने कहा कि यदि इसकी

कोई पत्नी गर्भवती हो तो उससे उत्पन्न बालक सेठ के धन का स्वामी होगा । राजा ने आदेश निकाला—

> येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
> स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥ ६·२३

उसे अपने निःसन्तान होने की और शकुन्तला के गर्भवती होने की स्मृति हो आई ।

उसी समय मेघप्रतिच्छन्द-भवन में 'विदूषक को भूत ने पकड़कर उसकी गर्दन मरोड़ दी'—यह कोलाहल सुनाई पड़ा । राजा त्राहि त्राहि सुनकर वहाँ पहुँचे । नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि दुष्यन्त में क्या सामर्थ्य है कि तुम्हें बचायें । राजा बाण प्रहार करने वाले ही थे कि मातलि ने प्रकट होकर राजा से कहा कि आपको इन्द्र ने कालनेमि-वंशी दानवों को दण्ड देने के लिए बुलाया है । इसी समय हमारे रथ से चलिये । राजा ने कहा कि विदूषक को क्यों पीड़ा दी ? मातलि ने कहा कि आप हतोत्साह थे । आप को प्रोत्तेजित करने के लिए यह सब किया ।

आकाश में उड़ने वाले इन्द्र के रथ में राजा दुष्यन्त उतर रहे हैं । सारथि मातलि है । इन्द्र ने राजा के विजय दिलाने वाले पराक्रम से अतिशय प्रसन्न होकर उनका विशेष आदर किया था । स्वर्ग से उतरते हुए राजा को मातलि ने बताया कि अब हम हेम-कूट पर्वत के निकट हैं, जहाँ मारीच ऋषि की तपोभूमि है । राजा मारीच की प्रदक्षिणा करने के लिए वहाँ उतर गये । मातलि ने आश्रम दिखाया जहाँ तपस्वी थे—

> वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा　सन्दष्टसर्पत्वचा
> कण्ठे जीर्णलता प्रतानवलयेनात्यर्थसम्पीडितः ।
> अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
> यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥

मारीच व्याख्यान दे रहे थे । राजा अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गये । मातलि ऋषि के पास साक्षात्कार का अवसर देखने के लिए गये । राजा की दाहिनी बाँह के फड़कने से शृङ्गारोपलब्धि की सूचना मिली । उसी समय आधा दूध पी लेने वाले सिंह-शावक के साथ खेलने के लिए उसे खींचता हुआ सर्वदमन नामक बालक दिखाई पड़ा । उसे देखते ही राजा का उसके प्रति औरस-सा स्नेह बढ़ा । उसकी देखभाल करने वाली तप-स्विनी ने कहा—शावक को छोड़ो । दूसरा खिलौना दूँगी । शिशु ने हाथ खोलकर कहा-लाओ, दो । राजा ने देखा कि उसके हाथ पर चक्रवर्ती के चिह्न हैं । खिलौना था मिट्टी का चित्रित मयूर, जिसे लाने के लिए एक तपस्विनी चली गई । दूसरी तपस्विनी सिंह-शावक को छुड़ा रही थी, पर सर्वदमन नहीं छोड़ रहा था । उसने दुष्यन्त से कहा कि आप ही छुड़ा दें । राजा ने बालक को ऋषिकुमार सम्बोधित किया । तपस्विनी ने

कहा—यह ऋषिकुमार नहीं है। यह पुरुवंशी है। इसकी माता ने अप्सराओं से सम्बद्ध होने के कारण इसे यहीं जन्म दिया। तभी खिलौना लेकर तपस्विनी आ गई। तापसी ने सर्वदमन से कहा—शकुन्त-लावण्य देखो। यह कहते ही सर्वदमन ने कहा—मेरी माता कहाँ है ? राजा को विदित हुआ कि इसकी माता का नाम शकुन्तला है।

इसी बीच एक आश्चर्यजनक घटना घटी। सर्वदमन का रक्षाकरण्डक सिंह-शावक के लिए छीना-झपटी करते हुए कहीं गिर पड़ा था। उसके विषय में प्रसिद्ध था कि सर्वदमन के माता-पिता के अतिरिक्त कोई और उसे गिर पड़ने पर छूयेगा तो वह साँप बनकर काटेगा। उसे दुष्यन्त ने उठा लिया। तपस्विनियों को आश्चर्य हुआ कि कहीं यह सर्वदमन का पिता तो नहीं है। सभी सर्वदमन के साथ शकुन्तला के पास चले। राजा ने जब सर्वदमन को वत्स कहा तो उसने कहा कि तुम नहीं, दुष्यन्त मेरे पिता हैं। शकुन्तला ने सर्वदमन को गोद में लिए दुष्यन्त को देखा। राजा ने सकरुण शब्दों में शकुन्तला से कहा—

स्मृति-भिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्॥ ७·२२

मातलि इस बीच आ पहुँचा। उसने राजा से कहा कि चलिए मारीच के पास। शकुन्तला और सर्वदमन भी साथ गये। मारीच ने उन्हें आशीर्वाद दिया—**चिरंजीव, पृथिवीं पालय**। शकुन्तला को आशीर्वाद दिया—तुम इन्द्राणी के समान बनो। ऋषि ने कुटुम्ब के तीन जनों की श्रद्धा, धन और विधि की उपमा दी।

मारीच ने शाप की बात बताई, जो दुष्यन्त और शकुन्तला को अविदित थी। उन्होंने कहा कि यहाँ का सर्वदमन लोक का भरण करने के कारण भरत नाम से विख्यात होगा। उसी समय कण्व को आकाश-मार्ग से दूत भेज कर समाचार दिया गया कि दुष्यन्त ने शकुन्तला और उसके पुत्र को ग्रहण कर लिया है। भरत वाक्य है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः॥ ७·३५

कथास्रोत

दुष्यन्त और भरत के नाम वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रणय-गाथा सर्वप्रथम महाभारत में मिलती है, जो इस प्रकार है—

पुरुवंश के आदर्श चक्रवर्ती सम्राट दुष्यन्त थे। एक बार वे मृगया करते हुए मालिनी नदी के तटीय वन में पहुँचे। वहीं कश्यपगोत्रीय कण्व मुनि का आश्रम था। राजा सेना को कुछ दूर रोक कर कण्व से मिलने चले गये। उनके साथ केवल मन्त्री और पुरोहित थे। उनको भी छोड़कर जब राजा कण्व से मिलने गये तो ज्ञात हुआ कि वे अनुपस्थित हैं। उन्हें तापसी शकुन्तला मिली। शकुन्तला ने उनका स्वागत किया

और आने का उद्देश्य पूछा। राजा ने कहा कि मैं मुनि की उपासना करने आया हूँ। शकुन्तला ने कहा—

गतः पिता मे भगवान् फलान्याहर्तुमाश्रमात् ।
मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥

राजा ने शकुन्तला से उसका परिचय पूछा। उसने विश्वामित्र और मेनका से अपने जन्म की कथा बताई। राजा ने उसे क्षत्रिय-कन्या जान लिया और कहा कि तुम हमारी महारानी बन जाओ। शकुन्तला ने कहा कि मुहूर्त भर रुकिये। फल लाने के लिए कण्व गये हैं। वे मुझे आपको दे देंगे। दुष्यन्त ने कहा कि तुम स्वयं अपने पिता हो। अपना समर्पण स्वयं कर सकती हो। गान्धर्व विवाह से तुम मेरी भार्या बन जाओ। शकुन्तला ने कहा—

मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः ।
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे सङ्गमस्त्वया ॥

दुष्यन्त ने सब बातें मान लीं और उससे विधिवत् पाणिग्रहण करके उसके साथ रहे और कहा कि तुम्हें ले जाने के लिए चतुरंगिणी सेना भेजूँगा, जो तुम्हें मेरे निवास पर पहुँचायेगी।

दुष्यन्त अपनी राजधानी लौट गया। उसे भय था कि मुनि क्रोध करेंगे। उसके जाने के एक घड़ी पश्चात् कण्व आश्रम पर आये। कण्व के सामने लज्जावश शकुन्तला तो नहीं आई, पर अपने दिव्य ज्ञान से कण्व सब कुछ जान कर प्रसन्न थे। उन्होंने कहा कि क्षत्रिये ! तुम्हारे गर्भ से जो पुत्र होगा, वह

महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः ।
य इमां सागरापाङ्गीं कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥

फिर तो शकुन्तला ने कहा—

मया पतिर्वृतो राजा दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥

उसने दुष्यन्त के शाश्वत हित के लिए मुनि से वर मांगे। तीन वर्ष बीत जाने पर शकुन्तला से पुत्र का जन्म हुआ। कण्व ने उसका जातिकर्मादि संस्कार कराये। छः वर्ष की अवस्था हुई तो

सिंहव्याघ्रान् वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा ।
बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥

उसका नाम सर्वदमन रख दिया गया। मुनि ने सोचा कि अब इसके युवराज होने का समय हो चुका है। कण्व ने शिष्यों को बुलाकर कहा कि शकुन्तला को पुत्र-सहित इसके पति के घर में पहुँचा आओ। वह दुष्यन्त के पास पहुँची और राजसभा में प्रविष्ट हुई। शिष्य वहीं से लौट गये। शकुन्तला राजा से बोली—

अयं पुत्रस्त्वया राजन् यौवराज्येऽभिषिच्यताम् ।
त्वया ह्ययं सुतो राजन् मय्युत्पन्नः सुरोपमः ॥

फिर राजा ने सब कुछ स्मरण रखकर भी प्रत्याख्यान किया---

न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्ट तापसि ।
धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह ।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत् कुरु ॥

शकुन्तला ने राजा को खोटी-खरी सुनाई और कहा कि ईश्वर तो जानता है कि आपने मुझसे विवाह किया। दुष्यन्त ने विश्वामित्र और मेनका की निन्दा की और शकुन्तला को पुंश्चली कहा। उसने आज्ञा दी कि तुम चली जाओ। शकुन्तला ने कहा-

अनृतं चेत् प्रसङ्गस्ते श्रद्धधासि न चेत् स्वयम् ।
आत्मना हन्त गच्छामि त्वादृशेनास्ति संगतम् ॥

वह वहाँ से चल पड़ी। तभी अशरीरिणी वाणी हुई---दुष्यन्त, शकुन्तला सत्य कहती है। तुम पुत्र का पालन करो। तुम्हारा यह पुत्र भरत नाम से विख्यात होगा। राजा ने कहा---

अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम् ।
यद्यहं वचनादस्या गृह्णीयामि ममात्मजम् ॥
भवेद्धि शंक्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम् ॥

राजा ने इस प्रकार भरत को स्वीकार कर लिया।

पौराणिक साहित्य में भी दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा अनेक स्थानों पर मिलती है, किन्तु ये सारी कथायें कालिदास के परवर्ती युग की हैं और उनके स्रोत महाभारत या अभिज्ञानशाकुन्तल हैं।

कथा-समीक्षा

कालिदास ने महाभारत की कथा को आधार तो बनाया है। किन्तु उसका सर्वथा परिष्कार कर दिया है। महाभारतीय वन्य कथा को कालिदास ने नागरोचित स्वर्णपरिधान से सुसंस्कृत किया। अभिज्ञानशाकुन्तल में नीचे लिखी नई बातें प्रधान हैं---

(१) शकुन्तला की सखियों की कल्पना, राजा दुष्यन्त का उनके वृक्ष-सेचन के समय वृक्षान्तरित होकर उनकी बातें सुनना और सखियों से बातें करना।

(२) तीर्थयात्रा के उद्देश्य से कण्व को बहुत दिनों के लिए अनुपस्थित रखकर उनकी अनुपस्थिति में आश्रमीय यज्ञ का राक्षसों के विघ्न से रक्षा करने के लिए दुष्यन्त का तपस्वियों के निवेदन करने पर वहीं अनेक दिनों तक ठहर जाना।

(३) शकुन्तला का प्रथम दृष्टि में दुष्यन्त से प्रेम होने पर उसकी विरहावस्था में सखियों द्वारा उससे पत्र लिखाना और दुष्यन्त का वृक्षान्तरित रहकर अन्त में प्रकट होकर शकुन्तला का विरह-सन्ताप मिटाना ।

(४) राजा का शकुन्तला को अंगूठी देना ।

(५) दुर्वासा का शकुन्तला को शाप देना । इस शाप और तत्सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं को कुन्तक ने उच्चकोटिक प्रकरण-वक्रता का उदाहरण प्रस्तुत किया है—**'प्रबन्धस्य सकलस्यापि जीवितम्, भाति प्रकरणं काष्ठाधिरूढरसनिर्भरम्' वक्रोक्ति ०४·४**

(६) अंगूठी का शक्रावतार में गिर जाना ।

(७) प्रत्याख्यान होने पर शकुन्तला का मारीच के आश्रम में पहुँचना ।

(८) अंगूठी का मछुए से मिलना और राजा को शकुन्तला की स्मृति ।

(९) मातलि के द्वारा इन्द्र की सहायता के लिए दुष्यन्त को स्वर्ग में ले जाना और लौटते समय हेमकूट पर्वत पर मारीच की उपासना करने के लिए राजा का रुकना ।

(१०) मारीच आश्रम में शकुन्तला और भरत के साथ संगम ।

उपर्युक्त नवीन तत्त्वों को जोड़ने से इस कथानक में समय और देशव्याप्ति की विपुलता के संयोजन से तत्सम्बन्धी महाभारतीय संकीर्णता दूर की जा सकी है और साथ ही नायक और नायिका के किञ्चित् मलिन स्वरूप को पोंछ-पाँछ कर और तपा कर स्वर्णिम चमक प्रदान की गई है ।[१] इस प्रकार के कथानक के सर्वविध वैशद्य से कवि को अभीष्टतम वस्तुओं की वर्णना के लिये पर्याप्त अवसर मिला है ।

अभिज्ञानशाकुन्तल के कथानक के विषय में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मत है—इस प्रकार कालिदास ने पापी (दुष्यन्त) के हृदय की शाश्वत अग्नि में उसके पाप को भस्म कर दिया है । कवि ने बाहर से इसे छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है । अन्तिम अङ्क में जब यवनिका गिरती है, हम समझते हैं कि सारा पाप चिता पर जल चुका है और हमारे हृदय में वह शान्ति विराजती है, जो पूर्ण और तुष्टिप्रद निर्वहण से उत्पन्न होती है । कालिदास ने विषवृक्ष की जड़ को आभ्यन्तर से काट दिया है, जिसका आरोपण किसी साहसिक बाह्य शक्ति ने किया था । कवि ने दुष्यन्त और शकुन्तला के शारीरिक मिलन को शोक के पथ पर प्रवर्तित किया है और इस प्रकार उसको पावनता और

---

१. महाभारत में कण्व एक-दो मुहूर्त ही फल लाने के लिए बाहर रहते हैं और उनके लौट आने के पहले ही दुष्यन्त वहाँ से चले जाते हैं । इसी बीच उनकी शकुन्तला से बातचीत और गान्धर्व विवाह हो जाना कुछ अटपटा लगता है । कालिदास ने कण्व को कई दिनों के लिए सोमतीर्थ भेज दिया है । इस प्रकार समय की विपुलता से कथा का संस्कार हो गया है ।

औदात्त्य प्रदान करके आध्यात्मिक मिलन में परिणत किया है। अतएव गेटे ने ठीक ही कहा है कि अभिज्ञानशाकुन्तल ने वासन्तिक पुष्पाभरण को शारदी फलागम से सम्पृक्त किया है। यह स्वर्ग और पृथ्वी को मिलाता है। वास्तव में शकुन्तला में एक स्वर्ग से विप्रयोग है और दूसरे स्वर्ग से संयोग।[1] रवीन्द्र के इस मत के अनुसार दुष्यन्त का यह पाप था, जो पहले से तीसरे अङ्क में दिखाया गया है। रवीन्द्र के इस मत का प्रायः समालोचकों ने समर्थन भी किया है। डा० मेनकर ने कालिदास नामक अपनी पुस्तक में इस मत से असहमति प्रकट करते हुए नीचे लिखे प्रबल तर्क उपस्थित किये हैं—

(१) राजा का प्रथम और पंचम अङ्क में व्यवहार आद्यन्त अतिशय महानुभावोचित है।

(२) प्रथम अङ्क में दुष्यन्त को रक्षा के लिए बुलाओ—इससे निष्कर्ष निकलता है कि वातावरण में कण्व का विचार गूँज रहा था कि शकुन्तला दुष्यन्त को दी जाय।

(३) कण्व ने जब जाना कि शकुन्तला ने दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह कर लिया है तो इसे योग्य ही समझा।

और (४) पूरे नाटक में यह कहीं नहीं कहा गया है कि तपस्या के द्वारा शकुन्तला और दुष्यन्त का परिशोधन कवि का मन्तव्य है।

इस प्रकार की तर्क-सरणि से भी दुष्यन्त के विरुद्ध जो दोषारोपण है, वह मिट नहीं जाता। सबसे बड़ी बात है दुष्यन्त के विरोध में कि आश्रम का अपने समुदाचार का मानदण्ड होता है। क्या उसे वर्णाश्रम के रक्षक राजा को अपनी शृङ्गारित क्रीडाभूमि बनाना चाहिए? विदूषक ने राजा से यही कहा था कि आपने तपोवन को प्रमदवन में परिणत कर डाला है। प्रथम अंक में आश्रम में युवती कन्यायें बातें कर रही हैं। क्या यह उचित था कि एक राजा ओट से इनकी बातें सुनता? क्या आज भी इस प्रकार के व्यवहार समाज में उच्छृंखल नहीं माने जाते? और फिर राजा ऐसा करे? क्या कालिदास के युग में समुदाचार का कोई दूसरा मानदण्ड था? और तो और वे तीनों

१. 'Thus has Kālidāsa burnt away vice in the eternal fire of the sinner's heart; he has not tried to conceal it from the outside. When the curtain drops in the last act we feel that all the sin has been destroyed as on a funeral pyre and the peace born of a perfect and satisfactory fruition reigns in our hearts. Kālidāsa has internally cut right away the roots of the poison tree, which a sudden force from the outside had planted. He has made the physical union of Duṣyanta and Śakuntalā tread the path of sorrow and thereby chastened and sublimated it into a moral union. Hence did Goethe rightly say that Śakuntalā combines the blossoms of spring with the fruits of autumn. It combines heaven and earth. Truly in Śakuntalā there is one Paradise lost and another Paradise Regained. Introduction to the Stage Edition of Śakuntalā.

तापसी कन्यायें थीं। दुष्यन्त क्या प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे कि कण्व के आने पर शकुन्तला के लिये याचना कर लेते ?

अभिज्ञानशाकुन्तल के पाँचवें अङ्क में शार्ङ्गरव और गौतमी ने अपने वक्तव्यों से स्पष्ट कर दिया है कि उन दोनों का गान्धर्व विवाह सर्वथा अनुचित कार्य था, जिसके लिए उन्हें दण्ड भोगना आवश्यक था।

कालिदास ने महाभारतीय दुष्यन्त की चारित्रिक कालिमा को धोने का भरसक प्रयास किया है। महाभारत का दुष्यन्त तो सर्वथा गर्हित प्रतीत होता है। उसे कितना भी धोया जाय, मूल कालिमा की झलक मिट नहीं सकती। इसके कथानक में मूलतः कुछ ऐसे तत्व हैं, जिससे दुष्यन्त और शकुन्तला आधुनिकतम प्रेमियों की कोटि के बनकर समाज की सांस्कृतिक और चारित्रिक परम्पराओं पर आरम्भ में कुठाराघात करते हैं। उन तत्वों को कथानक से निकालना असम्भव था। एक ऐसा तत्त्व है तापसी कन्या को फुसला कर आश्रमभूमि में उससे गान्धर्व विवाह करना।

सखियों से यह कहलाना कि **'तदर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम्'** अर्थात् शकुन्तला प्रेम में मर रही है और दुष्यन्त प्रेमोपचार द्वारा उसके प्राणों की रक्षा करे— यह महायानीय पद्धति प्रतीत होती है, जिसका सद्धर्म से सामञ्जस्य कोरी आग्रहबुद्धि से ही किया जा सकता है।

श्रेष्ठ तत्व

अभिज्ञानशाकुन्तल के कथानक में ही कुछ ऐसे अनूठे तत्व हैं, जो इसे जनमानस की तन्त्री से संवादित करा देते हैं। चतुर्थ अङ्क में कन्या का पतिगृह के लिए प्रस्थान-सम्बन्धी वृत्त ऐसे कारुणिक और विशाल स्तर पर कहीं भी अन्यत्र नहीं मिलता।[1] चतुर्थ अङ्क को श्रेष्ठ मानने का सम्भवतः यही सर्वप्रथम कारण है। यहाँ हमें शकुन्तला के पूर्वापर प्रसङ्गों को भूल कर एक मात्र इसी सन्दर्भ में देखना है। वह शकुन्तला एक विश्वामित्र की कन्या नहीं रह गई है। वह एक कण्व की कन्या नहीं रह गई है। वह तो आश्रम-भूमि के प्रत्येक जीव-जन्तु, वृक्ष-लतादि की यथायोग्य कन्या, भगिनी या माता है, जिससे उसे बिछुड़ना है। तभी तो हम देखते हैं कि इस अवसर पर सभी तपस्विनियाँ हाथ में नीवार लेकर स्वस्त्ययन कर रही हैं। कण्व ने वनस्पतियों से कुसुम मंगाये थे पर उन्होंने क्षौम वस्त्र आदि दिये और वनदेवियों ने आभरण दिये—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।

१. साधारणतः महाकाव्य और नाटकों में कन्या के पतिगृह-प्रस्थान की चर्चा एक दो वाक्य में पूरी कर दी जाती है।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेद-प्रतिद्वन्द्विभिः ॥४·५

स्वयं कण्व ने उन सन्निहित-देवता-तपोवन-तरुग्रों से कहा—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ४ ६

वृक्षों ने कोकिलवाणी से और वनदेवियों ने आकाशवाणी द्वारा शकुन्तला को जाने की अनुमति दी। प्रस्थान के अवसर पर वियोग की अनुभूति से अन्य वन्य विभूतियाँ भी प्रभावित हैं। यथा,

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तनमयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः ॥ ४·१२

शकुन्तला लता-भगिनिका वनज्योत्स्ना से कहती है कि अपनी शाखा-रूपी बाँहों से मुझसे लिपट लो। आज से तुमसे दूर रहना है। ऐसे ही हैं मृगपोतक, जो अपने को शकुन्तला के कपड़े में ही लपेट लेता है, और उटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधू।

वास्तव में कवि की वह सहानुभूतिमयी अजस्र भावधारा भावुकों को निरवधिकाल तक रसनिमग्न करती हुई शाश्वत रूप से पूर्ण बनी रहेगी। ऐसा कथांश विश्व की अनूठी काव्य-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ सार है। यह यहीं है और अन्यत्र नहीं है।

कालिदास ने कुछ कथांशों को अपने प्रिय विषयों की चर्चा करने के लिए बृहत्तर किया है। कवि को आकाश-यान की चर्चा अतिशय प्रिय है। विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा के रथ से मेघ चूर्ण होते हैं। मेघदूत में कवि ने मेघ को रामगिरि से हिमालय तक उड़ाया है। रघुवंश में भी राम के पुष्पक के लङ्का से अयोध्या तक उड़ने का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। कुमारसम्भव में सप्तर्षियों को कवि ने स्वर्ग से पृथ्वी तक और गौरीशिखर से औषधिप्रस्थ तक उड़ाया है। यद्यपि नाटक में ऐसी उड़ान के लिए कोई विशेष अवसर नहीं था, फिर भी सातवें अंक में नायक को स्वर्ग-मार्ग देखना है। इसी आकाश-यात्रा का आख्यान पाँच पद्यों में है। कालिदास ने बड़े चाव से इन्द्र के द्वारा कण्व की सत्क्रिया का वर्णन किया है। नाटक के आख्यान में इस सत्क्रिया का कोई स्थान नहीं था। इस आख्यान के द्वारा अपने विक्रमादर्श देव इन्द्र को पाठक के स्मृति-पटल पर अधिक समय तक रखने में सफल हुआ है। कालिदास का अन्य प्रिय विषय है शिशुओं की चर्चा करना। दुष्यन्त ने किस प्रकार सर्वदमन से प्रेम किया—इसकी चर्चा करते हुए मानो वे भूल जाते हैं कि उन्हें शकुन्तला और दुष्यन्त का पुनर्मिलन कराना है।' इन आख्यानांशों से प्रकट होता है कि कवि नाट्यौचित्य को सत्यं शिवं सुन्दरम् के साथ यथासम्भव जोड़ते चलता

है ।[1] उसे सदैव ध्यान रहता है कि लोकदृष्टि का संस्कार करने के लिए उसे रमणीयार्थ का सिंहावलोकन करना ही चाहिए ।

प्रकरणवक्रता की दृष्टि से पूर्वचर्चित दुर्वासा का शाप लोकोत्तर है ।

भास का प्रभाव

कालिदास ने सातवें अङ्क में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के पहचानने में जो विलम्ब दिखाया है, वह स्वप्नवासवदत्त में उदयन के द्वारा वासवदत्ता की पहचान की प्रक्रिया से मिलती-जुलती है । पद्मावती के यह कहने पर भी कि वासवदत्ता के चित्र से मिलती-जुलती एक स्त्री हमारे साथ रहती है, यौगन्धरायण के आने पर वह यह सोच ही नहीं पाता कि पुनः वासवदत्ता मिल सकती है । इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में यह जानकर कि सर्वदमन की माता शकुन्तला है, दुष्यन्त कहता है—**सन्ति पुनर्नामधेय-सादृश्यानि** । इसी प्रकार सर्वदमन का दुष्यन्त से यह कहना कि मेरे पिता तुम नहीं, दुष्यन्त हैं, मध्यमव्यायोग में घटोत्कच का भीम को न पहचान कर भीम से यह कहने के समकक्ष पड़ता है । **इदमुपपन्नं पितुर्मे भीमसेनस्य** ।[2] ऐसा ही प्रकरण भास ने पाञ्चरात्र में उपस्थित किया है, जब भीमादि को न पहचानते हुए वह भीम से कहता है—

किं भवान् मध्यमस्तातस्तस्यैतत् सदृशं वचः ।। २·५६

अभिज्ञानशाकुन्तल में दुर्वासा का शाप एक नया कथांश है । वर और शाप से पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य भरपूर है ।[3] रूपक-साहित्य में इसका सर्वप्रथम उपयोग भास के अविमारक में दिखाई देता है । इसमें शापाधीन नायक एक वर्ष के लिए चाण्डाल हो गया था । इस नाटक में नायिका से नायक का पुनर्मिलन, विद्याधर के द्वारा नायक को दी हुई अँगूठी आदि से प्रतीत होता है कि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल का कथा-विन्यास करते समय अविमारक की सहायता ली होगी ।

---

१. निःसन्तान सेठ का वृत्त भी इसी उद्देश्य से जोड़ा गया है कि पुत्र की महिमा बताई जाय ।

२. पात्रों को अपरिचित रखकर कथा में वैचित्र्य का समाकर्षण कालिदास ने भास से सीखा है । विक्रमोर्वशीय में परिव्राजिका और मालविका अज्ञात रहती हैं । अभिज्ञान-शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में दुष्यन्त अज्ञात रहते हैं और अन्तिम अङ्क में तापसी और सर्वदमन उन्हें नहीं पहचानते । भास के इस कथावैशिष्ट्य की चर्चा यथास्थान की जा चुकी है ।

३. महाभारत के अनुसार दुर्योधन ने दुर्वासा का उचित स्वागत न होने पर उनसे पाण्डवों को शाप दिलाने की योजना प्रवर्तित की थी । वन प०२६३ अध्याय से ।

मृच्छकटिक में शर्विलक कहता है—

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः,
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ।

इसके आधार पर कालिदास ने लिखा है—

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु ।
सन्दृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ॥ ५·२२

प्रेमपत्र

नायक और नायिका के प्रेम-पत्र की सर्वप्रथम प्रवृत्ति नाट्य साहित्य में कालिदास के द्वारा उद्भावित है। उर्वशी ने पत्र लिखा था और वह नायक को मिला। शकुन्तला का पत्र तो लिखा गया, किन्तु उसे नायक को विना दिये ही काम बन गया। यदि पत्र विना दिये ही काम बन गया तो यही कहा जा सकता है कि नाट्य साहित्य में प्रेम-पत्र प्रवर्तन को कालिदास येन-केन प्रकारेण वैसे ही समाविष्ट करना चाहते थे, जैसे भास मूर्ति और चित्रादि को। जनाभिरुचि की प्रतीक हैं ये नयी उद्भावनायें। चतुर्थ अंक में अनसूया कहती है—**अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि एन्तिअ एतिअस्स कालस्स लेहम-त्तंपि ण विसज्जति**। इसमें भी पत्र की चर्चा है।

अभिज्ञान

संस्कृत-साहित्य में मुद्रा के द्वारा प्रत्यय कराने के उद्देश्य से उसे अभिज्ञान-रूप में देने की प्रथा पर्याप्त पुरानी है। रामायण के अनुसार राम ने हनुमान् को सीता के लिए अपनी अँगूठी दी—

ददौ तस्मै ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तप ॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्ना नु पश्यति ॥ किष्कि० ४४-१२-१३

उस अंगुलीयक को सीता ने अपने पति के समान माना—

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम् ।
भर्त्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ सुन्दर० ३६·४

अभिज्ञानशाकुन्तल में अँगूठी का इतना महत्त्व है कि इसका नाम ही इस पर पड़ा है।[1] इससे सम्बद्ध कथा के तीन भाग हैं—(१) राजा के द्वारा अंगुलीयक-प्रदान

१. स्वप्नवासवदत्त में उदयन ने वासवदत्ता को घोषवती वीणा दी थी। उसके अलग हो जाने पर एक दिन वह वीणा किसी पुरुष को नर्मदा तट पर मिली, जिसे उस व्यक्ति ने उदयन को दिया। वीणा का प्रभाव उदयन पर बहुत कुछ वैसा ही पड़ा, जैसा मुद्रा का दुष्यन्त पर। स्वप्नवासवदत्त और अभिज्ञानशाकुन्तल के इन वृत्तों में जो साम्य है, उससे निश्चित है कि कालिदास के समक्ष मुद्राप्रकरण में घोषवती थी।

(२) अंगुलीयक का शक्रावतार में गिरना और फिर धीवर के हाथों राजा के पास पहुँचना और (३) अँगूठी को पुनः राजा के द्वारा शकुन्तला को दिया जाना, पर ग्रहण न किया जाना। अपनी प्रेयसी को अँगूठी देना प्रेमोपहार के रूप में विरल ही है।

राजा ब्रह्मदत्त ने वन में किसी सुन्दरी से गान्धर्व विवाह किया और पहचान के लिए उसे एक अँगूठी दी थी। उसे वहीं पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र सहित जब वह स्त्री राजा के पास पहुँची तो उसे राजा ने अँगूठी दिखाने पर भी नहीं पहचाना। तब उस स्त्री ने अपने पुत्र की टाँग पकड़कर उसे आकाश में यह कहकर उछाल दिया कि यदि यह तुम्हारा पुत्र हो तो ऊपर स्थित रहे। वह बालक गिरा नहीं और राजा के द्वारा स्वीकृत हुआ। अभयमाता थेरीगाथा के अनुसार बिम्बसार ने उज्जयिनी की गणिका पद्मावती से विवाह करके उसे अँगूठी दी। अभय नामक पुत्र होने पर अँगूठी से ज्ञात होकर वह पिता से अपनाया गया। मछली के पेट से अँगूठी के उद्धार का आधार ग्रीक कथा में है। पाँचवीं शती ईसवी पूर्व के हिरोडोटस नामक ग्रीक इतिहासकार के अनुसार ग्रीस के राजा पालिक्रेट्स ने अपनी अँगठी समुद्र में डाल दी। कुछ दिनों के पश्चात् किसी मछुए के द्वारा लाई हुई मछली के पेट से वह राजा को फिर मिली। इस कथा के आधार पर कालिदास ने अँगूठी के मछली के पेट में पहुँचने की कल्पना की होगी। यह मत मिराशी को मान्य नहीं है, किन्तु उन्होंने इसके विरोध में कोई सबल प्रमाण नहीं दिया है। वास्तव में उस प्राचीन काल में कोई भी ज्ञान-विज्ञान काल और देश की परिसीमाओं में बहुत बंधा नहीं था। अच्छी कहानियाँ और ज्ञान-विज्ञान जैसे भारत से विदेशों में गये, वैसे ही विदेशों से भारत में आये। नाटक में मुद्रा का उपयोग सर्वप्रथम भास के अविमारक में मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल की भाँति ही अपना स्मरण रखाने के उद्देश्य से अभिज्ञान देने की चर्चा पहले से ही मृच्छकटिक में मिलती है। आर्यक का प्राण बचाने वाले वीरक ने उसे एक तलवार दी और कहा कि भूलना मत—यह अभिज्ञान है।[1]

अन्तरित श्रवण

नाट्य-कला की दृष्टि से आख्यान में अदृश्य रहकर या वृक्षान्तरित होकर दूसरों की बातें सुनने का विशेष महत्त्व है। इसमें प्रथम और तृतीय अंङ्क में नायक ओट में रहकर नायिकादि की बातें सुनता है। उसके आत्मगत विचार से इस बीच दर्शक के लिए रसभाव-निर्झरिणी प्रवाहित होती है। इसी प्रकार छठें अंक में सानुमती का अदृश्य रहकर नायक और विदूषक की बातें सुनना और एकोक्ति प्रस्तुत करना है। इस विधान का अच्छा विकास भास के नाटकों में मिलता है।

---

१. अस्ति तेन राजर्षिणा सम्प्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमंगुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। अभिज्ञानशाकुन्तल में।
अज्जे वसन्तसेणे इमं च अहिण्णाणं दे देमि। मृच्छकटिक में।

अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा में शकुन्तला के प्रत्याख्यान के पश्चात् जो कथांश है, उसकी कल्पना करने में कालिदास को रामायण के उत्तरकाण्ड से सहायता मिली होगी, यह निर्विवाद है। मारीच के आश्रम में शकुन्तला और सर्वदमन का रहना और नायक से उनका मिलन अंशतः वाल्मीकि रामायण में सीता के वाल्मीकि के आश्रम में रहने की कथा के आधार पर कल्पित है।

इन्द्रानुयोग

कालिदास ने अपने काव्यों में इन्द्र को मानवता के अतिशय निकट ला दिया है। रघुवंश के इन्द्रानुयोग प्रकरण से स्पष्ट है कि असुरों से लड़ाई होने पर इन्द्र की सहायता करने के लिए अनेक रघुवंशी राजा स्वर्ग में गये, जिनमें ककुत्स्थ, दशरथ और कुश प्रमुख हैं। पुरुवंशी राजाओं को इन्द्र की सहायता में कालिदास ने नियोजित किया है। इसके पहले विक्रमोर्वशीय में असुरों से युद्ध करते समय पुरूरवा के द्वारा इन्द्र की सहायता करने की एक कहानी कालिदास कल्पित कर चुके थे। अभिज्ञानशाकुन्तल के अनुसार कालनेमि-वंशी असुरों का विनाश करने लिए इन्द्र ने जो युद्ध किया, उसमें दुष्यन्त ने मर्त्यलोक से स्वर्ग जाकर इन्द्र की सहायता की। उपर्युक्त सभी राजाओं की इन्द्र की युद्धकालीन सहायता उपलब्ध पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं मिलती। केवल वाल्मीकि रामायण में इतना मिलता है—

> स्मर राजन् पुरावृत्तं तस्मिन् देवासुरे रणे ।
> तत्र त्वच्च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ।। बाल० ११·१८

अर्थात् देवासुर संग्राम में दशरथ सहायतार्थं गये। इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में छठें-सातवें अंकों में इन्द्रानुयोग कवि की उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत ही कल्पित कथांश है और मुख्य कथा से यह सौष्ठवपूर्ण विधि से सुश्लिष्ट है।

पात्रोन्मीलन

अभिज्ञानशाकुन्तल में पात्र विविध वर्गों से लिए गये हैं। राजधानी, तपोवन और स्वर्ग लोक से राजा, ऋषि और देवता पात्र बन कर नाट्य-स्थली में प्रत्यक्ष होते हैं। इनके अतिरिक्त बहुसंख्यक पात्र अप्रत्यक्ष हैं जो स्वयं तो रंगमंच पर प्रकट नहीं होते, किन्तु उनके कार्यकलाप श्रवणगोचर होते हैं। वे ऐसे कार्यकलाप हैं, जिनका नाटक की कार्यावस्था में प्रमुख स्थान है। उदाहरण के लिए चतुर्थ अङ्क में वनदेवियाँ हैं या वनस्पति और लतायें हैं। नाटक की सरसता निष्पन्न करने में प्रत्यक्ष पात्रों के समान ही इनका महत्त्व है। इनके अतिरिक्त एक तीसरी कोटि के कुछ पात्रों को कवि ने रंगमंच पर प्रकट तो किया है, किन्तु मूक होने के कारण वे बोल न सके। केवल उनके भाव व्यंग्य होते हैं, उनकी चेष्टाओं से। मृगशावक, मृगी और मधुकर ऐसे पात्र हैं।

पात्रों का ऐसा वैविध्य अन्यत्र प्रायः दुर्लभ ही है। इनकी प्रसिद्धि के लिए अधोलिखित पद्य सर्वोपरि उदाहरण प्रस्तुत करता है—

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः ॥ ४·१२

कालिदास ही ऐसी मृगी, मयूर और लता को पात्र बनाने में समर्थ हैं। यह कालिदास का पात्रीकरण है।

दुष्यन्त

कालिदास का दुष्यन्त अतिशय रसिक, शिष्ट और शृङ्गारभावापन्न है, जिसका कविहृदय उसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण है। उसी हृदय के कारण उसे मधुकर में अपना प्रतिस्पर्धी नायक दृष्टिगोचर होता है। ऐसे रसिक का मृगया करते हुए **'ग्रीवाभङ्गाभिरामम्'** हरिण को मारने के लिए बाण चलाने को समुद्यत होना सामञ्जस्य-पूर्ण नहीं है।[1] नाटक के प्रथम तीन अङ्कों में दुष्यन्त की रसिकता का उभार है। उसी रसिकता की प्रपूर्णता के लिए दुष्यन्त का यज्ञ-रक्षक स्वरूप सामने लाया गया है। ऐसा लगता है कि यदि शकुन्तला से प्रणय की बात न होती तो आश्रम का यज्ञ उसको वहाँ रहने के लिए पर्याप्त कारण नहीं बन पाता।

पाँचवें अङ्क में दुष्यन्त शिष्टता के स्तर से गिरा हुआ दिखाया गया है। माना कि शापवश उसे शकुन्तला का सारा प्रकरण विस्मृत हो गया था और उसके ऊपर झूठे आरोप लगाये जा रहे थे, फिर भी **'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः'** के आदर्श पर क्या उचित है कि कालिदास उसके मुँह से ऐसी बात निकलवाते—

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥ ५·२१

ऐसा लगता है कि महाभारत का भार कालिदास के सिर पर था और उससे इस स्थल पर भी छुटकारा पाने का प्रयास करते हुए भी कालिदास पूर्णतया मुक्त न हो सके। महाभारत के दुष्यन्त ने भी तो कुछ-कुछ ऐसा ही कहा था—

न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले
असत्यवचना नार्यः कस्य श्रद्धास्यते वचः ॥

---

१. इस चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी त्रुटि से कालिदास बच सकते थे, यदि वे महाभारतीय कथा को इस प्रकार परिवर्तित कर देते कि दुष्यन्त मृगया करते हुए नहीं, अपितु किसी अन्य प्रयोजन से कण्व के आश्रम में जा पहुँचते। कालिदास को यह अभीष्ट नहीं था। कालिदास मृगया-वर्णन में विशेष रस लेते थे, भले ही उसके कारण उपर्युक्त चारित्रिक दोष उत्पन्न हुआ हो।

दुष्यन्त अपने प्रेम-व्यापार में कहीं-कहीं साधारण स्तर से भी नीचे उतरता दिखाई देता है। कालिदास नायक को नायिका का दास और उसका चरण-स्पर्श करने वाला बताने में किसी अज्ञात परितृप्ति का अनुभव करते थे। इस नाटक में नायक शकुन्तला से कहता है—

संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ । ३·१९

सातवें अङ्क में भी शकुन्तला के चरणों में गिर कर वह कहता है—

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपेतु ते ।।

दुष्यन्त के चरित्र में कतिपय स्थलों पर देश-काल के अयोग्य काम करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। राजा का गान्धर्व विवाह करना बुरा नहीं है, किन्तु बुरा है किसी आश्रम में तापसियों को गान्धर्व-विवाह की नायिक बनाना, जब उनके संरक्षक उपस्थित न हों।

दुष्यन्त की वीरता का कीर्तिगान स्वर्ग तक होता था। तभी तो इन्द्र ने उसे युद्ध में अपनी सहायता के लिए बुलाया था। वह स्वयं भी राजकाज देखता था। वह वस्तुतः कर्मण्य शासक था। उसकी प्रवृत्ति धार्मिक थी और वह ऋषियों के उपस्थान द्वारा पुण्य अर्जन करने के लिए उत्सुक रहता था। दुष्यन्त धीरोदात्त कोटि का बहु-पत्नीक दक्षिण नायक है।

शकुन्तला

नायिका शकुन्तला को अतिथियों का स्वागत करने के लिए कण्व ने नियुक्त किया था। सम्भव है, उस युग में नवयुवतियों को अतिथि-सत्कार के लिए लगा देना एक साधारण बात रही हो। ऐसा सोचा जा सकता है कि मुनियों के अतिथि भी मुनि ही होते होंगे। राजा कहाँ अतिथि बनकर आते होंगे ? प्रस्तुत नाटक में मुनि की तापस कन्या का प्रणयी राजा नायक बनकर आ पहुँचा है। यह कहाँ तक उचित है कि आश्रम में पुरुषों के होते हुए अतिथि-स्वागत के लिए युवती कन्या नियुक्त की जाती ?

शकुन्तला की प्रेम-प्रवणता-विषयक स्वच्छन्दता उसकी अप्सराकुलोत्पत्ति के कारण बताई जाती है। सम्भव है, कवि का यही अभिप्राय भी हो, किन्तु कवि ने व्यञ्जना से भी यदि कहीं ऐसा बता दिया होता तो लोकसंग्रह-परायण पाठक को उससे चिढ़ने का कारण कुछ हल्का हो जाता। दुष्यन्त-विषयक प्रणय-प्रवृत्तियों को यदि सखियों के माध्यम से वह गौतमी से कह-सुन लेती तो कथा अनवद्य हो जाती। मनमाने अथवा उत्तरदायित्व-विहीन उच्छृंखल सखियों के परामर्श से आश्रम-परिधि में गान्धर्व विवाह की योजना कर लेना शकुन्तला को आदर्श से च्युत करता है। कुमारसम्भव में पार्वती ने शिव से शाली-नता की रक्षा के लिए कहा है कि मुझे मेरे पिता से माँगिये, यद्यपि शिव से उसका

विवाह होने वाला ही था, जिसके लिए नारद की पूर्वसूचना के अनुसार वह तप कर रही थी।

दुष्यन्त ने शकुन्तला के विषय में कहा है कि वह आश्रम-जीवन या तपस्या के लिए नहीं बनी है। यह कथन सर्वथा उचित है, यद्यपि दुष्यन्त ने अपने स्वार्थवश यह वाक्य कहा था। वास्तव में शकुन्तला की मानसिक वृत्तियाँ इतनी शृंङ्गारित थीं कि मन, कर्म और वाणी का आश्रमोचित संयम उसमें नहीं दिखाई पड़ता। किसी तपस्विनी को यह कहना कहाँ तक शोभा देता है--

हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादप-मिथुनस्य व्यतिकरः संवृतः। नव-कुसुमयौवना वनज्योत्स्ना बद्धफलतयोपभोगक्षमः सहकारः।

शकुन्तला का अनादर दुष्यन्त ने किया, जब वह राजसभा में पहुँची। दुष्यन्त ने सारा दोष उसके मत्थे मढ़ा। परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं। शकुन्तला तो यही समझ सकती थी कि उसे कपटपूर्वक धोखा देने वाला दुष्यन्त सर्वथा अविश्वसनीय है। उसका यह कहना उचित था कि--

सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि याहमस्य।
पुरुवंश-प्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता॥

मारीच के आश्रम में शकुन्तला एक बार और तपस्विनी बन जाती है। आश्रम की कन्या-ललाम शकुन्तला पुनः आश्रम में प्रसन्न रह सकती थी, किन्तु वह पतिपरित्यक्ता होने के कारण वहाँ अपनी स्थिति के अनुरूप मलिन जीवन बिता रही थी। दुष्यन्त से पुनर्मिलन ग्रीष्म-ताप से शुष्कप्रायलता के समान शकुन्तला के लिए वर्षा का जल सिद्ध हुआ। कवि ने विषम परिस्थितियों की आग में शकुन्तला को तपा कर स्वर्णिम प्रभा से समुज्ज्वल बना देने में सफलता पाई है।

शकुन्तला का चरित्र अन्य दृष्टियों से प्रायः रमणीय चित्रित किया गया है। उसने वन के वृक्षों, लताओं और पशु-पक्षियों को जो स्नेह प्रदान किया है, उससे सारा आश्रम सुस्निग्ध है। शकुन्तला का परिवार उन सभी से बना था। उसकी भावात्मक वृत्तियाँ प्रायः शत प्रतिशत प्रेममयी थीं, जो अपने विविध रूपों में वृक्षादि के प्रति, सखियों के प्रति, कण्व के प्रति और अन्त में नायक दुष्यन्त के प्रति प्रवृत्त हुई हैं। अपने गुणों के कारण वह सर्वप्रिय थी। शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त का आकर्षण कितना था--इसकी कल्पना करने के लिए यह पहले से ही समझ लेना चाहिए कि उसके सौन्दर्य, माधुर्य, वाणी और व्यवहार ने आश्रम में अखिल चराचर को उसके प्रेमिल बन्धन में बाँध दिया था।[1]

---

१. शिलर ने शकुन्तला के विषय में लिखा है--That there is no poetical presentation of womanhood or of more beautiful as a life in the whole of Greek antiquity, that might reach the śakuntala even from a distance.

श्वेतीकरण

कालिदास ने महाभारत से जो पात्र पाये थे, उनका चारित्रिक श्वेतीकरण अनेक विधियों से किया है। महाभारत के दुष्यन्त को तो लोक-परलोक की कुछ भी चिन्ता ही नहीं प्रतीत होती। उसने लोकापवाद के भय से शकुन्तला को जानबूझ कर गान्धर्व विवाह के पश्चात् आश्रम में छोड़ दिया था। दुर्वासा के शाप की योजना करके कालिदास ने उपर्युक्त अपवाद से दुष्यन्त को सर्वथा विमुक्त कर दिया है। इस शाप के द्वारा प्रत्याख्यान के पश्चात् के घटना चक्र में नायक और नायिका के चारित्रिक उत्कर्ष की अभिव्यक्ति करने के लिए कवि को अवसर मिला है। महाभारत के अनुसार एक मुहूर्त के लिए कण्व फल लाने के लिए आश्रम से बाहर गये थे। इसमें अटपटा तो यह लगता है कि इतने शिष्यों के होते हुए कण्व को फल लाने के लिए स्वयं जाना पड़े। इसके अतिरिक्त यह धारणा बनानी पड़ती है कि नायक और नायिका की कामुकता इतनी अधिक थी कि वे एक मुहूर्त भी रुक नहीं सकते थे कि कण्व की अनुमति से विवाह हो अथवा नायक और नायिका को यह भय था कि कहीं कण्व विवाह की अनुमति न दें। आश्रम में यज्ञ की रक्षा के लिए दुष्यन्त को कुछ दिन रहने का औचित्य भी कवि ने प्रकल्पित किया है।

जैसा कालिदास ने अपनी अन्य कृतियों में दिखाया है, किसी श्रेष्ठ पात्र का अनुभाव प्रदर्शित करने के लिए प्रकृति पर उसका प्रभाव व्यक्त किया गया है। छठें अङ्क में लता, वृक्ष और पक्षी राजा के शासन को मानते हैं। कञ्चुकी कहता है—

न किल श्रुतं युवाभ्यां यद्वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथाहि।

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः।
संबद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया॥
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं।
शङ्के संहरति स्मरोऽचकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥

रस

अभिज्ञानशाकुन्तल मुख्यतः प्रणयात्मक नाटक है और इसमें स्वभावतः शृङ्गार रस के आद्यन्त विकास की प्रधानता होनी ही चाहिए। कालिदास सर्वथा शृङ्गार के कवि हैं, चाहे वे खण्ड-काव्य, महाकाव्य या नाटक किसी काव्य-कोटि की रचना कर रहे हों। कवि को युद्ध के वीर रस के वातावरण में भी अप्सरायें नायिका बनकर वीरगति पाने वालों का स्वागत करती हुई दिखाई देती हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल में शृङ्गार-रस के आलम्बन विभाव के रूप में अप्रतिम लावण्य के नायक और नायिका हैं। इनकी मनोहारिता इनके अनुभाव और संचारी भावों के सामञ्जस्य में रस-निर्झरिणी प्रवाहित करती है। यथा नायिका है—

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥

और नायिका है——

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगर-परिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे ॥ २·१५

और भी

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कमुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥ ३·११

नायक और नायिका के आलम्बन से त्रिविध शृङ्गार निष्पन्न हुआ है——पूर्वराग, संभोग और करुण-विप्रलम्भ। इनका पूर्वराग मञ्जिष्ठा कोटि का है, जो स्थिर है और अतिशोभाशील है। संभोग स्वल्पकालिक है। शकुन्तला के मारीच के आश्रम में जाने पर करुण-विप्रलम्भ-शृङ्गार है।

नायिका के अलंकार वर्णित हैं। यथा भाव——

किंनु खल्विमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता ।

और——

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥

शोभा है——

सरसिजमनुविद्धं, शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ १·१९

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ १·२०

कान्ति और द्युति क्रमशः है——

स्तन्यन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ॥ ३·७

क्षामक्षामकपोलमाननमुरःकाठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा ॥ ३·८

माधुर्य है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ १·१६

विलास है—

संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तविसभङ्गसुरभीणि ।
गुरुपरितापानि ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥ ३·१६

आरम्भ में शकुन्तला को कन्या-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1] उसके अनुराग की चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन कवि ने किया है।[2] यथा,

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनेन च संवृतः ॥ २·११

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती ।
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥ २·१२

शृङ्गार

अभिज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अङ्क में सम्भोग शृङ्गार का ईषद्विकास परिचर्चित है। यथा,

अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ।
मुहुरंगुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् ।
मुखमंसविवर्तिपक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ ३·२२-२३

कालिदास नाटकों में संभोग-शृङ्गार की वर्णना-संक्षिप्ति के नियामक हैं। उन्होंने सम्भोग की अपेक्षा विप्रलम्भ को चिरायित किया है। प्रायः पूरा षष्ठ अङ्क विप्रलम्भ की विभावना के लिए है। अँगूठी मिलते ही राजा शकुन्तला के विरह में सन्तप्त हो जाते हैं। नायक की काम दशाओं में अरुचि, असौष्ठव, कृशता, अधृति, तन्मयता, उन्माद आदि प्रधान हैं। यथा,

---

१. कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना । सा०द० ३·६७

२. दृष्ट्वा दर्शयति व्रीडां संमुखं नैव पश्यति ।
अन्यैः प्रवर्तितां शश्वतसावधाना च तत्कथाम्
शृणोत्यन्यत्रदत्ताक्षी प्रिये बालानुरागिणी ॥ सा०द० ३·१११-११३

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः । ६·५
प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं
बिभ्रत कांचनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।
चिन्ताजागरण-प्रताम्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ।। ६·६

दुष्यन्त की तन्मयता है नीचे लिखे वक्तव्य में——
'सख क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि ।'

इसमें शकुन्तला की तन्मयता लता से है, किन्तु आगे चलकर चित्र से शकुन्तला की स्पष्ट तन्मयता है, जो उन्माद की स्थिति उत्पन्न करती है । यथा,

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ।। ६·२१

ऐसी स्थिति में विदूषक को कहना पड़ा——

एष तावदुन्मत्तः'

शृङ्गारोचित उद्दीपन है मालिनी तरङ्गवाही पवन——
शक्यमरविन्द-सुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिगितुं पवनः ।। ३·५

छठें अङ्क में विप्रलम्भ का उद्दीपक है अधखिला वसन्त, जिसमें ऋतुमंगल हैं——
चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः ।
संनद्धं यदपि स्थितं कुरवकं तत्कोरकावस्थया ।।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं ।
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ।। ६·४

नीचे लिखे श्लोक में भ्रमर उद्दीपक है——
एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति ।।

संचारिभावों में स्मृति सर्वोपरि है ।[1] अभिज्ञान स्मृति का पर्यायवाची है । राजा विदूषक से कहता है——

१. सदृशज्ञानचिन्ताद्यैर्भ्रूसमुन्नयनादिकृत् ।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थविषयज्ञानमुच्यते ।। सा० द० ३·१६२

सखे सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। वयस्य निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि—

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरु शिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ ६·९

स्मृति के लिए राजा के द्वारा शकुन्तला को दी हुई अँगूठी और राजा के द्वारा निर्मित शकुन्तला का चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। राजा स्मृति के भावावेश में अँगूठी के प्रति कहता है—

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।
अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया॥ ६·१३

फिर चित्र में भ्रमर को देखकर राजा कहता है—

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ ६·२०

इसी चित्र प्रकरण में शृङ्गारोचित स्वेद और अश्रु अनुभावों की चर्चा है। यथा,

स्विन्नाङ्गुलिनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्॥ ६·१५

अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में करुण रस है। कीथ ने इसमें मृदु शोक की स्थिति मान कर करुण की प्रधानता बताई है।[१]

इस नाटक में हास्य का मूल स्रोत विदूषक है। वह शकुन्तला के विषय में चिन्तित है कि किसी तपस्वी के पल्ले न पड़े।[२] मातलि द्वारा पकड़े जाने पर भी वह परिहास नहीं छोड़ता, यद्यपि प्रकरण भयानक का है। मृग्य हरिण का वर्णन **'ग्रीवाभंगाभिरामम्'** आदि में भयानक है। भरत-मिलन में वात्सल्य और मातलिग्रस्त विदूषक के परित्राण में वीर है। इस प्रकार यह नाटक रसवैचित्र्य-मण्डित है।

रस और भावों के चमत्कार के लिए व्यंग्यार्थ का विशेष महत्त्व होता है। ऐसे व्यङ्ग्य-प्रवण वाक्य रचने में कालिदास निष्णात हैं। जहाँ प्रियंवदा को शकुन्तला से कहना है कि तुम विवाह के योग्य हो, वह केवल इतना कहती है कि केसर के पास तुम लता जैसी लगती हो।

---

१. He is hardly less expert in Pathos; the fourth act of the Śakuntalā is a model of tender sorrow and the loving kindness with which even the trees take farewell of their beloved one etc. Sanskrit Drama P. 159.

२. मा कस्यापि तपस्विन इंगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।

शैली

कालिदास को 'वाक्' और 'अर्थ' की प्रतिपत्ति सिद्ध थी। इस प्रसङ्ग में 'वाक्' शब्द का समाहार है और उसकी प्रतिपत्ति शब्दालङ्कारों के माध्यम से प्रतीत होती है। कवि के प्रत्येक वाक्य में अनुप्रास की स्वाभाविक छटा विराजमान है, वैसे ही जैसे आशु कवि के लिए वाक्यों में पद्यात्मकता स्वभावतः होती है। इसके लिए कवि को कोई प्रयास नहीं करना पड़ा है। यथा, अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रथम पद्य है--

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १·१

इसके प्रत्येक पद में अनुप्रास की स्वाभाविक छटा है--**सृष्टिः स्रष्टुः, वहति विधि, हुतं हवि होत्री, व्याप्य विश्वम्, प्रकृति प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रपन्न, ताभिः अष्टाभिः।**

इस पद्य में मात्सी कोटि की अनुप्रास-वृत्ति है। चारों पदों में अनुप्रास का निर्वाह होने से इसे वेणिका भी कहते हैं।[1] अनुप्रासित पदों की गति की स्वाभाविकता से यह स्पष्ट है कि इनको किसी बाह्य प्रयास से यथास्थान प्रतिबद्ध नहीं किया गया है।

अनुप्रास की दृष्टि से कालिदास का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को रमणीय प्रतीत होने वाली ध्वनियों में प और प्र विशेष उल्लेखनीय हैं।[2] ऐसे समाहारों के कुछ उदाहरण नीचे लिखे हैं:--

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः ॥
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ७·३५

प्रलोभ्य वस्तु-प्रणय-प्रसारितः। ७·१६

नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं ॥
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥ ६·२५

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥ ६·७

---

१. सरस्वती कण्ठाभरण २·२५८, २६५

२. प के अनुप्रासों में वानवासिका और प्र के अनुप्रासों में पौण्ड्री वृत्ति है। सर० क० २·२५५ तथा २·२६२

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विनमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।। ६·५

यों तो साधारणतः सर्वत्र ही कालिदास की भाषा में कोमल पदशय्या मिलती है, तथापि सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति करने में पदशय्या प्रायशः पुष्पमयी है ।[1] यथा,

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।। ३·२३

यही कालिदास की वैदर्भी रीति है, जिसमें पद पाठक के मानस-पटल पर अर्थावबोध के लिए कहीं रुकते नहीं ।[2] उनका पद नाम कालिदास ने वास्तव में सार्थक किया है। **पद्यते गम्यतेऽनेनेति पदम्।** अर्थात् जिनके द्वारा अर्थावबोध की ओर पाठक की गति होती है, वे पद हैं ।

कालिदास के उपमान कतिपय स्थलों पर पात्र और देश के अनुरूप होने के कारण विशेष प्रभविष्णु हैं । सातवें अङ्क में मारीच कहते हैं :

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम् ।। ७·२९

इसमें श्रद्धा, वित्त और विधि की उपमानता एक ऋषि के ही मानस में प्रकल्पित हो सकती है। प्रियंवदा को नलिनी पत्र का उपमान ढूंढ़ने के लिए दूर नहीं जाना पड़ता है। उपमान है उसके कन्धे पर नित्य बैठने वाले शुक का उदर ।[3] इस प्रकार का अत्यन्त प्रसिद्ध, उपमान चतुर्थ अङ्क में कण्व की नीचे लिखी उक्ति में है—

दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता । वत्से सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता ।

इसमें अग्निहोत्री ऋषि कण्व के उपमान उसके परिवेश और व्यक्तित्व के सर्वथा अनुकूल हैं ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रमुख अलंकार उपमा और अर्थान्तरन्यास हैं। उपमाओं में अभिव्यक्ति की अनन्यसाध्य योग्यता है । यथा,

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।। १·१०

---

१. 'पदशय्या है' 'पदानां परस्परमैत्री' ।

२. विदर्भ का अर्थ है—जिसमें दर्भ (कुश) नहीं रह गये हों। वाक्यों के दर्भ हैं लम्बे समास और कर्णकटु ध्वनियाँ । इन दोनों का अभाव वैदर्भी रीति में होता है ।

३. ईमस्सिं सुग्रोदर-सुउमारे णलिणीपत्ते ।

इसमें उपमा के द्वारा जो व्यंग्यार्थ निकलता है वह अन्यथा असम्भव है, चाहे कितना लम्बा-चौड़ा वर्णन अभिधा से करें।

अर्थान्तरन्यासों से कवि के वक्तव्यों में प्राञ्जलता और प्रभविष्णुता आ जाती है। यथा,

सरसिजमनुविद्धं, शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ १·१६

उपर्युक्त पद्य में कवि का प्रतिपाद्य है कि वल्कल से भी शकुन्तला सुन्दर लग रही है। इसके लिए अनेकानेक उदाहरण लेकर उसने शकुन्तला के सौन्दर्य को बहुशः संवर्धित कर दिया। यहाँ अर्थान्तरन्यास की सूक्ष्मता इस बात में है कि केवल तार्किक गवेषणा से यह प्रमाणित नहीं हुआ कि वल्कल से शकुन्तला का सौन्दर्य बढ़ा है, अपितु वह कमल और चन्द्रमा के समान है।

कालिदास ने लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा कहीं-कहीं अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तर-न्यासादि अलंकारों का विन्यास करते हुए और अन्यथा भी, अपने वक्तव्य को संक्षिप्त, किन्तु गम्भीर और संवादों को मर्मस्पर्शी बनाया है। इस प्रकार की कुछ लोकोक्तियाँ हैं—

विदूषक दुष्यन्त से—

१. कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।
२. यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत्किमात्मनः प्रभावेण उत नदीवेगस्य।
३. अरण्ये मया रुदितमासीत्
४. यस्य कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्ड्यामभिलाषो भवेत्।
५. त्रिशंकुरिवान्तराले तिष्ठ।

ऐसा लगता है कि बोलचाल की प्राकृत भाषा में ऐसी चटक लोकोक्तियों की प्रचुरता थी। इनके द्वारा संवादों में बातचीत की वास्तविकता प्रतीत होती है।

कहीं-कहीं अन्योक्ति अथवा अप्रस्तुतप्रशंसा द्वारा भावों की मर्मस्पर्शिता द्विगुणित की गई है। यथा,

प्रियंवदा अनुसूया से कहती है—**को नाम उष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति।**

राजा शकुन्तला से कहता है—**तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम्।**

राजा अनुसूया से कहता है—**किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।**

कुछ बातें पताकास्थानक के रूप में कही जाने के कारण भावोत्कर्ष की व्यञ्जना करती हैं। तृतीय अङ्क के अन्त में शकुन्तला निकट ही छिपे हुए दुष्यन्त को बताना

चाहती है कि फिर निकट भविष्य में ही मिलकर अनुगृहीत करें। वह प्रत्यक्ष ऐसा न कहकर पताकास्थानक के माध्यम से कहती है—

लतावलय, सन्तापहारक आमन्त्रये त्वा भूयोऽपि परिभोगाय।[1]

इसमें प्रत्यक्ष रूप से तो लतावलय को सम्बोधन करके कहा गया है कि परिभोग प्रदान करने से उपकृत मैं तुमसे जाने की अनुमति लेती हूँ। साथ ही राजा के लिए इसमें साङ्केतिक अर्थ है कि आप इस लतामण्डप में पुनः पधारें।

इसके पहले एक अन्य पताकास्थानक है नेपथ्य से—

चक्रवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।

यह अन्योक्ति विधि से शकुन्तला से कहा गया है कि अब तुम दुष्यन्त से छुटकारा लो। गौतमी रजनी आ गई है।

उपर्युक्त दोनों पताकास्थानक अन्योक्ति पर आधारित हैं।

कालिदास की स्वभावोक्ति स्वाभाविक भाषा का परिधान ग्रहण करके मन को मोह लेती है। यथा,

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ १ ७

साथ ही '**पश्योदग्रप्लुतत्वात्**' से व्यञ्जना होती है कि दुष्यन्त प्रेम की बातें तो लम्बी-चौड़ी करेगा, किन्तु उनमें ठोस तत्त्व का अभाव है। स्वाभाविक दृश्य, स्वाभाविक भाषा और स्वाभावोक्ति अलंकार का मञ्जुल सामञ्जस्य नीचे लिखे श्लोक में है—

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति॥ ७·१७

अभिज्ञानशाकुन्तल में आर्याछन्द में ३८, श्लोक में ३६, वसन्ततिलका में ३० और शार्दूलविक्रीडित में २२ पद्य हैं। वसन्ततिलका कालिदास की वासन्तिक प्रवृत्ति का प्रतीक है।

गीति-तत्त्व

अभिज्ञानशाकुन्तल में गीतितत्त्व की प्रचुरता है। इसके चतुर्थ अङ्क की सर्वोत्कृष्टता का एक आधार इसका सर्वातिशायी गीति-तत्त्व है। इस अङ्क की कथा-

---

१. इसको काले मनोरथ नामक नाट्यलक्षण के अन्तर्गत रखते हैं। मनोरथस्तु व्याजेन विवक्षितनिवेदनम्।

मात्र हृदयस्पर्शी है, जिसमें पशु-पक्षी और वनस्पतियों को भी सोदर स्नेह देने वाली कन्या अकृत्रिम सौहार्द की निर्झरिणी प्रवाहित करने वाली आश्रम-भूमि से विदा लेकर ऐश्वर्यैकपरायण राजधानी के लिए प्रस्थान कर रही है। इस दृश्य में पिता, सखियाँ, पुत्रकृतक मृग, चक्रवाकी, आसन्नप्रसवा मृगी, सहकार-ललित-वनज्योत्स्ना, वनदेवियाँ और वृक्ष आदि अनुमति दे रहे हैं। गीतिकाव्य की भूमिका प्रस्तुत है—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्ति-कलुषश्चिन्ताजडः दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ४·६

इस भूमिका की प्रकरण-वक्रता अनूठी है।

प्रस्तावना में, तृतीय अङ्क के प्रेमपत्र-प्रकरण में, पञ्चम अङ्क के आरम्भ में और सप्तम अङ्क में शकुन्तला से राजा के पुनर्मिलन के दृश्य में गीति-तत्त्व की प्रचुरता है। अनुप्रासात्मक ध्वनियों से प्रायः सर्वत्र संगीत का संवर्धन हुआ है।

नाट्य-शिल्प

अभिज्ञानशाकुन्तल का आरम्भ नान्दी से हुआ है और अन्त भरतवाक्य से। प्रस्तावना के पश्चात् मुखसन्धि आरम्भ होती है और द्वितीय अंक में सेनापति के चले जाने पर समाप्त होती है, जब राजा और विदूषक शकुन्तला-विषयक चर्चा चलाने के लिए अकेले साथ बैठते हैं। इसमें राजा के लिए पुत्र पाने का आशीर्वाद और शकुन्तला का आतिथ्य करने के लिए कण्व के द्वारा नियुक्त करना बीज हैं। इसके पश्चात् तीसरे अंक के अन्त तक प्रतिमुख-सन्धि चलती है। इसका आरम्भ विन्दु से होता है, जब राजा शकुन्तला विषयक पूर्व चर्चा को विदूषक से यह कहकर पुनरावर्तित करता है कि माढव्य 'अनवाप्त-चक्षुःफलोऽसि'। इसी में राजा शकुन्तला की प्राप्ति का प्रयत्न करते हुए सफलप्राय है। गर्भसन्धि चतुर्थ अंक में और पंचम अंक में लगभग तीन चौथाई तक चलती है, जहाँ शकुन्तला को दुष्यन्त के न पहचानने पर गौतमी अवगुण्ठन हटाने का उपक्रम करती है। इसमें बाधा रूप में दुर्वासा का शाप है। इसके पश्चात् अवमर्श सन्धि आती है, जो छठें अंक के अन्त तक चलती है। इसमें बाधा की चरम परिणति दिखाई गई है, किन्तु बाधाओं के बादलों के समाप्तप्राय हो जाने पर इन्द्र का निमन्त्रण आशा की किरण का स्फुरण करता है। अन्तिम सन्धि निर्वहण सप्तम अंक में है, जिसमें नायक और नायिका का पुनर्मिलन होता है। इन्हीं पंचसन्धियों में क्रमशः पंचावस्थायें समाविष्ट हैं। पूरी कथा में अर्थोपक्षेपकों का समीचीन विन्यास किया गया है। तृतीय और चतुर्थ अंक का आरम्भ विष्कम्भक से हुआ है, और षष्ठ अंक के आरम्भ में प्रवेशक है। इनके द्वार भूतकालीन और भावी कथा प्रवृत्तियों की सूचना दी

गई हैं। चूलिका के माध्यम से नैपथ्य-पात्रों के द्वारा समय-समय पर आवश्यक सूचनायें प्रस्तुत की गई हैं।

कालिदास ने कथानक की भावी प्रवृत्ति का परिचय अनेक स्थलों पर व्यञ्जना द्वारा या अभिधा से ही दिया है। यथा, (१) चतुर्थ अंक में अनसूया के हाथ से पुष्प-भाजन गिर पड़ा, जब उसे घबड़ाहट से ठोकर लगी थी। पुष्पभाजन के भ्रष्ट होने का केवल एक ही उपयोग इस प्रसङ्ग में है कि यहाँ से एक बड़ी विपत्ति का सूत्रपात होता है। वह है शकुन्तला का प्रत्याख्यान।

(२) चतुर्थ अंक में शिष्य कहता है—

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥

इसमें शकुन्तला और दुष्यन्त के भावी वियोग की सूचना दी गई है। शिष्य का यह कहना कि '**लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु**' प्रकट करता है कि शकुन्तला के लिए देशान्तर अवश्यंभावी है।

(३) चतुर्थ अंक में सखियों का शकुन्तला से यह कहना कि 'यदि नाम स राजा **प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत् ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्कितमंगुलीयकं दर्शय**' ध्वनित करता है कि राजा शकुन्तला का प्रत्याख्यान करने वाला है।

(४) पंचम अंक के आरम्भ में हंसपदिका ने गाया है—

अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमंजरीम्।
कमलवसतिमात्र निर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम्॥ ५·१

इसमें गान्धर्व विवाह विस्मृति और प्रत्याख्यान की सूचना है।

(५) पंचम अंक में शकुन्तला की दाहिनी आँख फड़कती है, जिससे उसका प्रत्याख्यान व्यंग्य है।

(६) पंचम अंक के अन्त में शकुन्तला ने बताया है कि कैसे मृग ने दुष्यन्त के हाथों से पानी नहीं पिया था। इस पूर्वकालीन घटना से यह सूचना वेदनीय है कि शकुन्तला को दुष्यन्त का विश्वास नहीं करना चाहिए था।

प्रथम अंक में वैखानस का राजा को आशीर्वाद देना कि चक्रवर्ती पुत्र पायें, चतुर्थ अंक में आकाशवाणी होना कि—

'**अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव**'। ४·४

तथा कण्व का शकुन्तला को आशीर्वाद—

सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ॥ ४·७
अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।

तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। ४·१६

तथा सानुमती का छठें अङ्क में यह कहना कि--

अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति ।

इन सबसे भावी घटना प्रवृत्ति की सूचना मिलती है कि शकुन्तला को पुत्र होगा, जो दुष्यन्त के द्वारा स्वीकृत होकर उत्तराधिकारी सम्राट् बनेगा ।

(७) अन्त में सानुमती का नीचे लिखा वक्तव्य अन्तिम भावी घटना की प्रवृत्तियों का स्पष्ट परिचायक है---

अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखात् यज्ञसमुत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताभिनन्दिष्यति ।

उपर्युक्त सारी सूचनायें प्रायशः सूक्ष्म और बीज रूप हैं, जिनसे भावी प्रवृत्तियों की कलात्मक व्यञ्जना होती है । सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण है प्रस्तावना में सूत्रधार का कहना---

दिवसाः परिणामरमणीयाः ।

इससे नाटक के सुखान्त होने की व्यंजना होती है ।

अभिज्ञानशाकुन्तल की घटनाओं का समयानुसन्धान की दृष्टि से कालानुक्रम लगभग चार वर्षों में पर्यवसित है। दुष्यन्त की मृगया ग्रीष्मारम्भ अर्थात् ज्येष्ठ मास में हुई थी । ग्रीष्मकालीन मृगया प्रातःकाल होती है और प्रातःकाल के प्रशान्त वातावरण में दुष्यन्त को शकुन्तलादि का प्रथम दर्शन हुआ । द्वितीय अंक की घटनायें ठीक दूसरे दिन की हैं। तीसरे अंक की घटनायें दूसरे अंक की घटनाओं के दो-चार दिन पश्चात् की हैं। नायक और नायिका की प्रणय-प्रवृत्तियों का एकान्त मिलन तक के विकास के लिए कुछ आलोचक १५ दिन का समय अपेक्षित मानते हैं, किन्तु प्रथम मिलन की प्रणय-प्रवृद्धि की गति देखकर और विदूषक से राजा की शकुन्तला-विषयक चर्चायें सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि १५ दिनों तक शकुन्तला से बिना मिले राजा नहीं रह सकता था । तीसरे अंक की घटना केवल किसी एक दिन के मध्याह्न के पश्चात् की है और सन्ध्या तक समाप्त हो जाती है । तीसरे और चौथे अंक के बीच की अवधि में शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रणय-व्यापार की चरम परिणति होती है । चौथे अंक के विष्कम्भक में उसी दिन की घटना की चर्चा की गई है, जिस दिन दुष्यन्त आश्रम से राजधानी चले गये। उसका प्रस्थान ज्येष्ठ मास के अन्त में कभी हुआ होगा। उसके कितने दिनों के पश्चात् कण्व के लौट आने पर शकुन्तला के प्रस्थान का आयोजन किया गया--यह प्रश्न है । शकुन्तला के प्रस्थान के समय शरद् ऋतु थी, जैसा नीचे के पद्य से प्रतीत होता है—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ॥ ४·३

अर्थात् चन्द्रमा के डूब जाने पर कुमुदिनी की शोभा फीकी पड़ गई है । कुमुदिनी शरद् में मिलती है ।[१] शरद् आश्विन और कार्तिक में होती है । अतएव शकुन्तला का प्रस्थान आश्विन और कार्तिक में किसी दिन होने के कारण गान्धर्व विवाह के केवल चार मास पश्चात् हुआ ।[२] पाँचवें अंक की कथा चतुर्थ से अनुबद्ध होकर निरन्तर चलती है और शकुन्तला के प्रस्थान के दो-चार दिन पश्चात् किसी दिन अपराह्ण की है । पाँचवें और छठें अंक के बीच कितने वर्ष बीते ? यह निर्धारित करने के लिए सातवें अंक में सर्वदमन (भरत) की आयु का प्रमाण लेना होगा । उसकी **'अव्यक्तवर्णरमणीयवचः-प्रवृत्ति'** और **अङ्काश्रयप्रणयित्व'** से निश्चय ही और अन्यथा भी वह तीन वर्ष से अधिक अवस्था का नहीं है ।[३] इस आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पाँचवें अङ्क के लगभग तीन वर्ष पश्चात् छठें और सातवें अंक की कथा आरम्भ होती है । अँगूठी के मिलने के लगभग १५ दिन पश्चात् राजा मातलि के साथ इन्द्रलोक चला गया था । छठें और सातवें अंक के बीच भी लगभग १५ दिन बीते होंगे । इस अवधि में दुष्यन्त ने असुरों पर विजय पाई होगी और स्वर्ग के विजय-महोत्सव में राजा का अभिनन्दन किया गया होगा ।

---

१. कालिदास ने ऋतुसंहार में शरद्-वर्णन के प्रकरण में लिखा है—
स्फुट-कुमुदचितानां राजहंसाश्रितानाम् आदि ।

२. काले के अनुसार This must be about six months after the Gāndharva marriage. P. 38 of the Introduction of अभिज्ञानशाकुन्तलम् । उनका छः मास कहना ठीक नहीं प्रतीत होता । उन्होंने स्वयं माना है कि शरद् में प्रस्थान हुआ । आषाढ के छः मास पश्चात् शरद् कैसे रहेगा ?

३. महाभारत में भी भरत को गर्भ में आने के दिन से छः वर्ष का माना गया है, जब वह दुष्यन्त के पास लाया जाता है । किन्तु कालिदास का भरत तीन वर्ष से अधिक का नहीं है । महाभारत के अनुसार भरत तीन वर्ष गर्भ में रहा । काले सर्वदमन को लगभग छः वर्ष का मानते हैं । छः वर्ष का बालक 'अव्यक्त-वर्ण-रमणीयवचःप्रवृत्ति' नहीं होता । भला छः वर्ष का बालक 'अङ्काश्रय-प्रणयी' होता है । इस सम्बन्ध में सानुमती का यह वक्तव्य भी अनुसन्धेय है, जिसमें उसने कहा है—'यज्ञसमुत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताभिनन्दिष्यति' । यहाँ अचिरेण से कम से कम समय अभिप्रेत है ।

संवाद तथा एकोक्ति

अभिज्ञानशाकुन्तल में संवाद-शिल्प प्रभविष्णु है। अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तर-न्यास, दृष्टान्त आदि अलंकारों के प्रयोग से कथ्य में रमणीयता के साथ बल निर्भर है। पात्रोचित भाषा, विशेषतः मध्यम कोटि के पात्रों की लोकोक्तियाँ गंभीर अर्थ व्यक्त करती हुई प्रभाव डालती हैं। कतिपय स्थलों पर कालिदास ने अदृश्य पात्रों को प्रत्युत्तर देते हुए दिखाया है। यथा, षष्ठ अंक में राजा और विदूषक का संवाद है—

राजा—वयस्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्र विस्मृतमस्माभिः

विदूषक—किमिव।

सानुमती—वनवासस्य सौकुमार्यस्य च यत्सदृशं भविष्यति।

यहाँ सानुमती के अदृश्य रहने के कारण दर्शक को उसकी भी बातें सुनने को मिलती हैं, किन्तु राजा और विदूषक को उसकी बातें अश्राव्य हैं। रंगमंच पर इस प्रकार संवाद की कलात्मक योजना अनूठा विन्यास है। सानुमती अकेले ही अपने मन से या दूसरों के वक्तव्यों के प्रसङ्ग में अदृश्य रहकर कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें बताती है, जो कथानक के विकास के लिए विशेष उपयोगी हैं। प्रथम अङ्क में वृक्षान्तरित दुष्यन्त का आत्मगत भी इसी प्रकार से महत्त्वपूर्ण है।

इसमें एकोक्तियाँ हैं—प्रथम अङ्क में 'शान्तमिदमाश्रमपदं' तथा 'गच्छति पुरः शरीरं,' द्वितीय अङ्क के आरम्भ में विदूषक की, तृतीय अङ्क में विष्कम्भक के पश्चात् राजा की, चतुर्थ अङ्क में विष्कम्भक के पश्चात् शिष्य की तथा षष्ठे अङ्क में प्रवेशक के पश्चात् सानुमती की।

इसमें नाटकीय संकेत हैं—प्रकाशम्, जनान्तिकम्, आत्मगतम्, प्रविश्य निष्क्रान्तः आदि। पात्रों की विशेष भावात्मक अभिनय-विधि का प्रकाशन सविस्मयम्, सप्रणामम्, सहर्षम्, सस्मितम्, ससंभ्रमम्, सरोषम्, सस्पृहम्, सासूयम्, और सदृष्टिनिक्षेपम् आदि पदों के द्वारा किया गया है। इनके अतिरिक्त मध्यवर्ती या अभिनव कार्य-विशेष की सूचना भी दी गई है। यथा रथवेगं निरूपयति, शरसन्धानं नाटयति, रथं स्थापयति, वृक्षसेचनं निरूपयति, निपुणं निरूप्य, सव्याजं विलम्ब्य आदि।

कलाचर्चा

कलाओं का प्रायशः अनुसन्धान कालिदास ने युगप्रवृत्ति के अनुकूल ही किया है। काव्यकृतियों में कलाओं की भूमिका प्रस्तुत करना या, जैसे भी हो, चर्चा ही कर देना कवियों के लिए आवश्यक कर्तव्य सा था। प्रस्तावना में सूत्रधार को रंग आलिखित सा दिखाई देता है, जब उसकी नटी ने अपने गीत से रंग को मन्त्रमुग्ध किया था।[1] कालिदास के लिए चित्र मूल से उत्कृष्टतर था। उन्होंने कहा है—

---

१. भावनिमग्नता व्यक्त करने के लिए अन्यत्र भी आलिखित का प्रयोग कालिदास ने किया है। यथा चतुर्थ अंक में—वामहस्तोपहितवदनालिखितेव प्रियसखी।

चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।। १·६

अर्थात् पहले शकुन्तला का चित्र ब्रह्मा ने बनाया और फिर उसमें प्राण डाला। चित्र की अप्रतिम योग्यता में कालिदास का विश्वास था।

सखियाँ चित्रकर्म-परिचय के आधार पर शकुन्तला को आभरण पहनाती हैं। अनेक पूर्ववर्ती नाटकों में नायक-नायिका के चित्र की चर्चा भास ने की है। सम्भवतः उसी से प्रेरणा लेकर कालिदास ने भी विनोद-स्थान के नाम पर दुष्यन्त से शकुन्तलादि का चित्र बनवाया है। कालिदास के शब्दों में यह नायिका का चित्रार्पण है।[1] इस चित्र को देखकर सानुमती ने कहा था——

जाने सख्यग्रतो मे वर्तते ।

इस चित्र का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कवि ने अतिशय मनोयोग से किया है। यथा, इसमें क्या-क्या बन चुका था, वह विदूषक के शब्दों में है——

शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदविन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुण-पल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला ।

क्या और बनना था, जो कदाचित् कभी न बन सका, वह है

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनकण्डूयमानां मृगीम् ।। ६·१७

अभिज्ञानशाकुन्तल के सातवें अङ्क में मिट्टी का बना जो मयूर सर्वदमन को दिया जाता है, वह वर्णचित्रित है।

उपर्युक्त प्रसङ्गों से कालिदास की कलाओं के प्रति प्रवणता प्रतीत होती है।

अनौचित्य

कालिदासादि अनेक कवियों में श्रेष्ठ देवी-देवताओं के प्रति परिहासात्मक प्रवृत्ति देखी जाती है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में ब्रह्मा को 'वेदाभ्यास जडः' कहा है। इस नाटक में कण्व ने शकुन्तला को पाला-पोसा। इसकी चर्चा करते हुए कालिदास कहते हैं——

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ।२·८

---

१. चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः ।। ६·१६
तथा——इयं चित्रगता भट्टिनी ।

इसमें कण्व की आक से उपमा देने से उनके प्रति समादर का अभाव प्रकट होता है।

कालिदास ने कण्व के शिष्यों को मन, कर्म और वचन से ब्रह्मचारी नहीं रहने दिया है। ब्रह्मचारी शिष्य को यह कहना कहाँ तक उचित है—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥ ४·३

प्रोषितपतिकाओं का दुःख प्राचीनकाल का ब्रह्मचारी नहीं देखा करता था। इसी प्रकार प्रियंवदा ब्रह्मचारिणी है, पर वह शकुन्तला से शृङ्गारित परिहास करती है। यथा,

वनज्योत्स्नानुरूपेण पादपेन संगतापि नामैवाहमप्यात्मानुरूपं वरं लभेय।

और भी—

पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व।

आश्रम के समुदाचार का कालिदास ने प्रतिपालन नहीं किया है। कण्व के आश्रम को गान्धर्व विवाह की प्रवृत्तियों की स्थली बनाना कहाँ तक ठीक है? इसी प्रकार अनुचित है नवयुवती शकुन्तला को अन्य शिष्यादि के रहते हुए अतिथियों के स्वागत के लिए नियोजित करना। अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार नवयुवती कन्याओं के द्वारा राजादि सामान्य अतिथि के सत्कार की चर्चा नहीं मिलती।

नीचे लिखे पदों में कालिदास के लिए साँप को उपमान बनाना ठीक नहीं है—

प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः॥ ६·३१
एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः॥ ७·१८

इसमें अप्रत्यक्ष रूप से क्रमशः दुष्यन्त और भरत के लिए साँप उपमान हैं।

वैदेशिक आलोचना

अभिज्ञानशाकुन्तल की देश-विदेश में अतिशय प्रशंसा हुई है। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे की शकुन्तला-प्रशस्ति १७९१ ई० की आंग्ल भाषा में इस प्रकार अनूदित है—

In case you desire to rejoice in the blossoms of early years, the fruits of the age advanced,

In case you want to have something that charms, something that is enchanting,

In case you want to call both the heaven and earth by a common name,

I refer you to the Śakuntalā,

And thus I describe these all.

उसने अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रशस्ति में लिखा है—I am still carrying the ineffaceable impressions that this book made in me so early. Here the poet seems to be at the height of his talents in representation of the natural order, of the finest mode of life, of the purest moral endeavour, of the most worthy sovereign and of the most sober divine meditation. Still he remains in such a manner the lord and master of his creation.

प्रोफेसर मानियर विलियम्स ने अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रशस्ति की है—

No composition of Kālidāsa displays more richness of his poetical genius, the exuberence of his imagination, the warmth and play of his fancy, his profound knowledge of the human heart, his delicate appreciation of its most refined and tender emotions, his familiarity with the workings and counter-workings of its conflicting feelings, in short more entitles him to rank as the Shakespeare of India.

अलेक्जेण्डर वान हम्बोल्ट ने लिखा है—

Kālidāsa, the celebrated author of śakuntalā is a masterly describer of the influence which nature exercises upon the minds of lovers. Tenderness in the expression of feeling, and richness of creative fancy, have assigned to him his lofty place among the poets of all nations.

विक्रमोर्वशीय

विक्रमोर्वशीय कालिदास का दूसरा नाटक है ।[1] इसके नायक पुरूरवा को अपने विक्रम से नायिका उर्वशी प्राप्त हुई ।

कथानक

उर्वशी अपने परिजनों के सहित कैलाश पर्वत पर आई थी । इन्द्रलोक लौटते समय चित्रलेखा के साथ उसे केशी नामक असुर ने पकड़ लिया । उसके साथ की अन्य अप्सराओं ने उसे बचाने के लिए करुण क्रन्दन किया, जिसे सूर्योपस्थान करके लौटते हुए प्रतिष्ठान के राजा पुरूरवा ने सुना । उन्होंने उन रम्भादि अप्सराओं से कहा कि उर्वशी की रक्षा करके मैं हेमकूट शिखर पर आप लोगों से मिलता हूँ ।

---

१. कालिदास ने इसको त्रोटक नाम दिया है । अहमस्यां कालिदास-ग्रथित-वस्तुना नवेन त्रोटकेनोपस्थास्ये ।' त्रोटक की विशेषतायें इसमें मिलती हैं—

सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कं दिव्यमानुषसंश्रयम् । त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम् ।।

त्रोटक नाटक से नाममात्र के लिये भिन्न होता है ।

राजा ने उर्वशी को बचा कर सखियों से मिला दिया। वहीं इन्द्र के द्वारा भेजा हुआ चित्ररथ आया। उसने कहा—

दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्।[२]

चित्ररथ ने बताया कि नारद से इन्द्र को ज्ञात हुआ है कि उर्वशी का हरण केशी ने किया है। इन्द्र गन्धर्वों की सेना भेज ही रहे थे कि आपके द्वारा उर्वशी के बचा लिये जाने का समाचार उन्होंने सुना। अब आप उर्वशी के साथ उनसे मिल लें। राजा ने कहा कि अभी उनसे मिलने का समय नहीं है।

उर्वशी ने चित्रलेखा के माध्यम से राजा को संवाद दिया कि मैं आपकी कीर्ति स्वर्गलोक तक ले जाना चाहती हूँ। उसे प्रथम मिलन में ही राजा से प्रेम हो गया था। लौटती हुई वह अपनी वैजयन्तिका को लता-विटप में फँसा कर वहीं रुक कर राजा को देखती रही। राजा भी उर्वशी की ओर देखता ही रहा, जब तक वह ओझल न हो गई। उसने मन में कहा—

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्
पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात्
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥ १·२०

महारानी की चेटी ने विदूषक को बेवकूफ बना कर उससे जान लिया कि महाराज उर्वशी के चक्कर में पड़े हैं। चेटी ने सारा भेद महारानी से बताया। राजा उर्वशी के भेद को अप्रकाशित रखना चाहते थे। वे विदूषक के साथ प्रमदवन पहुँचे।

आकाशयान से उर्वशी और चित्रलेखा प्रतिष्ठान में राजभवन के प्रमदवन में उतरती हैं। वे दोनों तिरस्करिणी विद्या से अदृश्य रहकर राजा और विदूषक के पास खड़ी हो जाती हैं। राजा के कहने पर विदूषक ने उर्वशी से मिलने का उपाय बताया कि आप सो जायँ। स्वप्न में उर्वशी मिल जायेगी। दूसरा उपाय बताया कि उर्वशी का चित्र बना कर उसे देखते रहिए। राजा ने कहा कि नींद आती नहीं और चित्र तो बीच ही में आँसुओं से मिट जायेगा। यह सब सुनकर उर्वशी ने भूर्जपत्र पर प्रेम-सन्देश लिख कर दक्षिण-पवन से राजा की ओर उड़ा दिया। राजा को पत्र मिला और उसने पढ़ा—

सामिअ संभाविआ जह अहं तुए अमुणिआ
तह अणुरत्तस्स सुहअ एवमेअ तुह।
णवरि अ मे ललिअपारिआअसअणिज्जम्मि
होन्ति सुहा णंदणवणवाआ विसिहिव्व सरीरे ॥ २·१२

२· इसी विक्रम की महिमा से इस रूपक का नाम विक्रमोर्वशीय है।

राजा ने पत्र विदूषक को दे दिया कि इसे रखो। उसको पढ़ने से राजा की प्रतिक्रिया से उत्साहित होकर चित्रलेखा प्रकट हुई और फिर उर्वशी। उनके राजा से मिलने के थोड़ी ही देर पश्चात् एक देवदूत आया। उसने संवाद दिया कि भरत मुनि ने जिस नाटक का अभिनय सिखाया है, उसे इन्द्रादि देवता देखना चाहते हैं। फिर उर्वशी को जाना ही पड़ा।

राजा को अब उर्वशी के पत्र की स्मृति हो आई। विदूषक ने कहा कि वह तो गुम हो गया। उसको ढूँढा जा रहा था। इसी बीच वह पत्र उड़कर राजा की महारानी के हाथ लग गया। महारानी राजा से मिलने के लिये प्रमद वन में आई थी। उन्हें अपनी चेटी से उर्वशी-प्रणय का प्रकरण ज्ञात था। उन्होंने राजा को वह पत्र दिया और रूठ कर चली गईं। राजा के अनुनय करने पर भी प्रसन्न न हुईं। दोपहर का समय होने पर प्रमद-वन से राजा भी चलते बने।

भरत ने जो नाटक कराया, उसमें उर्वशी लक्ष्मी बनी थी। अभिनेत्री उर्वशी से वारुणी ने पूछा कि किसमें तुम्हारा चित्त आसक्त है? उसने पुरुषोत्तम के स्थान पर पुरूरवा का नाम लिया। फिर तो भरत ने शाप दे दिया कि अब तुम दिव्यस्थली में नहीं रह सकोगी। इन्द्र ने उस शाप में संशोधन कर दिया कि पुरूरवा का प्रिय करना तो ठीक है। उनके साथ तुम तब तक रहो, जब तक वे तुम्हारी सन्तान को न देख लें। शापानुसार उर्वशी मर्त्यलोक में पुरूरवा के प्रासाद की छत पर आ जाती है।

इधर महारानी चाहती हैं कि राजा उनके मान करने के प्रकरण का मार्जन कर दें। कंचुकी ने महारानी का सन्देश दिया कि छत पर चन्द्रोदय होने पर रोहिणी के संयोग रहने के समय तक राजा के साथ हमें प्रतीक्षा करनी है। राजा विदूषक के साथ छत पर जा पहुँचते हैं। वे वहाँ विदूषक से उर्वशी-वियोग के कारण सन्ताप की चर्चा करते हैं। राजा कहते हैं——

नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासंकटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयस्त्वनुगुणो भवति ॥ ३·८

विदूषक और राजा की बातचीत उर्वशी अपनी सखी चित्रलेखा के साथ छिपकर सुनती है। राजा उर्वशी से हुए अपने क्षणिक संपर्क के सुखों की महिमा विदूषक को बताते हैं। उर्वशी और चित्रलेखा राजा और विदूषक के समक्ष प्रकट होने वाली हैं। उसी समय महारानी आ पहुँचती हैं। वे कहती हैं कि चन्द्रमा रोहिणी के योग से अधिक शोभायमान हो रहा है। उन्होंने राजा के लिए प्रियप्रसादन व्रत किया, जिसके अनुसार राजा को छूट दी गई कि अपनी प्रसन्नता के लिए वह जिससे चाहें प्रेम करें। महारानी उसका विरोध नहीं करेंगी। उर्वशी प्रसन्न हो गई। विदूषक के पूछने पर महारानी ने कहा——'मैं अपना सुख समाप्त कर राजा को सुखी रखना चाहती हूँ।'

महारानी चली गईं। उर्वशी ने राजा के पास प्रकट होकर उनकी इच्छानुसार उनकी आँखें अपने हाथ से मूँद दीं। राजा ने स्पर्श-सुख से उसे पहचान लिया। चित्रलेखा ने राजा से छुट्टी ली। राजा को उर्वशी मिल गई।

उर्वशी क्रीडाविहार करने के लिए राजा के साथ कैलास पर्वत के गन्धमादन वन में पहुँची। वहाँ उसने देखा कि राजा उदयवती नामक विद्याधर कुमारी को देख रहे हैं। वह मान करके कुमार वन में घुस गई, जहाँ नियमानुसार वह लता में पिरणत हो गई। राजा अब पागल होकर उसे उसी वन में ढूँढ रहा है। वह विभिन्न पशु-पक्षी और लता आदि से अपनी प्रिया के विषय में पूछता है। राजा का करुण विप्रलम्भ हृदय-विदारक है। यथा,

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया ।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत् ॥ ४·२१

राजा ने चन्द्रमा के निर्देश से संगमनीय मणि ग्रहण की और उसके प्रभाव से आलिंगन करने पर एक लता उर्वशी रूप में परिणत हो गई। राजा ने उर्वशी से अपना दुःखड़ा रोया—

मोरा परहुअ हंसरहंग अलिगअ पव्वअ सरिअ कुरंगं ।
तुज्झह कारणा रण्ण भमन्ते को ण हु पुच्छिअ मइ रोअन्ते ॥ ४·७०

नायक और नायिका राजधानी प्रतिष्ठान में लौट आये। राजा ने मणि को अपनी चूडामणि बना ली। एक दिन उसे कोई गिद्ध ले उड़ा। कुछ देर मणि से आकाश को अलंकृत करके अन्त में वह आँखों से ओझल हो गया। अन्त में गिद्ध मणि के साथ गिर पड़ा। कंचुकी मणि के साथ गिद्ध को मारने वाले बाण को साथ लेकर आया और राजा की आज्ञानुसार उसे कोश में रख आया। बाण पर मारने वाले का नाम नीचे के श्लोक से व्यक्त था—

उर्वशी-सम्भवस्यायमैलसूनोर्धनुष्मतः ।
कुमारस्यायुषो बाणः संहर्ता द्विपदायुषाम् ॥ ५·७

राजा को कुमार की उत्पत्ति का कुछ भी ज्ञान नहीं था। उसी समय एक तापसी कुमार को लेकर उर्वशी को ढूँढती हुई आई। उससे ज्ञात हुआ कि उर्वशी ने अपने नवजात शिशु को च्यवन के आश्रम में दे दिया था और वह धनुर्विद्यादि में सुशिक्षित है। उसने आज एक गिद्ध को मार दिया है। यह आश्रमोचित आचार नहीं है। अब इसे माता को दे देना है। इसे सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये। उर्वशी उस कुमार को देखते ही सचिन्त हो उठी। उसने कहा कि अब मर्त्यलोक में आपके साथ रहने का मेरा समय समाप्त हो गया। उसकी अवधि आपके पुत्र-दर्शन तक ही थी। तापसी से जाते समय कुमार ने कहा—

यः सुप्तवान् मदङ्के शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः ।
तं मे जातकलापं प्रेषय शितिकण्ठकं शिखिनम् ।। ५·१३

राजा ने वानप्रस्थ लेने का विचार किया। कुमार के अभिषेक की सज्जा होने लगी। उसी समय नारद ने आकर इन्द्र का सन्देश दिया कि सुरासुर सग्राम होने वाला है। आप को युद्ध में उनकी सहायता करनी है। शस्त्र न छोड़ें। उर्वशी आपकी जीवन-संगिनी हो। नारद ने कुमार का युवराज पद पर अभिषेक करा दिया।

कथा-स्रोत

विक्रमोर्वशीय की कथा का मूल ऋग्वेद के सूक्त १०·९५ में मिलता है। परवर्ती युग की कथा की दृष्टि से उसमें नीचे लिखे तत्व महत्त्वपूर्ण हैं:—

पुरूरवा से उर्वशी ने विवाह किया था और उस समय कहा था कि पुत्र होने पर मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगी। राजा ने पृथ्वी-पालन को महान् उद्देश्य मान कर उर्वशी से पुत्र उत्पन्न किया। उर्वशी पुत्र को कहीं रख आई। पुरूरवा के साथ चार वर्ष रह लेने के पश्चात् वह चलती बनी। उसे ढूंढते हुए राजा अप्सराओं के लोक में पहुँचा और उससे उर्वशी की दो टूक बातें हुईं। राजा ने कहा कि तुम्हारे बिना मैं अशक्त हो गया हूँ, तुम्हारे विरह के कारण मेरे तूणीर से बाण नहीं निकलता, जयश्री नहीं मिलती। तुम्हारे बिना मैं मरने जा रहा हूँ। देवताओं को यह बात विदित हो गई। उन्होंने पुरूरवा को देवलोक की नागरिकता प्रदान कर दी।[1] उर्वशी भी राजा पर सदय हो गई।

इस ऋग्वैदिक कथानक में सर्वप्रथम जोड़-तोड़ शतब्राह्मण के रचयिता ने की।[1] शतपथ की कथा इतनी अनगढ है कि कालिदास ने उसे छुआ तक नहीं।

हरिवंश की कथा के अनुसार ब्रह्मा के शाप से पुरूरवा की कामना उर्वशी ने की, यद्यपि वह अप्सरा थी। एक बार वियोग होने पर गन्धर्वों की दी हुई अग्नि से यज्ञ करके पुरूरवा गन्धर्व-लोकवासी हुए। स्वर्ग में ही उसे आयु आदि सात पुत्र हुए। बस इतनी ही कहानी का अंश कालिदास को अपने मतलब का लगा। इसमें उन्होंने अपने साँचे की बातें जोड़ दीं। इस प्रसंग में कालिदास के साँचे की व्याख्या परिचेय है। कालिदास पहले तो प्रथमदृष्टि के प्रेम के प्ररोचक हैं। प्रथम दृष्टि का अवसर नायिका की रक्षा करते समय प्रस्तुत करना कालिदास को अभीष्ट है। अभिज्ञानशाकुन्तल में भ्रमर के आतङ्क से नायिका की रक्षा करते समय दुष्यन्त शकुन्तला को देखता है। विक्रमोर्वशीय में केशी नामक असुर से उर्वशी की रक्षा करते हुए पुरूरवा नायिका को देखकर

---

१. शतपथ ११.५.१

Winternitz ने लिखा है—

It seems that he became transformed into a Gandharva and attains heaven, where at lost the joy of reunion is his.

उसके सौंदर्य से मुग्ध हो जाता है ।[1] लौटते समय पुरूरवा को अधिक देर तक देखने के लिए उर्वशी का अपनी वैजयन्तिका को लता में फँसाना अभिज्ञानशाकुन्तल के समान प्रकरण में शकुन्तला के कुरबक-शाखा में वल्कल फँसने के समकक्ष है। इस प्रकरण से लेकर नाटक के अन्त तक इन्द्र का प्रायः सर्वत्र साहचर्य है। इन्द्र कालिदास के आदर्श देव हैं।[2] शाप की अवधि विक्रमोर्वशीय में अविमारक और अभिज्ञानशाकुन्तल के समान ही इसमें नियत कर दी गई है । इसमें इन्द्र स्वयं भरत के शाप को उर्वशी के पुत्र-दर्शन तक सीमित कर देते हैं। विक्रमोर्वशीय में महारानी पहले उर्वशी-प्रणय का विरोध करके अन्त में प्रियप्रसादन व्रत करके उर्वशी के मार्ग से हट जाती हैं, जैसे मालविकाग्निमित्र में महारानी धारिणी मालविका के प्रणय का आरम्भ में विरोध करके अन्त में उसे राजा को प्रदान कर देती हैं।[3] उर्वशी का पत्र लिखना शकुन्तला के पत्र लिखने के समान पड़ता है । विक्रमोर्वशीय में उर्वशी और चित्रलेखा का छिपकर राजा और विदूषक की बातें सुनना अभिज्ञानशाकुन्तल में सानुमती का छिपकर विदूषक के प्रति शकुन्तला-विरह की बातें सुनने के समकक्ष है। भास के अविमारक में भी नायक विदूषक के प्रति नायिका-विरह के सन्तापों की चर्चा करता है, जिसे नायिका की दूती छिपकर सुनती रहती है।

कालिदास के कथानक के साँचे में नायक और नायिका को विवाह के पहले या पश्चात् विरही बना देना एक साधारण बात है । कुमारसम्भव में प्रथम प्रणय के सुखद क्षणों के पश्चात् पार्वती को शिव से अलग होना पड़ा । अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला को दुष्यन्त से अलग होना पड़ा। इसी पद्धति पर है पुरूरवा का उर्वशी से अलग हो जाना। विक्रमोर्वशीय में नायक और नायिका को विवाह के पश्चात् वियुक्त कर के उन्मत्तप्राय नायक की मनोदशा का वर्णन करना कालिदास की उदात्त कला का शिखर-विन्दु है, जिसका मेघदूत में परिपाक हुआ है। कालिदास के पहले अनेक कवियों ने इस प्रकरण को निबद्ध किया है । वाल्मीकि ने राम का सीता-विरह-वर्णन किया था और वह

---

१. कालिदास को यह प्रथम दृष्टि की योजना भास के चारुदत्त और अविमारक से मिली होगी। अविमारक में नायिका को नायक ने हाथी से बचाया था। चारुदत्त में कामदेव-महोत्सव में नायिका ने नायक को देखा था । इन अवसरों पर प्रथम दृष्टि में प्रणय का सूत्रपात हुआ । उर्वशी की रक्षा केशी से पुरूरवा ने की—यह कथांश कालिदास के द्वारा कल्पित है। महाभारत के अनुसार केशी ने देवसेना का अपहरण किया था, जिसे इन्द्र ने छुड़ाया और स्कन्द से कहा कि देवसेना से पाणिग्रहण करें ।

२. इस प्रसङ्ग के लिए देखिये पुस्तक का प्रथम भाग रघुवंश-प्रकरण में इन्द्रानुयोग ।

३. धारिणी उन सभी अवसरों पर विघ्न डालने के लिए वैसे ही पहुँचती हैं, जैसे विक्रमोर्वशीय में महारानी उर्वशी के मिलन को अपनी उपस्थिति से अचिर बनाती हैं।

अधिकांशतः कालिदास के इस प्रकरण का उपजीव्य है।[1] भास ने अविमारक में प्रायः इन्हीं परिस्थितियों में उन्मत्तप्राय नायक की विरह-व्यथा का समाकलन किया है।

भरत के द्वारा शाप दिलाने की चर्चा विक्रमोर्वशीय में अनोखी है। हरिवंश में ब्रह्मा के शाप से उर्वशी को मर्त्यलोक-वासी होना पड़ा था। हरिवंश के इस प्रकरण का उपबृंहण कालिदास ने कलापूर्ण विधि से किया है। कालिदास ने गन्धमादन वन में उर्वशी को लता बना डाला। फिर संगमनीय मणि के प्रभाव से वह पुनः अपने वास्तविक रूप में आई। यह कथांश कालिदास की अपनी निजी कल्पना है। इसके आगे संगमनीय मणि के गिद्ध के द्वारा लेकर उड़ जाने तथा उसे मारकर पुनः संगमनीय मणि को प्राप्त कराने वाले आयुष्कुमार का प्रकरण—यह सारा व्यापार कालिदास की प्रतिभा से कल्पना प्रसूत है।[2]

इन्द्र की सहायता के लिए पुरूरवा को नारद भेजते हैं और उसे उर्वशी सदा के लिए प्राप्त होने का संवाद देते हैं। यह कथांश अभिज्ञानशाकुन्तल में मातलि के द्वारा दुष्यन्त को समाचार देने के समकक्ष है। इसके पश्चात् दुष्यन्त को शकुन्तला की प्राप्ति हो जाती है। भास के अविमारक और बालचरित में नायक का कार्यकलाप कुछ इसी प्रकार का है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास के पास नाट्य कथाओं का एक साँचा है, जिसके अनुरूप विक्रमोर्वशीय की प्राचीन कथा को संवर्धित करके सुरूपित किया गया है। यह साँचा बाल्मीकि और भास के कथाशिल्प का अनुवर्तन है।

कथा शिल्प

विक्रमोर्वशीय के आख्यान की कुछ कलात्मक विशेषतायें हैं। सर्वप्रथम है लता-विटपान्तरित और तिरस्करिणी-प्रतिच्छन्न होकर पात्रों का ऐसी बातें सुनना, जो प्रत्यक्ष होने पर सुनने को नहीं मिल सकतीं। द्वितीय अङ्क में महारानी लताविटपान्तरित होकर राजा और विदूषक की बातें सुनती हैं।[3] नायिकादि दिव्य कोटि का होने के कारण एक ही रंगमंच पर दो वर्ग के पात्र अलग-अलग संवादपरायण होते हैं, जिनमें से एक जोड़ी

---

१. उपजीव्यांश है अरण्यकाण्ड का सर्ग ६०·८—३८

२. कुछ आलोचकों का मत है कि आयुष्कुमार का प्रकरण नाट्यकला की दृष्टि से अनावश्यक है। यह मत बहुत कुछ समीचीन है। किन्तु कालिदास पुत्रोत्कर्ष-वर्णन में विशेष रुचि लेते हैं। वे अपनी सीधी पद्धति को थोड़ा छोड़कर भी शैशव की रमणीयता का रसपान पाठक को कराने में निपुण हैं।

३. भास ने अविमारक, स्वप्नवासवदत्त और चारुदत्तादि रूपकों में पात्रों की अन्तरित होकर बातें सुनने की योजना प्रवर्तित की है।

तिरस्करिणी-प्रतिच्छन्न होने के कारण रंगमंच के अन्य पात्रों के लिए अदृश्य है और साथ ही यह अदृश्य जोड़ी दूसरी प्रत्यक्ष जोड़ी के पात्रों की बातें सुनकर तदनुकूल प्रतिक्रिया-परायण है। सामाजिक इन दोनों वर्गों को देखते और सुनते हैं। इस प्रकार की आख्यानात्मक योजना प्रतिभा-नैपुण्य से निर्वाहित हो पाती है। उर्वशी और चित्रलेखा ने तिरस्करिणी-प्रतिच्छन्न होकर ऐसी भूमिका प्रस्तुत की है।

पात्रों से मिथ्या भाषण कराने की स्थिति कालिदास ने प्रस्तुत की है। उर्वशी का लिखा भूर्जपत्र महारानी के हाथ पड़ा और उसे ही पुरूरवा ढूंढ रहा था, किन्तु जब महारानी उस पत्र को निकाल कर राजा के आगे बढ़ाती है तो सकपकाकर वह झूठ बोलता है—**नेदं पत्रं मया मृग्यते। तत्खलु मन्त्रपत्रं यदन्वेषणाय ममायमारम्भः।**

इस प्रकार के वितथ भाषण से सामाजिकों का मनोरञ्जन होना स्वाभाविक है।

द्वितीय अङ्क में उर्वशी और चित्रलेखा के अपराजिता विद्या सीखने की चर्चा है। कथानक की आवश्यकता की दृष्टि से यह आख्यानांश सर्वथा व्यर्थ है। इसका अन्यत्र कोई उपयोग नहीं है। सम्भवतः इस कला की चर्चा मात्र करना कवि का अभिप्रेत था।

पात्र-परिशीलन

विक्रमोर्वशीय के पात्र दिव्य और अदिव्य दोनों वर्गों के हैं। इनमें पुरुष पात्रों में नारद देवर्षि, और चित्ररथ गन्धर्वेश्वर हैं। स्त्री पात्रों में उर्वशी, चित्रलेखादि अप्सरायें हैं। ऐसी स्थिति में कार्यस्थली भी हिमालय, गंगा-यमुना की संगम-भूमि, गन्धमादन और देवलोक हैं। पात्र और कार्यस्थल की दृष्टि से इस नाटक में चित्र-वैचित्र्य और विसंष्ठुलता है।

नायिका उर्वशी के मिलने के पहले विक्रमोर्वशीय का नायक पुरूरवा पराक्रमी राजा है। नायिका के सम्पर्क में आने पर वह एकमात्र भावुक प्रणयी है और अपनी महारानी को भरमाने के लिए अपने को उसका दास कहता है—

अपराधी नामाहं प्रसीद रम्भोरु विरम संरम्भात्।
सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः॥ २·२०

पुरूरवा को कालिदास ने दास-प्रणयी के रूप में निरूपित किया है। वह उर्वशी के चरणों की सेवा करना चाहता है। यथा,

सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठमेकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम्।
अस्याः सखे चरणयोरहमद्य कान्तमाज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः॥ ३·१९

प्रस्तुत कृति का एकमात्र उद्देश्य है एक पक्के प्रेमी का नायिका के विरह में वर्णन करना। पूरे नाटक में सम्भवतः दो चार घड़ी तक ही नायक और नायिका का

रंगमंच पर साहचर्य दिखाया गया है, किन्तु उनकी वियोग की घड़ियाँ अगणित हैं। इन्हीं घड़ियों में नायक का भावुक कविहृदय प्रकट होता है।

अपने वियोग के क्षणों में पुरूरवा डानक्विक्झोट की समता कर सकता है। वह कहता है एक बरसते हुए बादल को देखकर--

आः दुरात्मन् रक्षः, तिष्ठ क्व मे प्रियतमामादाय गच्छसि। (विलोक्य) **हन्त शैलशिखराद् गगनमुत्पत्य बाणैर्मामभिवर्षति।** (लोष्ठं गृहीत्वा हन्तुं धावन्)

वह प्रेमोन्मत्त होकर ढेले से बादल पर प्रहार करता है। पूरे चतुर्थ अंक में वियोग के सर्वोच्च प्रेमावेश में पुरूरवा का काव्य-दर्शन गीतों के रूप में प्रस्फुटित है।

किसी राजा का अप्सराओं के चक्कर में पड़ना राजोचित गुणगरिमा से हीनतर स्तर की बात है। अप्सरायें लोकधारणा के अनुसार उच्छृंखल प्रेम वाली होती हैं। उर्वशी इन्द्र की गणिका कही जा सकती है।[1] वह मुग्धा कोटि की नायिका नहीं है, अपितु अभिसारिका है। उसके विषय में पूर्वकालिक साहित्य भी प्रायः व्यक्त करता है कि वह किसी सत्प्रतिष्ठ पुरुष के लिए स्पृहणीय नहीं कही जा सकती। राजा का उसके प्रति प्रेम कोरी ऐन्द्रियक कामुकता से वासित है। पुरूरवा और उर्वशी को कुमारसम्भव के शिव तथा पार्वती और रघुवंश के अज और इन्दुमती की पंक्ति में नहीं रख सकते। पुरूरवा का उदयवती नामक विद्याधरी को प्रेमाभिप्राय से देखना यही व्यक्त करता है कि वे उर्वशी से भी सर्वथा परितृप्त नहीं थे और कोई तीसरी नायिका भी उन्हें स्वीकरणीय हो सकती थी। तभी तो उर्वशी उन पर कुपित हुई थी।

उर्वशी में कोमलता और कठोरता का अपूर्व सम्मिश्रण है, जो उसकी जाति की विशेषता ही कही जा सकती है। राजा के प्रति अमर्यादित प्रेम और पुत्र को जन्मते ही छोड़ देना इसके प्रमाण हैं। इस रूपक में उसे पुरूरवा की अभिसारिका गणिका से उठाकर

---

१. विक्रमोर्वशीय १.१६

इस रूपक के अनेक उल्लेखों से प्रतीत होता है कि कालिदास की दृष्टि में उर्वशी का पुरूरवा के साथ वही सम्बन्ध था, जो इन्द्र के साथ था। इन्द्र की पत्नी शची थी। पुरूरवा की पत्नी थी औशीनरी। उर्वशी ने कहा है शची को देखकर--स्थाने इयमपि देवीशब्देनोच्चार्यते। नहि किमपि परिहीयते शचीतः ओजस्वितया। इसी प्रकार जब वह जय हो, कह कर पुरूरवा का अभिनन्दन करती है तो वह कहता है कि अब तक तुम्हारी जय हो, वाक्य इन्द्र के लिए सीमित था। अब वह मेरे लिए प्रयुक्त हुआ है। उर्वशी इन्द्र की पत्नी नहीं थी और न पुरूरवा की पत्नी बनी। वह अपने को पुरूरवा के लिए तृतीय अंक में प्रणयवतीव कहती है। कालिदास ने औशीनरी के द्वारा ठीक ही कहलाया है कि उर्वशी केवल समागम-प्रणयिनी मात्र थी।

अन्त में---'यावदायुःसहधर्मचारिणी' बना दिया गया है। अब तक वह सहधर्मचारिणी नहीं थी। इस धारणा से कालिदास ने प्रमुख पात्रों के उदात्त पितरों का उल्लेख किया है।[1] पात्रों की महिमा आनुवंशिक होती है।

रस

विक्रमोर्वशीय में शृङ्गार रस अङ्गी है। शृङ्गार का विप्रलम्भ स्वरूप इसमें विशेष निखरा है, विशेषतः चतुर्थ अङ्क में करुण-विप्रलम्भ का। प्रथम से तृतीय अङ्क तक पूर्वराग कोटि का शृङ्गार है, जिसमें नायिका का साक्षात् दर्शन नायक को हुआ है। इसमें बहुत-कुछ एकपक्षीय शृङ्गार विकसित हुआ है, जिसमें पुरूरवा की उर्वशी के प्रति तीव्र कामदशा का परिचित्रण है। शृङ्गार के लिए आलम्बन विभाव प्रायशः उर्वशी और पुरूरवा है। उर्वशी कालिदास की नायिका-सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ रत्न है। वह देवलोक की ललना-ललामभूता है, जिसके विषय में कवि का कहना है कि सबको ब्रह्मा बनाते हैं, जो साधारण सौंदर्य के निर्माता हैं, किन्तु यह जो असाधारण सौन्दर्य है, उसकी सृष्टि ब्रह्मा ने नहीं की है। इसको बनाने वाले चन्द्रमा, मदन या वसन्त होंगे, जिसमें शृङ्गार ही शृङ्गार एक तत्त्व है। नायक की दृष्टि में वह ज्योत्सनामयी रात्रि, निर्धूम अग्नि और निर्मल जलहासिनी गङ्गा के सदृश रमणीय और वैशद्य-प्रभवा है। राजा की दृष्टि में उर्वशी है—

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः ।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥ २·३

शृङ्गारोचित उद्दीपन विभावों का अनुपम समाहार इस रूपक में सन्निहित है। वसन्त ऋतु और प्रमदवन की अतुलित समृद्धि उत्फुल्ल है। गन्धमादन पर्वत पर मन्दाकिनी-तट, बादल, सुगन्ध से झूमने वाले भौंरों के गाने के साथ-साथ और कोकिल की कूज-रूपी वंशियों से गूँजते हुए पल्लव-निकर, बादलों की ओर दृष्टि डाले हुए मयूर, कोकिल, राजहंसों का कूजन, चकवा, भ्रमर, हरिण आदि सभी पुरूरवा के प्रेमोन्माद को बढ़ाते हैं।

उद्दीपन-विभाव की सरसता के लिए काल और ऋतु-सम्बन्धी वर्णनों का प्रायशः समावेश किया गया है। दोपहर हो गई, वसन्त आ गया, वर्षा आ गई इत्यादि कह कर कवि इनसे सम्बद्ध, प्राकृतिक ऐश्वर्य की सुश्रीकता पुरस्कृत करता है, जिसके द्वारा विशेषतया शृङ्गारित भावों को बल मिले। कवि के ये वर्णन अतिशय सुरुचिपूर्ण हैं। यथा,

विद्युल्लेखा कनकरुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं
व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि ।
धर्मच्छेदात् पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः
धाराहारोपनयनपरा नैगमाः सानुमन्तः ॥ ४·१३

---

१. विक्रमोर्वशीय के १·४ में उर्वशी को नारायण से और इसी अङ्क में नायक को चन्द्र से उद्भूत होने का वर्णन है।

आलोकयति पयोदान् प्रबलपुरोवातताडितशिखण्डः
केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥ ४·१८

किसी ऐश्वर्यशाली वस्तु का वर्णन करते समय उसे अन्य ऐश्वर्यशाली वस्तुओं से संगमित कर देने की कला में कालिदास निष्णात हैं। नीचे के नारद-वर्णन में चन्द्र, मुक्ता और कल्पवृक्ष का संगमन है। यथा,

गोरोचनानिकषपिङ्गजटाकलापः
संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः ।
मुक्तागुणातिशय-सम्भृतमण्डनश्रीः
हेमप्ररोह इव जंगमकल्पवृक्षः ॥ ५·१९

भावात्मक उत्थान-पतन

विक्रमोर्वशीय में भावात्मक उत्थान-पतन कौशल-पूर्वक दिखाया गया है। उर्वशी के लिए सबसे अधिक सुखद क्षण था, जब उसे तृतीय अंक में नायक के द्वारा स्वागत का पूर्ण विश्वास है और वह उसके समक्ष प्रकट होने वाली है। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ता है—**इत इतो भट्टिनी।** सभी चुप हुए और उर्वशी को कुछ देर और प्रतीक्षा करनी पड़ी। अन्तिम अंक में एक बार और ऐसा क्षण आता है, जब राजा प्रसन्न हैं कि पुत्र मिला। पर यह क्या? उर्वशी रो रही है। उसने बताया कि पुत्रदर्शन तक ही आपके साथ रहना बदा था। तब तो राजा मूर्छित हो जाता है। वह कहता है—**सुखप्रत्यर्थिता दैवस्य।** राजा वानप्रस्थ की सज्जा करने लगते हैं। यह भावात्मक पतन की अन्तिम सीमा है। तभी नारद आकर कहते हैं—'इन्द्र ने आदेश दिया है कि उर्वशी आपकी आजीवन सहधर्मचारिणी रहेगी'। भावलहरी का निदर्शन नाटचकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

गीतितत्त्व

विक्रमोर्वशीय में गीततत्त्व का प्राधान्य है। इसका प्रणयात्मक कथानक आदि से अन्त तक पूर्वराग और विप्रलम्भ की भूमिका प्रस्तुत करके हार्दिक्य का रमणीय वातावरण सर्जन करता है। पूरे रूपक में लगभग ९० प्रतिशत पद्यों में गीतितत्त्व निखरता हुआ प्रतीत होता है। चौथा अंक तो गीत-नाट्य की अपूर्व कृति है। इनमें प्रायः अपभ्रंश भाषा में रचित गीत राजा के द्वारा गाये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक युग भारत में था, जब गीतों के लिए प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के पद्यों को अधिक रूचिपूर्ण माना जाता था। इस अंक के गीत भावोत्कर्ष में अमरुक या गाथासप्तशती से कहीं-कहीं ऊँचे पड़ते हैं।[1]

शैली

विक्रमोर्वशीय में कालिदास ने अनेक स्थलों पर व्यञ्जना का चमत्कार प्रदर्शित किया है। कुछ व्यञ्जनायें अप्रस्तुत प्रशंसात्मक आभाणकों पर आधारित हैं। यथा,

१. गीत के कुछ अच्छे उदाहरण हैं ३·१७; ४·१—२ आदि।

(१) **प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते पश्चाद्विद्युल्लता ।**
व्यंग्य अर्थ—चित्रलेखा के पश्चात् उर्वशी दिखाई पड़ेगी।

(२) **न खलु अक्षिदुःखितोऽभिमुखं दीपशिखां सहते ।**
व्यंग्य अर्थ—उर्वशी से प्रेम करने पर औशीनरी की उपेक्षा स्वाभाविक है।

(३) **लोप्त्रेण सूचितस्य कुम्भीरकस्यास्ति वा प्रतिवचनम् ।**
व्यंग्य अर्थ—उर्वशी के पत्र द्वारा नई नायिका से प्रेम प्रकट होने पर अब राजा कोई उत्तर नहीं दे सकते ।

अन्योक्ति पर आधारित व्यञ्जना है—

गहणं गइन्दणाहो पिअविरहुम्माअपअलिअविआरो ।
विसइ तरुकुसुमकिसलअभूसिअणिअदेहपब्भारो ।। ४·५

इसमें राजा के वन में प्रवेश करने की सूचना यह कह कर दी गई है कि गजराज वन में प्रवेश करता है।

विक्रमोर्वशीय में शब्दालंकार की चारुता अनेक स्थलों पर रमणीय है । साथ ही स्वरों का वारंवार अनुवर्तन गीततत्त्व के उद्भावक प्रतीत होते हैं। यथा,

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया ।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत् ।। ४·२१

इसमें कण्ठ, पाङ्ग, दृष्टि आदि पद और पदांशों की पुनरावृत्ति के साथ 'आ' स्वर की पुनरावृत्ति रोचक है।

मम कुसुमितास्वपि सखे नोपवनलतासु नम्रविटपासु । २·८

इसमें कुसुमिता, लता और विटपा में आ की पुनरावृत्ति है।

प्राकृत-पदावली में भी अनुप्रासात्मक चारुता का सम्भार प्रस्तुत है। यथा द्वितीय अङ्क में—

ललिदलदालोहिअमाण-लोअणौ

इसमें ल की पुनरावृत्ति है।

रघुवंशादि में सुविकसित समपद प्रतिष्टा का ईषद्विकास विक्रमोर्वशीय में दृष्टिगोचर होता है। यथा तृतीय अङ्क में—

न खलु नारायणोरुसम्भवा वरोरुः ।

इसमें उरु की दो वार आवृत्ति है।

कुमारस्यायुषो बाणः संहर्ता द्विपदायुषाम् । ५·७

इसमें आयुस् की पुनरावृत्ति काव्यात्मक चारुता के लिए है।

अर्थालंकारों में कालिदास उपमानों को स्थानीय बना कर अपने वक्तव्य को प्रत्यक्ष सा करते हुए प्रभविष्णु बनाते हैं।[1] यथा,

न तथा नन्दयसि मां सख्या विरहिता तया
सङ्गमे दृष्टपूर्वेव यमुनागङ्गया यथा ।। २·१४

इसमें प्रतिष्ठानपुरी से साक्षात् दिखाई देने वाले गङ्गा-यमुना के सङ्गम को उपमान रूप में ग्रहण किया गया है। तृतीय अंक में प्रतिष्ठान के राजभवन की उपमा समीपवर्ती यमुना में पड़ी हुई कैलास-शिखर की छाया से दी गई है। यथा,

ननु प्रतिबिम्बितमिव यामिनीयमुनायां कैलासशिखरसश्रीकं ते प्रियतमस्य भवनमुपगते स्वः ।

गिद्ध मणि को लेकर आकाश में उड़ रहा है। उसके लिए उपमान कालिदास ने आकाशवर्ती बादल और मङ्गल तारे से दे डाला है—

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः ।
नक्तमिव लोहिताङ्गः परुषधनच्छेदसंपृक्तः ।। ५·४

इसमें गिद्ध का बादल और मणि का मंगल उपमान हैं। उपमा और अर्थान्तर-न्यास अलंकार विक्रमोर्वशीय में विशेष रूप से प्रस्फुटित हुए हैं। उपमा का २८ पद्यों में और अर्थान्तरन्यास का चार पद्यों में प्रयोग हुआ है।[2] लोकोक्तियों में अप्रस्तुतप्रशंसा का अनूठा विलास है।

विक्रमोर्वशीय में कालिदास ने उर्वशी के वियोग में नायक से जो प्रलाप कराया है, वह उन्मत्तोक्ति छाया का अनूठा उदाहरण है। यथा,

रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं
नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं वाताभिभूतं शिरः ।
उत्कण्ठा घटमानषट्पदघटा संघट्टदष्टच्छदः
तत्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः ।।

विक्रमोर्वशीय में आर्या २९ पद्यों में और श्लोक ३० पद्यों में प्रयुक्त हैं। वार्णिक छन्दों में वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित प्रमुख हैं, जो क्रमशः १२ और ११ पद्यों में

---

१. इस प्रकार उपमेय को देखने के लिए जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं से सपदि उपमान का भी दर्शन होता है।

२. डा० मैनकर के अनुसार प्रथम अंक के ७,१०,११,१२,१३,१७,१८ पद्यों में द्वितीय अंक के ४, १५, २२ पद्यों में तृतीय अंक के ३,४,१६ पद्यों में, चतुर्थ अंक के १३,३१,३३ ३४,३७,४० पद्यों में और पंचम अंक के २,३,४,११,१४,१६,१९,२१,२२ पद्यों में उपमा है। ३·१; ४·१२, १५ तथा ५·१८ में अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं।

प्रयुक्त है। इसमें अन्य छन्द अपरवक्त्र, औपच्छन्दसिक, वैतालीय, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, हारिणी और मंजुभाषिणी मिलते हैं।

कहीं-कहीं अपद्योचित स्थलों पर भी पद्य-सन्दर्भ है। यथा,

कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण ।
अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ।। ३.४

कालिदास की अन्य रचनाओं की भाँति विक्रमोर्वशीय में भी वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण की मञ्जुल सुश्रीकता रमणीय है।

शब्दानुराग

प्रत्येक कवि की रचना में साधारणतः कुछ शब्द किसी विशेष आदर्श की प्रेरणा के लिए, सौन्दर्य-निर्झरिणी के प्रवाह के लिए अथवा अकारण ही उसके प्रिय प्रतीत होते हैं। रघुवंश के प्रकरण में कालिदास का इन्द्रानुयोग बहुचर्चित है। इस रूपक में उसी आदर्श पर इन्द्र और उसके पर्याय महेन्द्र, मघवा, वज्री, शतक्रतु, सुरेन्द्र, सहस्राक्ष, पुरेन्द्र, मरुत्वान्, पाकशासन आदि अनेकशः प्रयुक्त हैं।[1] विक्रम तो इस रूपक के नाम के साथ ही सम्पृक्त है। विक्रम और महेन्द्र दोनों का सामञ्जस्य नीचे लिखे वाक्य में है—

दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् ।

अन्यत्र चित्ररथ ने कहा है—**अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः**। इन्द्र और विक्रम का सामंजस्य रघुवंश में सुप्रसाधित है।

कवि के अन्य प्रिय शब्द चन्द्र और श्री बहुशः प्रयुक्त हैं। चन्द्र और उसके पर्यायवाची तो सैकड़ों वार मिलते हैं। नायक भी तो चन्द्रवंशी था।

एकोक्ति तथा संवाद

विक्रमोर्वशीय में एकोक्ति (Soliloquy) का सम्भार सातिशय है। चतुर्थ अङ्क प्रायः आद्यन्त एकोक्ति है, जिसमें वियोगी नायक उन्मत्त होकर प्रकृति की रमणीयतम विभूतियों में नायिका की खोज करते हुए अकेले विलाप करता है।

कालिदास की संवाद-कला विक्रमोर्वशीय में सुविकसित है। सूक्तियों और लोकोक्तियों से संवाद में बल के साथ ही स्वाभाविकता का प्रादुर्भाव हुआ है। कितनी सटीक और प्रभविष्णु है विदूषक के द्वारा प्रयुक्त यह लोकोक्ति—

छिन्नहस्तः पुरतो वध्ये पलायिते भणति गच्छ धर्मो मे भविष्यतीति ।

इसमें सूक्ष्म दृष्टि की निदर्शना है। संवाद की एक अन्य विशेषता दर्शक के मानस में गुदगुदी पैदा करती है, जिसमें प्रत्येक पात्र अपनी बात आधी-आधी कहता है और उन्हें जोड़ कर दर्शक उनके हृदय तक पहुँचता है। यथा,

राजा—अपि नाम सा उर्वशी

उर्वशी—(आत्मगतम्) कृतार्था भवेत् ।

इस प्रसङ्ग में यह अवधेय है कि उर्वशी अदृश्य है, जिसे राजा नहीं देख सकता, किन्तु दर्शक देखते हैं।

कलाप्रियता

कालिदास की कलाप्रियता का प्रचुर प्रमाण विक्रमोर्वशीय में भी मिलता है। इस रूपक में उर्वशी की सखी चित्रलेखा है। यह नाम कवि की चित्रप्रवणता का परिचायक है। इसमें विदूषक की उपमा आलेख्य वानर से दी गई है। विदूषक ने राजा को परामर्श दिया है कि उर्वशी का चित्र बना कर उससे विनोद कीजिये। कालिदास ने मयूरों के उत्कीर्ण होने की चर्चा की है।[1]

जीवनादर्श

विक्रमोर्वशीय में कतिपय स्थलों पर कालिदास ने जीवन-दर्शन के सुविचारित तथ्यों का विवेचन किया है। यथा,

यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥ ३·२१

(दुःख के पश्चात् प्राप्त सुख विशेष सरस होता है। धूप से जले हुए को वृक्ष की छाया अतिशय सुखद होती है)।

विदूषक

कालिदास की वानर-प्रियता उनके रूपकों से झलकती है। विदूषक कालिदास का प्रिय पात्र है। उस विदूषक को कविवर ने दो बार वानररूप में प्रस्तुत किया है।[2] द्वितीय अंक के आरम्भ में निपुणिका नामक चेरी उसे आलेख्य वानर के समान कहे तो कहे, वह तो अपने आपको 'आश्रमवासपरिचित एव शाखामृगः कहता है। मालविकाग्निमित्र में भी वसुलक्ष्मी को डराने के लिए कवि को वानर ही मिलता है।

कालचर्चा

अङ्क और विष्कम्भक आदि का अन्त बताने के लिए कालिदास की काल-चर्चा-सम्बन्धी एक सुनियोजित योजना दिखाई पड़ती है। अभिनय के लिए अनुपयुक्त नित्य और नैमित्तिक कार्यों का समय सूचित करके उस प्रयोजन से सभी लोगों के चले जाने की सूचना देकर अङ्क समाप्त किये गये हैं। विक्रमोर्वशीय के दूसरे अंक के अन्त में कहा

---

१. विक्रमोर्वशीय ३.२

२· ऐसा लगता है कि विदूषक कालिदास के युग में वेष-भूषा के द्वारा कुछ-कुछ वानर जैसा लगता था ।

गया है कि दोपहर हो गई। विदूषक के शब्दों में स्नान-भोजन का समय हो गया है। बस यहीं अंक का अन्त होता है। तीसरे अंक के अन्त में रात्रि के पर्याप्त बीत जाने पर विदूषक राजा से कहता है—तत्समयः खलु ते गृह-प्रवेशस्य। चतुर्थ अङ्क का अन्त भी कालचर्चा से होता है कि बहुत समय हो चुका प्रतिष्ठान छोड़े हुए। अब लौट चलना चाहिए।

अलौकिकता

विक्रमोर्वशीय की अलौकिकतायें खलती हैं। कतिपय देवोचित कार्यकलाप अभिनेय नहीं रहते। उर्वशी और नारदादि का वायुलोक में विचरण करना कुछ ऐसी ही बातें है। इन्हीं दिव्य पात्रों की संगति में गन्धमादन से लौटते समय पुरूरवा भी आकाशगामी होना चाहता है। यथा,

> **अचिरप्रभाविलसितैः पताकिना**
> **सुरकार्मुकाभिनवचित्रशोभिना ।**
> **गमितेन खेलगमने विमानतां**
> **नय मां नवेन वसतिं पयोमुचा ।। ४·७३**

त्रुटियाँ

विक्रमोर्वशीय में कुछ बातें अटपट लगती हैं। अपनी रसपूर भंगतरङ्गों में आकर राजा का ब्रह्मा को वेदाभ्यास-जड बताना ठीक नहीं है। इन्द्र की गणिका थी उर्वशी। उसके चक्कर में पड़ना किसी धीरोदात्त नायक की गरिमा के स्तर से हीन पड़ता है। नीचे लिखे पद्यांश में पुरूरवा अपने पुत्र को भुजङ्ग से उपमित करता है—

> **प्रभवतितरां वेगोदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम् ।। ५·१८**

उर्वशी और इन्द्र का जो सम्बन्ध था, उसे देखते हुए प्रथम अङ्क में उर्वशी का केशी को दानवेन्द्र कहना समीचीन नहीं है।[१]

मालविकाग्निमित्र

कालिदास की सम्भवतः सर्वप्रथम नाटक-रचना मालविकाग्निमित्र है। इसमें मालविका और अग्निमित्र की प्रणय कथा पाँच अङ्कों में कही गई है। कालिदास ने इसमें भारतीय राजाओं के चारित्रिक पतन का दिग्दर्शन कराना ही अपना प्रधान उद्देश्य बनाया है। इसमें राजा को अपने ऊपर नायिका का पादप्रहार की इच्छा करते हुए, रानी को मद्यपान से विशेष मण्डन की आकांक्षा करते हुए, मेखला से रानी का राजा पर प्रहार करते हुए देख सकते हैं।

---

१. सम्भवतः यह कालिदास का इन्द्रानुयोग है कि वे इस त्रुटि पर ध्यान तक नहीं देते।

कथानक

महाराज अग्निमित्र की ज्येष्ठ पत्नी धारिणी के पास उसका भाई वीरसेन मालविका नामक सुन्दरी को दे देता है। धारिणी उसे संगीतादि की शिक्षा देने के लिए आचार्य गणदास को सौंप देती है। इसी बीच एक दिन राजा ने धारिणी के पास मालविका का एक चित्र देखा और उसके सौन्दर्य से मन ही मन मुग्ध होकर धारिणी से पूछा कि यह कौन है? धारिणी सशङ्क हो गई कि मालविका के प्रति राजा का आकर्षण है। उसने राजा को कुछ बताया नहीं, फिर भी, राजा का मालविकाविषयक अनुराग बढ़ता गया।

अग्निमित्र का नर्मसचिव विदूषक जोड़-तोड़ में अतिशय दक्ष था। उसको राजा ने मालविका का साक्षात् दर्शन कराने का काम दिया। इस प्रयोजन से विदूषक ने गणदास और हरदत्त नामक दो नाट्याचार्यों की प्रतियोगिता उनके शिष्य मालविका और इरावती के छलितक नामक नाट्याभिनय के द्वारा आयोजित करवा दी, यद्यपि धारिणी नहीं चाहती थी कि इस प्रकार का आयोजन हो, जिसमें अग्निमित्र को मालविका के निकट दर्शन का अवसर मिले। बात यह थी कि मालविका को राजा से मिलाने के लिए जो षड्यन्त्र चल रहा था, उसमें विदूषक, गणदास, हरदत्त और धारिणी की संगिनी-परिव्राजिका कौशिकी सभी के सभी ऊपर से महारानी से मिले रहते थे, पर भीतर से षड्यन्त्र के संवर्धक थे। परिव्राजिका कौशिकी ने तो संगीताचार्यों को यहाँ तक सूचना दी कि 'आपकी शिष्यायें छलितक के अभिनय में स्वल्पतम वस्त्र पहन कर आयें, जिससे सर्वाङ्ग सौष्ठव की अभिव्यक्ति हो।' कौशिकी निर्णायिका थी।[1]

संगीतशाला में पहले गणदास की शिष्या मालविका ने चतुष्पद का गायन किया—

> **दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ णिरासं**
> **अम्हो अपङ्गवो मे परिप्फुरइ किं वि वामओ।**
> **एसो सो चिर दिट्ठो कहं उण उवणइदव्वो**
> **णाह मम पराहीणं तुइ परिगणअ सतिण्हम्॥**

नृत्याभिनय के पश्चात् जाती हुई मालविका को विदूषक ने प्रश्न पूछने के व्याज से रोक लिया, जिससे राजा उसे कुछ अधिक देर तक देख सका। फिर हरदत्त ने चाहा कि मेरी शिष्या का नृत्य भी देखा जाय। पर दोपहर हो जाने के कारण उसे दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। राजा ने विदूषक से अपना दुखड़ा रोया—

---

१. रूपक-साहित्य में मालविकाग्निमित्र में छलितक का यह अभिनय विकसित होकर प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क बना। उत्तररामचरित का गर्भाङ्क इस कला का सुविकसित रूप है। यही भरत मुनि का नाटचायित है।

सर्वान्तःपुरवनिताव्यापारप्रतिनिवृत्तहृदयस्य
सा वामलोचना मे स्नेहस्यैकायनीभूता ।। २·१४

राजा का मालविका से अनुराग बढ़ता गया। वह अतिशय कामपीड़ित हो चला था। इसी बीच विदूषक ने वकुलावलिका की सहायता से मालविका से राजा के मिलने की योजना बना ली थी। इस योजना के कार्यान्वित होने के लिए आवश्यक था कि महारानी धारिणी के पैरों में मोच हो और इस प्रकार उसका चलना-फिरना बन्द हो। विदूषक ने धारिणी के झूला झूलते हुए उसको ऐसा झटका दिया कि उसे पैरों में मोच आ गई। इधर मधुकरिका नामक प्रमदवन पालिका से धारिणी को संदेश दिया गया कि अशोक को आपके पादप्रहार-दोहद की आवश्यकता है, जिससे वह खिल उठे। धारिणी चल-फिर सकने में असमर्थ थी। उसने मालविका को इस काम के लिए नियुक्त किया। प्रसन्नतापूर्वक उसने अपने नूपुर मालविका के लिए दिये और अशोक वृक्ष के समीप बकुलावलिका ने उसके चरणों को चित्रित किया। पूर्वयोजना के अनुसार राजा और विदूषक छिप कर यह सारा दृश्य देख रहे थे। मालविका का सौन्दर्य निरूपण करके राजा को प्रसन्नता हो ही रही थी, साथ ही मालविका की राजा से मिलने की उत्कट अभिलाषा उसकी बकुलावलिका से बातचीत द्वारा सुनने को मिली। अन्त में मालविका से राजा आ मिला और उसके प्रति अपना तीव्र प्रेम प्रकट करने लगा।

इधर इरावती नामक राजा की दूसरी पत्नी मदिरापान करके अपने सौन्दर्य में चार चाँद लगाकर राजा के साथ झूला झूलने का कार्यक्रम पहले से आयोजित कर प्रमदवन में आ पहुँची। वह यह सब देख कर दङ्ग रह गई कि राजा उस दासी-पद पर विराजमान मालविका से प्रेमालाप करे। राजा के मनाने पर वह बिगड़ती गई और अन्त में अपनी मेखला से उस पर प्रहार किया। ऐसे वातावरण में सभी रंगमंच से चलते-फिरते बने।

उपर्युक्त घटना-चक्र को इरावती से जानने के पश्चात् सशंक होकर धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को गुहा में बन्दी बना दिया और आदेश दिया कि उसे तभी छोड़ा जाय, जब मेरी नागमुद्रा दिखाई जाय। राजा को उससे मिले बिना रहा नहीं जाता था। विदूषक ने इसके लिए जो उपाय रचा, उसे राजा के कान में कहा। तभी प्रतिहारी की सूचनानुसार राजा धारिणी से मिलने चले गये। विदूषक भी हाथ में कुछ लेकर धारिणी से मिलने का कार्यक्रम बनाकर प्रमदवन में जा पहुँचा। राजा धारिणी के पास पहुँचे ही थे कि अपनी योजनानुसार विदूषक रोते हुए वहाँ पहुँचे कि हमें महारानी को भेंट देने के लिए पुष्प-चयन करते समय साँप न काट खाया। अब मैं मरूंगा। उपचार के लिए ध्रुवसिद्धि नामक वैद्य के पास विदूषक को पहुँचाया गया और वहीं से योजनानुसार औषधि-रूप में काम

में लाने के लिए धारिणी की नागमुद्रा मँगा ली गई, जिससे मालविका मुक्त की गई और उससे राजा का पुनर्मिलन प्रमदवन के समुद्रगृह में कराने का आयोजन विदूषक ने कर दिया। उधर जाते समय इरावती की दासी चन्द्रिका पुष्पचयन करती हुई दिखाई पड़ी, जिससे बचने के लिए समुद्रगृह की भित्ति के पास छिपकर राजा और विदूषक ने मालविका और बकुलावलिका की बातें सुनीं, जिनके द्वारा राजा को मालविका का अपने प्रति गूढानुराग का प्रतिभास हुआ। उस समय मालविका राजा का चित्र देख रही थी, जिसमें वे अपनी रानियों के बीच बैठे हुए इरावती को निहार रहे थे। राजा को इरावती से चित्र में सघन प्रेम करते देखकर मालविका रूठ गई।[1] राजा उसे मनाने के लिए पास पहुँच गये। राजा और मालविका को वहीं छोड़कर विदूषक और बकुलावलिका प्रतिहार-रक्षा के लिए चलीं। राजा और मालविका का प्रणयारम्भ चल ही रहा था कि उधर से इरावती और निपुणिका विदूषक के पास आ गईं, जो ऊँघ रहा था। इरावती का विचार था राजा को मनाने का। विदूषक स्वप्न में मालविका की शुभ प्रशंसा कर रहा था, जब इरावती वहाँ पहुँची। निपुणिका ने सर्प जैसी टेढ़ी लकड़ी विदूषक पर गिराई। विदूषक के चिल्लाने पर राजा आ पहुँचे। इरावती ने राजा को उपालम्भ दिया कि आज फिर आप दासी मालविका से प्रेमोपचार करते हुए मिले। राजा ने कहा कि बन्दीगृह से छूटने पर मुझे प्रणाम करने के लिए ये दोनों आ गई थीं। ऐसे संरम्भ के क्षण में जयसेना नामक प्रतीहारी ने समाचार दिया कि वानर के भय से कुमारी वसुलक्ष्मी मूर्छित पड़ी हैं। सभी उसे देखने चल देते हैं।

मालविका न जिस अशोक को पदप्रहार-दोहद अर्पित किया था, उसमें पुष्पराशि उज्जृम्भित हुई। इस हर्षोत्सव में महारानी धारिणी ने उस वृक्ष के नीचे उसके सत्कार के लिए एक कार्यक्रम रखा, जिसके लिए उन्होंने कौशिकी से मालविका का उच्चकोटिक-शृंगार कराया। उस समय हर्ष का एक और समाचार मिला था कि महारानी के भाई वीरसेन ने विदर्भ पर विजय प्राप्त करके वहाँ से दूत के साथ रत्न, वाहन, शिल्पकार, परिजनादि भेजे हैं। इस उत्सव में महारानी राजा के साथ पुष्पदर्शन करना चाहती थीं। वे मालविका को सुप्रसाधित करके अपने साथ ले गईं। राजा को विदूषक से मालविका को महारानी के द्वारा सजाये जाने का वृत्तान्त ज्ञात हो चुका था और उन दोनों को आशा थी कि महारानी यथापूर्व राजा को

१. नायिका का मान करना कालिदास की नाट्य साहित्य को एक अभिनव देन है। कालिदास के पहले के नाटकों में नायिका का रूठना नहीं मिलता। विक्रमोर्वशीय में तो उर्वशी का रूठना विशेष महत्त्व का है। कालिदास का नायक शिव भी रूठने में निष्णात है। गुप्तयुग की चतुर्भाणी में नायिकाओं का रूठना एक साधारण बात दिखाई देती है।

सुप्रसन्नता के लिए मालविका को राजा से विवाहित होने की अनुमति दे दें। मालविका भी समझ गई थी कि मुझे अभीष्ट पति आज मिलेगा।

विवाह के पहले उसी अशोक वृक्ष के उत्सव के समय विदर्भ देश से लाई हुई दो गायिकायें प्रस्तुत की गईं, जिन्होंने मालविका और कौशिकी को पहचान लिया। तब कौशिकी ने अपनी और मालविका की प्रच्छन्नता का इस प्रकार रहस्योद्घाटन किया—

विदर्भ के राजा माधवसेन के चचेरे भाई यज्ञसेन ने उसे जीत कर बन्दी बना लिया और उसके मंत्री और मेरे भाई सुमति को माधवसेन की भगिनी मालविका और मुझको लेकर भागना पड़ा। किसी सार्थ में सम्मिलित होकर हम लोग विदिशा की ओर आ रहे थे, जहाँ मालविका को अग्निमित्र के साथ विवाह करने के लिए अर्पित करने का कार्यक्रम माधवसेन की इच्छानुसार पहले से ही बना था। मार्ग में डाकुओं के आक्रमण करने पर मेरे भाई को वीरगति मिली और मैं किसी प्रकार यहाँ पहुँच कर महारानी के साथ रहने लगी। फिर वीरसेन ने डाकुओं से छीनकर मालविका को अपनी बहन धारिणी को सौंप दिया। 'आपने अच्छा नहीं किया कि मालविका को प्रच्छन्न रहने दिया' महारानी के यह कहने पर कौशिकी ने कहा कि विदर्भ छोड़ने पर किसी सिद्ध ने इसके विषय में भविष्यवाणी की थी कि एक वर्ष तक दासी रहने के पश्चात् किसी श्रेष्ठ पुरुष से इसका विवाह होगा। इसे सत्य होना था। अतएव मैंने मालविका को दासी बनी रहने दिया।

उसी समय महाराज अग्निमित्र के पास सेनापति पुष्यमित्र का पत्र आया कि अश्वमेध की दीक्षा लेकर जो अश्व मैंने छोड़ा था, उसकी रक्षा के लिए कुमार वसुमित्र भेजे गये हैं। उन्होंने यवन-सेना को सिन्धु प्रदेश में परास्त किया है। अब यज्ञ समाप्त होने वाला है। आप इसमें वधुओं के सहित सम्मिलित हों।

इन सब संवादों से अतिशय प्रसन्न होकर धारिणी ने मालविका का पाणिग्रहण राजा से करा दिया।

मालविकाग्निमित्र के कथानक में एक विशिष्ट तत्त्व है, जो परवर्ती नाटककारों ने अतिशय चाव से अपनाया है। इसमें प्रथम बार नायिका नायक के घर में आकर उसे आकृष्ट करती है और नायक की पूर्वपत्नियाँ इस प्रणय-क्रीडा में विविध प्रकार से बाधायें डालती हैं। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में भी नायिका इसी प्रकार की रखी है। आगे चल कर हर्ष ने रत्नावली और प्रियदर्शिका में, राजशेखर ने कर्पूरमंजरी और विद्धशालभञ्जिका में, रुद्रचन्द्र देव ने उषारागोदय में, सिंहभूपाल ने कुवलयावली में और विश्वनाथ ने चन्द्रकला में कथानक की नायिका-प्राप्ति विषयक उपर्युक्त योजना को अपनाया है। परवर्ती रूपक-साहित्य पर कालिदास का यह महत्त्वपूर्ण प्रभाव है।

कथा-स्रोत

मालविकाग्निमित्र की कथा से मिलता-जुलता आख्यान कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी में मिलता है।

'उज्जयिनी की कुमारी वासवदत्ता उदयन की पत्नी थी। उसके भाई पालक ने विजय में प्राप्त बन्धुमती नामक राजकन्या को उसे उपहार रूप में दिया, जिसका नाम वासवदत्ता ने मंजुलिका रखा। उदयन ने उसे उद्यानलता-गृह में देखा और विदूषक की सहायता से उससे गान्धर्व-विवाह कर लिया। विदूषक को रानी ने बन्दी बनाया, पर राजा ने उसे सांकृत्यायनी नामक परिव्राजिका की सहायता से मुक्त करा लिया।' यह कथा सम्भवतः कालिदास के विक्रमोर्वशीय के कथानक के आधार पर गढ ली गई है और कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी में समाविष्ट कर ली गई है।

कथा को नाटकीय रूप देने के लिए कालिदास ने जो नई बातें जोड़ी हैं, वे हैं (१) चित्र में राजा का मालविका को देखना (२) गणदास और हरदत्त की प्रतियोगिता (३) मालविका के द्वारा अशोक को दोहद अर्पण करने के अवसर पर नायक का मालविका से मिलना (४) मालविका को भूगृह में बन्दी बनाना (५) नागमुद्रा दिखाकर मालविका को मुक्त कराना (६) वानर के भय से वसुलक्ष्मी का मूर्च्छित होना (७) ऐतिहासिक युद्धात्मक घटनाओं का संयोजन और (८) नायिका के विषय में सिद्धादेश।

हमें देखना है कि मालविकाग्निमित्र के कथानक के ये नवीन तत्त्व कालिदास को कहाँ से मिले? इस रूपक की भूमिका के अनुसार भास, सौमिल्ल और कविपुत्र नाटककार के रूप में सुप्रतिष्ठित थे। इनमें से सौमिल्ल और कविपुत्र की रचनायें सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं। भास के १३ रूपक मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के रूपकों से युग के प्ररोचक अभीष्टतम तत्त्वों को कालिदास ने अपनाया है। अब हम इस दृष्टि से मालविकाग्निमित्र के प्रत्येक नवीन तत्त्व को भास के रूपकों के समान तत्त्वों से निकषित करते हैं। सर्वप्रथम वस्तु है चित्र में नायिका को देखना। भास चित्रादि कलाओं के परम प्रेमी थे और उन्होंने अपने रूपकों में चित्रादि कलाओं का अनपेक्षित रूप से भी समावेश किया है। स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चारुदत्तादि में चित्र की पुनः पुनः चर्चा है, जिसके अनुसार नायक-नायिका का चित्र बनाना परस्परानुराग-वृद्धि के लिए था। गणदास और हरदत्त की प्रतियोगिता का उद्देश्य रंगमंच पर संगीत और नृत्य का आयोजन करना है। भास ने बालचरित में रंगमंच पर नृत्य और गीत का आयोजन कराया है। कालिदास को इनके अतिरिक्त भास से विदूषक-माहात्म्य मिला है। अश्वघोष के रूपकों में विदूषक का स्थान पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। हम लिख चुके हैं कि आरम्भ में विदूषक की अवहेलना करने वाले भास को अन्त में अपनी कृतियों में हास्य की अभिवृद्धि के लिए विदूषक को बुरी तरह अपनाना पड़ा और

प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त, चारुदत्त और अविमारक में नायक के गले की कण्ठी की भाँति वह लटका रहता है। जहाँ तक ऐतिहासिक युद्धात्मक घटनाओं का संयोजन है, वह मालविकाग्निमित्र के अन्तिम अंक में स्वप्नवासवदत्त के अन्तिम अङ्क की भाँति चर्चित है। इन दोनों रूपकों में इन ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा किये बिना भी काम चल सकता था।[1] ऐसा लगता है कि इनके रचयिताओं का नाटकीय रसमयता का विजयश्री से सम्मिलन कराना परम उद्देश्य था। कालिदास ने वसुमित्र, पुष्यमित्र आदि के कार्यकलापों की चर्चा करके मालविकाग्निमित्र को ऐतिहासिकता प्रदान की है। स्वप्नवासवदत्त की भाँति ही पद्मावती नायिका के विषय में सिद्धादेश की चर्चा मालविकाग्निमित्र में भी है।

मिथ्यावाद

विदूषक और राजा की मिथ्या बातें मालविकाग्निमित्र के कथानक में एक महत्त्वपूर्ण संघटना है।[2] अनेक स्थानों पर झूठ बोलकर बड़े काम निकाले गये हैं। विदूषक तो राजा को झूठ बोलने के लिए उकसाता भी है। आवश्यकता पड़ने पर झूठी बातें बनाने का सर्वप्रथम परिचय चारुदत्त में मिलता है। इसमें नायक स्वयं ही विदूषक को सिखाता है कि तुम वसन्तसेना से कहो कि तुम्हारे अलंकारों को चारुदत्त जुए में हार गया। सज्जलक को भी उसकी भावी पत्नी मदनिका झूठ बोलना सिखाती है कि तुम चुराये हुए अलंकारों को वसन्तसेना के समक्ष ले जाकर कहो कि इन्हें चारुदत्त ने आपके पास भेजा है। भास से इस प्रकार मिथ्यावाद की उपयोगिता सीखकर कालिदास ने उसका बहुशः प्रयोग मालविकाग्निमित्र में किया है।[3]

गुप्तचर्या

किसी पात्र की बात छिपकर सुनने की प्रवृत्ति भी कालिदास ने भास से ली है। स्वप्नवासवदत्त में नायिकायें विदूषक और राजा की बातें, अविमारक में चेटियाँ नायक और विदूषक की बातें और चारुदत्त में वसन्तसेना सज्जलक और मदनिका की बातें छिपकर सुनती हैं। मालविकाग्निमित्र में नायक और विदूषक मालविका और बकुलावलिका की बातें सुनते हैं। ऐसे प्रसंग अपने आप में बड़े रोचक होते

---

१. यज्ञसेन और माधवसेन के बीच राज्य बँट जाने की चर्चा निरा व्यर्थ है।

२. ऐसी प्रमुख मिथ्या बातें हैं (क) विदूषक का सर्पदंश (ख) ज्योतिषियों के नाम पर यह कहना कि राजा के मंगल के लिए बन्दी छोड़ दिये जायँ। (ग) राजा का यह कहना कि बन्दी-गृह से छूटने पर मालविका और बकुलावलिका उपचार मात्र के लिए आ गई थीं।

३. पात्रों से मिथ्या भाषण कराना भास के लिए भी अपवादात्मक है और केवल चारुदत्त में ही मिलता है।

हैं, विशेषतः उन स्थलों पर जब चर्चित पात्र स्वयं अपने विषय में छिपकर सुनते हुए अपनी भावात्मक प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है।

पात्रोन्मीलन

पात्रोन्मीलन की कला भी कालिदास ने क्वचित् भास से ली है। एक, अनेक या या सभी पात्रों को प्रच्छन्न रखना भास की अप्रतिम कला है, जिसका कालिदास ने इस रूपक में उपयोग किया है। मालविका और कौशिकी अन्त तक सबके लिए अज्ञात रहती हैं। मालविका राजप्रणयिनी होती हुई भी दासी बनी रही, यद्यपि वह राजकुमारी थी। कौशिकी भी परिव्राजिका बनी रही, यद्यपि वह सुमति नामक मन्त्री की भगिनी थी। भास ने अविमारक में नायक को अन्त तक प्रच्छन्न रखा है और उसका भेद नारद ने खोला कि एक वर्ष तक शापवश उसे चाण्डाल रहना था। मालविकाग्निमित्र में नायिका सिद्धादेश के अनुसार एक वर्ष तक दासी बनी रहती है।

नायिका का रूठना कालिदास की एक अभिनव योजना है, जो विक्रमोर्वशीय में चरम परिणति पर निष्पन्न है। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला का क्षणिक रूठना प्रथम अङ्क में है।

जहाँ तक चरित्र-चित्रण-कला का सम्बन्ध है, हम तो यही कह सकते हैं कि कालिदास इस नाटक में चरित्र-चित्रण में पूर्णतया सफल हैं। वे जिस पात्र को जैसा बनाना चाहते थे, उसे वैसा बनाया है। यह दूसरी बात है कि किसी पात्र को हम दूसरी प्रकार का देखना चाहते हों, जो कालिदास को अभीष्ट न हो। सबसे ऊपर नायक है जो धीरललित कोटि का है। कदाचित् ही कोई पाठक भारतीय राजा का वह रूप देखना चाहे, जो अग्निमित्र का रूप कालिदास ने चित्रित किया है। वह राजा कम और रसिक अधिक है। राजकीय चरित्र को इस हीन स्तर पर कवि ने प्रस्तुत किया और आदि से अन्त तक कहीं भी यह व्यञ्जना से भी प्रतीत नहीं होने दिया कि राजा का ऐसा चरित्र होना प्रजा और राष्ट्र के हित में नहीं है। वह अपने को नायिका की मेखला की मार खाने की परिस्थिति में पहुँचाता है और मालविका के पादप्रहार से अपने सिर को सौभाग्यशाली बनाना चाहता है[1]। धारिणी ने उसकी कामुकता देखकर उससे अनुत्तम बात कही है कि कला के चक्कर में पड़ने से कितना अधिक अच्छा होता कि आप राजकाज में मन लगाते—

जइ राअकज्जेसु ईरिसी उवाअनिउणदा अज्जउत्तस्स तदा सोहणं भवे।

इससे तो यही प्रमाणित होता है कि अग्निमित्र राजकाज के प्रति यथोचित सावधान नहीं था।

---

१. नायिका के पादप्रहार का वैशिष्ट्य गुप्तयुगीन 'पादताडितक' नामक भाण में मनोरञ्जक है।

दूसरा प्रधान पात्र विदूषक है, जिसे पुरुष-पात्रों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। नाटक का नायक तो मानो सांख्य का पुरुष है। उसे विदूषक यन्त्रारूढ बनाकर सब कुछ कराता है। विदूषक धूर्तराज है। राजा को नायिका का सान्निध्य प्राप्त कराने के लिए उसने अकल्पनीय योजनायें कार्यान्वित कीं और प्रत्येक में सफल हुआ। ऐसा सक्रिय, बुद्धिमान् और गड़बड़ी करने वाला विदूषक कोई नाटककार बना नहीं सका। अपने पद की मर्यादा के अनुरूप वह हँसता और हँसाता है, किन्तु उसके प्रत्येक हास्य में किसी ऐसी योजना का बीज है, जिससे राजा की कामलिप्सा की पूर्ति हो।

मालविकाग्निमित्र की नायिका ने अपने को स्वभावतः भी दासी बना रखा है। उसमें कुमारी के पद के अनुरूप शील, संकोच और लज्जा की मात्रा आवश्यकता से कम है। उसे अपने भूत-भविष्य का कोई ध्यान नहीं, वह केवल वर्तमान में यौवन की तरङ्गिणी में नायक का विहार ही अपने परितर्पण का साधन मान बैठी है। उसे विश्वास है कि अपने सौन्दर्याकर्षण से राजा को प्रेमपाश में अवश्य बाँध लूँगी, चाहे कितना भी विरोध क्यों न हो, किन्तु सोचना चाहिए था कि यह नायक धारिणी, इरावती आदि अनेक नायिकाओं को कभी अपनाकर ठुकरा चुका है और उसको भी ठुकरायेगा, ज्यों ही कोई दूसरी सुन्दरी मिल जायेगी। मालविका का चरित्र प्रकट करता है कि उसका प्रेम अन्धा है।

धारिणी के चरित्र-चित्रण में कवि ने विकास की रेखा नियोजित की है। परिस्थिति वशात् वह झुकती है और अपने ही हाथों मालविका को अन्त में राजा की पत्नी बना देती है। वह राजा को समझ चुकी थी कि नई नायिकाओं के लिए उनकी मधुकर-वृत्ति है। इरावती भी तो कभी उसकी सपत्नी बनी थी।

रस

मालविकाग्निमित्र में अङ्गी रस शृङ्गार है और इसका सहचर हास्य है। इन दोनों रसों के आलम्बन विभाव क्रमशः नायक और विदूषक हैं। शृङ्गार की निष्पत्ति के लिए इसमें कवि ने वर्णना के द्वारा वासन्तिक वातावरण पदे-पदे उपन्यस्त किया है। वसन्तोत्सव के उपलक्ष में इसका प्रथम अभिनय हुआ। कथा का घटनावृत्त भी वसन्तकालीन है। वसन्त ने अपने करतल-स्पर्श से राजा की शृङ्गार-वृत्तियों में ज्वार ला दिया है——

> उन्मत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
> सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव
> अङ्गे चूतप्रसव-सुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
> सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन ॥ ३.४

वसन्तश्री ही वह नायिका है, जो सारे लोक को उत्सुक कर रही है। यथा,

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यात-विशेषकं कुरवकं श्यामावदातारुणम् ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफा जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥ ३·५

इस वसन्त में मालविका कोकिल है और बकुलावलिका है भ्रमरी—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसंगिन्यौ ॥ ४·२

कवि ने अन्यत्र भी आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव का तादात्म्य व्यक्त किया है यथा,

अनतिलम्बिदुकूल-निवासिनी बहुभिराभरणैः प्रतिभाति मे ।
उडुगणैरुदयोन्मुख-चन्द्रिका हतहिमैरिव चैत्रविभावरी ॥ ५.७

वासन्तिक उद्दीपन को उपमान बना कर भी प्रस्तुत किया गया है। नीचे के श्लोक में इस विधान के माध्यम से मूर्तिमान् शृङ्गार अपने सभी अवयवों के साथ कवि के द्वारा साक्षात् पुरस्कृत है—

तामाश्रित्य श्रुतिपथगतामाशया बद्धमूलः
संप्राप्तायां नयनविषयं रूढरागप्रवालः ।
हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्गमत्वात्
कुर्यात् कान्तं मनसिजतरुर्मां रसज्ञं फलस्य ॥ ४.१

नायक और नायिका की दृष्टि से देखने पर सर्वत्र प्रकृति में क्रमशः नायिका और नायक ही दिखाई पड़ते हैं। यथा,

शरकाण्ड-पाण्डु-गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा ।
माधवपरिणतपत्रा कतिपय-कुसुमेव कुन्दलता ॥ ३.८

मालविका को नायक के रूप में अशोक दिखाई दे रहा है—**अयं स ललितकुमारदोहदापेक्षी अगृहीतकुसुमनेपथ्यः अशोकः** आदि।

अन्योक्ति-व्यञ्जना

कालिदास की शैली का एक विशेष लक्षण मालविकाग्निमित्र में समुदित हुआ है, जिसमें लोकोक्ति और अन्योक्ति द्वारा किसी बात को प्रभविष्णु और प्रखर बनाया गया है। भाव का गाम्भीर्य इन परिस्थितियों में व्यंग्य रहता है। विदूषक राजा से कहता है—**उपस्थितं नयनमधु सन्निहितमाक्षिकं च।** इस प्रकरण में नयनमधु मालविका है और मधुमक्खी है धारिणी। इस अन्योक्ति-व्यञ्जना का अर्थगाम्भीर्य कभी-कभी श्रोता के लिए भी दुर्बोध है। यथा,

वयस्य, एतत्खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता ।

अर्थात् .द्य पी कर प्रमत्त के आस्वाद के लिए मिठाई मिल गई। इस प्रकरण में सीधुपानोद्वेजित राजा के लिए और मत्स्यण्डिका मालविका के लिए अन्योक्ति द्वारा प्रयुक्त हैं। अन्योक्ति के द्वारा परिस्थिति का अतिशय शङ्कास्पद होना राजा का अपने ऊपर खतरा मोल लेना और मालविका की रमणीयता की व्यञ्जना की गई है। राजा कहता है--न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः। इसमें कमलिनी है मालविका, ग्राह है इरावती और मतंगज है राजा। इन अन्योक्तियों में सर्वत्र वासन्तिक सौरभ अनुमेय है। इसका अनुत्तम उदाहरण बकुलावलिका की नीचे की उक्ति है—

भ्रमरसम्पातो भविष्यतीति वसन्तावतार-सर्वस्वं किं न चूतप्रसवोऽवतंसितव्यः।

व्यञ्जना का एक और उपयोग इस नाटक में कालिदास ने किया है। नीचे के श्लोक में धारिणी की उपमा त्रयी से देकर व्यञ्जना द्वारा उसे कामवर्ग से परिहेय बताया गया है--

मंगलालंकृता भाति कौशिकया यतिवेषया।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया।। १.१४

नामों में भी व्यञ्जना है। धारिणी को देवी कहना यदि उसको मालविका की श्रेणी से अलग करने के लिए है तो बकुलावलिका, मधुकरिका, कौमुदिका, मदनिका और ज्योत्सना वसन्त की सेना का परिचय देती हैं, जिनके द्वारा शृङ्गार-विजय करना इस रूपक में कवि का अभिप्रेत है। रस के पूर्ण उद्रेक के लिए यथोचित वर्णनों की विपुलता होनी चाहिए। मालविकाग्निमित्र में ऐसे वर्णन स्थान-स्थान पर समाविष्ट हैं।

कालिदास को पद्यबद्ध रचना गद्य की अपेक्षा नाटक के लिए अधिक रुचिकर रही है। वे कहीं-कहीं गद्योचित प्रसंगों को भी पद्यों में निबद्ध करते हैं। यथा,

द्वारे नियुक्तपुरुषाभिमत प्रवेशः
सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन्
तेजोभिरस्य विनिवर्तित-दृष्टिपातै–
र्वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि।।१·१२

नीचे लिखे पद्य को गद्य में लिखना ही चाहिए था—

मौर्यसचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम्।
मोक्ता माधवसेनस्ततो मया बन्धनात् सद्यः।।१.७

इस पद्य से प्रसङ्गवशात् ऐसा लगता है कि वक्तव्य के जिस अंश पर अधिक बल देना होता था, उसे पद्य में कहना कालिदास समीचीन मानते थे।

कई स्थलों पर पद्यों के द्वारा आख्यान के विशदीकरण से नाटक की प्रभविष्णुता बढ़ी है। यथा,

उत्तरेण किमात्मैव पञ्चबाणाग्नि-साक्षिकम् ।
तव सख्यै मया दत्तो न सेव्यः सेविता रहः ॥ ४.१२

सूक्तियाँ

वक्तव्यों की प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिए मालविकाग्निमित्र को सूक्तियों की खनि कहा जाता है । नीचे कुछ रमणीयतम सूक्तियाँ हैं—

(१) पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा ।
(२) पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥
(३) निसर्गनिपुणाः स्त्रियः ।
(४) किं नु खलु दर्दुरा व्याहरन्ति इति देवः पृथिव्यां वर्षितुं स्मरति ।
(५) चन्दनं खलु मया पादुकोपयोगेन दूषितम् ।
(६) स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं न युज्यते ।

छन्दोविन्यास

मालविकाग्निमित्र में प्रधान छन्द आर्या में ३५ और श्लोक में १७ पद्य हैं । इनके पश्चात् आते हैं उपजाति ६ पद्यों में, वसन्ततिलका ५ पद्यों में और शार्दूलविक्रीडित ४ पद्यों में । शालिनी में ३ पद्य हैं, मालिनी, हरिणी, और मालभारिणी में से प्रत्येक में २ पद्य हैं। पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, वियोगिनी, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, रुचिरा और द्रुतविलम्बित में से प्रत्येक में केवल एक पद्य है । आर्या की अधिकता से इस नाटक में गीत तत्त्व की विशेषता प्रकट होती है । अग्निमित्र के मालविका-विषयक पद्य प्रायः गीत हैं ।

त्रुटियाँ

मालविकाग्निमित्र की कुछ बातें खटकती हैं। इसके कथानक से स्पष्ट है कि अग्निमित्र की अवस्था ४० वर्ष से ऊपर है अर्थात् वह अधबूढ़ है ।[१] तब भी उससे अपनी बहिन मालविका का विवाह करने के लिए माधवसेन उसे लिए-दिए विदर्भ से विदिशा चला आ रहा था और मालविका के परिस्थितिवशात् दासी हो जाने पर उससे गान्धर्व विवाह कर लेने के लिए अग्निमित्र व्यग्र था । पूरे नाटक को पढ़ जाने पर भी कहीं यह आभास मात्र भी नहीं होता कि कालिदास इस प्रकार की राजाओं की कामुकता के पक्ष में नहीं हैं । कालिदास ने स्त्रियों का मूल्यांकन एक ऐसे मानदण्ड से किया है, जो आधुनिक युग में विषम लगता है । अनेक पत्नी और पुत्र होने पर भी किसी किशोरी को प्रेमपाश में बाँधना अनुचित है ।

---

१. अग्निमित्र का पुत्र सेनापति बनकर पश्चिमोत्तर भारत में विजय कर रहा था । वह न्यूनातिन्यून २० वर्ष से अधिक अवस्था का था ।

परिव्राजिका कौशिकी को अन्तःपुरीय पचड़ों में डालना भी कवि के लिए उचित नहीं प्रतीत होता। यह रमणियों की नृत्य-प्रतियोगिता में निर्णायक बनती है और कहती है कि--**सर्वाङ्गसौष्ठवाभिव्यक्तये विगतनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोस्तु।** डूब चुका था वह भारत जिसमें परिव्राजिकायें इस प्रकार का आदेश देती थीं। कौशिकी के अन्य कार्य-कलाप भी परिव्राजिका-पद का हीन स्तर द्योतित करते हैं।[१]

भास की रचनाओं में जिस प्रकार का समुदाचार दिखाई देता है, उसका सर्वथा अभाव मालविकाग्निमित्र में है। इसमें तो बड़े-छोटे का कोई विचार ही नहीं रह गया है। अनेक स्थलों पर साक्षात् और गौण रूप से अपने से बड़ों के विषय में ऐसी बातें कही गई हैं, जो छोटों के विषय में भी नहीं कहनी चाहिए। उदाहरण के लिए विदूषक की नायक के प्रति एक उक्ति लें--

भवानपि सूनापरिसरचर इव गृध्र आमिषलोलुपो भीरुकश्च।

इसमें विदूषक राजा से कहता है कि आप मांसलोलुप गिद्ध की भाँति है। अन्यत्र महारानी धारिणी को विदूषक ने बिल्ली और साँप आदि के समान बताया है। क्या परिहास के नाम पर ऐसी अशोभनीय उपमायें देना उचित है?

---

१. वाल्टर रूबेन के अनुसार--Kauśikīhelps the king in a positively shameless way. Kalidāsa P. 78.

अध्याय ८

चतुर्भाणी

संस्कृत के रूपक-साहित्य में चतुर्भाणी का नाम अनुपम प्रभा से जगमगाता है। आद्यन्त रसराज शृङ्गार की निष्पत्ति जैसी इनमें हुई है, वैसी अन्यत्र नहीं मिलती। इसका शृंगार भी वैशिक कोटि का है, जिसमें कुछ निराला रंग रहता है। और वह भी कुछ एक नायक और नायिका की किसी एक स्थिति में राग, मान, प्रवास आदि ही की चर्चा इसमें नहीं है, अपितु जितनी प्रकार की वाराङ्गनायें, जितनी भी स्थितियों में हो सकती हैं, उनकी ग्रह-विग्रह-चर्चा से चतुर्भाणी निर्भर है।

भाणानुसन्धान

चतुर्भाणी चार भाणों का एकीकृत नाम है। ये चार भाण हैं तो पृथक्-पृथक् पर, इनका आत्मा एक है, यद्यपि लेखक अनेक हैं। चार भाण हैं—

शूद्रकविरचित पद्मप्राभृतक, ईश्वरदत्तरचित धूर्तविटसंवाद, वररुचिकृत उभयाभिसारिका और श्यामिलकप्रणीत पादताडितक।[1]

भाण की परम्परा बहुत प्राचीन है। भरत ने नाट्यशास्त्र में भाण की जो परिभाषा दी है, उससे निष्कर्ष निकलता है कि उनके सामने बहुविध भाण थे। भरत के अनुसार भाण है—

आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषेषु।
विविधाश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्यश्च॥
परवचनमात्मसंस्थं प्रतिवचनैरुत्तरोत्तरग्रथितैः।
आकाशपुरुषकथितैरङ्गविकारैरभिनयैश्चैव॥
धूर्तविटसम्प्रयोज्यो नानावस्थान्तरात्मकश्चैव।
एकाङ्को बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधैर्भाणः॥ १८·१०७-११०

अर्थात् इसमें एक ही पात्र विट सामाजिकों का मनोरञ्जन करता है। वह आत्मानुभूत और परकीय बातों का वर्णन करता है। वह आकाश या शून्य में कही जाती हुई

---

१. इन चारों भाणों को एक साथ करने वाले आलोचक की उक्ति है—

वररुचिरीश्वरदत्तः श्यामिलकः शूद्रकश्च चत्वारः।
एते भाणान् बभणुः का शक्तिः कालिदासस्य॥

बातों को सुनकर उन्हें सामाजिकों को सुनाता है और उनका उत्तर भी देकर सामाजिकों को प्रतिबोधित करता है। इसमें वेश्याविटादि की नाना प्रकार की अवस्थाओं का अभिनय होता है। भाण में एक ही अंक होता है।

विट

वेश्याओं और उनके कामुकों की संगति का आनन्द लेने वाले विट नाना वर्गों और व्यवसायों के होते थे। वे राजकुमार और ब्राह्मण-बन्धु से लेकर कोई वैश्य या शूद्र हो सकते थे। नई वेश्याओं को वे वेश्या-शास्त्र का उपदेश देकर प्रेमियों से तभी तक सम्बंध रखने का मन्त्र देते थे, जब तक वह धन देता रहे। कामसूत्र के अनुसार वे कामुकों के प्रीत्यर्थ वेश्याओं को बुलाने के लिए दूत का काम करते थे। चतुर्भाणी में वर्णित विट की चर्चा से उनका पूरा परिचय मिलता है।[1]

पादताडितक नामक भाण में विट के लक्षणों का अच्छा निरूपण मिलता है।[2] यथा,

> **दिवसमखिलं कृत्वा वादं सह व्यवहारिभि-**
> **र्दिवसविगमे भुक्त्वा भोज्यं सुहृद्भवने क्वचित् ।**
> **निशि च रमसे वेशस्त्रीभिः क्षिपस्यपि चायुधं**
> **जलमपि च ते नास्त्यावासे तथापि च कत्थसे ।।**

विट के जीवन का एक दूसरा पक्ष भी है—

> **स्वैः प्राणैरपि विद्विषः प्रणयिनामापत्सु यो रक्षिता**
> **यस्यार्तौ भवति स्व एव शरणं खड्गद्वितीयो भुजः ।**
> **संघर्षान्मदनातुरो मृगयते यं वारमुख्यो जनः**
> **स ज्ञेयो विट इत्यपावृतधनो यो नित्यमेवार्थिषु ।।**

और उनकी शृंगारवृत्ति का समुदार पक्ष है—

---

१. डा० मोतीचन्द्र के अनुसार 'विट में कामुकता, कला, मैत्री, गुण्डई और हाजिर-जवाबी का एक अपूर्व मिश्रण होता था और इसी की वे रोटी खाते थे'। वही पृ०६०। विट प्रायः यौवन से विरहित होते थे, जैसा पद्मप्राभृतक के नीचे लिख वाक्य से स्पष्ट है—शिशिरजराजर्जरस्य संवत्सरविटस्य हिमरसायनोपयोगा वसन्तकैशोरक-मुपोह्यते। धूर्तविट संवाद में विट को नीललेप से बालों को काला करने वाला बताया गया है।

२. विट और धूर्त प्रायः पर्यायवाची हैं, जैसा 'पादताडितक' में अनेक स्थलों पर कहा गया है। रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में कहा है—

> एको विटो वा धूर्तो वा वेश्यादेः स्वस्य वा स्थितिम् ।
> व्योमोक्त्या वर्णयेदत्र वृत्तिर्मुख्या च भारती ।। २·११९

चरणकमलयुग्मैरंचितं सुन्दरीणां
स मुकुटमिव तुष्टचा यो बिभर्त्युत्तमाङ्गम् ।
स विट इति विटज्ञैः कीर्त्यते यस्य चार्थान्
सलिलमिव तृषार्ताः पाणियुग्मैर्हरन्ति ।।

अपनी युवावस्था में विट वेश में अपने नीचे लिखे करतबों के लिए प्रसिद्ध थे—

कृत इह कलहो हृतेह वेश्या चकितमिह द्रुतमीक्षणं निमील्य ।
इति वयसि नवे यदत्र भुक्तं तदनु विचिन्त्य समुत्सुको व्रजामि ।।

उपर्युक्त लक्षणों से विदित होता है कि युवा नागरक वेश्याओं के पाश में आबद्ध होने पर विट कहा जाता था। ऐसी परिस्थिति में वह अपना सर्वस्व खोकर वृद्धावस्था में पुराने अभ्यास के कारण अनुभवी बनकर कामुकों और वेश्याओं का परामर्शदाता सहायक बन जाता था ।

रचना-काल

चतुर्भाणी के रचयिताओं का प्रादुर्भाव गुप्तकाल में पाँचवीं शती के आदि चरण में हुआ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है इनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का गुप्तकालीन होना। 'भाणों की भाषा, भाव तथा अनेक ऐसे भीतरी प्रमाण हैं, जिनके आधार पर चतुर्भाणी के भाणों का समय एक माने जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए'।[1] पद्मप्राभृतक और उभयाभिसारिका में ऐसे संकेत हैं, जिनसे सम्भावना होती है कि इनकी रचना कुमारगुप्त के समय में हुई। पद्म प्राभृतक में महेन्द्र की चर्चा है। कुमारगुप्त की एक उपाधि महेन्द्र थी । उभयाभिसारिका के सम्पादक वररुचि को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का नवरत्न माना गया है । वररुचि कुमारगुप्त के समय तक थे । धूर्तविटसंवाद और उभयाभिसारिका के भरतवाक्य भास के रूपकों के भरत वाक्यों के समान पड़ते हैं । इससे इनकी समकालीनता की सम्भावना हो सकती है ।

कथानक

चतुर्भाणी के भाणों के कथानक परिभाषानुसार अनेक वेश्याओं और उनके प्रेमियों के पारस्परिक साहचर्य-सम्बन्धी सुख-दुःख की संक्षिप्त गाथायें हैं, जिनका प्रतिवेदक कोई विट है ।

पद्मप्राभृतक

वसन्त के सौरभ का वर्णन करते हुए शश नामक विट कर्णीपुत्र नामक कामुक के देवदत्ता को छोड़कर देवसेना नामक मुग्धा नायिका के चक्कर में पड़ने की चर्चा करता है ।

---

१. मोतीचन्द्र अग्रवाल भूमिका: चतुर्भाणी, पृष्ठ ४ । वास्तव में भाषा-भावादि की इन भाणों में एकरूपता है । पात्रों के नाम और काम बहुशः एक जैसे हैं।

कर्णीपुत्र की कामदग्धावस्था है—

> उन्निद्राधिक ताम्रताम्रनयनः प्रत्यूषचन्द्राननो
> ध्यानग्लानतनुर्विजृम्भणपरः सन्तप्तसर्वेन्द्रियः ।
> रम्यैश्चन्द्र वसन्तमाल्यरचनागान्धर्वगन्धादिभि-
> र्यैरेव प्रमुखागतैः स रमते तैरेव सन्तप्यते ।।

वह देवसेना से संगम की आशा में जैसे-तैसे प्राणधारण कर रहा है। इधर देवदत्ता ने अपने दास पुष्पाञ्जलिक को कर्णीपुत्र (मूलदेव) के पास भेजा कि मैं कल न आ सकी, क्योंकि मेरी छोटी बहिन देवसेना अस्वस्थ थी। आज आ रही हूँ। यह सुनकर कर्णीपुत्र ने अपने विट शश को देवसेना की खोज-खबर लाने के लिए भेजा कि वह मेरे प्रति कितनी आसक्त है।

मार्ग में विट को सर्वप्रथम कात्यायन नामक कवि मिले, जिनकी भित्ति पर लिखी नई कविता के अनुसार वसन्त वह काम कर दिखाता है, जो सहस्रों दूतियाँ नहीं कर सकतीं।

विट को आगे चलने पर मिला विपुला नामक वेश्या का परामर्शदाता विट, जिससे बातचीत करते हुए ज्ञात होता है कि विपुला पहले कर्णीपुत्र के प्रेमपाश में पगी थी। कर्णीपुत्र का देवदत्ता से प्रेम देख कर वह उससे विमुख हुई। एक दिन कर्णीपुत्र उसके पास आया तो रूखे व्यवहार से खिन्न करके भगाया गया। इस काम में कर्णीपुत्र के साथ उसका विट शश भी था।

विट को आगे मिला दत्तकलशि नामक वैयाकरण, जिसका रशनावती नामक वेश्या से प्रेमभाव चला था। उसके साथ बातचीत से ज्ञात होता है कि दत्तकलशि की कातन्त्री वैयाकरणों से नोक-झोंक हुई थी। फिर रशनावती से झगड़ा इस बात से हो गया कि उसने इन्हें हवन करते समय छू दिया था।

आगे चलने पर विट को, भीड़-भाड़ से छू न जाय, इस डर से बचकर निकलते हुए धर्मासनिक पुत्र पवित्रक मिला। विट ने उससे कहा कि छूत से बच रहे हो, किन्तु वेश्या वारुणिका को स्पृश्य कैसे बना लिया? विट ने उसके क्षमा-याचना करने पर उसे उपदेश दिया कि वेश्या की संगति का छूआछूत से वैर है। विट ने उसे अपना शिष्य बना लिया और उसके विट बनने के लिए मन्त्र दिया कि मिथ्याचार का कंचुक उतार डालो। शिष्य को आशीर्वाद दिया कि तुम्हें नई-नवेली वेश्यायें सुखकर हों।

विट इसके पश्चात् वसन्त-वीथी में पहुँचा। वहाँ उसे मृदङ्गवासुलक नामक विट मिला। वह वृद्ध हो चला था, किन्तु अभ्यासवशात् अनुलेपन आदि के द्वारा यौवन का अभिनय करता था। उससे विट का परिहास हुआ।

विट को आगे शैषिलक नामक ब्राह्मणकुमार मिला। उसकी प्रणय-सम्बन्धी पोल खोलते हुए विट ने कहा कि तुमने मालविका नामक माली की कन्या की दूती बनकर आई हुई बौद्ध भिक्षुणी को ही सनाथ किया। विट ने उसके कार्य का समर्थन किया और आशीर्वाद दिया—**सुभगो भव।**

फिर तो विट वेश में पहुँचा। वेश है—

कामावेशः कैतवस्योपदेशः मायाकोशो वञ्चनासन्निवेशः।
निर्द्रव्याणामप्रसिद्धप्रवेशो रम्यक्लेशः सुप्रवेशोऽस्तु वेशः॥

वेश से सर्वप्रथम बौद्धभिक्षु निकल रहा था। जब वह विट की पकड़ में आया तो भिक्षु ने हाथ जोड़ लिये। तभी कामदेव मन्दिर से निकलती हुई वनराजिका पुष्प-श्रृंगार से समलंकृत होकर अपने प्रियतमा के पास जा रही थी। विट ने उसका वर्णन किया—

पुष्पव्यग्राग्रहस्ते वहसि सुवदने मूर्तिमन्तं वसन्तम्।

अन्त में उसे आशीर्वाद दिया—**सुखं भवत्यै।**

विट तब तक ताम्बूलसेना के घर के निकट पहुँच चुका था। वहाँ ताम्बूलसेना बुलाने पर झटपट निकलकर आ गई, जिसे देखकर विट ने अनुमान कर लिया कि वह इरिम नामक विट के मित्र की संगति का आनन्द ले रही थी। ताम्बूलसेना के पुनः पुनः प्रतिवाद करने पर विट को कहना पड़ा—**सहोढाभिगृहीता क्वेदानीं यास्यसि।**

अपने घर के बाहरी द्वार पर देवताओं के लिए बलि अर्पित करती हुई कुमुद्वती को देखकर उसके विषय में उसे स्मरण हो आया कि वह चन्द्रोदय नामक मौर्य राजकुमार के सामन्तों को दबाने के लिए अन्यत्र चले जाने पर उसके प्रेम में वियोगिनी बनी है। उसके विषय में विट ने कामना की—**महिष्यावगुण्ठनभागिनी भवत्वेषा।**

आगे विट को प्रियङ्गुयष्टिका कन्दुक-क्रीड़ा करती मिली। विट को उसे देखकर आनन्द आ गया। उसने अपने मानसिक उद्गार प्रकट किये—**सर्वथा नतोन्नतावर्तनोत्पतनापसर्पणप्रधावनचित्रप्रचारमनोहरं यदृच्छया दृश्यमासादितं खल्वस्माभिः।**

विट को आगे बढ़ने पर अपने मित्र चन्द्रधर की कामिनी शोणदासी मिली, जो अपने नायक से मान तो कर बैठी थी पर अब उसके विना विरह-सन्ताप से वह तप्त हो रही थी। विट ने उसे परामर्श दिया कि स्वयं उसे मनाओ। शोणदासी के प्रार्थना करने पर विट ने चन्द्रधर को उसकी ओर प्रवृत्त करने का वचन दिया।

मगधसुन्दरी नामक वेश्या किसी नायक की प्रतीक्षा कर रही थी। विट ने इस विषय में जिज्ञासा प्रकट की—

शुक्लासितान्तरक्ता सापाङ्गावेक्षिणी विकसितेयम् ।
धन्यस्य कस्य हेतोश्चन्द्रमुखि बहिर्मुखी दृष्टिः ॥

उसने उत्तर दिया—ब्रह्मचारिणी रह कर उपवास कर रही हूँ । विट ने कहा—तेरे इस तप की वृद्धि हो ।

अन्त में विट देवदत्ता के घर पहुँचा । उसे ज्ञात हुआ कि देवदत्ता कर्णीपुत्र के के पास गई है और देवसेना उपवन में है । विट ने देवसेना के पास पहुँच कर पूछा—यह अस्वस्थता किसके कारण है । देवसेना से उसे जैसे-तैसे ज्ञात हुआ कि वह कर्णीपुत्र के लिए मर रही है । विट ने बताया कि कर्णीपुत्र को भी देवसेना ही का रोग है । देवसेना ने कर्णीपुत्र के लिए अपनी ओर से एक स्मरणीय वस्तु के रूप में दी—रक्त कमल (पद्मप्राभृतक) । उसे लेकर विट कर्णीपुत्र के पास लौट आया ।

धूर्तविट-संवाद

वर्षा ऋतु है । कई दिनों से बाहर न निकलने के कारण विट अन्यमनस्क है । वह अपने नगर कुसुमपुर की श्रेष्ठता का वर्णन करता है—

दातारः सुलभा कला बहुमता दाक्षिण्यभोग्याः स्त्रियो
नोन्मत्ता धनिनो न मत्सरयुता विद्याविहीना नराः ।
सर्वः शिष्टकथः परस्परगुणग्राही कृतज्ञो जनः
शक्यं भोः नगरे सुरैरपि दिवं सन्त्यज्य लब्धुं सुखम् ॥

विट चल देता है वेश की ओर, जिधर से होकर आता हुआ उसे सर्वप्रथम दिखाई देता है सेठ का लड़का कृष्णिलक । विट उसका अभिनन्दन करता है कि तुम माधवसेना के घर से आ रहे हो । कृष्णिलक ने पूछा कि आपने कैसे जाना ? विट ने लक्षण गिनाये—

हस्ते ते परिमृज्य साश्रुवदनं नेत्राञ्जनं लक्ष्यते
केशान्तो विषमश्च पादपतनादद्याप्ययं तिष्ठति ।
व्यक्तं तत्र मनो निधाय भवतामुक्ता शरीरेण सा
मार्गं पोत इवानिलप्रतिहतः कृच्छ्रात्तथा गाहसे ॥

कृष्णिलक ने विट से अपने पिता का रोना रोया कि वे मुझे वेश से दूर रखना चाहते हैं । विट ने पिताओं के विरोध में एक लम्बा व्याख्यान दे डाला—पिता युवा पुरुष के लिए मूर्तिमान् शिरोरोग है । पिता वाला न जुआ खेल सकता है, न वारुणी-चषक की गन्ध पा सकता है, न पक्षियुद्ध में अपनी प्रिय वेश्या के साथ आनन्द ले सकता है और न वह लोक-प्रशंसित कोई साहस का काम कर सकता है । मेरा मन करता है कि संसार को पितृविहीन कर दूँ । कृष्णिलक ने विट को बताया कि मेरा पिता तो मेरा विवाह कर देने पर उतारू है । विट ने कहा—

वेश्यामहापथमुत्सृज्य कुलवधूकुमार्गेण यास्यतीति ।
कर्तव्यं खलु नैव भोः कुलवधूकारां प्रवेष्टुं मनः ॥

कुलवधू विट के शब्दों में स्त्रीरूप-बद्धा पशु है ।

वेश में विट की सर्वप्रथम भेंट मदनसेना की परिचारिका वारुणी से होती है, जिसने यौवन में सर्वप्रथम विट पर अपने को न्यौछावर किया था। उससे परिहास करके विट जब आगे बढ़ा तो उसे अपनी मेखला जोड़ती हुई बन्धुमतिका दिखी, जिससे विट ने पूछा कि यह मेखला किस प्रसङ्ग में टूटी ? कोई उत्तर नहीं मिला।

आगे चलने पर विट को नई नायिका के प्रेमपाश में आबद्ध कुंजरक से परित्यक्त होने के कारण रोती हुई रामदासी मिली, जिसे विट ने अभिसार करने का परामर्श दिया। रतिसेना से विट ने अचिर कामविषयक चर्चा की, पर उसने विट की बातों का उत्तर न देकर हँसकर टाल दिया और अपनी खिड़की बन्द कर ली। प्रद्युम्नदासी से परिहास करने का अवसर विट को मिला। प्रियतम के साहचर्य-विषयक रहस्योद्घाटन कर लेने पर प्रसन्न होकर प्रद्युम्नदासी ने विट से कहा—**[अरस्य खलु भावो दृश्यते** । उसने बताया कि अभिनव प्रेमी रामिलक है, जिसके घर से आ रही हूँ । विट ने आशीर्वाद दिया—**सदृशः संयोगः स्थावरोऽस्तु ।**

विट तब तक विश्वलक नामक धूर्त के घर के पास पहुँच चुका था । उसका द्वार बन्द ही रहा करता था। विश्वलक वेश्याओं के चक्कर में अर्थहीन हो चुका था। उसकी प्रेयसी सुनन्दा यौवनश्री से रहित हो चली थी । दोनों वेश में केवल एक दूसरे के होकर रहते थे। विट के चिल्लाने पर किसी प्रकार द्वार खुला । विश्वलक ने अपनी समस्या विट के समक्ष रख दी कि रामिलक की गोष्ठी में कामतन्त्र-विषयक विवाद में सहमति न होने पर मैंने अपना मत दिया। प्रश्न था—यदि वेश्या का एकमात्र प्रयोजन धन ही लेना है तो उनकी उत्तम, मध्यम और अधम कोटियाँ किस आधार पर निर्णीत होती हैं ? विट ने उत्तर दिया—अधम वेश्या दान से या अकारण ही, मध्यम वेश्या रूप अथवा दान से और उत्तम वेश्या दाता, विगतस्पृह, युवा, रूपश्री तथा दाक्षिण्य से समलंकृत पुरुष से मन लगाती है । धूर्त विश्वलक ने विट से कामवती वेश्या और वेशमार्ग में सर्वप्रथम उतरने वाली वेश्या की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की । विट का विमर्श है—

राजनि विद्वन्मध्ये वा युवतीनाञ्च संगमे प्रथमे ।
साध्वसदूषितहृदयः पटुरपि वागातुरीभवति ॥

इस प्रसङ्ग में विट ने धूर्त की समस्याओं का समाधान करते हुए कुछ अनुभव की बातें कहीं, जो इस प्रकार हैं—

अपराधी होने पर भी कामिनी के पैर नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि—

पादग्रहणेऽवश्यं बाष्पः संजायते प्रणयिनाम् ।
अश्रुविमोक्षे दैन्यं दैन्योत्पत्तौ कुतः कामः ।।

कामिनी को शपथ करके मनाना, उसे हँसा देना आदि उसे प्रसन्न करने के ठीक उपाय नहीं हैं। सर्वोत्तम उपाय है कामिनी का अधरपान।

गोत्रस्खलन से अप्रसन्न कामिनी को प्रसन्न करने का, और वेश्या के अनुराग या विराग जानने का गुर विट ने धूर्त को बताया और सिखाया—

बाला बालत्वाद् द्रव्यलुब्धा प्रदानैः
प्राज्ञा प्राज्ञत्वात् कोपना सान्त्वनाभिः ।
स्तब्धा सेवाभिर्दक्षिणा दक्षिणत्वात्
नारी संसेव्या या यथा सा तथैव ।।

विट ने अपनी आत्मकथा का एक अंश धूर्त को इस प्रकार सुनाया—

विस्रम्भो गतयौवनासु न कृतो बालाः परीक्ष्य स्थितं
दूरादेव समातृकाः परिहृता नद्यः ससत्त्वा इव ।
मन्युर्नास्ति विमानितस्य न पुनः सम्प्रार्थितस्यादरो
वेशे चास्मि जरांगतो न च कृतः स्वल्पोऽपि मिथ्या व्ययः ।।

धूर्त को विट ने विविध प्रकार की अनुरागवती स्त्रियों की पहचान बताते हुए कहा—

यस्यास्ताम्रतलाङ्गुलिः शुचिनखो गण्डान्तसेवी करो
वाणी साभिनया गतिः सललिता प्रस्पन्दितौष्ठं स्मितम् ।
लोला दृष्टिरशङ्कितं मुखमधो नाभेश्च नीवोक्रिया
तां विद्यान्नरवागुरां रतिरणे प्राप्ताग्र्यशौर्यां स्त्रियम् ।।

सौभाग्यशाली कामी के रहस्य को विट ने स्पष्ट किया—

हस्तालम्बितमेखलां मृदुपदन्यासावभुग्नोदरीं
लब्ध्वापि क्षणमागतां समदनां संकेतमेकां निशि ।
यो नारीं स्थित एव चुम्बति मुखे भीतां चलाक्षीं प्रियां
तस्येदं स्वभुजात्तपङ्कजमयं छत्रं मया धार्यते ।।

विट के व्याख्यानों में क्वचित् कामी जनों के लिए उपयोगी बातें हैं। उसका कहना है—दाक्षिण्य रूप से ऊँचा पड़ता है। बहुत से लोग सुन्दरी स्त्रियों की उपेक्षा करके कुरूप किन्तु दक्षिणा नायिकाओं का साथ करते हैं। अकड़ काम का शत्रु है। अनुकूलता काम का मूल है। विट का मत है—**स्वर्गसुखावाप्त्यर्थं निर्विशङ्केन वेश्याभ्योऽवश्यं वित्तं दातव्यम् ।**

विट ने वेश्या-सङ्गति के कुछ गुणों की गणना की है, जो नागरिकों की शाश्वत सम्पत्ति होती है । यथा,

प्रागल्भ्यं स्थानशौर्यं वचननिपुणतां सौष्ठवं सत्त्वदीप्तिं
चित्तज्ञानं प्रमोदं सुरतगुणविधिं रक्तनारी-निवृत्तिम् ।
चित्रादीनां कलानामधिगमनमथो सौख्यमग्र्यं च कामी
प्राप्नोत्याश्रित्य वेशं यदि कथमयशस्तस्य लोको ब्रवीति ॥

विट की बातें कहीं-कहीं चार्वाक मत के समान पड़ती हैं । यथा—वर्तमान और भावी जीवन में वर्तमान जीवन श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष फल मिलता है । भावी जीवन में शरीर मिलेगा कि नहीं, एक तो यही सन्देह है और यदि कोई फल मिला भी तो तपस्या से मिलेगा । फिर उसमें क्या आनन्द रहा ? यदि इस जीवन में वेश का सदानन्द रहा तो उसके पश्चात् नरक भोगना भी पड़े तो कोई बात नहीं । विट ने स्वर्ग पाने के कष्टों की चर्चा की है—

अयं तु तपस्वी लोकः पिपीलिकाधर्मोऽन्योन्यानुचरितानुगामी प्राणापायहेतुभिः स्वयमपरीक्ष्य स्वर्गः स्वर्ग इति मृगतृष्णिका सदृशेन केनाप्यसद्वादेन विकृष्यमाणहृदयो मरुत्प्रपाताग्निप्रवेशनादिभिरन्यैश्च घोरैर्जपहोमव्रतनियमवेषैः स्वर्गमभिकांक्षन्ते । परीक्षितुं नेच्छति परार्थम् ।

विट की दृष्टि में स्वर्ग यदि है भी तो, जैसा उसका वर्णन मिलता है, वह हेय है, क्योंकि

शाठ्यमनृतं मदो मात्सर्यमवमतं तथा प्रणयकोपः
मदनस्य योनयः किल विद्यन्ते नैव ताः स्वर्गे ॥

सुनन्दा और विश्वलक पाँव पकड़ कर उसे रोकते हैं, किन्तु विट पत्नी के भय से अपने को छुड़ाकर घर की ओर चल देता है ।

उभयाभिसारिका

वसन्त ऋतु में सागरदत्त नामक सेठ के पुत्र नागरक कुबेरदत्त की वेश्या नारायणदत्ता से कुछ अनबन हो गयी थी । कारण था कुबेरदत्त का मदनाराधक नामक संगीतक में मदनसेना के अभिनय की प्रशंसा करना । नारायणदत्ता को शङ्का हो गई कि मदनसेना में कुबेरदत्त आसक्त है । विट को कुबेर ने सन्देश भेजा था कि अब नारायणदत्ता के विना नहीं रहा जाता । मेल-मिलाप कराइये । सन्ध्या के समय विट निकल पड़ा नारायणदत्ता के घर जाने के लिए, जो वेश में था । पटना की सड़कों की शोभा उस समय दूतियाँ और गणिका-पुत्रियाँ अपनी लीलामयी प्रवृत्तियों से बढ़ा रही थीं । विट की दृष्टि में—

भूमिः पाटलिपुत्रचारुतिलका स्वर्गायते साम्प्रतम् ।

विट की सर्वप्रथम भेंट अनङ्गदत्ता से हुई, जब वह महामात्र पुत्र नागरदत्त के घर से लौट रही थी। नागरदत्त दरिद्र हो चला था, फिर भी अनङ्गदत्ता का मन उससे मिला था। उसकी माँ नागरदत्त की अर्थहीनता देखकर अनङ्गदत्ता को उससे सम्बन्ध रखने से रोकती थी, फिर भी उन दोनों का प्रेमव्यवहार अटूट रहा। विट ने उसे आशीर्वाद दिया--

लोकलोचनकान्तं ते स्थिरीभवतु यौवनम् ।

विट को आगे बढ़ने पर माधवसेना मिली। उसने दुखड़ा रोया कि माँ की इच्छानुसार समुद्रदत्त के घर रात बितानी पड़ी। वह मुझे नहीं भाता। उसे विट ने वेश्याशास्त्र का प्रासङ्गिक उपदेश दिया--

सर्वथा रागमुत्पाद्य विप्रियस्य प्रियस्य वा ।
अर्थस्यैवार्जनं कार्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ।।

आगे विट को विलासकौण्डिनी नामक परिव्राजिका मिली, जो विट के शब्दों में--

अस्याः पटवासगन्धोन्मत्ता भ्रमन्तो मधुकरगणाश्चूतशिखराण्यपि त्यक्त्वा परिव्रजन्ति खल्वेनाम् ।

उसे विट ने प्रेमियों को फँसाने के लिए उत्सुक देख कर अधिक रुकना ठीक न समझा।

आगे चलने पर विट को अधेड़ युवती रामसेना मिलती है, जिससे उसने प्रश्न किया--

कतरस्य कामिनः कुलोत्सादनार्थमभिप्रस्थिता भवती।

उसने बताया कि मेरी पुत्री चारणदासी धनिक के घर पड़ी है। उसे संगीत के बहाने बुलाना है। वह धनिक तो अब सब कुछ दे चुका है। वेश्याशास्त्र के नियमों के अनुसार वह चारणदासी के लिए त्याज्य था--यह मत है विट का।

विट को सुकुमारिका नाम की नपुंसका स्त्री मिली, जिससे मिल कर विट भी घबड़ा गया। उसने अपनी कहानी बताई कि रामसेन से मेरा प्रेम चल रहा था। बीच में आ टपकी रतिलतिका, जिससे रामसेन का अनुराग परिणत होते देख मुझे ईर्ष्या हुई और पैर पर गिरने पर भी मैंने उसे क्षमा नहीं किया। वह मुझे घर पर लाकर मुझसे प्रेम करता रहा, किन्तु रात में मुझे छोड़ कर नई प्रेमिका के चक्कर में कई दिनों से बाहर ही रह गया है। उससे पुनः मेल-मिलाप करा दें। विट ने उसका काम करने की प्रतिज्ञा की और आगे बढ़ चला पर मन में सोचता रहा--

अहो कृच्छ्रेण खल्वस्माभिः प्रकृतिजनादात्मा मोचितः ।

तभी दुर्दशाग्रस्त धनमित्र मिला। उसने आपबीती बताई कि रतिसेना का विश्वास करके मैं अपनी सारी धन-राशि उसके घर रख आया। एक दिन जब वह मेरा सब कुछ हड़प चुकी थी, वह मुझे साड़ी पहनाकर स्नान के बहाने अशोक वन की बावली में छोड़ आई। अब मैं दर-दर का भिखारी हूँ। कहाँ जाऊँ? वनवास के लिए प्रस्थान कर रहा था कि आप मिले। विट ने वेश्याओं के लोभ की भरपूर निन्दा करके धनमित्र का आलिंगन कर लिया। धनमित्र ने कहा कि उसकी माँ यह सब कुछ करा रही है। आप उसके जाने बिना मुझे रतिसेना से मिला दें तो मुझे फिर प्राण मिलें। उसका काम विट ने अंगीकार कर लिया। विट की राय धनमित्र के विषय में सुन लीजिए—

अहो गत एव तपस्वी खलजनोपाध्यायः।

विट को उसकी सुप्रशंसित वेश्या प्रियंगुसेना मिली, जिसने बताया कि राजप्रासाद में पुरन्दर-विजय नामक संगीतक में मुझे निमन्त्रण आपके कारण मिला है। विट ने उसकी प्रशंसा का उपसंहार करते हुए कहा—

प्रतिनर्तयसे नित्यं जननयनमनांसि चेष्टितैर्ललितैः ।
किं नर्तनेन सुभगे पर्याप्ता चारुलीलैव ॥

तभी विट को नारायणदत्ता नामक वेश्या की चेटी कनकलता मिली। उसने बताया कि दक्षिण पवन से सन्ताप पाने वाली मेरी स्वामिनी को अशोकवनिका के पास वीणा से सहचरित यह गीत सुनने को मिला—

निष्फलं यौवनं तस्य रूपं च विभवश्च यः ।
यो जनः प्रियसंसक्तो न क्रीडति वसन्तके ॥

अपि च

शशिनमभिसमीक्ष्य निर्मलं परभृतरम्यरवं निशम्य वा ।
अनुनयति न यः प्रियं जनं विफलतरं भुवि तस्य जीवितम् ॥

यह सुनना था कि नारायणदत्ता अपने प्रियतम कुबेरदत्त से अभिसार करने चल पड़ी। उधर से कुबेरदत्त भी स्वामिनी को मनाने के लिए चल पड़े। दोनों की भेंट वीणाचार्य विश्वावसुदत्त के घर के समीप हुई। दोनों को आचार्य ने अपने घर में बुला लिया। विट ने यह सुनकर काम हो जाने से प्रसन्न होकर कनकलता को आशीर्वाद दे डाला—

तव भवतु यौवनश्रीः प्रियस्य सततं भव प्रियतमात्वम् ।
अनवरतमुचितमभिमतमुपभोगसुखं च ते भवतु ॥

तभी विट वीणाचार्य के घर पहुँचा। वहाँ जुगल-जोड़ी ने उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

पादताडितक

विट को माधवसेन से यह ज्ञात हुआ कि सुराष्ट्र की श्रेष्ठ वाराङ्गना मदनसेना ने श्रीमान् तौण्डिकोकि विष्णुनाग के सिर पर चरणकमल से प्रहार किया है। इस सम्मान विशेष को अवमान मानते हुए क्रोध से उसने मदनसेना को गाली दी और कहा—

प्रयतकरया मात्रा यलात् प्रबद्धशिखण्डके
चरणविनते पित्रा घ्राते शिशुर्गुणवानिति।
सकुसुमलवैः शान्त्यम्भोभिर्द्विजातिभिरुक्षिते।
शिरसि चरणो न्यस्तो गर्वान्न गौरवमीक्षितम् ॥[1]

मदनसेना की क्षमा-याचना उसने ठुकरा दी और कहा—

चण्डि मा स्प्राक्षीः।

माधवसेन ने विष्णुनाग की भर्त्सना की कि क्या मूर्खता कर रहा है। उसने मदनसेना को समझाया कि रोना बन्द कर। यह बेचारा विष्णुनाग इस प्रकार के सुन्दरी के चरणप्रहार के सम्मान के योग्य नहीं है। बात यहीं समाप्त न हुई।

विष्णुनाग उपर्युक्त चरणप्रहार को अपने पाप का फल मानकर ब्राह्मण-पीठिका में प्रायश्चित्त पूछने पहुँचा। विद्वान् ब्राह्मणों ने कहा कि ऐसे महान पातक का प्रायश्चित्त हमें भी ज्ञात नहीं है। विष्णुनाग के पुनः पुनः आग्रह करने पर कुछ ब्राह्मणों ने कहा—यह पूरा बैल है। कुछ ने कहा—यह उन्मत्त है और कुछ ने कहा कि यह कामपिशाच है। अन्त में भवस्वामी नामक आचार्य ने समझाया कि विटप्रमुखों से प्रायश्चित्त पूछो। वे ही तुमको इस पाप से मुक्त करेंगे। सबने इस निर्णय का समर्थन किया। माधवसेन को विटों की सभा बुलाने का काम दिया गया।

माधवसेन के पूछने पर विट ने अन्य प्रमुख विटों के नाम बताये, जिनमें राजा के बलाधिकृत और पूजापाठ में निष्णात दयितविष्णु का नाम सुनकर माधवसेन चौंका। विट ने दयितविष्णु की पोल खोली—

पूर्वावन्तिषु यस्य वेशकलहे हस्ताग्रशाखाहृता
सक्थ्नोः संयति यस्य पद्मनगरे द्विड्भिर्निखाताविषू।
बाहू यस्य विभिद्य भूरधिगता यन्त्रेषुणा वैदिशे
यो वाजीकरणार्थमुज्झति वसून्यद्यापि वैद्यादिषु ॥

१. यह पद्य मृच्छकटिक के नीचे लिखे पद्य के समीप पड़ता है।
यच्चुम्बितमम्बिकामातृकाभिर्गतं न देवानामपि यत्प्रणामम्।
तत्पातितं पादतलेन मुण्डं वने शृगालेन यथा मृताङ्गम् ॥८.१२

यस्माद् ददाति स वसूनि विलासिनीभ्यः
क्षीणेन्द्रियोऽपि रमते रतिसंकथाभिः ।
तस्माल्लिखामि धुरि तं विटपुंगवानां
रागो हि रञ्जयति वित्तवतां न शक्तिः ।।

माधवसेन से छुट्टी पाने पर विट को अमात्य विष्णुदास नामक न्यायाधीश मिला। विट के कथनानुसार वह न्यायालय में सो जाता था। विट ने उससे अनङ्गसेना नामक वाराङ्गना से प्रणय-विषयक चर्चा की।

विट वेश में पहुँचा। वहाँ सर्वप्रथम उसे वाष्प नामक वाह्लीकपुत्र मद्यपात्र लेकर नाचता मिला। फिर दिखाई पड़ी बुढ्ढी वेश्या सरणिगुप्ता, जिसके दाँत टूट कर स्थाणुमित्र के मुँह में जा पहुँचे, जब वह इसका चुम्बन ले रहा था।

विट ने वेश के भवनों और वहाँ के नर-नारी की शृङ्गारित प्रवृत्तियों का आँखों देखा वृत्त वर्णन किया। वेश के एक भाग में उसे हरिश्चन्द्र नामक एक युवक वैद्य मिला, जिसने बताया कि प्रियंगुयष्टिका की चिकित्सा करने गया था। विट ने पूछा

बाला त्वद्दशनच्छदौषधमलं सा वा त्वया पायिता ।

विट ने हरिश्चन्द्र को विट-सभा में आने का निमन्त्रण दिया।

आगे बढ़ने पर विट की भेंट सेनापति सेनक के पुत्र भट्टिमद्यवर्मा से हुई, जिसने पुष्पदासी के पुष्पिता होने पर भी उसे अनुगृहीत किया था। विट उसके डिण्डित्व से प्रसन्न हो गया और उसने कहा—

सर्वथा विटेष्वाधिराज्यमर्हसि ।

विट से फिर मिला काशी की वारमुखी पराक्रमिका के घर से निकलता हुआ हिरण्यगर्भक, जो उसे अपने राजा इन्द्रस्वामी के लिए मनाने गया था। इन्द्रस्वामी का कामिक रभस सुविदित था। विट ने उसकी आलोचना की और उसका काम बना दिया।

विट की आगे चलने पर मुठभेड़ हुई महाप्रतीहार मद्रायुध से, जो रामदासी के घर से निकल रहा था। विट ने चित्रकार निरपेक्ष को परामर्श दिया कि तुम अपनी प्रेयसी राधिका को मनाओ। फिर गुप्तकुल का दूत अपने स्वामी के लिए गणिका नियत करने आया था। उसे विट ने नमक की दूकान पर एतदर्थ सौदा करने के लिए भेज दिया। फिर विटपक्ष द्वार से अपनी भूतपूर्व प्रणयिनी शूरसेन-सुन्दरी के घर में घुसा। वहाँ प्रियङ्गु-वीथी में शिलातल पर उसे यह पद्य पढ़ने को मिला—

सखि प्रथमसंगमे न कलहास्पदं विद्यते
न चास्य विमनस्कतामशृणवं न वाकल्यताम् ।
युवानमभिसृत्य तं चिरमनोरथप्रार्थितं
किमस्य मृदिताङ्गरागरचना तथैवागता ।।

सुन्दरी ने बताया कि यह श्लोक मेरी सखी कुसुमावती के शिवस्वामी के पास अभिसार-विषयक है। शिवस्वामी ने अपने मेद को कम करने के लिए गुग्गुल का पान किया था और फलतः पण्ड हो गया था। कुसुमावती की प्रणय-प्रार्थना निष्फल हुई।

आगे बढ़ने पर विट को उपगुप्त दिखाई पड़े। देखने में उनका शरीर महाकुम्भ जैसा लगता था। मदयन्ती को उपगुप्त से प्रेम हो गया था। उपगुप्त के ऊपर इस प्रेम का शुल्क न देने का विवाद अधिकरण में पहुँचा था। वहाँ घूस चलती थी—न्यायाधीश, पुस्तपाल, कायस्थ और काष्ठकमहत्तर घूस माँगते हैं। न्यायालय का वर्णन है—

प्रध्याति विष्णुदासो भ्रात्रा किल तर्जितोऽस्मि कोङ्केन ।
द्राक्तेनाभिहतोऽहं क्रोशति विष्णुः स्वपिति चात्र ॥

विट को आगे बढ़ने पर वेश में कीर नामक चर्मकार और कोङ्क चेटी से उत्पन्न व्यक्ति मिला, जिसके विषय में उत्सुकता होने पर भी विट ने उससे बात नहीं की, पर भट्टरविदत्त नामक विट से उसके वहाँ आने का प्रयोजन पूछा। उससे भी कुछ ज्ञात नहीं हुआ। विट को वहीं उसके मित्र राम का घर दिखाई पड़ा, जो निरन्तर वेश्याओं की संगति में समय बिताता था। विट ने उसके घर में प्रवेश नहीं किया, क्योंकि उसे लक्षणों से ज्ञात हो गया कि वह अपनी प्रेयसी के साथ विहार कर रहा है।

विट को आगे चलकर सूर्यनाग नामक वेश्या-प्रेमी मिला। वह राजकुमार का पार्श्ववर्ती था। उस पर पताका-वेश्याओं ने मुकदमा चलाया था। विट के पूछने पर उसने बताया कि मैं अपने मामा की प्रेयसी के स्वास्थ्य का समाचार जानने के लिए यहाँ आया था। विट को उसकी बातों में विश्वास नहीं पड़ा। विट ने सूर्यनाग की कुब्जा परिचारिका से प्रणय-व्यापार चलाने की चर्चा की।

विट को आगे चलने पर विदर्भ का तलवर हरिशूद्र मयूरसेना नामक वेश्या के घर से निकलते हुए मिला। उसने विट को बताया कि मयूरसेना से पहले खटपट हो गई थी, पर अब पुनः मेल हो गया है, जब से उसे ज्ञात हुआ कि मैं उसका प्रशंसक हूँ। मैंने प्रेक्षा में मयूरसेना के नृत्य को सप्रमाण निर्दोष सिद्ध किया था, जब अन्य आलोचक उसमें दोष निकाल रहे थे। मयूरसेना को तब पारितोषिक मिला था। मयूर-सेना के साथ उसकी शृङ्गार-क्रीड़ा का पूरा वर्णन सुन लेने के पश्चात् ही विट उससे मुक्त हुआ। उसने सूर्यनाग को निमन्त्रण दिया कि तौण्डिकोकि के प्रायश्चित्त निर्धारण करने वाली विटों की सभा में आप पधारें।

सन्ध्या और फिर रात आई। विट को वेश की गली में प्रेमिक युग्म मिलते दिखाई पड़े—जयन्तक और बर्बरिका, मयूरकुमार और राका, प्रवाल और वेश-सुन्दरी, जो रात्रि को रसीली बनाने की योजना कार्यान्वित कर रहे थे।

अन्त में विट भट्टिजीमूत के घर पहुँचा, जो विटों का मुखिया था। विट-सभा की पूरी सज्जा थी। हजारों विट अपने यानों से आ पहुँचे थे। विट ने तौण्डिकोकि विष्णुनाग के प्रायश्चित्त की चर्चा की--

नागवद् विष्णुनागोऽसावुरसा वेष्टते क्षितौ ।
प्रायश्चित्तार्थमुद्विग्नं तमेनं त्रातुमर्हथ ।।

अपराध है वारमुख्या का इसके सिर पर अपना चरणकमल रख देना। उसका नाम मदनसेनिका है। सभी धूर्त विट इस वृत्त को सुन कर विचार में डूब गये। धावकि नामक विट ने कहा--प्रणय न जानने वाली मदनसेना का दोष है, तौण्डिकोकि का नहीं, क्योंकि--

अशोकं स्पर्शेन द्रुममसमये पुष्पयति यः
स्वयं यस्मिन् कामो विततशर चापो निवसति ।
स पादो विन्यस्तः पशुशिरसि मोहादिव तया
ननु प्रायश्चित्तं चरतु सुचिरं सैव चपला ।।

मल्ल स्वामी अपना विचार व्यक्त ही करने वाले थे कि अन्य विटों ने कहा कि यह विट कैसे है? मल्लस्वामी ने अपना विटत्व प्रमाणित करते हुए कहा--मैं कैसे विट नहीं हूँ, जब

ताते पंचत्वं पंचरात्रे प्रयाते मित्रेष्वार्तेषु व्याकुले बन्धुवर्गे ।
एकं क्रोशन्तं बालमाधाय पुत्रं दास्या सार्धं पीतवानस्मि मद्यम् ।।

(पिता के मरे पाँच ही दिन हुए थे मित्र और बन्धुगण व्याकुल थे, तब मैंने एक विलखते पुत्र को कुछ दूर कर दिया और दासी के साथ मद्यपान किया।)

लोगों को मानना पड़ा कि मल्लस्वामी श्रेष्ठ विट है। मल्लस्वामी का मत था कि मदनसेनिका से प्रायश्चित्त कराना चाहिए। महेश्वरदत्त ने कहा कि मदनसेनिका के पैर का धोवन भी पीने योग्य यह नहीं है। रुद्रवर्मा ने कहा कि इसका मुण्डन कर दो।

विष्णुनाग को यह मत भाया। उसने कहा कि मुण्डित होने के पहले इस अपवित्र-सिर को ही मैं काट डालता हूँ।

अन्त में विट-सभा के पति भट्टिजीमूत ने दोनों के लिए प्रायश्चित्त बताये। विष्णुनाग के केशों का कोई सुन्दरी प्रसाधन न करे। यह सदा रूखे केश रखे। मदनसेना को क्या करना है--वह शृङ्गारित भावापन्न होकर अपने नूपुर-युक्त चरण को मेरे सिर पर रख मुझे अनुगृहीत करे और विष्णुनाग यह दृश्य देखे।

सभी विटों ने इस प्रायश्चित्त-निर्णय का अनुमोदन किया।

इन चारों भाणों में विट अनेक विटों और वारमुखियों की उनकी प्रणय-सम्बन्धी सन्धि और विग्रह की वैशिक भाषा में यथोचित विस्तार-सहित चर्चा करते हैं। ऐसे

कथानकों में एकसूत्रता नहीं है, क्योंकि प्रायः सभी विटों और वारमुखियों की कथायें अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र है । इन सभी में एक तथ्य प्रायः मिलता है । भाण का प्रयोक्ता विट आरम्भ में कोई दौत्य या प्रयोजन अङ्गीकार करके भ्रमण करता है और अन्त में उस प्रयोजन को निष्पन्न बताया जाता है ।[1] बीच में कहीं-कहीं इस प्रधान प्रयोजन की चर्चा मिलती है । पादताडितक में अनेकत्र इस बात की चर्चा है कि आज तौण्डिकोकि का प्रायश्चित्त निर्णय करने के लिए विटों की सभा जमेगी ।

रस

चतुर्भाणी में शृङ्गार अङ्गी रस है और उसका सहयोगी रस हास्य है । विटों और वेश्याओं की दुनिया में शृङ्गार का सर्वव्यापक होना स्वाभाविक है । भाणों में कुछ विशिष्ट वर्ग के लोगों की प्रच्छन्न किन्तु उद्दाम कामुकता का भण्डाफोड़ करते हुए हास्य रस का स्थान निष्पन्न है । नग्न शृङ्गार-प्रवृत्तियों का जैसा वर्णन इन भाणों में है, वैसा अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता । इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखें कि इन कुलटाओं और विटों को आलम्बन विभाव बना कर विशुद्ध शृङ्गार की निष्पत्ति नहीं होती ।[2] इनसे तो वस्तुतः शृङ्गाराभास की निष्पत्ति सम्भाव्य है । भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार—**स (शृङ्गार रसः) च स्त्रीपुरुषहेतुक उत्तमयुवप्रकृतिः ।** अभिनवभारती के अनुसार इसकी व्याख्या है—**उत्तमश्च उत्तमा चोत्तमौ । एवं युवानौ ।** चतुर्भाणी में ऐसे 'उत्तमयुवानौ' का सर्वथा अभाव है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि शृङ्गाराभास की निष्पत्ति के लिए इससे बढ़कर कोई काव्यकोटि नहीं कल्पित हुई है ।

हास्य रस के लिए अपेक्षित विकृत आचार, परवेष, धार्ष्ट्य (निर्लज्जता), लौल्य (विषयेष्वनियतता) आदि विभावों का पुनः पुनः दर्शन इन भाणों में होता है । इनमें न्यायाधीश का सोना, भिक्षुओं और साधु-सन्यासियों की कामवासना का परितर्पण, वैद्य का उपचार करने के लिए जाने का ढोंग करके कामतृप्ति करना, पूजापाठ करने वालों का वेश्या से प्रीति आदि विकृताचार के उदाहरण हैं । जितने गुप्त गुण्डे हैं, उनकी वेश सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ सभी इसी कोटि में आती हैं । इनकी संख्या चारों भाणों में लगभग सौ है । नाम कुछ और काम कुछ और ही, अथवा नाम ऊँचा और करतूत नीच से हास्य उत्पन्न होता है । भाण में ऐसे ही लोगों की करतूतों की चर्चा होती है । विट के शब्दों में ये सभी मिथ्याचारी हैं । इनके कतिपय उदाहरण हैं—पद्मप्राभृतक में बौद्ध भिक्षुणी का दूती बनना, बौद्ध भिक्षु का वेश में विहार करना, उभयाभिसारिका में विलासकौण्डिनी

---

१. धूर्तविट-संवाद में यह तथ्य नहीं है, जो अपवादात्मक कहा जा सकता है ।

२. साहित्यदर्पण के अनुसार 'उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार इष्यते'

परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् ।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ॥३.१८४

नामक बौद्ध भिक्षुणी का कामुकी होना आदि व्यंग्य में हास्य का अनर्गल स्रोत प्रवाहित होता है। कोई वेश्या ब्रह्मचारिणी रहकर उपवास करती है और कोई संन्यासिनी वैशेषिक दर्शन की सप्तपदार्थी का विलासात्मक अर्थ प्रकट करती है। विट का सभी पिताओं को मार डालने का उत्साह भी इसी व्यंग्यकोटि में आता है। उन्हें मारना इसलिए चाहिए कि वे अपने युवक पुत्रों को वेश में जाने से रोकते हैं। कुलवधू स्त्रीरूप में पशु है, गणिका और कायस्थ में धन देने के लिए गणिका अच्छी है—इत्यादि विट के उद्गार व्यंग्य भरे हास्य के स्रोत हैं।

विकृत वेष वाले पात्र भी प्रस्तुत हैं। पद्मप्राभृतक में वृद्ध होने पर भी मृदङ्ग वासुलक अनुलेपन आदि के द्वारा यौवन का अभिनय करता था। उभयाभिसारिका में धनमित्र को उसकी वाराङ्गना रतिसेना साड़ी पहना कर अशोक वन में छोड़ आई थी।

पादताडितक में हास्य का एक प्रकरण विशेष उल्लेखनीय है। यौवन का अभिनय करने वाली बूढ़ी वेश्या सरणिगुप्ता का स्थाणुमित्र से प्रेमव्यापार चल रहा है। स्थाणुमित्र ने जब चुम्बन लिया तो सरणिगुप्ता का एक दाँत स्थाणु मित्र के मुँह में आ गया।

धार्ष्ट्य (निर्लज्जता) तो इन चारों भाणों में पदे-पदे दिखाई देता है। गुण्डों को लज्जास्पद परिस्थितियों में अपनी बहादुरी या साहस का अनुभव होता है। लौल्य (कामेच्छवनियतता) भी इन भाणों में सर्वोपरि तत्त्व है। इसका नग्न रूप पादताडितक में दिखाई पड़ता है, जहाँ पुष्पिता पुष्पदासी का मद्यवर्मा से प्रणय-व्यापार चलता है।

कौन हँसी रोक सकता है शिवस्वामी नामक पण्ड के एक कामुकी वेश्या की रात व्यर्थ करने के प्रकरण में? पादताडितक में हास्य की अनवरत धारा ऐसे प्रकरणों में आद्यन्त प्रवाहित है। सबसे पहले तो नायक विष्णुनाग ही अपना प्रायश्चित्त पूछते हुए दर्शक की सहानुभूति और हँसी के पात्र हैं, जिनको लेकर पूरा भाण हास्य-सरिता में अवगाहन कराता है। उसी भाण में उपगुप्त का विकृताकार हास्य की सृष्टि के लिए कल्पित है। इनका शरीर महाकुम्भ जैसा था और जब वे चलते थे तो लगता था कि गोल कोठिला लुढ़क रहा है। इसी भाण में वेश्या की कुबड़ी परिचारिका से प्रेमपद्धति का हास्यमय निदर्शन है। विटों की सभा में विष्णुनाग के प्रायश्चित्त का विमर्श पूरा का पूरा अतीव हास्यकारक है। अन्तिम निर्णय जो सभापति का हुआ, वह हास्य का अनुत्तम उदाहरण है कि मदनसेनिका मेरे सिर पर चरणकमल का प्रहार करे। इस प्रकार विष्णुनाग का प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ।

शृङ्गार रस की निष्पन्नता के लिए प्रकृति का दर्शन आद्यन्त शृङ्गारित है। सभाभवन, सन्ध्या, प्रातः, रजनी, चन्द्रोदय, वसन्त, शरत् आदि सभी कवि की दृष्टि में स्वयं शृङ्गार-रस में निमग्न वर्णित हैं। सभाभवन का वर्णन है पादताडितक में—

नभ इव शतचन्द्रं योषितां वक्त्रचन्द्रैः
कृतशबलदिगन्तं सम्पतद्भिः कटाक्षैः ।
सपरिधमिव यूनां बाहुभिः सम्प्रहारैः
निचितमिव शिलाभिश्चन्दनार्द्रैरुरोभिः ॥

इस वर्णन के अनुसार सभाभवन में रमणियों के मुखचन्द्र, कटाक्ष, बाहुओं का सम्प्रहार और चन्दनार्द्र उरःस्थल उपमाद्वार से द्रष्टव्य हैं ।

कवियों ने शृङ्गार के अनुभावों का सूक्ष्म दृष्टि से मानो आँखों-देखा वृत्तान्त समक्षित किया है । मयूरसेना और हरिशूद्र की पद्यबद्ध चर्चा इसका एक उदाहरण है—

हरिशूद्र—नेत्रनिमीलननिपुणे किं ते हसितेन चोरि गूढेन ।
सूचयति त्वां पाण्योरनन्यसाधारणः स्पर्शः ॥

नायिका के पूछने पर कि मैं कौन हूँ ? हरिशूद्र ने कहा—

रोमाञ्चकर्कशाभ्यां प्रत्युक्तासि ननु मे कपोलाभ्याम् ।
यद् वदसि पुनर्मुग्धे स्वयमेवाचक्ष्व काहमिति ॥

नायिका उसे चुम्बन देकर चल पड़ी तो हरिशूद्र ने कहा—

चुम्बितेनेदमादाय हृदयं क्व गमिष्यसि ।
चोरि पादाविमौ मूर्ध्ना धृतौ मे स्थीयतां ननु ॥

फिर वह शय्या पर जा कर बैठ गई और हरिशूद्र ने उसके पैर धोये और उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि नायिका ने कहा—यत्ते रोचते । शृङ्गारोचित अनुभावों का इसके पश्चात् कवि ने जैसा सरस वर्णन किया है, वह भाणेतर साहित्य में सम्भवतः न मिले । इस दृष्टि से कवि-कर्म अनुत्तम है ।

शैली

भाणों की भाषा पूरे संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय ही कही जा सकती है । इसमें कठोर सन्धि और लम्बे समस्तपदों की विरलता है और पदों की ध्वनि को सुमधुर बनाये रखने का सफल प्रयास है । यह बोलचाल या सम्भाषण की भाषा है, किन्तु इसमें अलङ्कारसौष्ठव, शब्दचयन और वागर्थ का औचित्य आदर्श रूप में प्रणिहित है । पद्म-प्राभृतक में शूद्रक ने भाणोचित भाषा का व्यञ्जना से निदर्शन किया है कि उसे स्त्री-शरीर की भाँति माधुर्य-कोमला होना चाहिए ।[1] अभिधा से भाण की भाषा का निरूपण करते हुए शूद्रक ने कहा है—

स्वैरालापे स्त्रीवयस्योपचारे कार्यारम्भे लोकवादाश्रये च ।
कः संश्लेषः कष्टशब्दाक्षराणां पुष्पापीडे कण्टकानां यथैव ॥

---

१. स्त्रीशरीरमिव माधुर्यकोमलां करिष्यामि ।

अर्थात् रहस्य वार्ता में, स्त्री और मित्रों के स्वागत में, कार्यारम्भ में और सार्व-जनिक वार्ता में कठोर शब्द और अक्षरों का मेल वैसे ही त्याज्य है, जैसे माला में काँटे। कवियों ने प्रत्येक पद को नापतोल कर तालमेल बिठाने का सर्वत्र प्रयास किया है।[1]

उपर्युक्त स्थिति में चतुर्भाणी में वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण और भारती वृत्ति का अखण्ड साम्राज्य है। वैदर्भी रमणी की भाँति कवि की पदावली ठुमक-ठुमक कर हावभाव के साथ चलती है। यथा

भ्रान्तपवनेषु सम्प्रति सुखिनोऽपि कदम्बवासितवनेषु ।
औत्सुक्यं वहति मनो जलधरमलिनेषु दिवसेषु ॥

जैसे वेशनारी को किसी नायक का अनुरञ्जन करना है और उसका सारा कार्य-व्यापार नायक की प्रसन्नता के लिए है, उसी प्रकार भाण की कविभारती अपनी सहज गद्योचित गति से अलसाती हुई भी प्रवर्तित होती है। भाण के पद्यों में भी भाग-दौड़ नहीं है। वे गद्यगीत प्रतीत होते हैं। यथा पद्मप्राभृतक में

पुष्पसमुज्ज्वलाः कुरवका नदति परभृतः
कान्तमशोकपुष्पसहितं चलति किसलयम् ।
चूतसुगन्धयश्च पवना भ्रमररुतवहाः
सम्प्रति काननेषु सधनुर्विचरति मदनः ॥

इसमें वंशपत्रपतित छन्द है। इसको पढ़ते समय ऐसा लगता है कि इसमें काम-विहार का शृङ्गारित स्थैर्य है।

पादताडितक में कविवर श्यामिलक ने उपर्युक्त प्रवृत्ति का निदर्शन ६० अक्षरों के दण्डक में किया है। यथा,

इयमनुनयति प्रियं क्रुद्धमेषा प्रियेणानुनीता प्रसीदत्यसौ सप्ततन्त्रीर्नखैर्घट्टयन्ती कलं काकलीपञ्चमप्रायमुत्कंठिता वल्गुगीतापदेशेन विक्रोशति,

यह एक पाद है दण्डक का। ऐसे ही चार पादों से पूरा दण्डक छन्द बना है। पद्मप्राभृतक के आरम्भ में ३० अक्षरों का दण्डक है, जिसका प्रथम पाद है—

तिलकशिरसि केशपाशायते कोकिलः कुन्दपुष्पे स्थितः स्त्रीकटाक्षायते षट्पदः।

---

१. महाकवि श्यामिलक ने पादताडितक में इस प्रवृत्ति का परिचय देते हुए कहा है—

इदमिह पदं मा भूदेवं भवत्विदमन्यथा
कृतमिदमयं ग्रन्थेनार्थो महानुपपादितः ।

अर्थात् यहाँ यह पद न रहे, यह पद अन्यथा रहे, यह पद समीचीन है, यह श्रेष्ठ अर्थ की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार पदों का संचयन होता था।

चतुर्भाणी में आर्या छन्द के प्रति विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है। आर्या में गद्यगीत का तत्त्व प्रधान होता है। छोटे छन्दों में अनुष्टुभ् की प्रचुर प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे गाथा छन्द भी मिलते हैं।

साधारणतः इन भाणों के रचयिताओं को संस्कृत के ऐश्वर्यशाली और विशाल छन्दों के प्रति विशेष अभिरुचि रही है। इनमें जिन भुजङ्गों की चर्चा सर्वोपरि है, उनके नामानुकूल २६ अक्षरों के भुजङ्गविजृम्भित का अनेक स्थलों पर दर्शन होता है। इसका एक उदाहरण उभयाभिसारिका में सूत्रधार का वक्तव्य है—

> **कोऽसि त्वं मे का वाहं ते विसृज शठ मम निवसनं मुखं किमपेक्षसे**
> **न व्यग्राहं जाने ह्री ह्री तव सुभग दशनवसन प्रियादशनाङ्कितम्।**
> **या ते रुष्टा सा ते नाहं व्रज चपल हृदयनिलयां प्रसादय कामिनी-**
> **मित्येवं वः कन्दर्पार्ताः प्रणयकलहकुपिता वदन्तु वरस्त्रियः॥**

कवियों के अन्य प्रियछन्द शिखरिणी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी आदि हैं।

कवियों की कल्पना में मानवीकरण का स्थान विशिष्ट है। यथा पद्मप्राभृतक में—

> **पद्मोत्फुल्लश्रीमद्वक्त्रा सितकुसुममुकुलदशना नवोत्पललोचना**
> **रक्ताशोकप्रस्पन्दोष्ठी भ्रमररुतमधुरकथिता वरस्तवकस्तनी।**
> **पुष्पापीडालङ्काराढ्या ग्रथितशुभकुसुमवसना स्रगुज्ज्वलमेखला**
> **पुष्पन्यस्तं नारीरूपं वहति खलु कुसुमविपणिर्वसन्तकुटुम्बिनी॥**

इसमें वसन्त-कुटुम्बिनी की कल्पना है।

ऐसे मानवीकरण में रूपकालङ्कार की ऊँची प्रतिष्ठा सर्वोपरि होती है। यथा पद्मप्राभृतक में—

> **आतोद्यं पक्षिसंघास्तरुरसमुदिताः कोकिला गान्ति गीतं**
> **वाताचार्योपदेशादभिनयति लता काननान्तः पुरस्त्री।**
> **तां वृक्षाः साधयन्ति स्वकुसुमहृषिताः पल्लवाग्रांगुलीभिः**
> **श्रीमान् प्राप्तो वसन्तस्त्वरितमपगतो हारगौरस्तुषारः॥**

अर्थात् पक्षियों के संघ बजाने वालों का समूह है। वृक्षों के रस से प्रसन्न कोकिल गीत गाते हैं। काननरूपी अन्तःपुर की स्त्री है वह लता, जो वायुरूपी आचार्य के निर्देशन में अभिनय करती है। लता को वृक्ष अपने पुष्पों के द्वारा अपनी पल्लवरूपी अंगुलियों से सजा रहे हैं। श्रीमान् वसन्त आ गये। तुषार भय से भाग गया।

शब्दों के व्यंग्य अर्थों और प्रयोगों का परिचय प्राप्त करने के लिए चतुर्भाणी अनूठा ग्रन्थ है।[1] साधारणतः ये अर्थ कोशों में नहीं मिलते। ये तो विटों की बोलचाल

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'उसके वाक्य सरल होते हुए भी व्यंजना गूढ़ हैं'।

की भाषा को ही प्रायशः समलंकृत करते हैं। ऐसे कुछ शब्द और उनके व्यंग्य अर्थ नीचे लिखे हैं--

पादताडितक में--आर्यघोटक (वेश्यागामी छैला), आलेख्य यक्ष (नपुंसक कामुक), उपासकत्व (वेश्या की संगति), कल्यरूपा (नई वेश्या), कुब्जा (अल्पवयस्का वेश्या) तथा (वेश्या), तथागत (निर्वीर्य), प्रस्ताव (वेश्या से प्रथम परिचय), मुद्रिता योषित् (अपनी पत्नी के समान रहने वाली वेश्या) लावणिकापण (वेश), वत्सतरी (अतिकामिनी वेश्या), वृष (निरंकुश छैला), शब्दकाम (कामशक्तिविहीन)।

पद्मप्राभृतक में--उपचार (छुआछूत), करभ (गँवार वेश्यागामी) कूर्मलीला (कामतुष्टि के लिये व्यग्रता), तृष्णाच्छेद (मद्यपान और स्त्रीविहार से सन्तोष), नित्य-प्रसन्न (प्रसन्ना नामक मद्य पीने वाला), पद्म (पद्मिनी नायिका का नायक), परभृत (वेश्या), पुराणमधु (प्रौढा वेश्या) राजयौतक (रमणीया वेश्या)।

धूर्तविट संवाद में--हैमकूर्म (छोटे हाथ-पैर और मोटे शरीर का कोतलगर्दन रईस), अतिलंघित (भूखा) अनभिज्ञातेश्वर (जो अभिजात रईस न हो), अनियोग-स्थान (झिझक वाला), अरणि (माता), भक्तिमान् (पुनः पुनः भगाये जाने पर भी वेश्या के घर के चारों ओर मँडराने वाला)।

उभयाभिसारिका में--कर्म (वेश्या के नखरे), क्षेत्रज्ञ (कामी), गुण (वेश्या के रूप आदि), तृतीया प्रकृति (हिजड़ा), द्रव्य (वेश्या का शरीर), प्रकृतिजन (नपुंसक), मोक्ष (ऐसे प्रेमी से छुटकारा, जो अभीष्ट न रह गया हो), समवाय (वेश्या से संगति), सांख्य (मैथुन), सामान्य (वेश्या का यौवन)।

चतुर्भाणी में लोकोक्तियों का प्रयोग सर्वातिशायी है। वेश में इनका विशेष प्रचलन रहा होगा। इनके द्वारा व्यंग्य की गहरी मार की गई है और भाषा में प्रभविष्णुता निष्पन्न की गई है। कतिपय लोकोक्तियाँ अधोलिखित हैंः--

अनुवृत्तिर्हि कामे मूलम्।
अपुमान् शब्दकामः।
अमृदङ्गो नाटकाङ्कः संवृत्तः।
उपवीणित एष गर्दभः।
कश्चन्द्रोदयं प्रकाशयति।
गणिकामातरो नाम कामुकजनस्य निष्प्रतीकारा ईतयः।
त्वरानुष्ठेयं मित्रकार्यम्।
न सूर्यो दीपेनान्धकारं प्रविशति।
न दीपेनाग्निमार्गणं क्रियते।
पटोलवल्ली समाश्रिता निम्बम्।
पिता नाम खलु सयौवनस्य पुरुषस्य मूर्तिमान् शिरोरोगः।

प्रत्यक्षे हेतुवचनं निरर्थकम् ।
मदनीयं खलु पुराणमधु ।
मृतमपि पुरुषं जीवयेद् वेश्यामुखरसः ।
लघुरूपोऽपि बलवान् मदनव्याधिः ।
वामशीला हि नार्यः ।
सर्वोऽपि विविक्तकामः कामी भवति ।
स्वर्गायति न परिहासकथा रुणद्धि ।

पादताडितक के अनेक वर्णन चित्रशैली के प्रवर्तक हो सकते हैं । यथा,

तस्या मदालसविघूर्णितलोचनायाः
श्रोण्यर्पितैककरसंहृत-मेखलायाः ।
सालक्तकेन चरणेन सनूपुरेण
पश्यत्वयं शिरसि मामनुगृह्यमाणम् ।।

वास्तविक दृष्टि से देखने पर चतुर्भाणी कामशास्त्र का काव्यात्मक रूप है । इससे यह न समझ लें कि यह मनुष्य को कामी बनने की प्रेरणा देता है, यद्यपि स्थान-स्थान पर इसमें पत्नी-भक्तों पर कटाक्ष किया गया है । इसमें जहाँ-कहीं वेश का माहात्म्य वर्णित है, वहाँ एक अन्तर्गर्भित विचार-धारा है कि इस प्रपञ्च में पड़ने वाले लोग प्रशस्य नहीं हैं । वेश्याओं की निन्दा तो अभिधा में ही की गयी है । यथा, उभयाभिसारिका में—

शान्तिं याति शनैर्महौषधिबलादाशीविषाणां विषं
शक्यो मोचयितुं मदोत्कटकटादात्मा गजेन्द्राद्वने ।
ग्राहस्यापि मुखान्महार्णवजले मोक्षः कदाचिद् भवेत्
वेशस्त्रीवडवामुखानलगतो नैवोत्थितो दृश्यते ।।

भाणों में जिस प्राकृतिक या मानवीय सौन्दर्य का वर्णन है, वह जीवन्त है, निष्प्राण या परिपाटी-प्रणिहित नहीं है। यथा पादताडितक में

आलम्ब्यैकेन कान्तं किसलयमृदुना पाणिना छत्रदण्डं
संगृह्यैकेन नीवीं चलमणिरशना भ्रश्यमानांशुकान्ता ।
आयात्यभ्युत्स्मयन्ती ज्वलिततरवपुर्भूषणानां प्रभाभिः
सज्योतिष्का सचन्द्रा सविहगविरुता शर्वरीदेवतेव ।।

पादताडितक में विभिन्न प्रदेशों के वेश्या-प्रेमियों और विटों के परिधान, चरित्र, आचार-व्यवहार और कामक्रीडा की रीतियों का वर्णन किया गया है। यह सूचना सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से विशेष उपयोगी है । यथा, यवनी के विषय में—

चकोरचिकुरेक्षणा मधूनि वीक्षमाणा मुखं
विकीर्य यवनीनखैरलकवल्लरीमायताम् ।
मधूककुसुमावदातसुकुमारयोर्गण्डयोः
प्रमार्ष्टि मुदरागमुत्थितमलक्तकाशङ्कया ।

अपि च यवनी गणिका, वानरी नर्तकी, मालवः कामुको, गर्दभो गायकः इति गुणतः साधारणमवगच्छामि । अन्यत्र भी इन भाणों में तत्कालीन नागरक-संस्कृति के ज्ञान के लिए बहुमूल्य सामग्री है। विदेशी विद्वानों ने चतुर्भाणी की विशेषताओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। श्री टामस का कथन है—

It will, I think, be admitted that these compositions, in spite of the unedifying character of their general subject and even in spite of occasional vulgarities, have a real literary quality. They display a natural humour and a polite, intensely Indian irony which need not fear comparison with that of a Ben Jonson or a Moliere. The language is the veritable ambrosia of Sanskrit speech.[१]

डा० मोतीचन्द्र ने भाणों की भाषा का परिचय देते हुए लिखा है—कम से कम जिस तरह की संस्कृत का भाणों में प्रयोग किया गया है, वह कहीं दूसरी जगह नहीं मिलती। वह विटों की भाषा है, जिसमें हँसी-मजाक, नोक-झोंक, गाली-गलौज, तानाकशी और फूहडपन का अजीब सम्मिश्रण है। भाणों के विट तत्कालीन मुहावरों और कहावतों का बड़ी खूबी के साथ प्रयोग करते हैं। चतुर्भाणी को पढ़ते समय तो हमें ऐसा भास होता है कि मानो हम आधुनिक बनारस के दलालों, गुण्डों और मनचलों की जीवित भाषा सुन रहे हों।[२] भाणों की तारीफ है कि विना तूल दिये हुए कुछ ही शब्दों में वर्ण्य वस्तुओं का चित्र वे खींच देते हैं।[३]

डा० डे ने चतुर्भाणी की समीक्षा करते हुए कहा है—

Their marked flair for comedy and satire, their natural humour and polite banter, their presentation of a motley group of interesting characters, not elaborately painted but suggested with a few vivid touches of the brush, are characteristics which are not frequently found in Sanskrit literature ; and, apart from their being the earliest specimens of a peculiar type of dramatic composition, they possess a real literary quality in their style and treatment, which makes them deserve a place of their own in the history of Sanskrit drama.[४]

---

१. Centenary Supplement of J.R.A.S. 1924 P. 135.

२. चतुर्भाणी की भूमिका पृष्ठ १०

३. वही पृष्ठ १४

४. History of Sanskrit Literature P. 253

ऐसा लगता है कि इन भाणों की रचना रंगमंच के लिए नहीं हुई। ये केवल पढ़ने के लिए लिखे गये। भाण में रंगमंच पर केवल एक पात्र होता है। उस एक पात्र से लगभग १५० पद्यों और इससे दूनी मात्रा में गद्यांशों का सम्भाषण रूप में कथन और अभिनय लगातार करवाने की बात असम्भव सी प्रतीत होती है।[1] प्रेक्षक भी एक ही व्यक्ति के इतने लम्बे भाषण से ऊब जायेंगे। भाण में एक ही अङ्क इसीलिए निर्धारित किया गया कि इसे छोटा होना चाहिए। पर ये कविराज इस शास्त्रीय विधान को केवल शब्दशः मानते रहे कि एक ही अङ्क तो है। आख्यान तथा वर्ण्य विषय को हनुमान् की पूँछ की भाँति लम्बायमान करना उनकी आत्मा के रसात्मक परितोष के लिए था।

इन भाणों को और परवर्ती भाणों को देखने से प्रतीत होता है कि इनकी रचना समाज के सर्वोच्च वर्ग के लिए नहीं हुई थी। सुसंस्कृत लोगों के लिए तो नाटक, प्रकरण और नाटिकादि थे। भाण और प्रहसन वैसे ही लोगों के लिए थे, जैसे पात्र उनमें मिलते हैं।

---

1. यह वक्तव्य सबसे लम्बे भाण पादताडितक के विषय में है। इसका कोरा पाठ भी एक घंटे में समाप्त नहीं होता। अभिनय के लिए तीन घण्टे तो लग ही जायेंगे।

अध्याय ९

मत्तविलास

मत्तविलास संस्कृत का प्रथम लभ्य प्रहसन है । धार्मिक और साम्प्रदायिक अन्ध-विश्वास इस देश में भले ही सदा प्रोन्नत रहे हों, किन्तु उनके कटु आलोचकों ने सामाजिकों की आँख खोलने की चेष्टायें की हैं। ऐसे लोगों में कुछ तो धार्मिक और साम्प्रदायिक आचार्य ही हुए हैं, जिनमें गौतम बुद्ध से लेकर गाँधी तक महापुरुष अग्रगण्य हैं। कवियों ने भी समाज को सचेत किया है कि उन कुप्रवृत्तियों से बचना है, जो समाज को अधः पतन की ओर ले जा रही हैं। हम देख चुके हैं कि चतुर्भाणी के लेखकों का प्रयास इस दिशा में था। इसके पश्चात् यह दूसरा प्रयास मत्तविलास प्रहसन में मिलता है। चतुर्भाणी समाज को नग्न कामुकता से बचने का सन्देश देती है और मत्तविलास का सन्देश है कि अन्धे बन कर सम्प्रदायों की कुरीतियों के प्रति भेड़ न बनो।

कवि-परिचय

मत्तविलास का रचयिता महेन्द्र वर्मा ६०० ई० में राजा हुआ। इसके समय में पल्लवों और चालुक्यों का लम्बा संघर्ष आरम्भ हुआ। महेन्द्र वर्मा के शासनकाल में पल्लव राज्य दक्षिण में कावेरी-तट तक फैला। वह पहले जैन और फिर शैव हो गया। उसके-ऊपर अय्यर नामक शैव साधु का विशेष प्रभाव पड़ा। महेन्द्र वर्मा ने चट्टानों के तक्षण द्वारा अनेक मन्दिर बनवाये। उसके बनवाये मन्दिर अब भी—तिरुचिरपल्ली, वल्लभ और महेन्द्रवाडी में हैं। मन्दिरों के निर्माता होने के कारण महेन्द्र को चैत्यकारी की उपाधि दी गई है। अपने रुचि-वैचित्र्य के कारण उसे विचित्र चित्त भी कहते हैं। मण्डगपत्तु के अभिलेख के अनुसार—

ईंट, लकड़ी, धातु और चूने से रहित यह मन्दिर जो ब्रह्मा, ईश्वर और विष्णु का निवास है। राजा विचित्र-चित्त के द्वारा यह बनवाया गया। महेन्द्रवाडी में उसने एक सरोवर बनवाया। महेन्द्र गीत, नृत्य और चित्रकला में भी रुचि रखता था। इन कलाओं को उसने आगे बढ़ाया। उसकी काव्यात्मक रुचि का प्रमाण है मत्तविलास प्रहसन।

महेन्द्र के उदात्त व्यक्तित्व का परिचय इस प्रहसन की प्रस्तावना के नीचे लिखे पद्य से मिलता है—

प्रज्ञादानदयानुभावधृतयः कान्तीकलाकौशलं
सत्यं शौर्यममायता विनय इत्येवंप्रकारा गुणाः ।

अप्राप्तस्थितयः समेत्य शरणं याता यमेकं कलौ
कल्पान्ते जगदादिमादिपुरुषं सर्गप्रभेदा इव ॥

महेन्द्र में १२आत्मगुण थे—प्रज्ञा, दान, दया, अनुभाव, धैर्य, कान्ति, कला, कौशल, सत्य, शौर्य, अमायता और विनय। साथ ही वह परोपकारी, शत्रुषड्वर्गनिग्रहपरायण तथा महाभूतसमधर्मा था। वह कवियों का समादर करता था।

कथानक

सत्यसोम नामक कपाली और उसकी सहचरी देवसोमा काञ्चीपुर में रहते हैं। दोनों मदिरापान करके घूमने निकले हैं। कपाली शिव की प्रशंसा करता है कि उन्होंने मद्यपान और प्रियतमा के मुखदर्शन को मोक्ष का साधन बनाया है। देवसोमा कहती है कि जैन तो मोक्षमार्ग एक दूसरी ही विधि से बताते हैं।[1] कपाली ने जैन मत का खण्डन करते हुए उपसंहार किया है—

कार्यस्य निःसंशयमात्महेतोः सरूपतां हेतुभिरभ्युपेत्य ।
दुःखस्य कार्यं सुखमामनन्तः स्वेनैव वाक्येन हता वराकाः ॥ ८

अर्थात् सुखमय मोक्ष यदि कार्य है तो वह दुःखमय साधन व्रतादि से नहीं साध्य है, क्योंकि कारण और कार्य की प्रकृति एक जैसी होती है।

कपाली ने कहा कि कुतीर्थों का नाम जीभ से निकला है तो अब इस जीभ को सुरा से धोना पड़ेगा। पत्नी ने कहा कि चलिये चलें शराब की दूकान पर।

उन दोनों को मद्यशाला यज्ञशाला जैसी दिखाई पड़ी—**अत्र हि ध्वजस्तम्भो यूपः, सुरा सोमः, शौण्डा ऋत्विजः, चषकाश्चमसः, शूल्यमांसप्रभृतय उपदंशा हविर्विशेषाः, मत्तवचनानि यजूंषि, गीतानि सामानि, उदङ्काः स्रुवाः, तर्षोऽग्निः, सुरापणाधिपतिर्यजमानः।**

मधुशाला में जब सुरा भिक्षारूप में इनको दी जाने वाली है तो इन्हें यह सुधि होती है कि हमारा पीने का पात्र कपाल खो गया। वे दोनों उस मधुशाला में उस कपाल को ढूंढ़ने के लिए प्रस्तुत हुए, जहाँ पहले सुरा पी थी। यहाँ पर जो भिक्षारूप में मदिरा दी गई, उसे गोशृङ्ग से पिया गया। पहले की मधुशाला में भी वह कपाल नहीं मिला। कापालिक अपने कपाल के लिए विलाप करने लगा—

येन पानभोजनशयनेषु नितान्तमुदकृतं शुचिना ।
तस्याद्य मां वियोगः सन्मित्रस्येव पीडयति ॥ ११

विना कपाल के मुझे लोग कपाली कैसे कहेंगे? देवसोमा ने बताया कि कुत्ते या बौद्धभिक्षु ने लिया होगा, क्योंकि उस कपाल में शूल्य मांस लगा था। फिर तो सम्पूर्ण

१. जैनधर्म में शरीर को कष्ट देने वाले व्रतों से मोक्ष को साध्य माना गया है।

काञ्चीपुर में घूम कर उसे खोजने की योजना सूझी। उस समय नागसेन नामक बौद्ध-भिक्षु वहाँ आ गया। उसे धनदास के घर से मत्स्य-मांस आदि का भोजन मिला था जिसे उसने पोटली में बाँध रखा था। इस भिक्षु का मत है कि गौतम बुद्ध ने बौद्ध भिक्षुओं के लिए प्रासादों में वास, पलङ्ग पर शयन, ताम्बूल और कौशेय वस्त्र का सेवन तो निर्धारित किया। उन्होंने स्त्री-सहवास और मदिरापान भी निर्धारित किया होगा, पर वृद्ध भिक्षुओं ने इसे उनके उपदेशों में से निकाल दिया होगा। मैं मूल पाठ को प्राप्त करूँगा, जिनमें इनका विधान है और फिर उसका प्रचार करके उपकारक बनूंगा।

भिक्षु पर कपाल की चोरी का दोषारोपण हुआ। कपाली को देखकर उससे बचने के लिए वह त्वरित गति से चलने लगा, पर कपाली ने समझा कि वह चोर है। देवसोमा को देखकर भिक्षु के मुख से निकल पड़ा--अहो ललितरूपा उपासिका। कपाली ने भिक्षु को पकड़ा कि मेरा कपाल दे दो। इस छीना-झपटी में भिक्षु ने 'नमो बुद्धेभ्यः' कहा तो कपाली ने कहा कि 'नमः खरपटाय' क्यों नहीं कहते हो।[1] तुम्हारा बुद्ध भी बढ़-चढ़ कर चोर है। देखो,

> वेदान्तेभ्यो गृहीत्वार्थान् यो महाभारतादपि ।
> विप्राणां मिषतामेव कृतवान् कोशसञ्चयम् ॥ १२

देवसोमा ने देखा कि कपाली इस विवाद में श्रान्त हो चुका है। उसने कपाली से कहा कि थोड़ी सुरा पीकर शक्तिसंचय करके विवाद करो। देवसोमा और कपाली पीते हैं। कपाली ने देवसोमा से कहा कि इस झगड़ालू भिक्षु को भी पिलाओ। हम लोग बाँट कर खाने वाले हैं। भिक्षु पीना चाहता था, किन्तु दूसरों के द्वारा देखे जाने के भय से पी न सका।

भिक्षु ने अपने पास कपाल की सत्ता स्वीकार नहीं की। कपाली ने कहा--

> दृष्टानि वस्तूनि महीसमुद्रमहीधरादीनि महान्ति मोहात् ।
> अपह्नुवानस्य सुतः कथं त्वमल्पं न निह्नोतुमलं कपालम् ॥

देवसोमा ने कहा--प्रेम से यह कपाल नहीं देगा। इसके हाथ से बलात् छीनकर चला जाय। कपाली छीनने चला और भिक्षु से उसकी हाथापाई हुई। भिक्षु ने उसे पैर से ठोकर मारी। कपाली गिर पड़ा। देवसोमा ने कपाली को गिरा देखकर भिक्षु का बाल पकड़ कर खींचने की चेष्टा की। पर बाल तो भिक्षु को था ही नहीं वह प्रसन्न हुआ कि गौतम बुद्ध ने क्या ही बुद्धिमानी का नियम बनाया कि हम लोग मुण्डक रहें। इधर देवसोमा कपाली की सहानुभूति में गिरी पड़ी थी। उसे भिक्षु ने हाथ पकड़कर उठाया।

---

१. खरपट का उल्लेख चौरशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में भास के चारुदत्त में है।

कपाली ने कहा कि इसने तो मेरी प्रियतमा का पाणिग्रहण कर लिया। वह क्रुद्ध हुआ। उसने कहा कि तुम्हारे शिर का कपाल अब मेरा कपाल होगा। तीनों डट कर कलह करने लगे।

उसी समय बभ्रुकल्प नामक पाशुपत उनके कलह को सुन कर आ पहुँचा। उसकी नागसेन भिक्षु से पहले से ही खटपट थी, क्योंकि वे दोनों किसी नाइन के प्रेम-पाश में आबद्ध थे। वह कपाली का पक्ष लेकर आगे बढ़ा। उसके पूछने पर भिक्षु ने अपने व्रत—दस शिक्षापद ब्रह्मचर्यादि गिना दिये और कपाली ने बताया कि सच बोलना हमारा व्रत है। देवसोमा ने कहा कि भिक्षु ने चीवर में कपाल छिपा रखा है। भिक्षु ने कहा कि इसमें तुम्हारा कपाल नहीं है। नागसेन और सत्यसोम दोनों नाचते हैं। भिक्षु के पूछने पर कपाली ने बताया कि कौए से अधिक काला कपाल तुम्हारे पास है। भिक्षु ने कहा कि ऐसा कपाल तो मेरा ही हो सकता है। कपाली ने कहा कि तुमने उसे हथियाने के लिए काला रंग डाला है। देवसोमा तो कपाल का रंगा जाना सुनकर रोने लगी। उसे समझाया गया कि उसकी शुद्धि हो जायेगी।

पाशुपत ने कहा कि कपाल का निर्णय मैं नहीं कर सकता कि किसका है। आप लोग न्यायालय में जाइये। देवसोमा ने कहा न्यायालय में मेरे पक्ष में निर्णय पाना असम्भव है। वहाँ बहुत धन घूस देने के लिए लगता है। भिक्षु के पास तो धन होगा। मेरे पास क्या है? सभी न्यायालय के लिए प्रस्थान करते हैं।

तभी एक पागल आ पहुँचता है। उसने किसी कुत्ते के मुँह से एक कपाल छीन रखा था। उसे उसने पाशुपत और भिक्षु को देना चाहा। उन्होंने नहीं लिया और कपाली को देने के लिए कहा। कपाली उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। पाशुपत और भिक्षु सभी प्रसन्न होते हैं। अन्त में कवि की प्रार्थना है—

शश्वद् भूत्यै प्रजानां वहतु विधिहुतामाहुतिं जातवेदा
वेदान् विप्रा भजन्तां सुरभिदुहितरो भूरिदोहा भवन्तु।
उद्युक्ताः स्वेषु धर्मेष्वयमपि विगतव्यापदाचन्द्रतारं
राजन्वानस्तु शक्तिप्रशमितरिपुणा शत्रुमल्लेन लोकः॥ २३

रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में लिखा है कि प्रहसन का प्रमुख उद्देश्य है—

प्रहसनेन हि पाखण्डिप्रभृतीनां चरितं विज्ञाय विमुखः पुरुषो न भूयस्तान् वञ्चकानुपसर्पति।

मत्तविलास का यह उद्देश्य सफल है। इसके कथानक में दम्भी, व्यभिचारी, और आचारविहीन तथाकथित साधुओं की पोल खोली गई है। इसमें अपने को ठीक बताकर दूसरों की बुराइयाँ बताई जाती हैं और दर्शक समझता है कि रङ्गमञ्च पर सभी पात्र गये-गुजरे हैं।

परिभाषानुसार इसमें वीथी के कई अंगों का समावेश हुआ है। यथा,

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षितव्यं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकृतश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ।। ७

इसमें प्रपञ्च नामक वीथ्यङ्ग है।[1]

उन्मत्तक की बातों में असत्प्रलाप नामक वीथ्यङ्ग है।[2] यथा, 'पागल कुत्ते ऐसी वीरता के द्वारा मेरे ऊपर क्रोध कर रहे हो'।

"ग्रामशूकर पर चढ़कर आकाश में उड़े हुए सागर ने रावण को पराभूत करके इन्द्रपुत्र तिमिङ्गिल को पकड़ लिया। ··मैं जिस किसी का भी भागिनेय हूँ, जैसे भीम का घटोत्कच। और सुनो—

गृहीतशूला बहुवेषधारिणः शतं पिशाचा उदरे वहन्ति मे ।
शतं च व्याघ्राणां निसर्गभीषणं मुखेन मुञ्चाम्यहं महोरगान् ।। १९

मत्तविलास शुद्ध प्रहसन है, जिसमें

निन्द्य-पाखण्डि-विप्रादेरश्लीलासभ्यवर्जितम् ।
परिहासवचःप्रायं शुद्धमेकस्य चेष्टितम् ।। नाट्यदर्पण २·१९

पात्रानुशीलन

मत्तविलास में नायक सत्यसोम नामक कपाली है और उसकी प्रियतमा देवसोमा नायिका है। प्रतिनायक है नागसेन नामक बौद्धभिक्षु और पीठमर्द है पाशुपत बभ्रुकल्प। इन सबका चरित्र-चित्रण कवि ने सर्वथा प्रहसनोचित किया है। इन सबके आचार-व्यवहार में सात्त्विकता का सर्वथा अभाव और विलासिता का प्रकर्ष है। सभी दम्भी हैं, किन्तु आत्मप्रशंसा में दक्ष हैं। इसका उन्मत्तक पात्र भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण का स्मरण कराता है।

रस

मत्तविलास में आद्यन्त हास्य रस है। इसमें प्रकृति और अवस्था के विपरीत आचार और जल्प विभाव हैं। साधु या भिक्षु होने पर भी कामिनी और कादम्बरी के प्रति इनकी आसक्ति है और इसके विपरीत मोक्ष की अभिलाषा भी है।

---

१. असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हासकृन्मतः ।। दश० ३·१५

२. असम्बद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः ।। दश० ३·२०

शैली

मत्तविलास की शैली प्रहसनोचित है। सुबोध और सरल शब्दावली वाले छोटे वाक्यों से मण्डित यह प्रहसन वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का आदर्श प्रस्तुत करता है। कहीं-कहीं ऐश्वर्य और उच्छ्राय की अभिव्यक्ति के लिए बड़े समस्त पदों का प्रयोग हुआ है। यथा कांचीवर्णन में

अहो नु खलु विमानशिखरविश्रान्तघनरसितसन्दिग्धमृदङ्गशब्दस्य मधुसमयनिर्माणमातृकायमाणमाल्यापणस्य कुसुमशरविजयघोषणायमानवरयुवतीकांचीरवस्य काञ्चीपुरस्य पुरा विभूतिः।

इस वाक्य से बाण की समकालीन शैली की झलक मिलती है।

प्रहसन की शैली व्यञ्जना-प्रधान होती है, जिसमें केवल शब्द ही नहीं, पूरे वाक्य के वाक्य ऐसा अर्थ देते हैं, जो अभिधेय नहीं कहा जा सकता। यथा,

कपाली—पश्यन्तु पश्यन्तु माहेश्वरा, अनेन दुष्टभिक्षुनामधारकेण नागसेनेन मम प्रियतमापाणिग्रहणं क्रियमाणम्।

इस प्रसङ्ग में पाणिग्रहण है केवल हाथ से पकड़कर उठाना।

पुनः वही कपाली कहता है—**इदानीं तव शिरःकपालं मम भिक्षाकपालं भविष्यति।**

इस प्रसङ्ग में वाक्य का अर्थ है कि अब तुम्हारा सिर तोड़ डालूँगा।

कितना गहरा व्यंग्य है कपाली की नीचे लिखी उक्ति में—

दृष्टानि वस्तूनि महीसमुद्रमहीधरादीनि महान्ति मोहात्।
अपह्नवानस्य सुतः कथं त्वमल्पं न निह्नोतुमलं कपालम्॥ १३

कवि रूपक की लड़ी गूथने में दक्ष है, इसके द्वारा उसने मधुशाला और यज्ञशाला को समान कर दिया है।[1]

संवाद

संवाद का आधार एक तर्क है, जो प्रमत्तोचित है। कपाली के मुख से निकला है जैनियों का नाम। जीभ अपवित्र हो गई और उसे पवित्र करने के लिए सुरा से धोना चाहिए।

संवादों में प्रायः स्वाभाविकता है। यथा,

कपाली—भो भिक्षो, दर्शय तावत्। यावदेतत् ते पाणौ चीवरान्तः प्रच्छादितं द्रष्टुमिच्छामि।

---

१. अत्र हि ध्वजस्तम्भो यूपः, सुरा सोमः, शौण्डा ऋत्विजः इत्यादि।

शाक्यभिक्षुः—किमत्र प्रेक्षितव्यम् । भिक्षाभाजनं खल्वेतत् ।

कपाली—अतएव द्रष्टुमिच्छामि ।

शाक्यभिक्षुः—आः उपासक मा मैवम् । प्रच्छन्नं खल्वेतन्नेतव्यम् ।

कपाली—नूनमेवमादिप्रच्छादननिमित्तं बहुचीवरधारणं बुद्धेनोपदिष्टम् ।

शाक्यभिक्षुः—सत्यमेतत् ।

छन्दोवैविध्य

मत्तविलास में केवल २३ पद्य हैं, किन्तु इतने ही के लिए नव प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। श्लोक और शार्दूलविक्रीडित में पाँच-पाँच, आर्या और इन्द्रवज्रा में तीन-तीन, वसन्ततिलका और वंशस्थ में दो-दो तथा रुचिरा, मालिनी और स्रग्धरा में एक-एक पद्य हैं। प्राकृत का एक ही पद्य है जो वंशस्थ वृत्त में है।

———

अध्याय १०

हर्ष

उत्तर भारत के सम्राट् हर्षवर्धन ने सातवीं शती के पूर्वार्ध में तीन रूपकों की रचना की—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द। इनमें से प्रथम दो नाटिका हैं और अन्तिम नाटक। इनकी रचना और रचयिता के विषय में नीचे लिखे प्रश्नों को लेकर आज तक विवाद चल ही रहा है—(१) इनका रचयिता हर्ष कौन है? (२) हर्ष ने धन देकर धावक, बाण या किसी अन्य कवि से इन्हें लिखवाया और अपने नाम से प्रकाशित किया और (३) इन तीनों रूपकों के रचयिता एक हैं या अनेक।

हर्ष के रचयिता होने के सम्बन्ध में प्रायः समकालीन इत्सिङ्ग का अधोलिखित विवरण प्रमाण है—

King Śīlāditya (Harṣa) versified the story of Bodhisattva Jīmūtavāhana who surrendered himself in place of a Naga. This version was set to music (lit. string and pipe). He had it performed by a band accompanied by dancing and acting and thus popularised it in his time.

इसके अनुसार हर्ष ने बोधिसत्त्व जीमूतवाहन की कथा का अभिनयात्मक रूप प्रणीत किया था। नवीं शती में दामोदरगुप्त ने अपनी रचना कुट्टनीमत में रत्नावली के एक अंक का सार उद्धृत किया है और इसे राजा की रचना बताया है—

विज्ञापयाम्यतस्त्वां नरेन्द्रनाट्यप्रजासदृशम्।
अवलोकयाङ्कमेकं मा भवतु मम श्रमो वन्ध्यः॥ कु० म० ८५९

हर्ष का धन देकर इस नाटिका को धावक या बाण से लिखवाने की बात मम्मट के काव्यप्रकाश के नीचे लिखे उल्लेख से चल पड़ी है—

'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्।

कुछ परवर्ती टीकाकारों ने इसकी व्याख्या करते हुए यह जोड़ दिया कि रत्नावली लिखने के लिए धावक को हर्ष से धन मिला। इस प्रकार की व्याख्या का कोई आधार नहीं है। हर्ष का जो व्यक्तित्व इतिहास समक्षित करता है, उसे देखते हुए यह सर्वथा असंगत लगता है कि वह दूसरों की रचनाओं को धन देकर अपने नाम प्रकाशित कराये। इसके अतिरिक्त बाण के वर्णन के अनुसार हर्ष स्वयं उच्चकोटि का कवि था। बाण का कहना है—

'अस्य कवित्वस्य वाचो न पर्याप्तो विषयः' ।

कुछ आलोचक तीनों रूपकों को एक कवि की कृति नहीं मानते। डा० कुन्हन राजा का कहना है कि प्रियदर्शिका और रत्नावली में इतनी समानता है कि इन दोनों को एक ही कवि क्यों कर लिखता ? उनकी दृष्टि में कवि को पिष्टपेषण नहीं करना चाहिए ।[1]

'उपर्युक्त तीनों रूपकों के रचयिता सातवीं शती के कान्यकुब्जेश्वर महाराज श्री हर्ष हैं' यही मत बहुमत से स्वीकृत है । मतान्तरों के आधार पर्याप्त दुर्बल होने के कारण अमान्य हैं ।

कवि-परिचय

महाराजाधिराज हर्ष संस्कृत के प्रथम प्रमुख कवियों में से हैं, जिनके विषय में पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है । महाकवि बाण ने हर्षचरित में कवि का विशद वर्णन किया है । हर्ष के शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत-भ्रमण करके अपनी यात्रा का वर्णन लिखा है, जिसमें हर्ष-विषयक असंख्य प्रसङ्ग हैं । इनके अनुसार सम्राट् हर्ष महान विजेता, संस्कृति-प्रचेता और राष्ट्रहितों का उन्नेता था । वह अपने राज्य में भ्रमण करते हुए प्रजा का सुख-दुःख देखता था और उनके अभ्युदय के लिए योजनायें कार्यान्वित करता था। उसने वैदिक, बौद्ध और जैन धर्म की संस्थाओं को आगे बढ़ने में योग दिया । प्रजा की सुविधा के लिए उसने अपने राज्य में असंख्य स्थानों पर धर्मशालायें, औषधालय और बिहार आदि बनवाये । यात्रियों के भोजन आदि की व्यवस्था भी धर्मशालाओं में उसने कराई थी ।

हर्ष अपने जीवन में प्रायः सदा ही शैव धर्मावलम्बी रहा । अपने अन्तिम दिनों में बौद्ध जीवन-दर्शन की महायान शाखा के प्रति उसकी विशेष अभिरुचि बढ़ी । सभी सम्प्रदायों के प्रति उसकी सद्भावना और सहिष्णुता उल्लेखनीय हैं ।

हर्ष ने ह्वेनसांग की अध्यक्षता में अपनी राजधानी कन्नौज में बौद्ध संघ की महासभा की। उसके पश्चात् ६४३ ई० में प्रयाग में अपने षड्वार्षिक छठें संस्कृति-सम्मेलन में ह्वेनसांग को भाग लेने के लिए हर्ष ने आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में हर्ष ने अपना सर्वस्व साधुओं को दे डाला। केवल साधु-सन्तों का ही सत्सङ्ग हर्ष ने नहीं किया था, अपितु अनेक विद्वानों को आश्रय देकर उनकी प्रतिभा को विकसित करने का श्रेय

१. My own view is that King Harsa wrote only the Ratnavali and Priyadarsika was written by another, who after the death of the royal dramatist, gave out his own work as also the drama of Harsa. Survey of Sanskrit Literature P. 172.

उसे प्राप्त है। ऐसे कवियों में बाण और मयूर सुप्रसिद्ध हैं। हर्ष उत्तर भारत का अन्तिम महान् सम्राट् था, जिसने अपने राजत्व को पारम्परिक राजपद की गरिमा से जाज्वल्यमान किया था।

रत्नावली

हर्ष की नाटिका रत्नावली संविधान की दृष्टि से एक निराली ही रचना है। यद्यपि मूलतः इसकी कथावस्तु प्रणयात्मक है, जिसमें नायक उदयन महारानी वासवदत्ता के विरोध करने पर भी अन्त में अपनी नई प्रेयसी सागरिका से पाणिग्रहण करने में सफल होता है, तथापि प्रणय-पथ में जो चढ़ाव-उतार, लुका-छिपी, ताक-झाँक, झूठ-सच और माया-इन्द्रजाल इसमें है, वह अन्यत्र नहीं मिलेगा। पशु-पक्षी और लता भी उसमें वह करामात करते हैं कि मनुष्य क्या करेगा।[1] आदि से अन्त तक एक उत्सुकता पाठक को बनी रहती है कि अब आगे कौन सी अनहोनी घटना सम्भव होकर कौतूहल की उपशान्ति करेगी।

कथावस्तु

नायक वत्सराज उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने सिंहल की राजकन्या रत्नावली को महारानी वासवदत्ता की देख-रेख में रख दिया। रत्नावली को उसे कौशाम्बी के किसी व्यापारी ने दिया था। रत्नावली को यौगन्धरायण ने सिंहल के राजा से अपने दूत बाभ्रव्य के द्वारा माँगा था। वह सिंहल के राजमंत्री वसुभूति और बाभ्रव्य के साथ नौका पर लाई जा रही थी। समुद्र में नौका के दुर्घटनाग्रस्त होने पर ये सभी लोग तितर-बितर हो गये। रत्नावली को समुद्र में एक काष्ठ-फलक मिल गया, जिसके सहारे तैरती हुई वह कौशाम्बी के उपर्युक्त व्यापारी के द्वारा बचा ली गई। बाभ्रव्य और वसुभूति समुद्र से बचकर उदयन के मन्त्री रुमण्वान् से जा मिले थे, जब वह उदयन के शत्रु कोशलराज पर आक्रमण करने के लिए गया था। रत्नावली का नाम वासवदत्ता ने सागरिका रख दिया, क्योंकि वह समुद्र से प्राप्त हुई थी।

राजधानी में मदनमहोत्सव वसन्त ऋतु के आगमन के उपलक्ष्य में हो रहा है। राजा और विदूषक (वसन्तक) उत्सव की आलोचना करते हुए प्रसन्न हैं। राजा ने विदूषक से कहा कि तुम हो और मेरी प्रेयसी वासवदत्ता हैं तो वसन्त मेरे लिए सुखमय है। सारे नगर में उल्लास है। होली जैसा सार्वजनिक समारम्भ राजकीय स्तर पर नगर की सड़कों पर समुल्लसित था। राजा की अनुमति लेकर वसन्तक भी चेटियों के साथ नाच रहा है। चेटियों ने अवसर मिलने पर राजा से बताया कि महारानी वासवदत्ता ने आपको सन्देश दिया है कि आज रक्ताशोक के नीचे स्थापित कामदेव की पूजा मुझे

---

१. नवमालिका २·४ में सागरिका का प्रतीक है। अन्यत्र भी व्यञ्जना द्वारा वह सागरिका है।

करनी है। वहाँ आपको उपस्थित रहना चाहिए। राजा ने विदूषक के साथ अशोक वृक्ष के पास जाने के लिए प्रस्थान किया।

मकरन्दोद्यान कार्यस्थली है। वहाँ महारानी अपने परिवार के साथ आ पहुँचती हैं। बीच में उन्हें अपनी प्रिय माधवी लता और राजा की प्रिय नवमालिका लता मिलती हैं। नवमालिका में अभी पुष्प नहीं आये हैं। अशोक के समीप पूजा की सामग्री माँगने पर सागरिका उसे प्रस्तुत करती है। उसे देखकर वासवदत्ता का माथा ठनका। वह नहीं चाहती थी कि सुन्दरी सागरिका को राजा देखें। उसे आशंका थी कि उसे देखते ही राजा का उससे जो प्रणयकाण्ड चलेगा, उसमें मेरी हानि होगी। एक नई-नवेली सपत्नी बनाने के पक्ष में वह नहीं थी। उसने तत्काल उसे अपनी सारिका की देखभाल करने के बहाने अन्यत्र भेजा, किन्तु सागरिका काममहोत्सव देखना चाहती थी। उसने मन में सोचा कि सारिका को तो मैं सुसंगता की देख-रेख में दे आई हूँ। यहीं छिपे-छिपे यह उत्सव देखूँ। वह भी कामदेव की पूजा के लिए निकटवर्ती पुष्पों को चुनने लगी। राजा ने वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा की—

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता ।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती
बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥ १·२०

रानी ने पहले कामदेव की पूजा की और फिर राजा की पूजा की। राजा की पूजा जब हो रही थी, तभी सागरिका की दृष्टि उधर पड़ी। उसने मन में सोचा कि यहाँ तो सशरीर कामदेव की पूजा हो रही है। उसने अपने चुने हुए पुष्पों से वहीं से कामदेव की पूजा कर ली। तभी वैतालिक की गीति से उसे ज्ञात हुआ कि जिसकी पूजा उसने की है, वे महाराज उदयन हैं, जिससे विवाह करने के लिए मैं पिता के द्वारा भेजी गई हूँ। सागरिका को प्रसन्नता हुई कि यद्यपि मैं सम्प्रति चेटी रूप में हूँ, तथापि मेरे प्रियतम की छत्रच्छाया प्राप्त होने से यहाँ रहना सफल है। जाते समय सागरिका के मन में भाव था—

हा धिक्, हा धिक्, मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः।

सागरिका का उदयन से प्रथम दृष्टि का प्रेम अत्यन्त प्रगाढ था। वह कदली-गृह में चित्रफलक पर राजा का चित्र बनाकर उसे देखती हुई मनोविनोद कर रही थी। सागरिका की सखी सुसंगता सारिका-पञ्जर के साथ उसे ढूँढती हुई वहाँ पहुँच कर छिपे-छिपे देखती है कि वह अपने प्रिय राजा उदयन का चित्र बना रही है। उसे सागरिका के प्रणय-व्यापार से परितोष हुआ। उसने उस फलक पर उदयन के चित्र के निकट ही सागरिका का चित्र बना दिया। सागरिका ने अपने अभिनव प्रेम की गाथा उसे सुना दी। सारिका पक्षी ने सब कुछ सुना। इधर सागरिका प्रेमपरवश होकर मूर्छित हो गई।

इस बीच एक बन्दर उपद्रव करता हुआ उधर आ निकला। उसने सारे राज-प्रासाद में खलबली मचा दी। सागरिका और सुसंगता चित्र और सारिका को छोड़कर वहाँ से भाग चलीं। बन्दर ने वहाँ आकर सारिका को पिंजरे से निकाल दिया। वह पेड़ पर जा बैठी। उसे पकड़ने के लिए दोनों सखियाँ व्यग्र थीं।

राजा और विदूषक नवमालिका देखने के लिए उधर से घूमते हुए आये। वहाँ राजा को नवमालिका भी एक नायिका ही प्रतीत हुई। उसे देखकर उसने कहा—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मनः ।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन् कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥

राजा और विदूषक को निकट ही मौलश्री वृक्ष पर बोलती सारिका दिखाई पड़ी, जो सागरिका और सुसंगता का अभिनव प्रणय-सम्बन्धी चित्र-विषयक वार्तालाप कण्ठस्थ करके दुहरा रही थी। विदूषक के अट्टहास से सारिका तो दूर जा उड़ी। राजा ने अपने को धन्य माना कि सारिका ने यह प्रणय-सन्देश दिया। वहीं उन्हें सारिका का पंजर और चित्रफलक दिखाई पड़े। चित्र में उदयन ने अपने को और पास ही चित्रित एक अपूर्व सुन्दरी को देखा। उसे देखते ही राजा के मुँह से उद्गार निकला—

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥ २·६

निकट ही आई हुई सुसंगता और सागरिका कदलीकुञ्ज की ओट से राजा के प्रणय की बातें सुनने लगीं। सागरिका ने राजा को कहते सुना—

भाति पतितो लिखन्त्यास्तस्या वाष्पाम्बुशीकरकणौघः ।
स्वेदोद्गम इव करतलसंस्पर्शादेव मे वपुषि ॥ २·१२

सागरिका को अपना मनोरथ अभिलषित दिशा में प्रगति करता प्रतीत हुआ। राजा की ऐसी स्थिति देखकर सुसंगता ने सागरिका को उससे मिलाने की ठानी। वह चित्रफलक लेने के व्याज से कदलीगृह में गई। वहाँ उसने राजा से कहा कि सागरिका को मनाइये। वह मुझसे क्रुद्ध है कि मैंने उसका चित्र राजा के साथ क्यों बनाया। विदूषक ने चित्रपट लिया। राजा सागरिका से मिलने चले। सुसंगता के निर्देशानुसार राजा सागरिका का हाथ पकड़कर उसे मनाने लगे। उसकी श्री से अभिन्नता प्रकट करते हुए राजा ने कहा—

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ॥ २·१८

इस प्रेमालाप का अन्त हुआ विदूषक के वासवदत्ता का नाम लेने पर। सभी वहाँ से भाग चले। इधर वासवदत्ता उधर से आ निकली। चित्रपट लिए विदूषक के साथ

राजा वासवदत्ता से मिले। वासवदत्ता ने राजा की प्रसन्नता से समझ लिया कि नवमालिका खिली है। विदूषक इस अवसर पर बाँहें फैलाकर नाचने लगा। उसकी बगल से चित्रफलक गिर पड़ा। वासवदत्ता ने देखा कि उस पर राजा है और सागरिका है। वासवदत्ता का माथा ठनका। उसने राजा से कहा कि मेरे सिर में वेदना है। मैं यहाँ से चली। वह चली गई। राजा और विदूषक उसे मनाने के लिए चल पड़े।

राजा ने कामानलसन्ताप को छिपाने के लिए अपनी अस्वस्थता का समाचार प्रसारित किया। उसकी दशा जानने के लिए काञ्चनमाला नामक चेटी को वासवदत्ता ने भेजा। उसने सागरिका को उदयन से बचाने के लिए सुसंगता को नियुक्त किया और उसे अपने वस्त्रों का उपहार दिया। पर सुसंगता एक कुटनी थी। उसने विदूषक के साथ मिलकर एक योजना बनाई कि आज रात्रि के प्रथम प्रहर में माधवी-लतामण्डप में राजा का सागरिका से मिलन होगा, जहाँ वह वासवदत्ता के वेश में रहेगी और मैं काञ्चनमाला नामक वासदवत्ता की चेटी बनकर साथ रहूँगी। काञ्चनमाला ने छिपकर विदूषक और सुसंगता की यह योजना सुन ली थी और वासवदत्ता को सब कुछ बता दिया था।

राजा ने वसन्तक को सागरिका का समाचार जानने के लिए भेजा। उसने राजा से बताया कि आज पहर रात गये वासवदत्ता के वेश में सागरिका से मिलें माधवीलता मण्डप में। उस समय सन्ध्या हो रही थी। वे दोनों माधवीलता-मण्डप में पहुँचे। तब तक अँधेरा छाने लगा। वहाँ से विदूषक गये वासवदत्ता-वेषधारिणी सागरिका को लाने, पर उस अँधेरे में लाये वासवदत्ता को यह समझकर कि यह सागरिका है। साथ में काञ्चनमाला थी। राजा ने गाना आरम्भ किया—

आरुह्य शैलशिखरं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः।
प्रतिकर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तात् निशानाथः॥ ३·१२

यह सब सुनकर वासवदत्ता से नहीं रहा गया। उसने राजा से कहा—

त्वं पुनः सागरिकोत्क्षिप्तहृदयः सर्वमेव सागरिकामयं प्रेक्षसे।

अब तो राजा को काटो तो खून नहीं। उन्होंने उसे मनाना आरम्भ किया कि मेरा अपराध क्षमा करें। वासवदत्ता ने कहा कि अपराध तो मेरा है कि तुम्हारे प्रणय-पथ में बाधा डालती हूँ। दुःखी होकर वह चलती बनी।

सागरिका को उपर्युक्त वृत्तान्त ज्ञात हो गया था। उसने अशोक वृक्ष के नीचे कण्ठपाश से आत्महत्या करने का निर्णय किया। उसे आते हुए विदूषक ने देखा। वह वासवदत्ता के वेश में थी। इस वार उसे राजा और विदूषक ने वासवदत्ता समझा। वह फाँसी लगा रही थी। राजा ने उसे बचाया वासवदत्ता समझकर। इधर सागरिका ने उसे पहचान लिया और फिर तो राजा ने भी पहचाना। राजा ने उससे कहा—

अलमतिमात्रं साहसेनामुना ते
त्वरितमपि विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।
चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे
क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ॥ ३·१७

राजा आनन्दमग्न थे उसकी बाँहें कण्ठ में डाल कर। तभी वासवदत्ता वहाँ आ पहुँची। वासवदत्ता राजा को मनाने आ रही थी। राजा को देखकर उसने समझा कि राजा हमें मनाने के लिए आ रहे हैं। इधर निकट आने पर उसने देखा कि राजा पुनः सागरिका के प्रणयपाश में आसक्त हैं। उसने राजा को सागरिका से यह कहते सुना—

इत्थं नः सहजाभिजात्यजनिता सेवैव देव्याः परं ।
प्रेमाबन्धविवर्धिताधिकरसा प्रीतिस्तु या सा त्वयि ॥ ३·१८

इसी क्षण वासवदत्ता राजा के पास आ गई। राजा ने झूठ बोलकर अपने को बचाना चाहा कि मैंने तो इसे वेष के कारण वासवदत्ता समझ लिया था। वासवदत्ता ने विदूषक और सागरिका को लतापाश में बँधवाया।

बन्दी जीवन में सागरिका को पुण्य करने की सूझी। उसने अपने पिता से प्राप्त रत्नावली सुसंगता को दी कि जाकर इसे किसी ब्राह्मण को दे आओ। वह विदूषक को दे दी गई, जिसे महारानी ने छोड़ दिया था। सुसंगता ने सागरिका का समाचार विदूषक से बताया कि उज्जयिनी भेजने का प्रवाद फैलाकर वासवदत्ता ने उसे कहीं डाल दिया है। इधर राजा वासवदत्ता के विषय में कुछ-कुछ चिन्तित तो थे ही, सागरिका की चिन्ता उन्हें विशेष सता रही थी। तभी विदूषक उससे मिला। उसने सागरिका का समाचार दिया और दान में मिली रत्नावली दिखाई। राजा उसके स्पर्श से कुछ आश्वस्त हुआ। उसके निर्देशानुसार विदूषक ने वह रत्नावली पहन ली।

रुमण्वान् के भागिनेय विजयवर्मा ने राजा को समाचार दिया कि कोसल जीत लिया गया और कोसलाधिप मार डाला गया। रुमण्वान् भी लौट रहा है।

उज्जयिनी से तभी सर्वसिद्धि नामक इन्द्रजालिक कौशाम्बी में पहुँचता है। वह वासवदत्ता से मिलकर उसे प्रभावित करता है। राजा और रानी साथ ही उसका खेल देखने के लिए उत्सुक हैं। उसने कहा कि आपका जो अभीष्ट हो, वही दिखाऊँ। उसने कहा—

हरिहरब्रह्मप्रमुखान् देवान् दर्शयामि देवराजं च ।
गगने सिद्धचारणसुरवधूसार्थं च नृत्यन्तम् ॥ ४·१०

विदूषक ने इन्द्रजालिक से कहा कि देवताओं का नृत्य दिखाना कोई ठोस लाभ की बात नहीं है। दिखाना ही हो तो सागरिका को दिखाओ।

इन्द्रजाल बीच में ही बन्द करना पड़ा, जब प्रतीहारी ने कहा कि सिंहल राजा विक्रमबाहु का प्रधानमन्त्री वसुभूति और बाभ्रव्य नामक कंचुकी मिलना चाहते हैं। चलते-चलते इन्द्रजालिक कह गया कि मेरा एक और खेल आपको देखना चाहिए।

राजा के पास आने पर वसुभूति ने देखा कि विदूषक के गले में जो रत्नमाला है, वह राजकुमारी रत्नावली को उसके पिता ने प्रस्थान करते समय दी थी। बात यहीं समाप्त कर दी गई। फिर वसुभूति ने बताया कि किस प्रकार रत्नावली को लाने वाली नौका दुर्घटना-ग्रस्त हुई और वह जलनिमग्न हो गई। वास्तव में रत्नावली वासवदत्ता की बहिन की कन्या थी। इस समाचार से वासवदत्ता दुःखी हुई।

उसी समय राजप्रासाद में आग लगी। वासवदत्ता ने राजा से बताया कि सागरिका बन्दी है। उसे बचाना है। राजा उसे बचाने के लिए आग में कूद पड़ा। उसने अग्नि से कहा—

विरम विरम वह्ने मुञ्च धूमानुबन्धं
प्रकटयसि किमुच्चैरर्चिषां चक्रवालम्।
विरहहुतभुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः
प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि॥ ४·१६

वासवदत्ता, विदूषक, वसुभूति और बाभ्रव्य क्रमशः आग में कूद पड़े। तभी निगडित सागरिका रंगमंच पर प्रकट होती है। राजा उसके पास पहुँच जाता है। वह यों तो अग्नि में मरना चाहती है, किन्तु राजा को देखते ही जीवन की लालसा से कहती है—मुझे बचाइये। राजा उसे उठाकर बाहर निकालता है। राजा उससे कहता है—

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः।
यतः सन्तापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये॥ ४·१८

सारा आग का दृश्य भी यौगन्धरायण ने इन्द्रजाल से ही उत्पन्न कराया था। उस समय सागरिका को वसुभूति आदि पहचान लेते हैं। वासवदत्ता ने उसका राजा से पाणिग्रहण करा दिया। यौगन्धरायण ने आदि से अन्त तक अपनी योजना बता दी कि सिद्धों ने कहा था कि रत्नावली का विवाह चक्रवर्ती से होगा। मैंने आपको चक्रवर्ती बनाने के लिए वासवदत्ता की मृत्यु की घोषणा करके सिंहलेश्वर से उनकी कन्या रत्नावली आपके लिये माँग ली थी।

उपर्युक्त कथावस्तु से स्पष्ट है कि इसमें नाटिकोचित कैशिकी वृत्ति अपने चारों अङ्गों के साथ विराजमान है और वैदग्ध्य, क्रीडित, नर्म, भय, हास्य, शृङ्गार, सम्भोग और मान से युक्त है।[1]

---

१. 'गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः।' यह कैशिकी की परिभाषा है।

रत्नावली की कथा कवि-कल्पित है। नाटिका की परिभाषा के अनुसार इसका कथानक कल्पित होना ही चाहिए और नायक प्रख्यात और धीरललित राजा होना चाहिए।[1] प्रस्तावना में कवि ने इसकी कथावस्तु से सम्बद्ध चर्चा इस प्रकार की है--

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।

इस वक्तव्य से प्रमाणित होता है कि रत्नावली की कथा वत्सराज के अनुरूप है। भास के स्वप्नवासवदत्त में यौगन्धरायण की योजनाओं के अनुसार वासवदत्ता को लावाणक के अग्निदाह में मृत बताकर पद्मावती के पास वासवदत्ता को न्यास रखना और अन्त में पद्मावती का उदयन से विवाह कर लेने के पश्चात् वासवदत्ता का जीवित रहने का रहस्य खोलने का उपक्रम इतना सफल हुआ कि परवर्ती युग में कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में और हर्ष ने रत्नावली और प्रियदर्शिका में वासवदत्ता की कथा से मिलती-जुलती कथायें अपनाईं। हाँ, एक विशेषता इन अभिनव कथाओं में अवश्य है। वह है पाठक का अनुरञ्जन करने के लिए नायक को नई नायिका के चक्कर में शृङ्गारित बताना और नायक के प्रेमपथ में महारानी का बाधायें उपस्थित करना। भास ने जहाँ रानी वासवदत्ता के द्वारा सर्वस्व त्याग करके उदयन का विवाह पद्मावती से कराया और कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में थोड़े विरोध के पश्चात् स्वयं नई नायिका से भी विवाह में योग दिया, वहाँ हर्ष ने रानी के आद्यन्त विरोध करने पर भी कापटिक योजनाओं के द्वारा नायक का सागरिका से विवाह रचवा दिया। रत्नावली की कथा पर स्वप्नवासवदत्ता और मालविकाग्निमित्र की कथाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि कथा को चटपटी बनाने के लिए उसमें नये-नये विवरण जोड़ने का हर्ष का उपक्रम अनूठा ही है। ये नये विवरण ही रत्नावली के कथानक को वस्तुतः लोकहारी बनाते हैं।

रत्नावली में कविकल्पित अभिनव तत्त्व हैं (१) नायिका द्वारा नायक का दर्शन काममहोत्सव में दूर से कराकर प्रथम दृष्टि में उसका नायक के प्रति आकृष्ट

---

१. नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।। सा० द० ६·२६९

फिर भी कथासरित्सागर १४.६७-७३ में बन्धुमती और उदयन के गान्धर्व विवाह की कथा रत्नावली की कथा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। बन्धुमती मंजुलिका नाम से वासवदत्ता की शरण में रहती थी। विदूषक की सहायता से उद्यानलता गृह में उसका उदयन से विवाह हो गया। वासवदत्ता ने मंजुलिका और विदूषक को बन्धनागार में भेज दिया। अन्त में वासवदत्ता को उदयन और मंजुलिका के विवाह की स्वीकृति देनी पड़ी।

यह कथा बृहत्कथामंजरी के कथामुख में अन्तिम है।

होना ।[१] (२) सारिका के समक्ष सागरिका और सुसंगता की नायक-विषयक बातचीत करवाना और उसे वानर द्वारा पिंजरे से मुक्त करवा कर उसकी बोली से नायक को नायिका की अपने प्रति प्रणयात्मक प्रवृत्तियों का ज्ञान कराना ।[२] (३) विदूषक का प्रसन्न होकर नाचना और प्रमादवश उसके बगल से चित्र-फलक का गिरना, जिस पर उदयन और सागरिका चित्रित थे ।[३] (४) इन्द्रजाल का प्रयोग । रत्नावली के कथानक के विकास की दृष्टि से इन्द्रजाल की घटना सर्वथा अनावश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में इन्द्रजाल अतिशय लोकप्रिय था और प्रेक्षकों के मनोरंजनमात्र के लिए रंगमंच पर इन्द्रजाल को प्रासाङ्गिक बना कर कथा के अङ्गरूप में दिखाया गया है। अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए यह संघटना विशेष उपयोगी कही जा सकती है। वैसे तो रत्नावली के अभिज्ञान के लिए उसके द्वारा विदूषक को प्रदत्त माला पर्याप्त थी।

हर्ष ने पूर्ववर्ती नाटकों से भी कुछ तत्त्वों को लेकर रत्नावली में सफलतापूर्वक गूँथ दिया है। ऐसे तत्त्वों में सबसे बढ़कर है पात्र-विषयक भ्रान्ति का उपक्रम। यही रत्नावली का प्राण है। सर्वप्रथम भ्रान्ति है तृतीय अङ्क में राजा का वासवदत्ता को सागरिका समझना और फिर कुछ देर के पश्चात् इसी अङ्क में सागरिका को वासवदत्ता समझना। इस प्रकार छोटी-मोटी भ्रान्तियाँ अन्यत्र मिलती अवश्य हैं, किन्तु अन्यत्र कहीं भी कथानक के विकास की दृष्टि से और रस की निर्भरता के लिए उनका इतना महत्त्व नहीं दिखाई पड़ता।[४] ओट से या छिप कर बात सुनने या घटनाओं को देखने के नाटकीय संविधान के जन्मदाता भास हैं। कालिदास ने इस संविधान का उपयोग अपने सभी रूपकों में किया है। हर्ष ने रत्नावली में इस उपक्रम

---

१. सम्भव है इसके लिए हर्ष को सङ्केत भास के चारुदत्त और शूद्रक के मृच्छकटिक से मिला हो, जिनके अनुसार नायिका वसन्तसेना ने नायक चारुदत्त को काम-महोत्सव में देखा और उसके प्रति आकृष्ट हो गई।

२. सारिका-प्रयोग का सङ्केत मात्र सम्भवतः हर्ष को भास के अविमारक से मिला है। अविमारक में नायिका नायक के विरह में कहती है—शुकसारिकापि व्याख्यानमेव कथयितुमारब्धा। भूतिकसारिकापि सर्वलोकवृत्तान्तं कथयिष्यामीत्यागता। पञ्चम अङ्क से। अविमारक में नायिका की सखी नायक से नायिका का प्रणयनिवेदन करती है।

३. विदूषक के प्रमाद से विक्रमोर्वशीय में नायिका का नायक के नाम पत्र महारानी को मिल जाता है। सम्भवतः यहीं से हर्ष को चित्र का विदूषक के प्रमाद से वासवदत्ता को मिलने की बात सूझी है। मृच्छकटिक में विदूषक जब शकार से लड़ता है तो उसकी काँख से वसन्तसेना के आभरण गिर पड़ते हैं।

४. चारुदत्त में नायक वसन्तसेना को रदनिका समझने की भूल करता है, किन्तु इस भूल का वहाँ होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता है।

को कथानक के विकास में रीढ़ सा उपयोगी बना दिया है। पहले तो सागरिका छिप कर काममहोत्सव में कामरूप नायक को देखती है और यहीं से कथा की प्रणयात्मक जड़ जमती है। फिर काञ्चनमाला छिपे-छिपे सुसंगता और विदूषक की बातें सुनती है। आगे की कथा का मोड़ इसी घटना से मिलता है, जिससे तीसरे अङ्क की चारुता निष्पन्न होती है। वानर के उत्पात से दूसरे अङ्क में सम्भ्रम उत्पन्न करा कर कथानक में सहसा मोड़ ला दिया गया है। कालिदास ने वानर द्वारा उत्पात मालविकाग्निमित्र में और हाथी का उत्पात अभिज्ञानशाकुन्तल में चित्रित किया है, किन्तु इन दोनों स्थलों पर इन उत्पातों का महत्त्व कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता है।[1] नैराश्य में नायिका के फाँसी लगाने की घटना भी रत्नावली में विशेष चमत्कार के लिए संयोजित है। भास के अविमारक में कुरङ्गी नामक नायिका भी वियोग में निराश होकर कण्ठपाश द्वारा आत्महत्या करना चाहती है।

नायिका को बन्दी बनाने की विधि हर्ष ने कालिदास से सीखी है। मालविकाग्निमित्र में मालविका को धारिणी जिन परिस्थितियों में बन्दी बनाती है, प्रायः उन्हीं परिस्थितियों में रत्नावली में वासवदत्ता ने सागरिका को बन्दी बना दिया। पात्रों को अज्ञात रखने के नाटकीय संविधान का प्रथम दर्शन भास के रूपकों में अगणित स्थलों पर होता है। कालिदास की मालविका भी प्रायः अन्त तक अज्ञात रह जाती है। हर्ष ने इसी पद्धति पर सागरिका को अज्ञात रखा है।

चित्र का उपयोग भास और कालिदास ने अपने रूपकों के कथानकों में अनेक स्थलों पर किया है। किन्तु चित्र के द्वारा कथा का इस प्रकार संवर्धन हर्ष की देन कही जा सकती है।[2]

कथांशों का संविधान कतिपय स्थलों पर इस प्रकार संघटित किया गया है कि एक ही स्थान पर और एक ही समय पर दो या तीन वर्गों में पृथक्-पृथक् रह कर पात्र बातचीत करते हुए इतर वर्ग की चर्चाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया वाणी और भावों से व्यक्त करते हैं। प्रथम अङ्क में इस प्रकार के संविधानक में नीचे लिखे तीन वर्ग रङ्गमंच पर साथ ही उपस्थित किये गये हैं—

(१) सागरिका
(२) वासवदत्ता,
और (३) राजा और विदूषक

---

१. भास के अविमारक और चारुदत्त में हाथी का उत्पात कथानक में पराक्रम की गाथा लाने के उद्देश्य से चर्चित हैं। अविमारक में नायक द्वारा नायिका को बचाना और प्रथम दृष्टि में प्रेम यहीं से आरम्भ होता है।

२. मालविकाग्निमित्र में नायक नायिका का दर्शन सर्वप्रथम चित्र में करता है। रत्नावली में भी नायक नायिका को सर्वप्रथम चित्र में देखता है।

इस दृश्य में वासवदत्ता सपरिवार अशोक वृक्ष के समीप है। एक ओर से राजा और विदूषक आते हैं। दूर से ही वासवदत्ता को देख कर राजा कहते हैं—

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।
आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।। १.१६

इसी दृश्य में सागरिका कामदेव की पूजा करने के लिए पुष्पचयन कर रही है। प्रेक्षकों को ये तीनों वर्ग रंगमंच पर साथ दिखाई देते हैं। आगे चलकर रंगमंच पर दूसरी ओर खड़ी, किन्तु रंगमंच के अन्य पात्रों के लिए अदृश्य रहकर सागरिका कहती है—

तदहमप्येभिः कुसुमैरिहस्थितैव भगवन्तं कुसुमायुधं पूजयिष्ये ।

पात्रों के दो वर्ग तो अनेक स्थलों पर रंगमंच पर पृथक्-पृथक् अपने कार्यों में व्यापृत दिखाये गये हैं। यथा द्वितीय अङ्क में कदली-गुल्मान्तरित रहकर सुसंगता और सागरिका अपनी प्रतिक्रिया संवाद द्वारा व्यक्त करती हैं, जब उसी रंगमंच पर विदूषक और राजा सागरिका और सुसंगता के बनाये चित्र की परिचर्चा करते हैं। राजा कहता है—

भाति पतितो लिखन्त्यास्तस्या वाष्पाम्बुशीकरकणौघः ।
स्वेदोद्गम इव करतलसंस्पर्शादिष मे वपुषि ॥ २.१२

इसे सुनकर अन्तरित सागरिका कहती है—

सागरिका—(आत्मगतम्) हृदय, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। मनोरथोऽपि त एतावतीं भूमिं न गतः ।

ऐसे प्रकरणों की रसात्मक विशेषता की चर्चा आगे की जायेगी।

कतिपय घटनाओं की पूर्व सूचना दी गई है। भावी घटनाओं की सूचना प्रायः साक्षात् और कभी-कभी व्यञ्जना द्वारा मिलती है। प्रथम अङ्क में वासवदत्ता सागरिका को देखकर कहती है—**'यस्यैव दर्शनपथात् प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत्'**। इससे सागरिका और उदयन के भावी प्रणय की पूर्व सूचना मिलती है। सारिका द्वितीय अंक में सुसंगता और सागरिका का नायिका के अभिनव प्रणय-विषयक संवाद को राजा और विदूषक की उपस्थिति में दुहराती है। उसके ऐसा करने के बहुत पहले ही सुसंगता ने इस भावी घटना की सूचना यह कह कर दी है—

तथापि यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं ज्ञास्यति तथा करोमि। एतया पुनर्मेधाविन्या सारिकयात्र कारणेन भवितव्यम्। कदाप्येषास्यालापस्य गृहीताक्षरा कस्यापि पुरतः मन्त्रयिष्यते ।

तृतीय अङ्क में सागरिका फाँसी लगाती है। इसकी पूर्व सूचना विदूषक के शब्दों में इस प्रकार है—

भोः रुष्टा देवी किं करिष्यतीति न जानामि। सागरिका पुनर्दुष्करं जीविष्यतीति तर्कयामि।

राजा—वयस्य, अहमप्येवं चिन्तयामि । हा प्रिये सागरिके ।

व्यञ्जना द्वारा नीचे के पद्य में भावी घटना की सूचना दी गई है कि सागरिका पर दृष्टि डालने से वासवदत्ता राजा पर क्रोध करेगी—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मनः ।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन् कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ।।[1] २·४

तृतीय अङ्क में अन्धकार का वर्णन करते हुए जब राजा कहता है—

उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं ।
तमःसंघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ।। ३·७

इससे व्यङ्ग्य है कि अन्धकार के वातावरण में जो घटनायें होने जा रही हैं, उसमें भुवनस्येक्षणफलम् (सागरिका) छिन जायेगी ।

रत्नावली ही एक अनुपम रूपक है, जिसमें नायक के समक्ष अनेक समस्यायें आती हैं । समस्याओं की गणना इस प्रकार है—

किं देव्याः कृतदीर्घरोषमुषितस्निग्धस्मितं तन्मुखं
त्रस्तां सागरिकां सुसम्भृतरुषा किं तर्ज्यमानां तया ।
बद्ध्वा नीतमितो वसन्तकमहं किं चिन्तयामीत्यहो
सर्वाकारकृतव्यथः क्षणमपि प्राप्नोमि नो निर्वृतिम् ।। ३·१६

कथानक की धारा अनेक स्थलों पर मिथ्यावाद से मलिनीकृत है । पात्रों ने झूठ बोलकर अपना कोई बड़ा काम सिद्ध नहीं किया है और न किसी की हानि ही की है, किन्तु कवि ने कुछ ऐसी परिस्थितियाँ जानबूझ कर निर्मित की हैं, जिनमें पात्रों को झूठ बोलना पड़ा है। यथा द्वितीय अङ्क में चित्र बनाया था सागरिका ने, पर विदूषक ने कहा कि इसे राजा ने बनाया है । राजा ने भी कहा—वसन्तक ठीक कह रहा है । तृतीय अङ्क में राजा ने वासवदत्ता से पुनः अपने को बचाने के लिए असत्य भाषण किया—

सत्यं त्वामेव मत्वा वेषसादृश्याद् विप्रलब्धा वयमिहागताः ।

इस प्रकार मिथ्या भाषण कराना विशेषतः नायक से कवि के लिए उचित नहीं कहा जा सकता । वैसे तो मिथ्यावाद प्रणय-पथ का अलंकरण है ।

---

१. दशरूपक में भावी अर्थ का सूचक बतलाते हुए इस पद्य को तुल्यविशेषणात्मक पताकास्थानक का उदाहरण उद्धृत किया गया है ।

रत्नावली में एक और त्रुटि प्रतीत होती है। वासवदत्ता के वेष में सागरिका उदयन से मिलने वाली थी। उसके मिलने के पहले ही वासवदत्ता राजा से मिल आई और राजा ने उसे सागरिका समझने की भूल की। यह बात सागरिका को ज्ञात हो गई, पर कैसे ज्ञात हुई—यह कहीं नहीं बताया गया है। इसे बताये बिना सागरिका का आत्महत्या के लिए उद्यत होना त्रुटिपूर्ण है।

रत्नावली की कथावस्तु और इसका संविधान अनेक दृष्टियों से अभिनव है, जैसा हर्ष ने स्वयं इसके विषय में कहा है कि यह '**अपूर्ववस्तुरचनालंकृत**' है।

पात्रोन्मीलन

रत्नावली नाटिका है, जो स्वभावत: कैशिकी वृत्ति और शृङ्गाररसोन्मुख है। इसका नायक उदयन धीरललित है, जिसके विषय में उसकी पत्नी वासवदत्ता ने ठीक ही कहा है कि उसकी दृष्टि से सुन्दरी सागरिका को बचाना चाहिए।

रत्नावली नाटिका होने के नाते स्त्रीप्राया है। यहाँ स्त्रीप्राया से यह भी अभिप्राय है कि सब कामों में स्त्रियाँ बढ़कर हाथ मारती हैं, यहाँ तक कि पुलिस भी स्त्री ही है और विदूषक को पकड़ने के लिए काञ्चनमाला को नियुक्त किया जाता है। इसमें प्रेम प्रकट करने में भी नायिका ही प्रथम है। उसका प्रेम पर्याप्त प्ररूढ हो जाने पर नायक को ज्ञात होता है चित्र देख कर कि मेरी कोई प्रणयिनी है। प्रेम का व्यापार बढ़ाने में भी सुसंगता का सहारा लेना पड़ता है। यह उसी की योजना थी कि रात में वेष बदल कर सागरिका राजा से मिले।

पात्रों से झूठ बुलवाना चरित्र-चित्रण-कला को हीन कर देती है। यद्यपि प्रणय-पथ पर चलने और चलाने वालों को झूठ-सच का नियमन कड़ाई से लगता नहीं, किन्तु हर्ष जैसे महाकवि को उदयन जैसे महान् राजा से झूठ बुलवाना त्रुटिपूर्ण लगता है।[1]

चाहे जैसी भी स्थिति हो, किसी राजा को अपनी पत्नी के भी चरणों पर सापराध होने पर भी गिरवाना कुछ अनुचित सा लगता है।[2]

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना।

---

१. पात्रों से झूठ बुलवाने की पद्धति कोई नई नहीं है। भास का चारुदत्त भी समय पड़ने पर झूठ बोलता है। मेरी समझ में चारुदत्त झूठ बोले तो बोले, उदयन को झूठ नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि '**लोके हारि च वत्सराजचरितम्**' है। चारुदत्त को कौन पूछता है?

२. कालिदासीय पात्रों को भी ऐसी परिस्थितियों में पत्नी-प्रणमन की लत है।

कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे हर्त्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ॥

पर प्राचीन काल में इसे त्रुटि नहीं मानते थे । संस्कृत के अनेक काव्यों में नायक ऐसा करते हुए मिलते हैं।

हर्ष ने उदयन में दाक्षिण्य का भाव भी नहीं रहने दिया है । वह कहता है—

इत्थं नः सहजाभिजात्यजनिता सेवैव देव्याः परं ।
प्रेमाबन्धविवर्धिताधिकरसा प्रीतिस्तु या सा त्वयि ॥ ३·१८

रत्नावली में संस्कृत के अन्य कई रूपकों की भाँति विदूषक को वानर से मिलता-जुलता बताया गया है। सागरिका विदूषक को देख कर कहती है—

ज्ञायते पुनरपि स दुष्ट वानर आगच्छतीति ।

रत्नावली में वासवदत्ता का चरित्र एक साधारण नारी सा चित्रित किया गया है। भास ने स्वप्नवासवदत्त में उसे जिस उदात्त स्तर पर रखा है, उससे वह बहुत नीचे दिखाई पड़ती है । उसको यह तक भूल गया कि पद्मावती ने उसे अपनी सखी बनाकर उन्हीं परिस्थितियों में रखा, जिन परिस्थितियों में उसने सागरिका को चेटी बना कर रखा ।[1]

हर्ष ने इस नाटिका में सारिका को एक पात्र जैसा ही प्रस्तुत किया है। कोई पात्र छिपकर सुसंगता और सागरिका की बातें सुनकर राजा से सन्देश रूप में कहता अथवा सागरिका की कोई दूती राजा से सागरिका की पूर्वानुराग की अवस्था का वर्णन करती, उसे हर्ष ने सारिका को पात्र बना कर अतिशय सौविध्यपूर्वक प्रस्तुत किया है । इस प्रसङ्ग में वानर भी पात्रप्राय ही है, जो सारिका को मुक्त करता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि सारिका के पात्रवत् समावेश से जो रस-निर्झरिणी प्रवाहित की गई है, वह अन्यथा इतने शुभ्र रूप में नहीं सम्भव हो सकती थी ।

रङ्गमञ्च पर पात्रों के आने की पूर्वसूचना कतिपय स्थलों पर संवाद के माध्यम से दी गई है । ऐसा करना हर्ष की एक विशेषता ही मानी जा सकती है। दूसरे अङ्क में विदूषक ने कहा—**एषा खलु अपरा वासवदत्ता** । इसमें वासवदत्ता के आने की कोई बात नहीं थी, किन्तु इसको सुनते ही सभी चौकन्ने हो गये। उन्हें तत्काल ही ज्ञात हुआ कि हमने जो अर्थ समझा है वह व्यर्थ है, किन्तु विदूषक के उपर्युक्त वाक्य कहने के एक-दो ही मिनटों के भीतर ही वासवदत्ता आ ही गई । ऐसा ही प्रसङ्ग है तीसरे अङ्क में, जहाँ विदूषक कहता है—

भोः, एवं न्विदं यद्यकालवातालिर्भूत्वा नायाति देवी वासवदत्ता ।

इतना कहते ही वासवदत्ता आ ही गई ।

---

१ भास ने वासवदत्ता को पद्मावती के पास न्यास बना कर रक्खा और वैसे ही हर्ष ने सागरिका को वासवदत्ता के पास न्यास बनाकर रखा । इन स्थितियों में न्यास के प्रति व्यवहार में अत्यधिक अन्तर है ।

रस

रत्नावली में अङ्गी रस शृङ्गार है। इसका आरम्भ सागरिका के पूर्वराग से होता है और प्रणयात्मक प्रवृत्तियों के क्वचित् सबाधित होने पर भी अन्त में नायक-नायिका के परिणय में उनकी परिणति होती है। शृङ्गार के लिए आलम्बन-विभाव अतीव आकर्षक व्यक्तित्व का नायक है और वह दूसरा कामदेव ही लगता है तथा नायिका इतनी सुन्दरी है कि वासवदत्ता को आरम्भ में ही शंका हो चली थी कि उसका सौंदर्य नायक को आसक्त कर ही लेगा। स्त्रियों को ही नहीं, पुरुषों को भी वत्सेश्वर कामदेव ही प्रतीत होता था। यौगन्धरायण ने उसका वर्णन किया है—

विश्रान्तविग्रहकथः रतिमाञ्जनस्य
चित्ते वसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात्।
पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ॥ १·८

नायिका का वर्णन स्वयं नायक करता हैं।[1] यथा,

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥ २·६

नायिका जगत्त्रयललामभूता है—

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष-
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखे समं व्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥ २·१६

नायक के शब्दों में अनुभव है—

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ॥ २·१८

ऐसी नायिका से क्षणिक वियोग भी प्राचीन काल में नायकों को जला देने के लिए पर्याप्त था। उदयन ऐसी स्थिति में अपने हृदय से कहता है—

सन्तापो हृदय स्मरानलकृतः सम्प्रत्ययं सह्यतां
नास्त्येवोपशमोऽस्य तां प्रति पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि।
यन्मूढेन मया तदा कथमपि प्राप्तो गृहीत्वा चिरं
विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रचन्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ॥ ३·१

---

१. कवि ने नखशिख-वर्णन की दिशा में नायिका के आङ्गिक सौष्ठव का सूक्ष्म निदर्शन २·१३–१६ में किया है।

और नायिका है।

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम्।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥ ३·४

इस प्रकार आलम्बन-विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के पीछे पूरी नाटिका की वासन्तिक भूमिका है—

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो
भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलामृतः।
घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहु-
र्भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ॥ १·१७

और भी

मूले गण्डूषसेकासव इव वकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भरं नूपुराणां
झङ्कारस्यानुगीतैरनुरणनमिवारभ्यते भृङ्गसार्थैः ॥ १·१८

यह उद्दीपन विभाव है।

रत्नावली के समस्त वातावरण में शृङ्गार की धूम है। नायक-नायिका की कोरी कल्पना से भी ज्वलन्त शृङ्गार प्रस्तुत कर देने में हर्ष निपुण हैं। प्रतीक्षक नायक की शृङ्गारात्मक कल्पना पाठक को रसनिमग्न करती है। यथा,

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषं रसान्न पयोधरौ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥ ३·९

रसनिष्पत्ति की दिशा में भावों का सहसा उत्थान और पतन इस नाटिका में कुशलतापूर्वक पुनः पुनः दिखाया गया है। शृङ्गारोल्लास की रमणीयता से नायक और नायिका को गिरा कर अपने को सापराध समझने वाले उन्हें क्षण भर में पुनः शृङ्गार-शिखर पर पहुंचा कर पुनरपि नीचे पटक देने का काम जिस नैपुण्य से हर्ष ने किया है, उसकी समता भावसागर में अन्यत्र नहीं मिलती। संविधान इस प्रकार है—घोरान्धकार है। राजा सागरिका के अभिसार की प्रतीक्षा कर रहा है। वह वासवदत्ता के वेश में राजा से मिलने के लिए आने वाली है। पर आ जाती है वासवदत्ता, जिसे सागरिका समझ कर राजा कहते हैं—

किं पद्मस्य रुचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युद्गतो
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे ॥ ३·१३

यह शृङ्गारात्मक भाव का उच्चतम शिखर-विन्दु था। उसी क्षण वासवदत्ता ने कहा——**सत्यमेवाहं सागरिका।** इसी एक क्षण में शृङ्गार का निम्नतम विन्दु पहुँच गया और राजा को कहना पड़ा——**प्रिये वासवदत्ते प्रसीद, प्रसीद।** खेल यहीं समाप्त नहीं होता। वासवदत्ता तो चली जाती है। उधर फाँसी लगाती हुई सागरिका कुछ ही मिनटों के भीतर मिलती है। उससे मिलते ही शृङ्गार पुनः उच्चतम विन्दु पर है और राजा कहता है——

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे ।
क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ॥ ३·१७

सागरिका और राजा के लिए यह कण्ठपाश से भुजपाश का परिवर्तन केवल दो-चार मिनट रहा कि फिर वासवदत्ता आ धमकी। उसने निर्णय लिया था——

अलक्षितैव पृष्ठतो गत्वा कण्ठे गृहीत्वा प्रसादयिष्यामि ।

पर निकट आने पर उसे ओट से सुनने को मिला राजा का सागरिका के लिए मनुहार——

श्वासोत्कम्पिनि कम्पितं कुचयुगे मौने प्रियं भाषितं
वक्त्रेऽस्याः कुटिलीकृतभ्रुणि तथा यातं मया पादयोः ।
इत्थं नः सहजाभिजात्यजनिता सेवैव देव्याः परं
प्रेमाबन्धविवर्धिताधिकरसा प्रीतिस्तु या सा त्वयि ॥ ३·१८

यह स्थिति कुछ क्षणों तक ही रही। वासवदत्ता का, राजा का और सागरिका का मनोरथ भंग हुआ, एक क्षण में ही जब वासवदत्ता सहसा वहाँ क्रोध मुद्रा में आ उपस्थित हुई, तब तो वन्दी होना पड़ा सागरिका को और विदूषक को। शृङ्गार के शिखर से गिर कर राजा समस्याओं की डाल पर लटक गया। यथा,

किं देव्याः कृतदीर्घरोषमुषितस्निग्धस्मितं तन्मुखं
त्रस्तां सागरिकां सुसंभृतरुषा किं तर्ज्यमानां तया ।
बद्ध्वा नीतमितो वसन्तकमहं किं चिन्तयामीत्यहो
सर्वाकारकृतव्यथः क्षणमपि प्राप्नोमि नो निर्वृतिम् ॥ ३·१९

संस्कृत के नाट्यसाहित्य में भावों के उत्थान-पतन की इतनी उथल-पुथल अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती। रत्नावली की उत्कृष्टता में उस भावात्मक संविधान से चार चाँद लग गये हैं।

रसनिर्भरता के लिए संवाद-चर्चित व्यक्ति का ओट से अपने विषय में बातें सुनना और रङ्गमञ्च पर उसकी भावात्मक और वाचाव्यक्त प्रतिक्रियायें दर्शक के द्वारा देखा जाना एक अनोखा संविधान है, जिसके द्वारा अन्यथा असिद्ध भावानुभूति सम्भव होती है। ऊपर उद्धृत पद्य 'श्वासोत्कम्पिनि' इत्यादि को वासवदत्ता ओट से सुन रही है। दर्शक रंगमंच पर एक ओर राजा और सागरिका को प्रणयपाश में आबद्ध देखता है और दूसरी ओर देखता है वासवदत्ता की प्रतिक्रियायें। इस प्रकार का ओट से सुनने का संविधान अनेक स्थलों पर रत्नावली में भावोत्कर्ष के लिए कौशलपूर्वक सन्निविष्ट है।

रत्नावली में रस-निर्भरता के लिए गीत-तत्त्व का भी समावेश किया गया है। प्रथम अङ्क में मदनिका और चूतलतिका द्विपदी-खण्ड गाती हुई मदनलीला का अभिनय करती हैं। विदूषक का अनेकशः नृत्य भी रसनिर्भरता के लिए है। वह चेटियों के बीच नाचता है। अन्यत्र नाचते हुए चित्रफलक को अपने बगल से गिरा कर मानो उत्पात खड़ा करता है, चतुर्थ अंक में राजा की कोशल-विजय से प्रसन्न होकर नाचता है और अन्त में नाचता है, जब राजा सागरिका का पाणिग्रहण करता है।

रत्नावली में वानर के उत्पात और अग्निकाण्ड वाले दृश्य में भयानक तथा इन्द्रजाल वाले दृश्य में अद्भुत रस अङ्ग रूप से हैं।

वर्णन

रत्नावली में वर्णनों की विशेषता है। वासन्तिक क्रीडा का अनुपम वर्णन अनेकानेक विवरणों के साथ जैसा इसमें मिलता है, वैसा अन्य किसी रूपक में नहीं ही है। प्रथम अंक में आरम्भिक सारा दृश्य शृङ्गारात्मक कैशिकी-वृत्ति की भूमिका-रूप में उद्दीपन-विभाव है और साथ ही आलम्बन-विभाव है। ये वृक्ष स्वयं शृङ्गार के प्रमत्त नायक हैं। यथा,

> उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो
> भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः।
> घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहु-
> र्भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः॥
> मूले गण्डूषसेकासव इव वकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या
> मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति।
> आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भरं नूपुराणां
> झङ्कारस्यानुगीतैरनुरणनमिवारभ्यते भृङ्गसार्थैः॥ १·१८

हर्ष उस कला में पारङ्गत हैं, जिसके द्वारा वर्णन को आख्यान से समञ्जसित किया गया है। इस प्रकार वर्णन की प्रासङ्गिकता निष्पन्न होती है। यथा,

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ।। १·२५

कतिपय वर्णन प्रत्यक्षतः साभिप्राय प्रतीत होते हैं। तीसरे अङ्क में सागरिका को अभिसार करना है। रात्रि में घोर अन्धकार होने पर भी इस अङ्क की भ्रान्तियाँ सुघटित मानी जा सकती हैं। यह वह अन्धकार है, जिसमें विदूषक और राजा वासवदत्ता को सन्निकट होने पर नहीं पहचानते कि यह सागरिका नहीं है, अपितु वासवदत्ता है। इस अन्धकार का वर्णन है—

पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं
क्रमात् क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति ।
उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं
तमःसंघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ।। ३·७

वर्णन कतिपय स्थलों पर वक्ता के व्यक्तित्व और मानसिक प्रवृत्तियों का व्यञ्जक होने के कारण नाटकीयता की दृष्टि से सार्थक है। यथा,

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ।। ३·६

संस्कृत के अन्य अनेक पूर्ववर्ती रूपकों की भाँति रत्नावली में भी प्रथम अङ्क की समाप्ति की पूर्व सूचना समयान्तर की वर्णना द्वारा दी गई है। समय बदलने पर प्रकृत कार्य को समाप्त हो जाना चाहिए और साम्प्रत समय के अनुरूप नये कार्य को अपनाने के लिए अङ्क बदलना चाहिए। प्रथम अङ्क का अन्त सन्ध्या वर्णन से हुआ है।

संवाद-कला

रत्नावली के संवाद प्रायः स्वाभाविक हैं। वाक्यों में पदों की संख्या प्रायशः बहुत बड़ी नहीं कही जा सकती। पाँच पदों से कम के वाक्य ही अधिक संख्या में हैं। गद्यात्मक संवादों में सरल और सुपरिचित शब्दों का प्रयोग किया गया है। अनेक स्थलों पर बातों के उत्तर सटीक और प्रभविष्णु विधि से दिये गये हैं। यथा, तृतीय अङ्क में राजा कहता है—**सखे, इयमनभ्रा वृष्टिः** । इसका उत्तर विदूषक देता है—**यदि अकालवातालिर्भूत्वा नायाति देवी** । कितना सटीक और वाग्वैदग्ध्य सूचक उत्तर है!

संवादों में संबोधन-सम्बन्धी समुदाचार की अतिशयता है। इस प्रकार के कुछ संबोधन हैं संस्कृत में—**आर्य, आर्ये, सखे, वयस्य, देव, देवि, आर्यपुत्र, आयुष्मन्,**

प्राकृत में—**भोदि, हञ्जे, सहि, भट्टा, भट्टिणि, अज्ज, वअस्स, हला, पिअसहि, अज्जउत्तो,**

रत्नावली के एक संवाद में पहेली मिलती है, जिसका पारिभाषिक नाम नालिका है। सुसंगता ने दूसरे अङ्क में कहा है—**सखि यस्य कृते त्वमागता स इहैव तिष्ठति।** सागरिका ने पूछा—**कस्य कृते ऽहमागता।** सुसंगता ने उत्तर दिया—**ननु खलु चित्रफलकस्य।** इसमें सुसंगता ने अपने उत्तर से यह बात छिपा दी है कि सागरिका राजा उदयन के लिए आई थी। यह परिहास प्रतिमुख सन्धि का नर्म नामक अङ्ग है।

प्रथम अङ्क में वाक्केली का उदाहरण मिलता है। इसमें उक्ति-प्रत्युक्ति की विशेषता है।[1] यथा,

विदूषक—भोदि मअणिए, मं पि चच्चरिं सिक्खवेहि।

मदनिका—हदास, न क्खु एसा चच्चरी। दुवदिखण्डअंक्खु एदं।

विदूषक—भोदि, किं एदिणा खण्डेण मोदआ करीअन्ति।

मदनिका—णहि, पढीअदि क्खु एदं।

संवाद में विदूषक की बातों में कतिपय स्थलों पर थोड़ी खींचतान करने पर एक ऐसा अर्थ निकलता है कि उसकी सम्भावना करके राजा को घबड़ाना पड़ता है। जैसी स्थिति में जैसी बात विदूषक कहता है, उससे संशयालु राजा का अपने लिए विपत्ति-सूचक अर्थ निकालना स्वाभाविक है। चतुर्थ अङ्क में जब राजा सागरिका का समाचार पूछते हैं तो विदूषक कहता है—**अप्रियं ते निवेदयितुं न पारयामि।** इसको सुनकर राजा आशङ्कित होकर कहता है—

व्यक्तमेवोत्सृष्टं जीवितं तया।

यह कह कर वह मूर्छित हो जाता है। थोड़ी देर में वह सचेत होकर कहता है—

प्राणाः परित्यजत काममदक्षिणं मां
रे दक्षिणा भवत मद्वचनं कुरुध्वम्।
शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिताः स्थ नूनं
याता सुदूरमधुना गजगामिनी सा॥ ४·३

उपर्युक्त संवाद-विधान का एक महत्त्व यही है कि इसके विना 'प्राणाः परित्यजत' जैसी रसनिर्भर उक्ति सम्भव न हो पाती।

शैली

रत्नावली में कतिपय स्थलों पर आधुनिकतम नई धारा से टक्कर लेने वाली कवितायें मिलती हैं। यथा,

---

१. विनिवृत्त्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽथवा।

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ॥ १·२५

रत्नावली में गीति-तत्त्व की विशेषता है। प्राकृत में अनेक रमणीय गीत इसमें निबद्ध हैं। गीतितत्त्व के संवर्धन के लिए अनेक स्थलों पर अनुप्रासित ध्वनियों का सरस राशीकरण मिलता है। यथा,

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृति
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥ १·६

इसमें त और म की ध्वनियों के प्रत्यावर्तन से गीतात्मकता प्रत्यक्ष है।

श्लेष के द्वारा उपमा की भूमिका का विशेष नीचे लिखे पद्य में स्पष्ट है—

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥ २·६

श्लेष के द्वारा तुल्य विशेषण की योजना करके नीचे के श्लोक में पताकास्थानक की निर्मिति की गई है—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुरुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन् कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥

कवि ने कतिपय स्थलों पर व्यक्तित्व, वातावरण और परिस्थितियों के अनुरूप उपमानों का संयोजन किया है। मकरन्दोद्यान में अशोक वृक्ष के मूल में पूजा करती हुई वासवदत्ता का उपमान 'बालप्रवालविटपिप्रभवा लता' इस दृष्टि से नीचे लिखे पद्य में अनुसन्धेय है—

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता ।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती
बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥ १·२०

लोकोक्तियों में प्रायशः गम्भीर व्यञ्जना समीहित है।[1] ध्वनि की अर्थानुकारिता कतिपय स्थलों पर उल्लेखनीय है। नर्तन की ध्वनि अधोलिखित पद्य में शृङ्गारित भाव का उन्नयन करती है—

१. द्वितीय अंक में 'क्षेमेणास्माकमतिक्रान्ताकालवातालिः' तृतीय अङ्क में 'इयमनभ्रा वृष्टिः', तथा 'तत्कस्मादत्रारण्यरुदितं करोषि' इसके उदाहरण हैं।

धारायन्त्रविमुक्तसंततपयः पूरप्लुते सर्वतः
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे ।
उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ।। १·११

लोकोक्तियों और अन्योक्तियों के द्वारा अप्रस्तुतप्रशंसा का विनिवेश किया गया है । यथा द्वितीय अङ्क में सुसंगता सागरिका के विषय में कहती है—

न कमलाकरमुज्झित्वा राजहंसी अन्यस्मिन्नभिरमते ।

हर्ष की कल्पनाओं की परिधि से बाहर त्रिलोक में सम्भवतः कुछ भी नहीं है। नीचे के पद्य में उसने विधाता के सम्बन्ध में एक कहानी ही गढ़ ली है—

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ।। २·१०

अर्थात् सागरिका के मुखरूपी चन्द्र का निर्माण करने से उनके आसन का कमल संकुचित हुआ तो उनका उस पर बैठना भी कठिन हो गया । इसी प्रकार सूर्य के विषय में हर्ष ने कल्पनाद्वार से उत्प्रेक्षा की है—

अध्वानं नैक चक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्ति दीर्घं विलंघ्य
प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः ।
सन्ध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपंक्ति-
व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृतिनयतीवैष दिक्चक्रमर्कः ।। ३·५

अनेक पदों में व्यञ्जना के द्वारा इस प्रकार मानवीकरण किया गया है। कवि ने अपनी प्रतिभा से अनेकत्र प्रकृति में मानवोचित व्यापार का निदर्शन किया है ।

रत्नावली में नवमालिका सागरिका के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त है और तत्सम्बन्धी सारे वाक्य सागरिका के विषय में व्यञ्जना से अर्थ देते हैं।

गद्यांशों में कतिपय स्थलों पर बड़े-बड़े समस्त पदों का सम्भार है। ऐसा होना रूपकोचित नहीं है, किन्तु ऐसे गद्यांशों में काव्य का स्तर असाधारण रूप से उच्च है । यथा प्रथम अङ्क में—

एतत्खल तन्मलयमारुतान्दोलनप्रफुल्लत्सहकारमञ्जरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितानं मत्तमधुकर-मुक्तझङ्कार-मिलितमधुरकोकिलारावसंगीतश्रुतिसुखं तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यानं लक्ष्यते ।।

अनुप्रासित ध्वनियों से इस गद्यांश में संगीत मुखरित हो उठा है।

हर्ष का सबसे प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जो इस नाटिका के २४ पद्यों में प्रयुक्त हुआ है । स्रग्धरा में १० पद्य हैं । इन छन्दों में क्रमशः १९ और २१ अक्षर

होते हैं, जिनके लम्बे पद संभालने की निपुणता से प्रतीत होता है कि हर्ष ने रत्नावली की रचना अपनी काव्यप्रौढि के युग में की थी। इसमें अनुष्टुप्, आर्या और वसन्ततिलका में प्रत्येक में ६ पद्य हैं तथा शिखरिणी में ६, मालिनी में ३, पृथ्वी में २ तथा उपजाति, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, शालिनी तथा हरिणी में से प्रत्येक में १ पद्य है।

शास्त्रीय योजना

रत्नावली की रचना नाट्यशास्त्र के विधानों के अनुसार विशेष रूप से हुई है। यही कारण है कि शास्त्राचार्यों ने अपनी परिभाषाओं के लिए उदाहरण चुनते समय रत्नावली को अपने दृष्टिपथ में सर्वप्रथम रखा है।

रूपक में पाँच प्रकृतियाँ होती हैं--बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। इनमें से पताका और प्रकरी तो रत्नावली में नहीं हैं। बीज है प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण का वक्तव्य--**कः सन्देहः** से लेकर **प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ** तक

बिन्दु है--प्रथमाङ्क में सागरिका का कहना है--**कथमेव स उदयननरेन्द्रो यस्मा अहं तातेन दत्ता।**

कार्य है उदयन का रत्नावली की पाणिग्रहण-विधि से प्राप्ति।

कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं--**आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम**। ये रत्नावली में निम्न विधि से मिलती हैं--

आरम्भ

प्रथम अङ्क में यौगन्धरायण कहता है--

प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे।

यत्न

द्वितीय अङ्क में सागरिका कहती है--

'तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपायः' इति यथा तथा आलिख्य यथा समीहितं करिष्यामि।

प्राप्त्याशा

तृतीय अङ्क में विदूषक कहता है--**एवं यद्यकालवातालिरिवागम्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता।**

नियताप्ति--

तृतीय अङ्क में विदूषक कहता है--**'सागरिका दुष्करं जीविष्यति'** से लेकर **किं नोपायं चिन्तयसि।** राजा उत्तर देता है--**वयस्य देवीप्रसादनं मुक्तवा नान्यमत्रोपायं पश्यामि।**

फलागम--

नायक के द्वारा रत्नावली और चक्रवर्तित्व की प्राप्ति।

उपर्युक्त कार्यावस्थाओं का क्रमशः सन्निवेश करके मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, और उपसंहार नामक पाँच सन्धियाँ रत्नावली में अधोविध मिलती हैं--

मुखसन्धि

रत्नावली में '**द्वीपादन्यस्मादपि**' पद्य से लेकर प्रथम अङ्क के अन्त तक है, जहाँ सागरिका उदयन को अपना भावी पति पहचान कर रंगमंच से चली जाती है। इस सन्धि के उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, परिभावना, उद्भेद, और करण नामक अङ्ग इस नाटिका में मिलते हैं।

प्रतिमुख सन्धि

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क में प्रतिमुख सन्धि है, जिसमें सागरिका का उदयन के प्रति प्रेम प्रतिभासित होता है। इस सन्धि के विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, निरोध, पर्युपासन, पुष्प, उपन्यास और वज्र नामक अङ्ग इस नाटिका में मिलते हैं।

गर्भसन्धि

इस नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भ सन्धि है, जिसमें सागरिका से मिलन में वासवदत्ता वाधा उपस्थित करती है, किन्तु फाँसी लगाती हुई सागरिका से नायक मिलता है। फिर वासवदत्ता के आने पर भगदड़ मच जाती है। अन्त में नायिका बन्दी बना दी जाती है। इस सन्धि के अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, अधिबल, तोटक, उद्वेग, सम्भ्रम और आक्षेप नामक सभी अङ्ग इस नाटिका में मिलते हैं।

अवमर्श सन्धि

इस नाटिका के चतुर्थ अङ्क के आरम्भ से अग्नि बुझने तक अवमर्श सन्धि है। इसमें अपवाद, विद्रव, शक्ति, प्रसङ्ग, छलन, व्यवसाय, विचलन और आदान नामक सन्ध्यङ्ग मिलते हैं।

निर्वहण सन्धि

चतुर्थ अङ्क में अग्नि के बुझने के पश्चात् नाटिका के अन्त तक निर्वहण सन्धि चलती है। इसमें सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषण, पूर्वभाव और काव्यसंहार नामक सन्ध्यङ्ग मिलते हैं।

रत्नावली में दो-चार ही सन्ध्यङ्ग नहीं मिलते। इतने सन्ध्यङ्ग किसी रूपक में बिरले ही मिलते हैं।

अर्थोपक्षेपक

रत्नावली में सूच्य वस्तु का प्रतिपादन करने के लिए विष्कम्भक का प्रथम अङ्क के आदि में और शेष तीन अङ्कों के आरम्भ में प्रवेशक का विनिवेश किया गया है।

साम्प्रदायिक आलोचना

नवीं शती के दामोदर गुप्त ने रत्नावली की विशेषताओं का आकलन किया है---

आश्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्र-सुवर्ण-योजितं सुतराम् ।
निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम् ।।

राजशेखर ने रत्नावली की प्रशंसा की है—

तस्य रत्नावली नूनं रत्नमालेव राजते ।
दशरूपककामिन्याः वक्षस्यत्यन्तशोभना ।।

रत्नावली अपनी कोटि की अनुपम रचना होने के कारण परवर्ती नाटिकाओं के लिए उपजीव्य बन कर रही । राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका और कर्पूरमंजरी, बिल्हण की कर्णसुन्दरी और मथुरानाथ की वृषभानुजा नाटिका रत्नावली के आदर्श पर विकसित हैं ।

डा० आगडन ने रत्नावली की उपजीव्यता के विषय में लिखा है— In the eyes of all later Hindu writers, the Ratnāvalī because of its excellence was accorded a place of honour and its influence was marked. कीथ ने भी रत्नावली को परवर्ती नाटिकाओं का आदर्श माना है ।

प्रियदर्शिका

हर्ष की प्रियदर्शिका में उसके अभिनवतत्त्वान्वेष का प्रथम परिचय मिलता है । इस नाटिका की कथा मूलतः इतनी ही है कि उदयन आरण्यका (प्रियदर्शिका) को देखकर मोहित हो गया और इनके प्रणय-पथ में वासवदत्ता ने बाधायें उपस्थित कीं । अन्त में वासवदत्ता को अपनी प्रसन्नता से ही उन दोनों का विवाह कर देना पड़ा । इस प्रणय-पथ में दाव-पेच की योजना हर्ष की प्रतिभा का प्रथम पुष्प है ।

कथावस्तु

महाराज उदयन की पत्नी वासवदत्ता थी । राजा ने आरण्यका नामक एक राजकन्या उसकी देखरेख में दे दी थी । वह कन्या विजयसेन नामक उदयन के सेनानायक को मिली थी, जब उसने विन्ध्यकेतु पर चढ़ाई करके उसे मार डाला था । वास्तव में वह अंगदेश के राजा दृढवर्मा की कन्या थी । एक बार दृढवर्मा पर कलिङ्गराज ने आक्रमण करके उसे बन्दी बनाया । उस समय दृढवर्मा के कंचुकी ने नायिका को विन्ध्यकेतु की शरण में रख छोड़ा था । कंचुकी के सुझाव से दृढवर्मा उसका विवाह उदयन के साथ कर देना चाहता था और कलिंगराज उस कन्या को अपने लिए चाहता था ।

समय बीता । वह कन्या विवाह के योग्य हुई । एक दिन राजा और विदूषक धारागृहोद्यान में जा पहुँचे । वहाँ से निकट ही आरण्यका महारानी की पूजा के लिए किसी पुष्करिणी से कमल के फूल तोड़ रही थी और महारानी की चेटी इन्दीवरिका थोड़ी दूर पर शेफालिका-पुष्प चयन कर रही थी । राजा और विदूषक ने आरण्यका को

देखा और उसके सौन्दर्य से प्रभावित हुए। उस समय कुछ भौंरें उसके मुँह पर मँडराने लगे। उसने अपना मुँह उत्तरीय से ढँककर इन्दीवरिका को अपनी रक्षा के लिए बुलाया, पर वह कुछ दूर होने के कारण सुन न सकी। राजा और विदूषक ने उसकी पुकार सुनी। राजा को विदूषक ने सुझाव दिया कि चुपचाप आप उसके पास जा पहुँचें। वह भी समझेगी कि इन्दीवरिका आ गई है और आपको पकड़ लेगी। राजा ने ऐसा ही किया। आरण्यका ने मुँह ढके ही ढके राजा को पकड़ लिया। उसने उत्तरीय हटाकर देखा कि मैंने राजा उदयन का अवलम्बन लिया है। वह राजा से दूर हट गई और उसने पुनः इन्दीवरिका को पुकारा। विदूषक ने कहा कि जब राजा स्वयं रक्षक हैं तो चेटी को क्यों बुलाती हो। आरण्यका भी राजा के सौन्दर्य से विमुग्ध थी। तभी उधर से आती हुई इन्दीवरिका दिखाई पड़ी। राजा और विदूषक भाग खड़े हुए। इन्दीवरिका और आरण्यका भी धीरे-धीरे चलती बनीं।

राजा को आरण्यका से मिलाने का उपाय रचा गया, जो इस प्रकार था—वासवदत्ता की उपदेशिका सांकृत्यायनी नामक परिव्राजिका थी। उसने वासवदत्ता के विवाह-प्रकरण पर एक नाटक लिखा था। कौमुदी-महोत्सव के उपलक्ष्य में उसका अभिनय चल रहा था। प्रथम दिवस के अभिनय में आरण्यका का अभिनय कुछ ठीक नहीं था। वह वासवदत्ता की भूमिका निभा रही थी। मनोरमा नामक उसकी सखी उदयन की भूमिका में थी। मनोरमा उससे मिल कर उस दिन के अभिनय को अधिक सफल बनाना चाहती थी। उसने आरण्यका को कदलीगृह में देखा, जहाँ वह अपने आप कुछ कह रही थी कि मैं किस प्रकार राजा के प्रेम में सन्तप्त हूँ। मनोरमा छिपकर उसकी सब बातें सुनती रही कि राजा से उसका मिलन हो चुका है। मनोरमा ने निश्चय किया कि इसको राजा से पुनः मिलाऊँगी। उसने आरण्यका से कहा कि राजा स्वयं तुम्हारे लिए प्रयत्न करेंगे—

कमलनिबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्त्वामनास्वाद्य स्थितिं करोति।

वहीं विदूषक आ गया। वह अपने आप से कह रहा था कि राजा आरण्यका से मिलना चाहते हैं। मनोरमा और आरण्यका ने छिपकर उसकी बातें सुनीं कि राजा ने मुझे भेजा है कि जाकर आरण्यका से मिलो। यदि वह नहीं मिलती है तो उससे स्पृष्ट नलिनी-पत्रों को ले आओ। फिर तो मनोरमा पकड़कर विदूषक को आरण्यका के पास ले आई। उसने विदूषक को अपनी योजना बताई, जिससे आरण्यका और राजा का मिलन हो। विदूषक ने कहा कि नाटक के अभिनय के लिए जब तुम लोग नेपथ्य ग्रहण करोगी, उसी समय राजा को वहाँ लाऊँगा।

मनोरमा आरण्यका को ले कर प्रेक्षागृह में गई। रंगमंच पर वासवदत्ता और सांकृत्यायनी एक ओर दर्शक बनकर बैठे। मनोरमा और आरण्यका दोनों ने

वासवदत्ता का अभिनन्दन किया और उनके निर्देशानुसार नेपथ्य की ओर चली गईं। वासवदत्ता ने आरण्यका को अपने आभरण दिये और मनोरमा को उन आभरणों को दिलवाया, जो उसके पिता ने विवाह के अवसर पर राजा उदयन को दिये थे। गर्भनाटक आरम्भ हुआ।

रंगमंच पर आरण्यका वासवदत्ता का वेश धारण करके आ गई। काञ्चनमाला के हाथ में उसके बजाने के लिए वीणा थी। मनोरमा भी उदयन के वेश में आ गई। उससे राजा ने आकर पूछा कि क्या तुम्हारी भूमिका में मैं अभिनय करूँ। मनोरमा ने कहा कि हाँ, शीघ्र ही इन आभरणों से आप अपने को मण्डित करें। राजा ने ऐसा ही किया।

राजा रंगमंच पर मनोरमा के स्थान पर आ गया। उसे वासवदत्ता ने समझ लिया कि उदयन है, किन्तु सांकृत्यायनी ने कहा कि यह नाटक है। वासवदत्ता ने कहा कि मुझे वीणा सिखाते समय उदयन के पैर निगडित थे। उसने अपनी नीलोत्पलमाला पैरों को निगडित करने के लिए भेज दी। आरण्यका ने गाया और वीणा बजाई। राजा ने कहा--फिर बजाओ। आरण्यका ने कहा अब थक गई हूँ। कांचनमाला ने कहा कि आरण्यका थक गई है। इसकी अँगुलियाँ काँप रही हैं। राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया। वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी से कहा कि यह सब झूठ है। मैं नहीं देख सकती। वह वहाँ से राजा को ढूँढती हुई वसन्तक के पास पहुँची तो उसे ज्ञात हुआ कि रंगमंच पर मनोरमा नहीं, राजा हैं। वासवदत्ता को यह समझते देर न लगी कि यह अपराध विदूषक और आरण्यका का है। दोनों बन्दी बनाये गये। मनोरमा और इन्दीवरिका के द्वारा राजा ने क्षमा माँगी, पर वासवदत्ता इतने शीघ्र प्रसन्न होने वाली नहीं थी।

वन्दिनी बनी हुई आरण्यका मरने को उद्यत थी। उसे मनोरमा ने ऐसा करने से रोका। उसने वसन्तक के द्वारा यह समाचार राजा को दे दिया।

वासवदत्ता की मौसी का विवाह अङ्गदेश के राजा से हुआ था। उसके पति दृढवर्मा को कलिङ्गराज ने बन्दी बना लिया था। वासवदत्ता की माता अङ्गारवती ने उसके पास पत्र दृढवर्मा के कंचुकी से भेजा कि अपने समर्थ पति से कह कर अपने मौसा को बन्धन-विमुक्त क्यों नहीं कराती हो? वासवदत्ता सांकृत्यायनी के साथ इस समस्या पर विचार कर रही थी, जब वहाँ राजा और विदूषक आये। वे दोनों आरण्यका की मुक्ति का उपाय सोच रहे थे। इसके लिए राजा वासवदत्ता को दुःखी देखकर उसकी मनुहार करने लगे। उसके पैर पर 'प्रसीद प्रसीद' कहते हुए गिर पड़े। सांकृत्यायनी ने पत्र का वृत्त बताया। राजा ने कहा कि इस विषय में मैं सचेष्ट हूँ। विजयसेन ने कलिङ्गराज पर आक्रमण किया है। वह दुर्ग के भीतर से युद्ध कर रहा है और शीघ्र मारा जायेगा। उसी समय विजयसेन कलिङ्ग-प्रयाण से लौटकर आ गया। उसने बताया कि कलिङ्गराज

मारा गया । दृढवर्मा के कंचुकी ने कहा कि अब मेरे स्वामी पुनः अंगराज हैं । वासव दत्ता प्रसन्न थी । विदूषक ने कहा कि इस शुभ अवसर पर सभी बन्दियों को विमुक्त करना चाहिए । सांकृत्यायनी आरण्यका को मुक्त करने के लिए चल पड़ीं ।

इधर कंचुकी ने महाराज दृढवर्मा का सन्देश बताया कि मैं अपनी कन्या प्रियदर्शिका का विवाह आपसे करना चाहता था, जो उसके मर जाने से न हो सका । मैं स्वयं उसे लेकर अंग देश से वत्सराज के पास आ रहा था । मार्ग में उसे विन्ध्यकेतु के पास न्यास रूप में मैंने रख दिया । लौट कर आया तो वहाँ कुछ भी नहीं था ।

इस बीच मनोरमा ने आकर बताया कि आरण्यका ने विष खा लिया है । वह मरणासन्न है । उसे कंचुकी ने पहचाना कि यह प्रियदर्शिका है । वासवदत्ता ने जाना कि यह मेरी भगिनी है । राजा विष के प्रभाव को दूर करने की विद्या जानता था । उसने उसे स्वस्थ कर दिया । वासवदत्ता ने उसका हाथ उदयन को पकड़ा दिया ।

प्रियदर्शिका नाटिका की कथावस्तु यद्यपि मूलतः रत्नावली और मालविकाग्निमित्र के समान है, तथापि इसमें कथावस्तु के विकास के लिए कुछ नये तत्त्वों का समावेश है । यथा,

(१) नायिका पुष्पचयन करती हुई भौरों के डर से अनजाने नायक का आलम्बन लेती है ।

(२) नायक का नायिका से पुनर्मिलन गर्भाङ्क नाटक के आयोजन द्वारा किया गया । इसमें राजा मनोरमा के स्थान पर पात्र बना था ।

(३) वासवदत्ता को उपकृत करके नायक उसके द्वारा वन्दिनी नायिका को छुड़वाता है ।

(४) वासवदत्ता के पास उसकी माँ का पत्र आता है ।

(५) राजा के द्वारा आरण्यका का विष दूर किया जाता है ।

उपर्युक्त अभिनव तत्त्वों में से गर्भाङ्क की योजना हर्ष की संस्कृत-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण देन है, जिसके बल पर प्रियदर्शिका अमर रहेगी । परवर्ती युग में उत्तररामचरित में भवभूति ने इसी के आदर्श पर रामकथा को गर्भाङ्कित किया था । इन दोनों के पूर्व भास के चारुदत्त में चतुर्थ अङ्क के अन्तिम भाग में अमृताङ्क नाटक का का उल्लेख है । ऐसा लगता है कि भास इस प्रकार की योजना से परिचित थे ।

चतुर्थ अङ्क में आरण्यका का विष खाकर मरणासन्न होना इस नाटिका में सर्वथा अनपेक्षित है । यह कथांश उस योजना के अन्तर्गत है, जिसमें नायिका को विपत्ति में डालकर उसके प्रति सबकी सहानुभूति उत्पन्न की जाती है । कालिदास ने नायिकाओं

को इस प्रकार की विपत्ति में डाला है।[1] हर्ष ने इस योजना के अनुसार थोड़ा अधिक सम्भ्रमोत्फुल्ल औत्सुक्य उत्पन्न करने के लिए नायिका का प्राण संशय में डालने का एक अभिनव उपक्रम प्रियदर्शिका और रत्नावली में अपनाया है। नायिका का प्राण-संशय विष लेने से प्रियदर्शिका में और आग लगने से रत्नावली में उत्पन्न होता है।

प्रियदर्शिका का कथा-संविधान विशेष कौशलपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अङ्क में तदनुसार रंगमंच पर तीन वर्गों में पात्र तीन स्थानों पर कार्य करते हुए दिखाये गये हैं। यथा,

(१) राजा और विदूषक—एक छोर पर गुल्मान्तरित होकर आरण्यका को देख रहे हैं, उसकी बातें सुन रहे हैं और स्वयं उसके विषय में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हैं।

(२) आरण्यका पुष्पावचय करती हुई भौरों से बाधित हो रही है। और इन्दीवरिका को बुला रही है। वह रंगमंच के बीच में है।

और (३) रंगमंच के दूसरे छोर पर कुछ दूर पर इन्दीवरिका शेफालिका-पुष्प चयन कर रही है। वह आरण्यका की पुकार सुन पाती है, किन्तु उसे देख नहीं पाती।

इन तीनों वर्गों को प्रेक्षागृह के दर्शक अलग-अलग अपने कार्य में व्यापृत देखते हैं।

मनोरमा छिपकर आरण्यका की सब बातें सुनती है और अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करती है। इस प्रकार की शृंगारित बातें अन्तरित होकर ही सुनी जा सकती हैं।

जहाँ अन्य कवियों ने नायक-नायिका को प्रथम मिलने के अवसर पर केवल आसपास लाकर प्रणयानुभावपूर्वक उनसे अधिक से अधिक बातचीत करा दी है, वहाँ कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में और हर्ष ने रत्नावली और प्रियदर्शिका में नायक और नायिका का परस्पर आंगिक स्पर्श दिखाया है। शृंगारित भूमि पर यह अभिनय नितान्त सरस होता है।

पात्रों का मिथ्यावाद कालिदास के अनुकरण पर अनेक स्थलों पर प्रियदर्शिका में भी मिलता है। तृतीय अङ्क में मनोरमा ने सारा दोष विदूषक पर मढ़ दिया कि इसने मेरे अलंकार ले कर मुझे भीतर नहीं आने दिया। यह सरासर झूठ था।

भावी घटनाओं की सूचना स्थान-स्थान पर दी गई है। द्वितीय अङ्क में राजा विदूषक से कहता है—'**वयस्य धन्यः खल्वसौ य एतदङ्गस्पर्शसुखभाजनं भविष्यति।**' इससे कथा की प्रवृत्ति की व्यञ्जना होती है।

---

१. शकुन्तला को शाप के कारण पति का तिरस्कार और वियोग सहना पड़ा। मालविका बन्दिनी बनी और उर्वशी लता हो गई। शूद्रक ने वसन्तसेना का गला घोंटवाया है।

संस्कृत के रूपकों में यद्यपि रंगमंच पर युद्ध का अभिनय नहीं किया जाता फिर भी युद्ध का वर्णन अर्थोपक्षेपकों के द्वारा और अन्यथा भी सन्निवेशित किया गया है।

पात्र-परिशीलन

प्रियदर्शिका का नायक उदयन वत्सराज है। यह धीरललित कोटि का नायक है, जैसा नाटिका में होना चाहिए। वह जब वासवदत्ता के पैर पर गिर कर क्षमाप्रार्थी होता है तो मानो अपने राजत्व और पुरुषत्व दोनों को एकपदे पांसुल करता है। इस नाटिका में स्त्रीपात्रों की प्रधानता स्वाभाविक है। वासवदत्ता का व्यक्तित्व यद्यपि पर्याप्त उदात्त है, किन्तु उसकी चेटियाँ उसकी इच्छा के विरुद्ध आरण्यका और राजा का गान्धर्व विवाह आयोजित करने में सफल होती हैं। वासवदत्ता सरल है। उसे एक ओर मनोरमा और दूसरी ओर सांकृत्यायनी अपनी मिथ्या बातों से भुलावे में डाले रहती हैं।[1] मनोरमा का व्यक्तित्व इस नाटिका में मनस्विनी का है। उसने अपनी सखी आरण्यका के लिए अपने को संशय में डालकर सब कुछ किया। साहस तो उसमें इतना था कि विदूषक को बन्दी बनाने का काम उसने हँसते-हँसते किया। उससे नाटिका की रमणीयता-विशेष है। राजनीति के क्षेत्र में मुद्राराक्षस में जो कुछ चाणक्य चन्द्रगुप्त के लिए करता है, वैसा ही कुछ शृङ्गार के क्षेत्र में मनोरमा उदयन के लिए करती है।

गर्भाङ्क में राजा को मनोरमा के स्थान पर दिखाना अभिनय की कल्पनात्मक सम्भाव्यता की परिधि के भीतर समाचीन नहीं प्रतीत होता है। उदयन की पुरुषाकृति मनोरमा की रमणीयता से अनुरूपित नहीं हो सकती है।

रस

प्रियदर्शिका में रत्नावली की भाँति ही अङ्गी रस शृङ्गार है। नायक और नायिका की प्रणयात्मक नाटिका में शृङ्गारित व्यापार स्वाभाविक होते हैं। गर्भाङ्क में नायिका का पुर्वरागव्यञ्जक गीत है—

अभिनवरागाक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन।
उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दयितम्॥ ३·९

आरण्यका का संगीत शृङ्गार-रस निर्भर है। गर्भाङ्क के द्वारा भावों का उत्थान-पतन अनुपम मात्रा में प्रयोजित है। गर्भाङ्क का शृङ्गार उसके अनुयायी वासवदत्ता-कृत

---

१. मनोरमा की बुद्धि अत्यन्त प्रखर थी। उसने आरण्यका की कामदशा का परिचय पा लिया और जाना कि राजा ने आरण्यका को देख लिया है फिर तो उसने एक क्षण में ही सोच लिया कि किस उपाय से आरण्यका का राजा से मिलन होगा। गर्भाङ्क का पात्र-सम्बन्धी उलट-फेर उसकी बुद्धि की सर्जनात्मक परिणति है, जो एक क्षण में उसके मानस में प्रतिभासित हुआ।

सम्भ्रम से रञ्जित है। शृङ्गार के पश्चात् आने वाली भाग-दौड़ कुछ कम सरस नहीं है। अन्य रस वीर युद्ध के प्रकरणों में है और हास्य रस विदूषक की उक्तियों में निर्भर है।

प्रियदर्शिका में रसों के उद्दीपन के लिए नाना प्रकार के काव्योचित वर्णनों का संग्रन्थन किया गया है। युद्ध का वर्णन कवि को अतिशय प्रिय रहा है। यथा,

पादातं पत्तिरेव प्रथमतरमुरःपेषमात्रेण पिष्ट्वा
दूरान्नीत्वा शरौघैर्हरिणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः।
सर्वत्रोत्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्खाय खड्गं
पश्चात्कर्तुं प्रवृत्तः करिकरकदली काननच्छेदलीलाम्॥ १·६

वर्णनों के सन्निवेश के लिए अन्य कई रूपकों की भाँति अङ्क के अन्त में काल की चर्चा मिलती है। समय-परिवर्तन के साथ अङ्क परिवर्तन होना चाहिए। इस प्रकार अङ्कान्त में सन्ध्या का वर्णन है—

हृत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन् मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते।
चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे
सञ्जाता सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः॥ ३·१०

संस्कृत रूपकों में स्नान-भू का वर्णन विरले ही मिलता है। प्रियदर्शिका में स्नान-भू का दर्शन करें—

लीलामज्जनमंगलोपकरणस्नानीयसम्पादिनः
सर्वान्तःपुरवारविभ्रमवतीलोकस्य ते सम्प्रति।
आयासस्खलदंशुकाव्यवहितच्छायावदातैः स्तनै-
रुत्क्षिप्तापरशातकुम्भकलशेवालंकृता स्नानभूः॥ १·११

शैली

हर्ष की अनुप्रासित सङ्गीतमयी शैली का प्रथम दर्शन प्रियदर्शिका में होता है। यथा,

अविरतपतद्विविधकुसुमसुकुमारशिलातलोत्सङ्गस्य परिमलनिलीनमधुकरभरभुग्न-वकुलमालतीलताजालकस्य कमलगन्धग्रहणोद्दाममारुतपर्यवबुद्धबन्धूकबन्धनस्याविरल-तमालतरुपिहितातपप्रकाशस्य धारागृहोद्यानस्य सश्रीकताम्।

इसमें उद्यान की गहन अविरलता की व्यंजना गौडी रीति के बड़े समासों के द्वारा कराई गई है।

प्रियदर्शिका में और अन्य कई संस्कृत के रूपकों में नायिका के उपवासादि व्रतचर्या के प्रकरण में प्रबन्धात्मक व्यञ्जना मिलती है।[1] जब कोई नायिका व्रतादि करती है तो इसके द्वारा कवि व्यञ्जना से सूचित करता है कि नायक की शृङ्गारित प्रवृत्तियों के लिए उसका स्थान कोई अन्य नायिका लेने वाली है, जिसकी अठखेलियों से नायक का मन भरेगा। नीचे का पद्य ऐसी ही व्यञ्जना के लिए है—

क्षामां मङ्गलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्रातस्तनेन्दुद्युतिम्।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम्॥ २·१

हर्ष के उपमान और उपमेय वक्ता के चातुर्दिक् परिसर से प्रायशः संगृहीत होने के कारण विशेष समीचीन प्रतीत होती हैं। आरण्यका कमलवनमण्डित दीर्घिका में पुष्पावचय कर रही है। ऐसे अवसर पर करपल्लव का उपमानोपमेय भाव नीचे लिखे वाक्य में इसका निदर्शन करता है—

एषा सलिलचलत्करपल्लवप्रभाविस्तृतेनापहसितशोभं करोति कमलवनमवचिन्वती।

उपमेय की उपमान से समानता केवल बाहरी दृष्टि से अथवा शाब्दिक ही रहने देना कविकर्म की परिणति नहीं है। उपमेय और उपमान की कार्यप्रवृत्तियाँ जब एक सी हों, तब तो उनकी सार्थकता है। हर्ष का नीचे लिखा पद्य इसका अनूठा उदाहरण है—

अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशां
याता या विगलत्पयोधरपटाद् द्रष्टव्यतां कामपि।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम्॥ २·७

उपर्युक्त पद्य में पयोधर और कर का श्लेष अतिशय सटीक है।

इन्हीं उपमेय और उपमानों में व्यङ्ग्य अर्थ भी अभिप्रेत है। चेटी जब आरण्यका से कहती है—

कमलसदृशस्य तव वदनस्यायं दोषो यन्मधुकरा एवमपराध्यन्ति।

---

१. चारुदत्त में नायक की पूर्वपत्नी ब्राह्मणी षष्ठी व्रत का उपवासादि करती है, जब वसन्तसेना के प्रणय-पाश में नायक आबद्ध हो रहा है। विक्रमोर्वशीय में महारानी इसी प्रकार प्रियप्रसादन-व्रत में व्यापृत है, जब उर्वशी उसका स्थान ले लेती है।

तो उसका व्यङ्ग्य अर्थ है कि तुम्हारे सौंदर्य के कारण प्रणयी जन पराकृष्ट होंगे।

इसी प्रकार की गूढ व्यञ्जना उपमान पर आधारित है तृतीय अङ्क में आरण्यका के नीचे लिखे वक्तव्य में—

देवीगुणनिगडनिबद्धे खलु तस्मिञ्जने कुत एतत् ।

इसमें गुणों का निगड उपमान व्यञ्जनाधायक है।

हर्ष की लोकोक्तियों से उनकी शैली की प्रभविष्णुता व्यक्त होती है, साथ ही उन लोकोक्तियों की व्यञ्जनायें अतिशय मार्मिक हैं। यथा,

त्वमेव पुत्तलिकां भङ्क्त्वेदानीं रोदिषि

सर्वस्य वल्लभो जामाता भवति ।

हर्ष की अप्रस्तुत प्रशंसा भी उपर्युक्त दिशा में प्रयुक्त है। यथा,

कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनास्वाद्य स्थितिं करोति ।

इसमें राजा के आरण्यका के प्रति साभिप्राय प्रेम की सफलता व्यङ्ग्य है।

प्रियदर्शिका की छन्दोयोजना में शार्दूलविक्रीडित का स्थान सर्वोपरि है। इस छन्द में २१ पद्य मिलते हैं, जो सभी पद्यों के आधे से कुछ ही न्यून हैं। हर्ष का दूसरा प्रिय छन्द इस नाटिका में आर्या है, जो १६ पद्यों में मिलता है। आर्या का रूप गीति है, जो केवल एक पद्य में मिलती है। स्रग्धरा में आठ पद्य मिलते हैं। यह सबसे बड़ा छन्द है। वसन्ततिलका में पाँच पद्य हैं। उपजाति में केवल २ पद्य हैं। मालिनी और शिखरिणी का प्रतिनिधित्व केवल एक-एक पद्य से किया गया है।

संवाद

प्रियदर्शिका में रंगमंच पर किसी पात्र के अपने आप कुछ कहते चलने का विधान अनेक स्थलों पर मिलता है। यह 'आत्मगतम्' से भिन्न है। इसमें जानबूझ कर वक्तव्य को अन्य पात्रों से गुप्त नहीं रखा गया है। रंगमंच पर कोई पात्र वक्ता की दृष्टि में नहीं होता है। यदि वहाँ पात्र होता भी है तो अन्तरित रह कर वह वक्ता की सब बातें केवल सुनता मात्र है, उत्तर 'आत्मगतम्' विधि से देता है और अपनी प्रक्रियायें व्यक्त करता है। तृतीय अङ्क के आरम्भ में मनोरमा अकेले ही रंगमंच पर है। वह प्रवेशक की रीति पर कुछ भावी घटनाओं की चर्चा करती है। तभी उसे आरण्यका कदलीगृह में प्रवेश करती हुई दिखाई देती है। मनोरमा गुल्मान्तरित होकर आरण्यका की बातें सुनती है। आरण्यका की दृष्टि में रंगमञ्च पर कोई नहीं है। वह अपनी कामदशा का वर्णन करती है, जिसे छिपी हुई मनोरमा के अतिरिक्त रंगमंच पर कोई नहीं सुनता। मनोरमा उसकी बातें सुनती हुई अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती

चलती है। सब कुछ सुनने के पश्चात् वह आरण्यका को समाश्वस्त करने के लिए उसके पास आ जाती है। इस अङ्क में अकेले विदूषक भी इसी प्रकार रंगमञ्च पर राजा की कामदशा का वर्णन करता है। मनोरमा और आरण्यका छिपकर उसकी बातें सुनती हैं और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। संवाद का यह विन्यास अतिशय सरस होता है। इसकी चर्चा में जो विश्रब्धि की कल्पना होती है, वही अनन्यतः सिद्ध रस की निर्झरिणी प्रवाहित करती है।

संवाद में पताकास्थानक का विधान चतुर्थ अङ्क में कौशलपूर्वक किया गया है। वह इस प्रकार है--

कंचुकी--तदा प्रभृति नाद्यापि विज्ञायते क्व वर्तते इति।

मनोरमा--भट्टिणि, पाणसंसए वट्टदि सा तवस्सिणी।

नागानन्द

हर्ष का नाटक नागानन्द अपनी कोटि का अद्वितीय ही कहा जा सकता है, जिसमें नायक सर्वश्रेष्ठ दानवीर है। उसने आत्मबलिदान करके गरुड के द्वारा मारे हुए नागों को पुनरुज्जीवित कर दिया और भविष्य में प्रतिदिन एक नाग गरुड के खाने के लिए वासुकि के द्वारा दिया जाय--यह नियम बन्द करा दिया। कुछ आलोचक इसे हर्ष की अन्तिम रचना मानते हैं।[1]

कथावस्तु

नायक जीमूतवाहन नामक विद्याधर है। उसे अपने पिता जीमूतकेतु के वानप्रस्थ लेते समय विराग हो गया। वह उनकी सेवा करने के लिए उनके साथ वन में रहना चाहता था। उसने विदूषक से कहा कि मुझे जो कुछ प्रजा और बन्धु-बान्धवों के हित के लिए करना था, वह मैं सब कर चुका हूँ। विदूषक ने कहा कि मतङ्ग आपका शत्रु है। आपके वन में जाने पर वह आपके राज्य को ले लेगा। नायक ने कहा कि ले ले। मैं तो अपने को भी लोकहित के लिए दे देना चाहता हूँ, किन्तु पिता की अनुमति नहीं है। अभी मेरे पिता ने आज्ञा दी है कि मलय पर्वत पर जाकर मेरे लिए कोई अच्छी वनभूमि ढूँढ़ो, जहाँ समिधादि की पर्याप्त प्राप्ति हो सके।

नायक विदूषक के साथ मलय पर्वत पर जा पहुँचता है। मलय पर्वत समुद्र-तट के निकट ही है। वहाँ के प्राकृतिक सौरभ के बीच नायक के चित्त में उत्सुकता होती है। उसकी दाहिनी आँख फड़कती है। इससे उसे संकेत मिलता है कि अवश्य ही कोई प्रिय वस्तु इस समय प्राप्त होगी। निकट के तपोवन में उन्हें गीत की मनोरम स्वर-लहरी

---

१. ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष अपने जीवन के अन्तिम भाग में बौद्ध हुआ। इस वैदिक संस्कृति के नाटक में बौद्ध प्रभाव इसी युग का है। शैली की सर्वोत्कृष्टता से भी यह अन्तिम रचना प्रतीत होता है।

सुनाई पड़ी। वहाँ देवायतन में राजकुमारी मलयवती नामक सुन्दरी वीणा की संगति में गौरी के प्रीत्यर्थ गीत गा रही थी। गीत था—

उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते मम हि गौरि
अभिवांच्छितं प्रसिध्यतु भगवति युष्मत्प्रसादेन ॥

उसने चेटी को बताया कि गौरी ने मुझे वरदान दिया है कि विद्याधर चक्रवर्ती से मेरा पाणिग्रहण होगा। उसी समय नायक उसके समक्ष विदूषक के द्वारा पहुँचाया जाता है और कहता है—हाँ, यह वर देवी ने दिया है। मलयवती के हृदय में नायक के प्रति उत्सुकता हुई। वह जाना चाहती थी, किन्तु अतिथि-सत्कार के बहाने से रोक ली गई। उसी समय एक तापस देवायतन के पास आकर कहता है कि कुलपति कौशिक ने मुझे मलयवती को यहाँ से बुलाने के लिए भेजा है, क्योंकि उसके साथ भावी विद्याधर चक्रवर्ती जीमूतवाहन से उसका विवाह-प्रस्ताव करने के लिए मलयवती के भाई मित्रावसु आज देर तक बाहर रहेंगे। जीमूतवाहन सम्प्रति इसी मलय-प्रदेश में हैं। तापस ने जीमूतवाहन के पदचिह्नों से जान लिया कि उसमें विद्याधर चक्रवर्ती होने के लक्षण हैं। उसे तभी मलयवती भी दिखाई पड़ी, जिसके प्रणाम करने पर तापस ने आशीर्वाद दिया—**अनुरूपभर्तृगामिनी भूयाः**। कौशिक की आज्ञानुसार मलयवती को जाना ही पड़ा।

मलयवती नायक के वियोग के कारण सन्तप्त होकर चन्दन-लतागृह में चन्द्रमणि शिलातल पर शयन करने के लिए पहुँचती है। उसकी चेटी शीतोपचार करती है। किन्तु उसका सन्ताप बढ़ता ही जाता है। नायिका के पूछने पर चेटी कहती है कि जीमूतवाहन के सङ्गम से ही सन्ताप दूर हो सकता है। इसी समय विदूषक के साथ नायक वहाँ निकट पहुँचता है। एक स्थान से विदूषक और नायक ओट से चेटी और नायिका को देखते हैं और दूसरे स्थान से चेटी और नायिका अदृश्य रह कर उनकी बातें सुनती हैं और उन्हें देखती हैं। नायक विदूषक से स्वप्न में देखी हुई अपनी नायिका का वर्णन करता है, जिसे सुनकर मलयवती समझती है कि जीमूतवाहन की कोई और नायिका है, किन्तु चेटी उसको समझाती है कि नायक स्वप्न में देखी हुई तुम्हारा ही वर्णन कर रहा है। नायक जिस शिला पर बैठा है, उस पर नायिका का चित्र पाँच रंगों की धातुओं से बना कर विनोद करता है। वह गाता है—

प्रिया सन्निहितैवेयं संकल्पस्थापिता पुरः।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा लिखाम्येनां यदि तत् कोऽत्र विस्मयः ॥ २.९

इससे नायिका को विश्वास हो जाता है कि नायक किसी अन्य के चक्कर में है।

इसी समय मित्रावसु अपना प्रस्ताव लेकर चन्दनलतागृह में नायक के पास उपस्थित होता है। नायक अपने बनाये हुए चित्र को केले के पत्ते से छिपा लेता है।

मित्रावसु मलयवती से नायक के विवाह का प्रस्ताव रखता है। नायक ने अपने मन की बात छिपाते हुए यह कह दिया कि मेरा मन किसी अन्य वस्तु में अनुरक्त है। अतएव मैं प्रस्ताव मानने में विवश हूँ।[1] विदूषक ने मित्रावसु को समझाया कि आप तो इनके माता-पिता से कहिए। वे यहीं गौरी-आश्रम में रहते हैं। मित्रावसु चल देता है। नायिका को नायक का यह सारा खेल अपमान-जनक लगा। उसने निर्णय लिया कि आत्महत्या कर लूँगी। अकेले होने के लिए उसने चेटी को मित्रावसु का चला जाना देखने के लिए भेजा, किन्तु वह समझ गई थी कि मलयवती कुछ भी कर सकती है। अतएव वह थोड़ी दूर जाकर छिप कर उसकी प्रवृत्तियाँ देखने लगी। इधर नायिका ने पाश लेकर गौरी को उलाहना दिया कि अगले जीवन में तो सुखी रखना। यह कह कर कण्ठ में पाश लगा लिया। चेटी ने हल्ला किया कि इसे बचाओ। बचाने के लिए नायक आ पहुँचा और उसे छुड़ाकर फिर वही प्रेम की बातें करने लगा। नायिका ने उसे डाँट बताई। नायक ने उसे छोड़ा नहीं और कहा कि मुझे ज्ञात नहीं था कि तुमसे ही विवाह करने के लिए मित्रावसु ने कहा था, अन्यथा अस्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता। विदूषक ने नायिका को वह चित्र दिखाया, जिसे नायक ने शिलातल पर बनाया था। उसने नायिका का चित्र देख लेने पर मोहित हो कर कहा कि तुम्हारा गान्धर्व विवाह हो गया। उसी समय एक अन्य चेटी ने आकर नायक से कहा कि आपके माता-पिता ने मलयवती को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर लिया है।

कुसुमाकर उद्यान में मलयवती और जीमूतवाहन के विवाह के उपलक्ष्य में सिद्ध-विद्याधर आपान-सौख्य का अनुभव करने वाले हैं। मदिरा पीकर प्रमत्त शेखरक नामक विट अपनी प्रेयसी चेटी नवमालिका को ढूँढते हुए और विदूषक अपने मित्र जीमूतवाहन को ढूँढते हुए कुसुमाकर में जा पहुँचते हैं। विदूषक सिर पर बाँधी हुई कल्पवृक्ष की पुष्प माला की गन्ध से आकर मँडराते हुए भौरों से बचने के लिए मलयवती के विवाह में मिले हुए रक्तवर्ण के वस्त्रयुग्म से अपने को प्रच्छादित करके अवगुण्ठित होकर अपने को स्त्री जैसा बना लेता है। उसे शेखरक नवमालिका समझ कर पकड़ लेता है। उसको नवमालिका सम्बोधित करके उसके चरणों में प्रणति करता है। उधर मलयवती के लिए कुसुमाकर उद्यान में तमालवीथि को सजाने के लिए आदेश देने के उद्देश्य से नवमालिका आ जाती है। वह शेखरक को स्त्रीरूपधारी विदूषक से प्रेम करते हुए देखकर क्रोध करती है। नवमालिका को पहचान कर शेखरक विदूषक को अलग हटा देता है। तभी विदूषक अपने वास्तविक रूप में आ जाता है। विदूषक भाग जाना चाहता है। शेखरक के उसका यज्ञोपवीत पकड़ कर रोकने पर यज्ञोपवीत टूट

१. नायक को ज्ञात नहीं था कि मित्रावसु उनकी प्रियतमा नायिका से ही विवाह का प्रस्ताव रख रहे हैं। उसे अपनी प्रियतमा का नाम ही नहीं ज्ञात था।

जाता है । तब वह उसको उत्तरीय से बाँध कर खींचता है । विदूषक नवमालिका से प्रार्थना करता है कि मुझे छुड़ाओ । वह परिहास करती है कि मेरे पैर पर गिरो तो मुक्त कराऊँ । वह शेखरक से प्रसन्न हो जाती है और उसे आदेश देती है कि तुम जाकाता जीमूतवाहन के मित्र विदूषक को प्रसन्न करो। शेखरक उससे क्षमा माँगकर विदूषक और नवमालिका को साथ बैठा कर उनका सम्मान करता है और चषक की मदिरा नवमालिका को देता है और कहता है कि इसे चखकर विदूषक को दो। विदूषक इस सम्मान से घबड़ा जाता है । उसने कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ। मदिरा पान नहीं करता। शेखरक ने कहा कि ब्राह्मण हो तो यज्ञोपवीत कहाँ है ? विदूषक ने कहा कि वह तो टूट गया । फिर नवमालिका ने कहा कि वेद का मन्त्र ही सुनाओ । वह मन्त्र भी नहीं सुना सका और नवमालिका के चरणों में गिरने को उद्यत हो गया। उसने कहा कि मैं तो परिहास कर रही थी और यह कह कर विदूषक के पैरों पर गिरती है। शेखरक भी उसके पैर पर गिर कर क्षमायाचना करता है और नवमालिका के साथ पानभूमि की ओर चल देता है । विदूषक अपने को इनकी संगति में अपवित्र हुआ समझ कर दीर्धिका में स्नान करने चल देता है।

नायक और नायिका सभी दास-दासियों के साथ कुसुमाकर उद्यान में पहुँचते हैं। थोड़ी देर में वहाँ पहुँचे हुए विदूषक से नायक कहता है कि विद्याधर चन्दन-वृक्षों की छाया में अपनी प्रियतमाओं के चखे हुए मद्य को सानन्द पी रहे हैं। नायक और नायिका स्फटिक शिला पर बैठते हैं । नायक ने नायिका का वर्णन किया—

एतत्ते भ्रूलतोद्भासि पाटलाधरपल्लवम् ।
मुखं नन्दनमुद्यानमतोऽन्यत् केवलं वनम् ।। ३.११

इसे सुनकर चेटी ने विदूषक से कहा कि मैं आपका वर्णन करना चाहता हूँ। उसके निर्देशानुसार विदूषक आँख बन्द करके बैठ गया । चेटी ने तमाल के पल्लव के रस से उसका मुँह काला रँग दिया । नायक ने विदूषक से कहा कि यह तो अच्छा वर्णन (रँगना) रहा । विदूषक क्रोधित होकर वहाँ से चलता बना। चेटी उसे प्रसन्न करने के बहाने चलती बनी । नायक और नायिका परस्पर अनुराग व्यक्त करते हैं ।

कुछ समय पश्चात् वहाँ मित्रावसु ने आकर नायक से मतङ्ग के द्वारा राज्यापहरण की चिन्ता व्यक्त की । वह मतङ्ग पर आक्रमण करके उसे परास्त करना चाहता था ।

नायक मित्रावसु के साथ समुद्र-तट के निकट मलय पर्वत की नैसर्गिक शोभा देख रहा है । समुद्र में ज्वार आने के भय से वे दोनों मलय पर्वत पर एक ओर ऊँचे चढ़ गये, जहाँ सर्पों की हड्डियों का पहाड़ बना हुआ था। नायक को मित्रावसु ने बताया कि वासुकि ने गरुड के त्रास से भीत होकर उसे मना लिया है कि यहाँ वध्यशिला पर एक सर्प उसे भोजन के लिए हम देंगे । उसी समय मित्रावसु को उसके पिता ने कुछ आवश्यक परामर्श

के लिए बुला लिया और वहाँ नायक अकेला रह गया। कोई वृद्धा अपने इकलौते पुत्र शङ्खचूड को लेकर वहाँ रोती हुई आ पहुँची। नायक ने उसे बचाने के लिए आत्मबलिदान करना चाहा। शंखचूड को गरुड की पहचान के लिए लाल वस्त्र पहना कर वध्य शिला पर बैठना था। तभी नायक उसकी रक्षा के लिए वहाँ प्रकट हुआ, किन्तु शङ्खचूड और उसकी माता नहीं चाहते थे कि नायक आत्मबलिदान करके उन्हें निरापद करे। उन्होंने नायक को लालवस्त्र माँगने पर भी नहीं दिया।

शङ्खचूड थोड़ी देर के लिए वहाँ से कुछ दूरी पर स्थित गोकर्ण की प्रदक्षिणा करने के लिए चला गया। उसी समय कंचुकी नियमानुसार उसे लाल वस्त्रयुग्म दे गया। नायक ने उसे गरुड का वध्य चिह्न बनाया। उन्हें पहन कर वह वध्यशिला पर जा बैठा। इसी बीच गरुड आ पहुँचा। नायक का मनोभाव सात्त्विक था—

संरक्षतां पन्नगमद्य पुण्यं मयार्जितं यत् स्वशरीरदानात्।
भवे भवे तेन ममैवमेवं भूयात् परार्थः खलु देहलाभः ॥४.२६

गरुड ने नायक को साश्चर्य पकड़ा और उसे लेकर मलय पर्वत की चोटी पर ले जाकर खाने के लिए उड़ चला।

जीमूतवाहन के देर करने पर उसे ढूँढने के लिए लोग चले। इस बीच जीमूतकेतु और उसकी पत्नी के पास नायक को ढूँढते हुए सुनन्द नामक प्रतिहार पहुँचा। उन सबको नायक के लिए चिन्ता हुई। उसी समय नायक की चूडामणि उसके पिता के चरणों में गिरी। उधर ही शखंचूड आ पहुँचता है और वह कहता है कि मेरे स्थान पर जीमूतवाहन को गरुड लेकर उड़ गया है। मैं पीछा करके जहाँ कहीं गरुड होगा, वहीं पहुँचता हूँ। वह जीमूतवाहन की गिरी हुई रक्तधारा का अनुसरण करते हुए उसके पिता के पास पहुँच कर सारी घटना बताता है। वे सभी चिता में जल मरने के लिए अग्नि लेकर गरुड का अनुसरण रक्तधारानुसार करते हैं।

गरुड जीमूतवाहन का धैर्य देख कर चकित है। वह उसे खाने से रुक गया। जीमूतवाहन ने उससे कहा—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।
तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन् ॥

गरुड ने उत्तर दिया—

आवर्जितं मया चञ्च्वा हृदयात् तव शोणितम्।
अनेन धैर्येण पुनस्त्वया हृदयमेव नः ॥ ५.१७

तभी शङ्खचूड वहाँ पहुँचा और उसने बताया कि गरुड, इसे छोड़ो, मुझे खाओ तुम्हारा वध्य और भक्ष्य मैं हूँ। गरुड ने पहचान कर ली कि जीमूतवाहन नाग नहीं है, नाग है शङ्खचूड। गरुड ने पहले से ही जीमूतवाहन की ख्याति सुन रखी थी।

उसने कहा कि मैंने बोधिसत्त्व को ही मार डाला । मैं अग्नि में प्रवेश कर इसका प्रायश्चित करूँगा । तभी अग्नि लिए हुए जीमूतवाहन के माता-पिता आ पहुँचे । जीमूतवाहन ने अपना शरीर पूरा ढक लिया कि उससे क्षत-विक्षत अंगों को देख कर माता-पिता मर ही न जायँ । गरुड को ज्ञात होता है कि आये हुए लोग जीमूतवाहन के स्वजन हैं । वह लज्जित है और अपना मुँह उन्हें नहीं दिखाना चाहता । नायक के माता-पिता देखते हैं कि गरुड शिष्य बना हुआ जीमूतवाहन के समक्ष खड़ा है । वे उसे आलिंगन करने के लिए बुलाते हैं। नायक उठने के प्रयास में गिर कर मूर्छित हो जाता है । तब तो सभी स्वजन मूर्छित हो जाते हैं । शङ्खचूड व्यथित है और उससे बढ़कर व्यथित है गरुड जो कहता है कि मुझ पापी के कारण यह सब हुआ है । तभी नायक की चेतना पुनः लौटती है । मलयवती की व्यथा का क्या पूछना? वह अमंगल समझकर रो भी तो नहीं सकती थी । पिता ने देखा कि जीमूतवाहन का शरीर विनष्ट-प्राय है, केवल कण्ठ में प्राण हैं ।

गरुड दुःखी है । वह नायक से निवेदन करता है कि आप उपाय बतायें कि मैं इस पाप से मुक्त होऊँ । उसने शाश्वत उपदेश दिया—

नित्यं प्राणाभिघातात् प्रति विरम कुरु प्राक्कृते चानुतापं ।
यत्नात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितप्राणिहिंसात्तमेतद्
दुर्गाधापारवारेलवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्ह्रदस्य ॥ ५.२५

गरुड ने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की । उसने कहा कि आज से किसी प्राणी की हिंसा नहीं करूँगा । समुद्र में नाग सुखपूर्वक विचरण करें ।

जीमूतवाहन मर्मान्तक पीडा से मरणासन्न है । वह शङ्खचूड से अपने हाथ जुड़वा कर माता-पिता को अन्तिम प्रणाम करता है और गिर पड़ता है । सभी विलाप करने लगते हैं । गरुड अपने कर्त्तव्य का निर्धारण करता है । उसने जीमूतवाहन की माता से सुना था कि लोकपाल अमृत से मेरे पुत्र को पुनर्जीवित करें । उसने कहा कि अमृत सीधे से इन्द्र दे दें तो ठीक है, अन्यथा बलात् उनसे लेकर मैं स्वयं अमृत-वर्षा करूँगा । इस बीच जीमूतकेतु अपने मरने के लिए चिता बनवाता है । वे सभी चिता पर जाने को उद्यत हैं । मलयवती गौरी से कहती है कि आपने भी झूठा वरदान दिया था । गौरी प्रकट होती है । उसने अपने कमण्डलु के जल से जीमूतवाहन को जीवित कर दिया । तभी गरुड ने आकाश-द्वार से अमृत वर्षा कर दी । सभी मरे नाग जीवित हो गये । गौरी ने अपने कमण्डलु के जल से नायक को विद्याधर-चक्रवर्ति पद के लिए अभिषेक कर दिया । नायक ने भरतवाक्य कहा—

वृष्टिं हृष्टशिखण्डिताण्डवभृतो मुंचन्तु काले घनाः ।
कुर्वन्तु प्रतिरूढसन्ततहरिच्छस्योत्तरीयां क्षितिम् ॥

चिन्वानाः सुकृतानि वीतविपदो निर्मत्सरैर्मानसै-
र्मोदन्तां घनबद्धबान्धवसुहृद्गोष्ठी प्रमोदाः प्रजाः ॥ ५.४०

समीक्षा

नागानन्द नाटक की कथावस्तु में दो कथाओं का संयोजन चरितकथाओं के आदर्श पर मिलता है। ऐसा करना नाट्यशास्त्र की दृष्टि से समीचीन नहीं कहा जा सकता। हर्ष ने क्यों ऐसा किया? हर्ष ने लोकसंग्रह की दृष्टि से कथानक को महायानीय परम्परा में ढाला और उसको लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें मलयवती के साथ उसकी प्रणयगाथा का संयोजन किया। हर्ष के पूर्व महाकवि अश्वघोष ने भी अपने रूपक में प्रणयात्मक प्रकरण का सन्निवेश किया था। सौन्दरनन्द के उपसंहार में तो उसने स्पष्ट कर दिया कि बुद्धोपदेश कुछ कड़वी औषधि के समान है, जिसे लोकप्रिय बनाने के लिए शृंगार की शर्करा से सम्मिश्रित करना पड़ा है। भास ने भी अपने अन्तिम नाटकों में शृंगार और विवाह को प्रमुखता दी। कालिदास के तीनों रूपक विवाह-शृंगार की चर्चा से परिप्लुत हैं।

हर्ष का उद्देश्य इस नाटक में जनता के बीच महायान की लोकोपकारिणी प्रवृत्तियों का प्रचार करना है। इसमें पौराणिक और वैदिक संस्कृति के साथ महायान संस्कृति का सामंजस्य किया गया है।

नागानन्द की कथा का उद्भव इस नाटक के अनुसार ही विद्याधर जातक है। यह जातक अब अप्राप्य है। इसका कोई रूप सम्भवतः बड्ढकहाओ में था, जिससे परवर्ती युग में कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी और वेतालपञ्चविंशतिका में इसका समावेश हुआ।[1] नागानन्द की कथा बड़ी लोकप्रिय हुई और सोमदेव ने कथासरित्सागर में जो कथा लिखी, उसमें नागानन्द की कथावस्तु से कई अंश ग्रहण किये गये हैं। यथा,

नागानन्द में	कथासरित्सागर में
१. जिह्वासहस्रद्वितयस्य मध्ये नैकापि सा तस्य किमस्ति जिह्वा। एकाहिरक्षार्थमहिद्विषेऽद्य दत्तो मयात्मेति यथा ब्रवीति ॥	किं न प्रथममात्मैव तेन दत्तो गरुत्मते
२. सर्वमिदं मम नृशंसस्यासमीक्ष्य- कारितायाा विजृम्भितम्।	अहो बत नृशंसस्य पापमापतितं मम।
३. शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्त- मद्यापि देहे मम मांसमस्ति। तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन्।	पक्षिराज ममास्त्येवं शरीरे मांसशोणितम्। तदकस्मादतृप्तोऽपि किं निवृत्तोऽसि भक्षणात् ॥
४. तत् क्व नु खलु वह्निं समासादयामि।	इति तं चिन्तयन्तं च गरुडं पापशुद्धये। वह्निं विविक्षुं जीमूतवाहनोऽथ जगाद सः ॥

१. आमुख में 'विद्याधरजातकप्रतिबद्धं नागानन्दं नाम नाटकम्' आदि।

उपर्युक्त समान उद्धरणों से और अपवाद रूप से कथासरित्सागर की इस कथा की नाटचोचित प्रवृत्तियों को देखने से स्पष्ट है कि कथासरित्सागर की कथा नागानन्द नाटक की कथा से प्रभावित है और उसके मूल बड्ढकहाओ में नागानन्द का स्रोत ढूंढ़ना प्रयासमात्र है।[1]

नागानन्द का आख्यान-तत्त्व अनेक स्थलों पर पूर्ववर्ती श्रेष्ठ नाटकों से प्रभावित है। इस प्रकार के कतिपय स्थल अधोलिखित हैं—

नागानन्द में	अभिज्ञानशाकुन्तल में
१. दक्षिणं स्पन्दते चक्षुः फलाकांक्षा न मे क्वचित्। १·१०	१. स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य १.१६
२. नायक अपने विनोद के लिए नायिका का चित्र द्वितीय अङ्क में बनाता है।	२. नायक नायिका का चित्र विनोद के लिए छठें अंक में बनाता है।[2]
३. लतागृह में नायिका का शीतोपचार होता है।	३. तृतीय अङ्क में नायिका का शीतोपचार लतागृह में होता है।
	स्वप्नवासवदत्त में
४. तीसरे अङ्क में नायक नायिका को स्वप्न में देखता है।	४. स्वप्न में नायक नायिका से बातें करता है।
	अविमारक में
५. दूसरे अङ्क में नायिका पाशबद्ध होकर आत्महत्या करना चाहती है।	५. नायिका उत्तरीय के पाश से आत्म-हत्या करना चाहती है।

कहीं-कहीं नागानन्द की कार्यस्थली भी पहले के रूपकों के आदर्श पर निर्मित है। पर्वत और आश्रम-भूमि कालिदास के नाटकों में प्रायः मिलते हैं। भास के स्वप्न-वासवदत्त में आश्रम की परिष्ठली सम्भवतः नागानन्द में नायक के लिए कुलपति कौशिक के आश्रम की कल्पना का आधार है। अभिज्ञानशाकुन्तल में महर्षि कण्व का आश्रम भी हर्ष के मानस में रहा होगा। नागानन्द में समुद्र के परिसर में नायक की उदात्त वृत्तियों की अभिव्यक्तिपरक चरितवली का संनियोजन हर्ष का निजी कौशल है। समुद्र काव्यात्मक वैशद्य का सर्वोत्कृट सन्निधान है और नाटक की लघु परिधि में सागर का सन्निवेश गागर में सागर भरना है। हर्ष ने यह कार्य निपुणतापूर्वक किया है। उनका सागर स्वयं उदात्त है। यथा,

---

१. कथासरित्सागर २२.१६—५१, १७१—२५७; बृहत्कथा मंजरी ४·५०—६१; ८४—१०८; वेतालपंचविंशतिका १५

२. कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा के द्वारा उर्वशी का चित्र बनाने की चर्चा की है। मालविकाग्निमित्र में भी नायिका का चित्र नायक द्वारा परीक्षित होने की चर्चा है। भास के चारुदत्त में वसन्तसेना नायक चारुदत्त का चित्र बनाती है।

कवलितलवङ्गपल्लवकरिमकरोद्गारिसुरभिणा पयसा ।
एषा समुद्रवेला रत्नद्युतिरञ्जिता भाति ।। ४·४

आख्यान की भावी प्रवृत्ति का परिचय नागानन्द में स्थान-स्थान पर मिलता है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में मित्रावसु ने कहा है—

यश्चासूनपि परित्यजेत् करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यतः ।। २·१०

इससे चतुर्थ और पाँचवें अङ्क में नायक का शङ्खचूड की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान करने का सङ्केत मिलता है। इस उक्ति में नाटक के उत्तरार्ध की कथा का बीज है। चतुर्थ अङ्क में नायक कहता है—

दुष्प्रार्थिनि यत् परार्थघटना वन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ।। ४·२

इस वक्तव्य में निकट भविष्य में शङ्खचूड के लिए सर्वस्व त्याग का प्रसङ्ग अन्तर्हित है। नीचे लिखे पद्यांश में भी यही तथ्य संकेतित है—

एकाहिरक्षार्थमहिद्विषेऽद्य दत्तो मयात्मेति यथा ब्रवीति ।। ४·५

जीमूतवाहन को गरुड ने खाने के लिए पकड़ लिया। फिर भी अन्त अच्छा होगा और नायक सकुशल रहेगा—यह सूचना जीमूतवाहन की माता के मलयवती के लिए कहे हुए नीचे लिखे वाक्य में मिलती है—

अविधवे धीरा भव। न खल्वीदृशी आकृतिर्वैधव्यदुःखमनुभवति ।

ऐसा लगता है कि जिस उदात्त भाव को अपने हृदय में संजोकर पाठकों के लिए रखा गया है, उसकी प्रभा उपर्युक्त भावी प्रवृत्तियों की सूचना रूप में पुनः पुनः विच्छुरित हुई है। यही तथ्य नीचे लिखी नाटकीय सम्भावना से भी व्यक्त होता है—

वृद्धा—हा पुत्रक, यदा नागलोकपरिरक्षकेण वासुकिना परित्यक्तोऽसि, तदा कस्ते अपरः परित्राणं करिष्यति ।

नायकः—(उपसृत्य) नन्वहम् ।

कुछ नाटकीय संविधान पूर्ववर्ती नाट्यकारों के आदर्श पर हर्ष ने अपनाये हैं। विटपान्तरित होकर या छिप कर किसी की बातें सुनना—यह संविधान भास और कालिदास ने अपने रूपकों में अनेक स्थलों पर कार्यान्वित किया है। इसके द्वारा रङ्ग-मञ्च पर एक साथ ही संवादपरायण दो या तीन वर्ग अलग-अलग दर्शकों को दिखाई पड़ते हैं। इनमें से किसी एक वर्ग के पात्र दूसरे वर्ग की बातचीत या अभिप्रायों के प्रसङ्ग में साथ ही अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हैं, जिसे दूसरा वर्ग नहीं सुन पाता। निस्सन्देह ऐसा संविधान विशेष सरस और प्रायः मनोरञ्जक होता है। प्रथम अङ्क में तमालगुल्मान्तरित होकर नायक और विदूषक नायिका की गीति सुनते हैं और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। दूसरे अङ्क में नायक और विदूषक तथा नायिका और चेटी दो वर्गों में रङ्गमञ्च पर विभक्त हैं। वे दूसरे वर्ग की बातें सुनते हैं, किन्तु ऐसा

समझते हैं कि दूसरा वर्ग हमें नहीं देख रहा है।[1] अभिनय की दृष्टि से गम्भीरतम भावाभिव्यक्ति के लिए ऐसे संविधान का महत्त्व है। अन्यथा किसी नायिका को अपने नायक की ऐसी बातें उसी के मुख से सुनने के लिए मिल ही नहीं सकती हैं—

शशिमणिशिला सेयं यस्यां विपाण्डुरमाननं
करकिसलये कृत्वा वामे घनश्वसितोद्गमा।
चिरयति मयि व्यक्ताकूता मनाक् स्फुरिताधरा
विरमितमनोमन्युर्दृष्टा मया रुदती प्रिया ॥ २·६

आगे चलकर इसी प्रसङ्ग में रङ्गमञ्च पर तीन वर्गों की बातें सुनने को मिलती हैं, जब मित्रावसु प्रवेश करता है। उस समय रंगमञ्च पर एक छोर पर मित्रावसु है, बीच में नायक और विदूषक हैं और दूसरी छोर पर नायिका और चेटी हैं। ऐसी स्थिति में नायिका और चेटी पात्र होते हुए भी दर्शक कोटि में भी आते हैं। ऐसे संविधानों से नाटककार का अतिशय नैपुण्य प्रमाणित होता है।

नागानन्द में नायक का नायिका से मिलना बहुत कुछ कादम्बरी में चन्द्रापीड के महाश्वेता से मिलने के समान पड़ता है। दोनों में नायिकायें देवप्रीत्यर्थ वीणावादन के साथ मन्दिर में गायन करती हैं।

नागानन्द के तीसरे अङ्क की कथा शृङ्गार की निर्झरिणी है। इसका अधिकांश कथावस्तु की दृष्टि से अनपेक्षित है, जिसमें शेखरक और विद्याधरों की मद्यपेयी प्रवृत्तियों की विस्तृत चर्चा है। इसमें परिहास प्रधान तो है, किन्तु पियक्कड़ों की उन्मत्तता को अनावश्यक होने पर भी श्रेष्ठ नाटक में स्थान नहीं मिलना चाहिए था। इस अङ्क के अन्त में मित्रावसु की मतङ्ग सम्बन्धी उत्पातों की भी चर्चा अनावश्यक है। सम्भवतः इस अङ्क के द्वारा समाज की विलासिता और राजनीतिक अस्थिरता का निदर्शन ही हर्ष का अभिप्रेत हो।

उस युग के नाटकों में किसी पात्र को कोई दूसरा ही समझ कर कोई अन्य पात्र अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे—यह दिखाने का विशेष प्रचलन था। भास के नाटकों में अनेक स्थलों पर इस प्रकार का वैचित्र्य संयोजित किया गया है। नागानन्द में नायक मित्रावसु की भगिनी मलयवती को अपनी प्रियतमा नायिका न समझने की गलती करता है। इस संविधानक का विशेष महत्त्व इस नाटक में है। अन्यत्र भी शङ्खचूड की माता जीमूतवाहन को गरुड समझ लेती है। उसकी ऐसी मानसिक स्थिति की प्रतिक्रिया भावुकता पूर्ण है। शंखचूड की माता जीमूतवाहन से कहती है—

---

१. चेटी ने इस सम्भावना को व्यक्त करते हुए कहा है—
यथा आवामपवारिते तावदेतं प्रेक्षावहे, मा नाम त्वमप्येवं दृष्टा।

विनतानन्दन, व्यापादय माम् । अहं ते नागराजेनाहारनिमित्तं परिकल्पिता ।

अभिनय की दृष्टि से इस वक्तव्य का मूल्यांकन कर लेना असम्भव ही है ।

इसी प्रकार की पात्र-सम्बन्धी अन्य भूल है—शेखरक द्वारा विदूषक को नवमालिका समझना ।

नागानन्द की कथा में अलौकिक और अद्‌भुत तत्त्वों की अतिशयता प्रत्यक्ष ही है । उत्तरार्ध में गौरी का प्रकट होकर नायिका को सम्भावित करना, आकाश से पुष्प-वृष्टि होना, नागों की अस्थियों का मांसादि से युक्त होकर पुनः सजीव बन जाना तथा गरुड और शङ्खचूड का मानवोचित व्यवहार करना आदि सभी बातें मानो इन्द्रजाल के द्वारा संघटित होती हुई सी प्रतीत होती हैं । नागानन्द की कथावस्तु पर प्रत्यक्ष या गौण रूप से महाभारत की उस कथा का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है, जिसमें भीम ब्राह्मण परिवार के बालक की रक्षा करने के लिए राक्षस के पास जाते हैं । उस कथा में भी नगर का कोई व्यक्ति प्रतिदिन राक्षस का भोजन बनने जाता था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि गरुड और नागों का जो शाश्वत्त वर सृष्टि के आदि काल से ही चला आ रहा था, उसे महायान ने जीमूतवाहन को बोधिसत्त्व बनाकर आत्मबलिदान के द्वारा गरुड को प्रभावित कर के सदा के लिए समाप्त कर दिया। उसी कथानक को अभिनय द्वारा समाज को उदार और परोपकारपरायण बनाने के लिए ग्रहण किया गया है ।

पूर्ववर्ती कवियों की भाँति हर्ष भी समय निर्देश करके वर्तमान कार्य और स्थल को छोड़कर अन्य कार्य और स्थल पर उनको नियोजित करके अङ्कों का अन्त कर देते हैं । पहले अङ्क का अन्त दोपहर हो जाने पर भोजनादि के लिए पात्रों के इधर-उधर चले जाने से होता है ।। दूसरे अंक का अन्त स्नान-वेला की सूचना से होता है । तीसरे अंक का अन्त दिन की परिणति के कारण होता है । सभी अङ्कों में प्रमुख पात्र को अन्यत्र किसी कार्य के लिए जाना पड़ा है और कहीं-कहीं किसी प्रमुख पात्र को किसी आवश्यक कार्य से बुलाने के लिए कोई आ गया है। नाटकों का वर्णन रञ्जित करने के लिए समय की चर्चा करके उसकी प्राकृतिक रमणीयता का चित्रण करने की रीति रही है ।

पात्र-विमर्श

नागानन्द का नायक जीमूतवाहन विद्याधर राजकुमार है । संस्कृत नाटकों के लिए उसके जैसा नायक होना एक अनहोनी संघटना है । जहाँ अन्य नायक कुछ संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, वहाँ वह अपना सर्वस्व दूसरों के हित के लिए परित्याग करने के लिए समुत्सुक है। उसमें नायक के सामान्य गुणों में से विनय, मधुरता, त्याग, शुचिता, स्थिरता, धार्मिकता आदि इतनी अधिक मात्रा में हैं कि कदाचित् अन्यत्र उतने कहीं न मिलें ।

जीमूतवाहन को नाटक का नायक होने के लिए धीरोदात्त अर्थात् महासत्त्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, अविकत्थन, स्थिर, निगूढाहंकार और दृढव्रत होना चाहिए। ये सभी गुण भी जीमूतवाहन में हैं, फिर भी उसको धीरोदात्त मानने में यह कहकर शंका की जाती है कि उदात्त होने के लिए सर्वोत्कृष्ट बनने की वृत्ति होनी चाहिए और यह वृत्ति विजयेच्छु राजाओं में ही होती है। इसके विपरीत जीमूतवाहन निर्जिगीषु है। उसके विषय में चरितार्थ है--

पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां त्यक्त्वैश्वर्यं क्रमागतम्।
वनं याम्यहमप्येष यथा जीमूतवाहनः ॥

उसे यह सब कहकर धीरशान्त कोटि में कतिपय विद्वान् प्राचीन काल से ही रखते आये हैं। ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि विजयेच्छु ही उदात्त होगा--यह कहना समीचीन नहीं है। नायक अपने सद्‌गुणों के कारण विशेषतः त्याग के कारण सबसे बढ़कर है और उदात्त है--ऐसा मानना पड़ेगा। जीमूतवाहन को हम त्यागवीर कह सकते हैं। वह सारी प्रकृति को त्यागमयी देखता है। यथा,

शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः।
शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहायाः मृगाः ॥४.२

ऐसा त्यागवीर नायक साधारणतः रसिक नहीं होता, किन्तु नागानन्द के नायक के पास तो कविहृदय है और वह अतिशय रसिक भी है। उसे नायिका का मुख नन्दन-वन प्रतीत होता है--

एतत्ते भ्रूलतोद्‌भासि पाटलाधरपल्लवम्।
मुखं नन्दनमुद्यानमतोऽन्यत् केवलं वनम् ॥ ३.११

और भी

स्मितपुष्पोद्‌गमोऽयं ते दृश्यतेऽधरपल्लवे।
फलं त्वन्यत्र मुग्धाक्षि चक्षुषोर्मम पश्यतः ॥ ३.१२

संस्कृत-साहित्य में यदि कोई आदर्श नायक है तो वह एकमात्र जीमूतवाहन है, जो स्वयमेव कहता है--

अम्ब किं पुनः पुनरभिहितेन ननु कर्मणैव सम्पादयामि।
पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ॥ ४.४४

अर्थात् वारंवार कहने मात्र से क्या होता है। कर दिखाता हूँ। अपना शरीर देकर तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूँगा।

चारित्रिक-विकास-निदर्शन के लिए गरुड को कवि ने अपनाया है। वह नागों का भक्षक था और अन्त में नागों का रक्षक हो गया--इस प्रकार का काव्यसौष्ठव संस्कृत-साहित्य में विरले ही मिलता है।

पात्रों का एक अद्भुत समाहार नागानन्द में देखने को मिलता है। सभी पात्र प्रायः दिव्य कोटि के हैं। मनुष्य तो विरले ही हैं। ये सभी मानवोचित प्रवृत्तियों से युक्त भी हैं। गरुड और शंखचूड में क्रमशः पक्षी और साँप के लक्षण और कार्य-प्रवृत्तियाँ है, किन्तु साथ ही वे मानव की भाँति बोलते-चालते हैं। यह अद्भुत विधान है। गरुड उड़ता है और नाग समुद्र में सेतु की भाँति बनकर तैरते है। नागों के पास कोंचली है, वे द्विजिह्व हैं। ऐसी बातें अभिनय करते समय पर्याप्त मनोरञ्जक रहती हैं।

नाटक में उच्चकोटि के पात्रों की बहुलता है। ऐसे पात्र कभी-कभी सर्व-साधारण या छोटे स्तर के दर्शकों को नहीं भाते। सम्भवतः इन्हीं के मनोरञ्जनार्थ तृतीय अंक में शराबी शेखरक, नवमालिका और विदूषक आदि को प्रधान रूप से व्यापृत किया गया है। इनमें से विदूषक तो केवल प्रवृत्तियों से ही नहीं, अपितु वेष-भूषादि से भी बन्दर सरीखा था। उसे चेटी और विट कपिलमंकडा कहते हैं।

नागानन्द में कवि का एक प्रधान उद्देश्य कौटुम्बिक जीवन का सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करना है। उसने इस उद्देश्य से माता-पिता का पुत्रों के प्रति और पुत्रों का माता-पिता के प्रति आदर और सेवा का भाव उनके चरित्र-चित्रण द्वारा परिनिष्ठित किया है। क्षेमेन्द्र और सोमदेव ने अपनी कथाओं में उपर्युक्त कौटुम्बिक वातावरण नहीं प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि चरित्र-चित्रण का यह पक्ष हर्ष की निजी देन है।

रस

नागानन्द का अङ्गी रस वीर है, युद्धवीर नहीं, अपितु दानवीर और दयावीर। साहित्यदर्पण में दयावीर का उदाहरण जीमूतवाहन का नीचे लिखा पद्य उद्धृत है—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति
तृप्ति न पश्यामि तवापि तावत्किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन् ॥

इसके अंग-रसों में से सर्वप्रथम स्थान शृङ्गार का है। मलयवती के प्रति नायक का दृढ अनुराग पूर्वभाग में वर्णित है। अन्य रस हैं प्रथम अंक के आरम्भ में शान्त, तृतीय अंक में हास्य और पञ्चम अंक में करुण, जब नायक कुछ देर के लिए मर जाता है। नायक की मरणासन्न स्थिति में उसके माता-पिता और मलयवती को जब कभी यह ध्यान होता है कि अब जीमूतवाहन बचने का नहीं तो करुण रस की निष्पत्ति होती है। शंखचूड ने उनको यही बताया है कि

विद्याधरेण केनापि करुणाप्रविष्टचेतसा ।
मम संरक्षिताः प्राणा दत्त्वात्मानं गरुत्मते ॥ ५·११

इसे सुनकर जीमूतकेतु ने कहा है—

चूडामणिं चरणयोर्मम पातयता त्वया ।
लोकान्तरगतेनापि नोज्झितो विनयक्रमः ।। ५·१२

नायक को दानवीर, शृङ्गार, दयावीर और करुण रस के लिए विभिन्न स्थितियों में आलम्बन बनाने के लिए उसके व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है । यथा दानवीर के लिए—

दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने ।। १·८
ननु स्वशरीरात् प्रभृति सर्वं परार्थमेव मया परिपाल्यते ।

शृङ्गारित प्रवृत्तियाँ यद्यपि नायक में प्रायः सुषुप्त थीं, किन्तु मलयवती का प्रकरण लाकर उन्हें जागरित किया गया है। मलयवती के दर्शनमात्र से शृङ्गार के आलम्बन-रूप में नायक प्रस्तुत है—

व्यावृत्त्यैव सितासितेक्षणरुचा तानाश्रमे शाखिनः
कुर्वत्या विटपावसक्तविलसत्कृष्णाजिनौघानिव ।
यद् दृष्टोऽस्मि तया मुनेरपि पुरस्तेनैव मय्याहते
पुष्पेषो भवता मुधैव किमिति क्षिप्यन्त एते शराः ।। २·२

और नायिका है—

स्मितपुष्पोद्गमोऽयं ते दृश्यतेऽधरपल्लवे ।
फलं त्वन्यत्र मुग्धाक्षि चक्षुषोर्मम पश्यतः ।। ३·१२

कवि ने कहीं-कहीं भावों का सहसा विपर्यय कलात्मक विधि से प्रस्तुत किया है । द्वितीय अङ्क में मित्रावसु के जीमूतवाहन के साथ मलयवती के विवाह-प्रस्ताव को सुनकर चेटी के पूछने पर सस्मित, सलज्ज और अधोमुखी होकर नायिका कहती है— **हञ्जे, मा हस, किं विस्मृतं ते एतस्यान्यहृदयत्वम्** । इस परिहास से प्रतीत होता है कि नायिका को अब पूरी आशा बँध गई है कि नायक अब उसका हो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण जब नायक ने मित्रावसु के प्रस्ताव को विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया तो नायिका मूर्छित हो गई । नायिका आवेश में आकर आत्महत्या करना चाहती है । वह गौरी से आत्मनिवेदन करती है—**त्वया इह न कृतः प्रसादः । तत् जन्मान्तरे यथा नेदृशी दुःखभागिनी भवामि, तथा करिष्यसि ।'** इतना कह कर वह कण्ठ में पाश डालती है । तभी नायक उसे बचाने के लिए आ पहुँचता है और उसके समक्ष आत्म-समर्पण निवेदन करता है । भावविपर्यय का चूडान्त है—

कण्ठे हारलतायोग्ये येन पाशस्त्वयार्पितः ।
गृहीतः सापराधोऽयं कथं ते मुच्यते करः ।। २·१२

यह शूली से उतार कर राजसिंहासन पर बैठाना है ।

इसी प्रकार का भावविपर्यय अन्तिम अंक में है, जब नायक के मर जाने पर उसके माता-पिता अपने अग्निदाह के लिए प्रस्तुत हैं और गौरी आकर नायक को पुनर्जीवन देती है। भावों के उत्थान-पतन की उर्मिमालायें तरङ्गायित करने में हर्ष का कौशल उच्चकोटिक है।

हर्ष ने इस नाटक में उद्दीपन विभावों को प्रायशः रमणीयतम वर्णनों के रूप में अतिशय रुचि लेकर प्रस्तुत किया है। केवल इन वर्णनों के सहारे नागानन्द सर्वोत्तम काव्यों में गिना जा सकता है। दानवीर के लिए उद्दीपन विभाव हैं मलय पर्वत के शाखी—

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै-
र्नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः
कथमतिथिसपर्यां-शिक्षिताः शाखिनोऽपि ।। १·१२

चतुर्थ अंक की दानवीरता की भूमिका सूर्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत की गई है—

निद्रामुद्रावबन्धव्यतिकरमनिशं पद्मकोशादपास्य-
न्नाशापूरैककर्मप्रवणनिजकरप्राणिताशेषविश्वः ।
दृष्टः सिद्धैः प्रसक्तस्तुतिमुखरमुखैरस्तमप्येष गच्छ-
न्नेकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः ।।

शृङ्गार के लिए उद्दीपन है कुसुमाकरोद्यान की परा श्री—

निष्यन्दश्चन्दनानां शिशिरयति लतामण्डपे कुट्टिमान्ता-
नाराद् धारागृहाणां ध्वनिमनु तनुते ताण्डवं नीलकण्ठः ।
यन्त्रोन्मुक्तश्च वेगाद् चलति विटपिनां पूरयन्नालवाला-
नापातोत्पीडहेलाहृतकुसुमरजः पिञ्जरोऽयं जलौघः ।। ३·७

कवि को कुछ वर्णनों का चाव था। उन्हें नाटक में प्रस्तुत करने के लिए भ्रान्ति का सहारा लिया गया है। अस्थि-संघात को भूल से मलयसानु समझ कर चतुर्थ अंक में उसका वर्णन किया गया है—

शरत्समयपाण्डुभिः पयोदपटलैः प्रावृताः प्रालेयाचलशिखरश्रियमुद्वहन्त्येते मलयसानवः ।

इसी अंक में नायक के अन्नदान से प्रभावित होकर देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और दुन्दुभिनिनाद करा रहे हैं, किन्तु कवि को पाठक के समक्ष पारिजात और प्रलय-कालीन मेघ संवर्तक का वर्णन करना है। वह गरुड को भ्रान्ति में डालकर उसके मुख से कहलवाता है—

अां ज्ञातं सोऽपि मन्ये मम जवमरुता कम्पितः पारिजातः ।
सर्वैः संवर्तकाभ्रैरिदमपि रसितं जातसंहारशङ्कैः ।। ४·२८

तपोवन का वर्णन स्वप्नवासवदत्त के तपोवन-वर्णन के समान है ।

कलाओं का वर्णन भी कवि को विशेष प्रिय है । प्रथम अंक में नायिका के संगीत की विस्तृत आलोचना है । नायक के द्वारा नायिका का पूर्वराग की स्थिति में चित्र-रचना का उल्लेख भास की रचनाओं में प्रदर्शित है । इसमें विविध रंगों के धातु-खण्डों से रेखाचित्र बनाने का उल्लेख है। शिलातल में संक्रान्त प्रतिबिम्ब चेटी को द्वितीय अंक में चित्र की भाँति प्रतीत होता है। इन सब उल्लेखों से स्पष्ट है कि शृङ्गारित वृत्तियों का ललित कलाओं से निकट सम्बन्ध था और नाटक में इनका संयोजन आवश्यक माना जाता था ।

शैली

हर्ष का शब्द-चयन अनुप्रासात्मक होने के कारण संगीत-प्रधान है । कदाचित् ही कोई पद्य हो, जिसमें ध्वनियों का अनुप्रासात्मक निनाद उपराया न हो। इसका एक अनुत्तम उदाहरण है—

आलोक्यमानमतिलोचनदुःखदायि-
रक्तच्छटा निजमरीचिरुचो विमुञ्चत् ।
उत्पातवाततरलीकृततारकाभ-
मेतत्पुरः पतति किं सहसा नभस्तः ।। ५·५

इसकी प्रथम पंक्ति में ल और म द्वितीय में र, च और तृतीय और चतुर्थ में त की पुनरावृत्ति रमणीय है।

शब्द-चयन वर्ण्य-विषय की कठोरता या मसृणता के अनुसार कठोर या कोमल है । यथा नीचे के पद्य में प्रथम पंक्ति गरुड की कठोरता और द्वितीय पंक्ति जीमूत-वाहन की कोमलता ध्वनित करती है—

महाहिमस्तिष्कविभेदमुक्तरक्तच्छटार्चितचण्डचञ्चुः ।
क्वासौ गरुत्मान् क्व च सोमसौम्यस्वभावरूपाकृतिरेष साधुः ।।

हर्ष की कतिपय स्वभावोक्तियाँ अनूठी हैं । यथा,

वासोऽर्थं दययेव नातिपृथवः कृत्तास्तरुणां त्वचो
भग्नालक्ष्यजरत्कमण्डलु नभः स्वच्छं पयोनैर्झरम् ।
दृश्यन्ते त्रुटितोज्झिताश्च वटुभिर्मौञ्ज्यः क्वचिन्मेखला
नित्याकर्णनया शुकेन च पदं साम्नामिदं पठ्यते ।। १·११

हर्ष ने संवादों में अपनी शैली को कहीं-कहीं लोकोक्तियों द्वारा प्रभविष्णु बनाया है। लोकोक्तियाँ प्रायशः अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा और प्रतिवस्तूपमा आदि अलंकारों के लिए हैं। कतिपय लोकोक्तियाँ अधोलिखित हैं—

(१) किं मधुमथनो वक्षस्थलेन लक्ष्मीमनुद्वहन् निर्वृत्तो भवति—द्वितीय अंक में

(२) रत्नाकरादृते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः । द्वितीय अंक में

(३) कीदृशो नवमालिकया विना शेखरकः । तृतीय अंक में

(४) शरीरनाम्नि का शोभा सदा वीभत्सदर्शने ।। ५·२३

(५) शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ।। ४·७

कहीं-कहीं उपमानों की खोज नितान्त मौलिक है। यथा नीचे के पद्य में जीमूतवाहन के लिए समुद्र और मलयवती के लिए समुद्र की वेला उपमान हैं—

क्षौमे भङ्गवती तरङ्गितदशे फेनाम्बुतुल्ये वहन्
जाह्नव्येव विराजितः सुपयसा देव्या महापुण्यया ।
धत्ते तोयनिधेरयं सुसदृशीं जीमूतकेतुः श्रियं
यस्यैषान्तिकवर्तिनी मलयवत्याभाति वेला यथा ।। ५·२

इसमें श्लेषानुप्राणित उपमालंकार है। हर्ष को श्लेष के प्रति कुछ विशेष अभिरुचि थी। तृतीय अंक में 'वर्णन' शब्द के श्लेष रूपी कीचड़ में विमूढ़ करके विचारे विदूषक का मुँह काला करके परिहास प्रस्तुत किया गया है। उसकी इस दुर्गति को देखकर नायक का भी कुछ मनोरञ्जन हुआ ही है और उसने विदूषक से कहा है—

धन्यः खल्वसि, योऽस्मासु तिष्ठत्सु भवानेवं वर्ण्यते ।

यह चुटकी श्लेषानुप्राणित है। यहाँ श्लेष केवल शाब्दिक ही नहीं है, अपितु कार्यपरक है। यह संघटना संस्कृत-नाटच साहित्य में अनुत्तम है।

कोरी कल्पना के आधार पर इस नाटक में कतिपय स्थलों पर ठोस भावुकता की अभिव्यक्ति की गई है। नीचे के पद्य में नायक ने कल्पना कर ली है कि नायिका का हाथ सापराध है, क्योंकि उसने कण्ठ में पाश डाला। अतएव नायक उसे छोड़ेगा नहीं—

कण्ठे हारलता योग्ये येन पाशस्त्वयार्पितः ।
गृहीतः सापराधोऽयं कथं ते मुच्यते करः ।। २·१२

नीचे के पद्य में शब्द-संघात द्वारा रौद्र-रस की व्यञ्जना अभिप्रेत है—

चञ्चच्चञ्चूद्धृतार्धच्युतपिशितलवग्राससंवृद्धगर्धै-
गृध्रैराबद्धपक्षद्वितयविधुतिभिर्बद्धसान्द्रान्धकारे ।। ४·१८

इसमें बीभत्सोचित शब्दावली से उस रस की व्यञ्जना की गई है।

कुछ पद्यों में ध्वनि की योजना यथास्थान होने के कारण विशेष प्रासङ्गिक है।

यथा,

दिनकरकरामृष्टं बिभ्रत् द्युति परिपाटलां
दशनकिरणैरुपसर्पद्भिः स्फुटीकृतकेसरम् ।
अयि मुखमिदं मुग्धे सत्यं समं कमलेन ते
मधु मधुकरः किन्त्वेतस्मिन् पिबन्न विभाव्यते ।।३.१३

इसमें व्यञ्जना द्वारा नायक नायिका के मुखकमल का मधुकर बनना चाहता है। यह बात प्रणय-विकास के क्रम में कही गई है, जहाँ अभिधा अनुपयुक्त होती।

हर्ष की शैली उनकी रचनाओं में प्रायः सर्वत्र संवादोचित है। संवादों के माध्यम से लम्बे-चौड़े व्याख्यान नहीं दिये गये हैं। छोटे-छोटे वाक्य नित्य प्रयोग में आने वाले शब्दों में सन्निवेशित हैं और पारस्परिक सम्बोधन परस्पर आत्मीयता ध्वनित करते हैं। संवादों में स्वाभाविकता है और उनकी वाग्धारा मर्मस्पर्शिनी है।

छन्द

नागानन्द में ११६ पद्य १२ छन्दों में परिगणित हैं। इनमें शार्दूलविक्रीडित जैसे १९ अक्षरों के लम्बे छन्द में सबसे अधिक पद्य ३१ हैं। स्रग्धरा छन्द भी कवि को विशेष प्रिय है। इसमें २१ अक्षर प्रत्येक पाद में होते हैं। इस छन्द में १६ पद्य हैं। मात्रिक छन्दों में अनुष्टुप् और आर्या का बाहुल्य है। अनुष्टुप् में २२ और आर्या में २१ पद्य हैं। वसन्ततिलका की वासन्तिक छठा यथायोग्य तृतीय अङ्क के आठ पद्यों में है। यह अंक हास्य और मधुपान की प्रवृत्तियों के कारण वसन्ततिलका के योग्य ही है। इनके अतिरिक्त शिखरिणी तीन पद्यों में हरिणी और मालिनी प्रत्येक दो पद्यों में तथा इन्द्रवज्रा, मालिनी, द्रुतविलम्बित और शालिनी प्रत्येक एक पद्य में मिलते हैं। उपजाति का प्रयोग छः पद्यों में है।

समुदाचार

भास ने जिस समुदाचार की विशेष चर्चा अपने रूपकों में की थी, वह हर्ष के नागानन्द में पर्याप्त मिलती है। केवल मानवों में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी समुदाचार की भावना कवि को प्रतीत हुई है। यथा,

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दैर्नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः कथमतिथिसपर्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि ।।

अन्त में बोधिसत्त्व के रूप में नायक का समुदाचार-घोष है—

नित्यं प्राणाभिघातात् प्रतिविरम कुरु प्राक्कृते चानुतापं
यत्नात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितप्राणिहिंसात्तमेतद्
दुर्गाधापारवारेर्लवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्ह्रदस्य ।। ५.२५

पारम्परिक पर्यालोचन

नागानन्द को संस्कृत के काव्यशास्त्र के आचार्यों के बीच सुदूर प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट आदि प्रसिद्ध आलंकारिकों ने रस-विमर्श के प्रकरण में नागानन्द को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। इसके शान्त और शृंगार का विरोध कहाँ तक परिहारणीय है--इसका अन्यत्र भी विवेचन मिलता है। दशरूपक की टीका अवलोक में जीमूतवाहन को उदात्त कोटि का नायक बताया गया है, यद्यपि वह विजिगीषु नहीं है। इन सब उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि नागानन्द सर्वसम्मानित नाटक माना जाता था। डा० कुन्हन राजा के शब्दों में---The Nāagānanda is one of the best dramas in the Sanskrit language, deserving a place alongside of the best dramas in any language in the world.[१]

अनुप्रेक्षण

हर्ष की जिन पूर्ववर्ती नाटककारों की एक सुसमृद्ध निधि मिली थी, उनमें भास, शूद्रक और कालिदास प्रमुख हैं। हर्ष ने इन तीनों कवियों की रचना-चातुरी को यथावसर आत्मसात् किया। वे अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हुए हैं। इस प्रभाव से हर्ष की महिमा बढ़ी है। हर्ष को जो नैसर्गिक प्रतिभा जन्मजात मिली थी, उसकी प्रभा उपर्युक्त कवियों के साहचर्य में द्विगुणित हुई है।

हर्ष की नाट्यकुशलता सुप्रतिष्ठित रही। परवर्ती कवियों और वाक्यशास्त्र-कारों ने हर्ष को आदर्श मानकर अपनी रचनाओं को उसकी सुगन्धि से सुवासित किया है। भवभूति के उत्तररामचरित और मालतीमाधव, राजशेखर के बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी आदि रूपकों पर हर्ष की कृतियों की छाप अनेक प्रकरणों में मिलती है। शिवस्वामी ने कप्फिनाभ्युदय में मलयपर्वत के परिसर में समुद्रतट पर जो अस्थि-राशि की वर्णना की है, उस पर नागानन्द का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, हर्ष के कथावस्तु के संविधान में कुछ अभिनव तत्त्वों का समावेश हुआ है, जो उनकी मौलिकता प्रमाणित करते हैं।

---

१. Survey of Sanskrit. Lit. P.173.

अध्याय ११

वेणीसंहार

वेणीसंहार संस्कृत के प्रमुख युद्धपरक नाटकों में से है। इसके पहले भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पंचरात्र, ऊरुभङ्ग, बालचरित आदि रूपकों में युद्ध का वातावरण रखा है। वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण की यह एक मात्र रचना उपलब्ध है। नाट्यशास्त्रीय उदाहरणों के लिए यह नाटक अनुत्तम है।

कवि-परिचय

भट्टनारायण ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय केवल इन शब्दों में दिया है—

'कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य'

इससे ज्ञात होता है कि कवि की उपाधि मृगराज थी और यह उपाधि सम्भवतः किसी सिंहोपासक राजा से मिली होगी। वेणीसंहार के उल्लेख सर्वप्रथम वामन के काव्यालङ्कार में ८०० ई० के लगभग तथा आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में ८५० ई० के लगभग मिलते हैं।[1] इससे प्रतीत होता है कि भट्ट को आठवीं शताब्दी में अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना वेणीसंहार के लिए सम्प्रतिष्ठा प्राप्त थी और भट्टनारायण ७५०ई० से पहले ही हुए होंगे।

बङ्गाल के ठाकुर-परिवार में संरक्षित परम्परा के अनुसार भट्टनारायण आदिशूर नामक राजा के द्वारा वैदिक धर्म के प्रचारार्थ बंगाल में बुलाये जाने वाले पाँच ब्राह्मणों में से एक हैं। स्टेनकेनो के अनुसार आदिशूर मगध का गुप्तवंशीय राजा हुआ और इसे ही आदित्यसेन कहा गया। रमेशचन्द्र मजुमदार के अनुसार ६७५ ई० के लगभग आदित्यसेन शक्तिशाली होकर मगध में स्वतन्त्र राजा हुआ। यदि इसी आदिशूर या आदित्यसेन से भट्टनारायण का सम्बन्ध रहा हो तो उन्हें सातवीं शती के उत्तरार्ध

---

१. वामन ने वेणीसंहार से 'पतितं वेत्स्यसि... क्षितौ' का उल्लेख किया है कि इसमें 'वेत्स्यसि' पद शुद्ध है वेत्सि+असि। आनन्दवर्धन ने 'कर्ता द्यूतच्छलानां ५·२६ पद्य को ध्वनि के उदाहरण रूप में बताया है।

में रख सकते हैं।[१] ऐसे मतान्तरों के होने से भट्टनारायण की तिथि के विषय में केवल इतना ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे ८००ई० के पहले हुए। अभी तक भट्ट नारायण की तिथि और आश्रय-स्थान कल्पनात्मक आयामों पर ही अवलम्बित हैं।

वेणीसंहार के कथाविन्यास से प्रतीत होता है कि भट्टनारायण वस्तुतः युद्ध के विरोधी थे। भीमसेन के मुँह से रणयज्ञ की स्तुति प्रथम अंक में मिलती है, पर भीम को तो युद्ध के माध्यम से कौरवों से प्रतिशोध लेना था। कवि के युद्ध-विषयक वास्तविक विचारों का परिचय चतुर्थ अंक में सुन्दरक के उन वाक्यों में है, जब वह दुर्योधन को ढूँढ़ते हुए युद्ध-भूमि की वीभत्सता को देखता है। उसने कहना आरम्भ किया—

हा अति करुणं खल्वत्र वर्तते। एषा वीरमाता समरविनिहतकं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुक-निवसनया समग्रभूषणया बध्वा सहानुम्रियते।

धृतराष्ट्र की मानसी स्थिति के चित्रण से कवि का युद्धविरोध प्रकट होता है।

कथावस्तु

महाभारतीय युद्ध के कुछ पहले भीम का सोचना है कि मुझे कौरवों से वैर का बदला लेने का अवसर नहीं मिल सकेगा और पाण्डव कृष्ण सहित प्रयास कर रहे हैं कि जैसे-तैसे सन्धि हो जाय। उन्होंने सहदेव से अपना मत व्यक्त किया कि चाहे जो कुछ हो, मैं तो लड़ूँगा। वे आयुधागार की ओर जाना चाहते हैं पर पहुँचते हैं द्रौपदी के चतुःशाल के समीप। सहदेव उनका पीछा नहीं छोड़ते। द्रौपदी के चतुःशाल में पहुँचने पर सहदेव भीम से कहते हैं—यहाँ विराजमान हों और कृष्णा (द्रौपदी) के आगमन की प्रतीक्षा करें। कृष्णा नाम से भीष्म को स्मरण हो आया कि कृष्ण सन्धि कराने के लिए पाण्डवों की ओर से भेजे गये हैं। उसके पूछने पर सहदेव बताते हैं कि पाँच गाँव लेकर सन्धि कर ली जाय—यह पाण्डव-पक्ष का सन्धि-प्रस्ताव है। भीम युधिष्ठिर पर क्रुद्ध हैं। उधर से द्रौपदी भी रोती हुई आती है। वह कुछ दूर पर खड़ी होकर क्रोधी भीम की बातें सुनती है। सहदेव भीम को समझाते हैं कि युधिष्ठिर के सन्धि-प्रस्ताव का व्यंग्य अर्थ है कि जिन पाँच गाँवों को माँग रहे हैं, उनमें से चार दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों के विनाश-योजना की स्थली रहे हैं। इनसे

---

१. इनको पाँचवी शती में रखने वाले डा० कुन्हन राजा का मत है—
From the spirit of the drama, sometime in the fifth century A. D. would be the probable time of the drama......This drama and Bhāravi's grand epic, the Kirātārjunīya, form a pair, woking the martial spirit of the nation which is one of the most prominent traits in the national genius of India. They are also contemporaneous with each other in all probability. Survey of Sanskrit Lit. rature P. 83.

सबको ज्ञात होगा कि दुर्योधन पाण्डवों का अपकार करता आ रहा है, तब भी युधिष्ठिर कुल का नाश चाहते हैं और दुर्योधन सन्धि नहीं करना चाहता। भीम इन सब बातों से प्रभावित नहीं हैं। वे द्रौपदी के विषय में पूछते हैं और वह सम्मुख आ जाती है।

भीम देखते हैं कि द्रौपदी उदास है। द्रौपदी की चेटी ने बताया कि आज जब गान्धारी देवी का पादवन्दन करने के लिए देवी गई थीं, तो मार्ग में दुर्योधन की पत्नी भानुमती मिल गई। उन्होंने देवी से कहा कि अब तो केश बाँधो। सम्प्रति पाण्डव केवल पाँच गाँव ही माँग रहे हैं। मैंने ही उत्तर दिया कि जब तक तुम लोगों की चोटी बँधी है, तब तक देवी की चोटी कैसे बँधेगी ? चेटी के इस उत्तर से प्रसन्न होकर भीम ने कहा——

चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ।।

अर्थात् अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघ तोड़कर उसके रक्त से लथपथ हाथों से तुम्हारे केश को बाँधूगा।

उसी समय कंचुकी ने आकर बताया कि दुर्योधन सन्धि का प्रस्ताव लेकर गये हुए कृष्ण को बन्दी बनाना चाहता था, किन्तु भगवान् ने अपना विश्वरूप दिखा कर उसे हतप्रभ कर दिया।

युद्ध की घोषणा हो गई। सहदेव और भीम युद्धोचित पराक्रम का प्रदर्शन करने के लिए चल पड़ते हैं।

युद्ध में अभिमन्यु के मारे जाने से दुर्योधन बहुत प्रसन्न होकर भानुमती से मिलने के लिए आता है। इधर भानुमती अपने गत रात्रि के स्वप्न से व्याकुल थी। स्वप्न था कि किसी नकुल ने सौ साँपों को मार डाला। इस स्वप्न की चर्चा वह अपनी सखियों से करती है और वहीं छिपकर खड़ा दुर्योधन सब कुछ सुन लेता है। जब भानुमती सूर्य के लिए अर्घ्य अर्पित करना चाहती है तो दुर्योधन छिपे-छिपे आकर उसके हाथ में पुष्प देते हुए शृङ्गारित क्रीडा करता है। दुर्योधन के हाथ से फूल गिर पड़ते हैं। भानुमती आशंकित है। दुर्योधन कहता है कि ऐसी श्रेष्ठ सेना और सेनापति होने पर तुम्हारी आशंका व्यर्थ है। दुर्योधन उसके साथ विहार करना चाहता है। उसी समय जोरों का तूफान आने पर वह दारुपर्वत प्रासाद में भानुमती के साथ चला जाता है। कंचुकी तभी आकर समाचार देता है कि दुर्योधन के रथ का झण्डा टूट गया है। तभी जयद्रथ की माता और पत्नी दुर्योधन से कहते हैं कि आज सन्ध्या तक जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा अर्जुन ने की है। उसे बचाइये।

युद्ध में जयद्रथ, घटोत्कच आदि तो मारे ही गये। धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को उस समय मार डाला, जब युधिष्ठिर ने झूठे ही अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार की घोषणा कर दी और उसे सुनकर द्रोणाचार्य ने शस्त्र छोड़ दिया था। अश्वत्थामा को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो क्रोध और शोक से विवश होकर वह रोने लगा। उसके मामा कृपाचार्य ने उसे ढाढस बँधाया और दुर्योधन के पास ले जाकर उसे सेनापति बनाने के लिए अनुरोध किया। दुर्योधन का निकटतम मित्र कर्ण था, जिसे वह सेनापति पहले ही बना चुका था। अभिमानी कर्ण ने अश्वत्थामा और द्रोण के सम्मान के विरुद्ध जब कुछ कहा तो अश्वत्थामा और कर्ण में द्वन्द्व युद्ध की स्थिति आ गई। कृपाचार्य और दुर्योधन के बीच-बिचाव करने से उन दोनों में युद्ध तो नहीं हुआ, किन्तु अश्वत्थामा ने खिन्न होकर प्रतिज्ञा की कि जब तक कर्ण है, तब तक युद्ध नहीं करूँगा।

महाभारतीय युद्ध अतिशय घमासान हो रहा था। भीम की पकड़ में उसका परम शत्रु दुःशासन आ गया। उसे कर्णादि नहीं बचा सके। भीम ने उसका रक्त पीकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। युद्ध में दुर्योधन प्रहार के कारण मूर्छित हो गया। उसे बचाने के लिए सूत रथ पर दूर ले गया। उसने तभी भीम को यह कहते सुना कि दुःशासन का रक्त पान कर चुका हूँ। उसे भय हुआ कि कहीं दुर्योधन-विषयक प्रतिज्ञा भी वह आज ही न पूरी करे। वह रथ लेकर एकान्त में वटवृक्ष के नीचे पहुँचा। दुर्योधन को चेतना आई। वह दुःशासन की मृत्यु का समाचार सूत से सुनकर विलाप करने लगा। तभी सुन्दरक नामक कर्ण के परिचर ने युद्ध की प्रगति का वृत्त दुर्योधन को दिया कि दुःशासन के वध के पश्चात् कर्ण ने घोर युद्ध किया। अर्जुन कर्ण से लड़ने लगा। वृषसेन ने अपने पिता कर्ण की सहायता के लिए युद्ध किया। अर्जुन ने वृषसेन को मार डाला। परस्पर लड़ते हुए भीम और कर्ण अपना युद्ध स्थगित करके उन दोनों का युद्ध देखने लगे। अन्त में अर्जुन ने वृषसेन को मार डाला। दुर्योधन वृषसेन की मृत्यु के समाचार से पुनः मूर्छित हो गया। सचेत होने पर उसने सुन्दरक से पूछा—फिर क्या हुआ? कर्ण ने क्या किया? सुन्दरक ने बताया कि अर्जुन पर कर्ण ने आक्रमण कर दिया। कर्ण के रथ के घोड़े मारे गये थे और उसका कूबर टूट गया था। वह युद्ध के काम के योग्य नहीं रह गया था। उस रथ से उतरने पर कर्ण ने मुझे आपके पास एक पत्र देकर भेजा है। पत्र में कर्ण ने अपनी असमर्थता की चर्चा करते हुए लिखा था—

त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण वाष्पेण वा ॥ ४.१२

दुर्योधन ने सुन्दरक के द्वारा कर्ण को सन्देश भेजा कि मैं भी युद्ध में साथ देने के लिए आ रहा हूँ। सुन्दरक के जाने के पश्चात् दुर्योधन भी रथ से जाना चाहता था। तभी धृतराष्ट्र और गान्धारी अपने पुत्र के पास आये। दुर्योधन ने उनके समक्ष आत्मग्लानि प्रकट करते हुए कहा—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य बाष्पपयसां तव चाम्बहेतुः।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ।। ५·२

गान्धारी ने माता का हृदय खोल कर रख दिया कि तुम जीओ हम अन्धों की लकड़ी बन कर, हमें जय और राज्य से क्या करना है ? यद्यपि दुर्योधन ने कहा कि आज पाण्डवों को मार गिराता हूँ, फिर भी गान्धारी ने कहा कि अब तो युद्ध बन्द करो। धृतराष्ट्र ने समर्थन करते हुए अपने मन की बात कही--

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत् फाल्गुनात् ।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय ।।

धृतराष्ट्र ने कहा कि अभीप्सितपणबन्ध से युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। दुर्योधन ने कहा कि मेरी ओर से सन्धि का प्रस्ताव लज्जास्पद है--

तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भित्त्वं गदाकोटिना
भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदधाम्यहम् ।। ५·७

धृतराष्ट्र ने कहा कि यदि सन्धि नहीं करना है तो शत्रु को गूढ उपाय से मारो--

यद्यपि भवान् समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम् ।

दुर्योधन ऐसा करने के लिए भी सहमत नहीं हुआ। तभी सूत ने आकर बताया कि कर्ण मार डाला गया। दुर्योधन ने विलाप तो किया ही, साथ ही वह कर्ण को मारने वाले अर्जुन का वध करने के लिए चल पड़ा। आगे के युद्ध के लिए शल्य सेनापति बनाया गया। उस समय सञ्जय के मुँह से निकल पड़ा--

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजञ्शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।। ५·२३

भीम और अर्जुन दुर्योधन को खोजते हुए आये। माता-पिता के सामने ही दुर्योधन को पाण्डवों के साथ खोटी-खरी कहनी-सुननी पड़ी। उनके लौट जाने के पश्चात् अश्वत्थामा आये, जिन्हें कर्ण का द्रोही होने के कारण दुर्योधन ने बढावा नहीं दिया और कहा--

अवसानेऽङ्गराजस्य योधव्यं भवता किल ।
ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ।। ५·३९

धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि जाकर अश्वत्थामा को मनाओ। दुर्योधन युद्ध-स्थल की ओर रथ पर चल पड़े। धृतराष्ट्र और गान्धारी शल्य के शिविर की ओर गये।

महाभारतीय युद्ध के अन्तिम चरण में भीम ने प्रतिज्ञा की कि यदि कल तक दुर्योधन को नहीं मारता तो स्वयं प्राण दे दूँगा। दुर्योधन को ढूँढने के लिए नियुक्त पुरुषों में से पाञ्चालक ने बताया कि भीम के किसी परिचित व्याध ने उनसे बताया है कि अमुक जलाशय तक एक पदपद्धति जल के समीप पहुँच कर लौटी नहीं है। वहाँ जाने पर भीम ने तारस्वर से उसके पूर्वकालिक कुकृत्यों के लिए दुर्योधन की भर्त्सना की और कहा कि छिपे क्यों हो? बाहर आओ। तब तो दुर्योधन बाहर निकल आया। दुर्योधन को भीम ने विकल्प दिया कि पाँच पाण्डवों में से जिस किसी को चाहो, अपने से द्वन्द्व-युद्ध के लिए चुन लो। भीम को ही दुर्योधन ने चुना।

भीम और दुर्योधन का युद्ध होने लगा। उसी समय कृष्ण ने पाञ्चालक को भेजा कि तुम जाकर युधिष्ठिर से कहो कि अभिषेक की सज्जा करें। इधर युधिष्ठिर तदनुसार सज्जा कर ही रहे थे कि चार्वाक नामक कोई राक्षस मुनि-वेष धारण करके युधिष्ठिर से मिला और बोला कि गदा-युद्ध में दुर्योधन ने भीम को मार गिराया है। अब अर्जुन और भीम का युद्ध चल रहा है। दुर्योधन के पक्षपाती बलराम कृष्ण को लेकर द्वारका चले गये। इसे सुनकर युधिष्ठिर और द्रौपदी विलाप करते हुए चिता में जल मरने के लिए उद्यत हो गये।[१] परिजनों में से कोई भी आज्ञा देने पर भी चिता नहीं बना रहा था। युधिष्ठिर ने स्वयं चिता बनाई। उसी समय शंख का निर्घोष और कलकल सुनाई पड़ा। दुर्योधन आ रहा है--इस भय से युधिष्ठिर जल मरने के लिए शीघ्रता करने लगे। उन्हें भ्रान्ति हो गई कि अर्जुन मार डाला गया।

भीम दुर्योधन को मार कर रक्त-रंजित होकर उनके पास आ रहा था। उसे युधिष्ठिर और द्रौपदी ने समझा कि दुर्योधन है। युधिष्ठिर तो उसे मारने के लिए धनुष लेने लगे। भीम ने अपना परिचय दिया और पूछा कि पांचाली कहाँ है? वह डर कर युधिष्ठिर के साथ चिता में कूदने जा रही थी। भीम ने उसे पकड़ ही लिया। युधिष्ठिर उससे भिड़ गये। उसे दुरात्मन्, भीमार्जुनशत्रो आदि कहने लगे। तभी कंचुकी ने उन सब की भ्रान्ति दूर की। भीम ने वेणीसंहार किया। थोड़ी देर में अर्जुन और कृष्ण भी आ गये। उन्हें ज्ञात हो गया कि मुनि वेषधारी राक्षस ने सब माया रची थी। सब लोग प्रसन्न मन से मिले।

---

१. युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा थी कि मेरा कोई भी भाई यदि मर जाये तो मैं स्वयं मर जाऊँगा। कीथ ने लिखा है कि चार्वाक ने युधिष्ठिर को सूचना दी कि भीम और अर्जुन दोनों मर चुके हैं। डा० कुन्हन राजा ने भी उन दोनों के मरने की चर्चा की है। दोनों के मरने की बात निराधार प्रतीत होती है, जब स्वयं चार्वाक ने कहा है--अद्य तु बलवत्तया शरदातपस्यापर्याप्तिमेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि।

समीक्षा

वेणीसंहार में महाभारतीय युद्ध की कथा के चौखटे में कवि ने भीम के पराक्रमों को और विशेषत: द्रौपदी के वेणीसंहार को केन्द्र-भाग में अवस्थित करके अपने रसराग की निष्पन्नता के लिए कतिपय कल्पित कथांशों को सन्निवेशित किया है। महाभारत के मूल कथानक में जोड़तोड़ और परिवर्तन करने की अभिरुचि का परिचय इस रूपक में मिलता है। यह भास के महाभारतीय रूपकों के समान ही है। वेणी-संहार का आरम्भ ही एक नये ढंग से होता है, जिसमें भीम को कौरवों से सन्धि करने के विरुद्ध बताया गया है। महाभारत के अनुसार भीम कौरवों से सन्धि के पक्ष में थे। उन्होंने कृष्ण से कहा था—

वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः।
भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ।। उ० प० ७४.२२

प्रथम अङ्क में भीम के युद्धारम्भ के ठीक पूर्व द्रौपदी से मिलने का प्रकरण भी कवि-कल्पित है। पूरे प्रथम अङ्क का कथानक कवि ने अपनी ओर से जोड़ा है, जिसमें सहदेव और भीम की, द्रौपदी और भीम की, चेटी और भानुमती की और कंचुकी और भीम की बातचीत प्रमुख तत्त्व हैं। समग्र नाटक के लिए ही एक अभिनव तत्त्व है भीम की प्रतिज्ञा—

स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिः
उत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भीमः ।। १·२१

महाभारत में इस प्रतिज्ञा और वेणीसंहार की कहीं चर्चा नहीं है।[1]

दूसरे अङ्क का कथानक अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् का है। यह भी पूरा का पूरा कवि-कल्पित है। महाभारत में दुर्योधन की पत्नी की चर्चा इस प्रसङ्ग में नहीं है। द्वितीय अंक के कल्पित कथांश हैं दुर्योधन की पत्नी भानुमती का स्वप्न, कंचुकी और दुर्योधन का अभिमन्यु-वध सम्बन्धी संवाद, दुर्योधन का भानुमती और उसकी सखी की बातचीत सुनना, भानुमती का सूर्य को अर्घ्य अर्पित करना और दुर्योधन का उसमें बाधा डालना, तूफान आने पर दुर्योधन और भानुमती का दारुपर्वत-गृह में विहार करना, कंचुकी द्वारा दुर्योधन के रथ का झण्डा टूटने का समाचार देना, जयद्रथ की माता और पत्नी का दुर्योधन से मिलकर अर्जुन की प्रतिज्ञा की सूचना देना और उससे जयद्रथ की रक्षा का वचन लेना।

तृतीय अङ्क की कथा भी प्राय: पूरी की पूरी कवि-कल्पित है। इसकी कथा महा-भारत के द्रोण पर्व के पश्चात् आरम्भ होती है। महाभारत में वेणीसहार के इस अंक

---

१. ऐसा लगता है कि वेणी बाँधने की प्रतिज्ञा का मूल मुद्राराक्षस में चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी होने के पश्चात् शिखा बाँधने का प्रकरण है।

की नीचे लिखी बातें नहीं मिलती हैं—राक्षसी और राक्षस का संवाद, अश्वत्थामा और सूत का संवाद, अश्वत्थामा और कृपाचार्य का संवाद, कर्ण और दुर्योधन का संवाद, कृपाचार्य द्वारा प्रस्ताव करना कि अश्वत्थामा को सेनापति बनाया जाय और दुर्योधन का यह कहना कि कर्ण को सेनापति बना दिया गया है,[1] कर्ण और अश्वत्थामा का वाग्युद्ध, अश्वत्थामा का परिणामतः शस्त्र त्याग आदि बातें महाभारत में दूरतः भी नहीं हैं। वेणीसंहार के अनुसार कर्ण के सेनापति रहते अश्वत्थामा ने युद्ध नहीं किया, क्योंकि उसने शस्त्र का उस समय परित्याग कर दिया था, किन्तु महाभारत के अनुसार कर्ण के सेनापति होने पर उसने भीम, युधिष्ठिर और अर्जुन से युद्ध किया, पाण्ड्य-नरेश मलयध्वज का वध किया और धृष्टद्युम्न को परास्त किया।

वेणीसंहार के चतुर्थ अङ्क की सारी कथा कवि-कल्पित है। इसके अनुसार कर्ण के सेनापति होने पर युद्ध करते हुए दुःशासन-वध के थोड़ा पहले दुर्योधन प्रहारों के कारण मूर्छित हो जाने के कारण अपने सूत द्वारा रथ से युद्धस्थल से दूर पहुँचाया गया और फिर तो नाम मात्र ही के लिए युद्ध में लौटा। दुर्योधन का यह पलायन महाभारत की कथा से पूर्णतः विपरीत पड़ता है, जिसके अनुसार दुर्योधन युद्ध-भूमि से इस बीच कहीं नहीं ले जाया गया। वेणीसंहार में दुःशासन के मारे जाने का समाचार सूत दुर्योधन को देता है, किन्तु महाभारत में भीम ने दुर्योधन के सामने ही दुःशासन का वध किया। यथा कर्णपर्व में

तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो महागजं केसरिको यथैव।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम्॥ ८३.१८

महाभारत के अनुसार दुःशासन की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन ने वहीं लगातार लड़ते हुए कुलिन्द राजकुमार का वध किया है।

चतुर्थ अंक में कवि कल्पित कथांश हैं दुर्योधन का वटवृक्ष के नीचे शरण लेना, दुर्योधन का दुःशासन के लिए विलाप, कर्ण के परिचर सुन्दरक का वटवृक्ष के नीचे दुर्योधन से मिलना, कर्ण के युद्ध का समाचार देना, कर्ण के पुत्र वृषसेन के वध का वृत्तान्त बताना[2], और कर्ण का दुर्योधन के लिए अन्तिम संवाद पत्र के माध्यम से

---

१. महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा ने द्रोण के मरने के पश्चात् स्वयं प्रस्ताव किया था कि कर्ण को सेनापति बनाया जाय। अश्वत्थामा ने कहा था—

कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून्॥ कर्ण प० १०.१६

२. महाभारत के अनुसार वृषसेन का वध जब अर्जुन ने किया, उस समय दुर्योधन वहीं युद्ध कर रहे थे। कर्णप० अध्याय ८५.३

देना और धृतराष्ट्र और गान्धारी का संजय के साथ दुर्योधन को समझाने के लिए वटवृक्ष के समीप आ जाना।

पंचम अंक की कथावस्तु भी सर्वथा कवि-कल्पित ही है। इसमें धृतराष्ट्र के द्वारा वृषसेन की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन को सुझाव दिया गया है कि पाण्डवों से सन्धि कर लो।।[1] दुर्योधन को कर्ण के वध का समाचार यहीं वटवृक्ष के नीचे सुनाई पड़ता है। महाभारत में युद्धभूमि में दुर्योधन और कर्ण दोनों युद्ध कर रहे थे, जब अर्जुन ने कर्ण का वध किया। इस अंक में धृतराष्ट्र दुर्योधन से पूछते हैं कि शल्य और अश्वत्थामा में से किसे सेनापति बनाना है। दुर्योधन ने बताया कि शल्य अभिषिक्त हो चुका है। महाभारत के अनुसार दुर्योधन ने अश्वत्थामा से पूछा था कि कर्ण के पश्चात् कौन सेनापति हो तो उसने शल्य का नाम सुझाया था।[2] वेणीसंहार में वह शल्य का प्रतियोगी होकर आया है। इसी अंक में भीम और अर्जुन दुर्योधन को ढूंढ़ते हुए आये और उसके साथ ही गान्धारी और धृतराष्ट्र से मिले। वाग्युद्ध का वातावरण बना। भीम ने प्रतिज्ञा की कि कल सबेरे दुर्योधन का ऊरुभंग करूँगा। ऐसा कोई प्रकरण महाभारत में नहीं है। इस अंक में अश्वत्थामा का आना और उसका दुर्योधन के द्वारा परुष वचन बोलकर अनादृत होना महाभारत के विपरीत है। महाभारत में अश्वत्थामा और दुर्योधन का परस्पर मनोमालिन्य ऐसे प्रकरण में नहीं हुआ। वास्तव में वे इस प्रकरण में मैत्रीप्रपन्न थे।

षष्ठ अंक की अधिकांश कथा कवि-कल्पित है। इसमें भीम के द्वारा दुर्योधन का ऊरुभङ्ग तो महाभारतीय कथा के अनुरूप है। शेष कवि-कल्पित कथांश हैं। 'चार्वाक नामक राक्षस का मुनिवेष धारण करके युधिष्ठिर और द्रौपदी को यह समाचार देना कि गदायुद्ध में भीम को दुर्योधन ने मार डाला है और अब अर्जुन से गदायुद्ध हो रहा है।[3] इसे सुन कर युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ जल मरने के लिए चिता में प्रवेश

---

१. इस प्रस्ताव के मूल में महाभारत का वह प्रकरण हो सकता है, जिसमें कृपाचार्य ने दुर्योधन से सन्धि के लिए कहा है। यथा,

तदत्र पाण्डवैः सार्धं सन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो। शल्य० ४·४८

अथवा जिसमें अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा है कि

प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्।
हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित् तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः ।। कर्ण० ८८·२१

२. शल्य० ६·१८-२१

३. चार्वाक की कथा का कल्पनास्रोत मुद्राराक्षस प्रतीत होता है। शत्रुओं को धोखा-धड़ी और झूठे संवादों के चक्कर में डालकर मरवाना--यह सब सिखाने वाले संस्कृत-साहित्य में एक गुरु चाणक्य और उनके पुरोधायक विशाखदत्त ही हैं।

करने ही वाले थे कि उन्हें भीम आते हुए दिखाई पड़े, जिन्हें उन्होंने पहले दुर्योधन समझा।' महाभारत में इस प्रकरण की चर्चा ही नहीं है। महाभारत के अनुसार तो युधिष्ठिर वहीं थे, जहाँ भीम और दुर्योधन का युद्ध हुआ। इसके पश्चात् दुर्योधन के सरोवर में छिपने का रहस्य व्याध ने भीम को और भीम ने युधिष्ठिर को बताया और वे उस सरोवर पर सेनासहित गये, किन्तु वेणीसंहार में व्याध ने यह रहस्य भीम को बताया और भीम कृष्णादि के साथ उस सरोवर पर जा पहुँचे। युधिष्ठिर को तो यह समाचार वेणीसंहार के अनुसार पाञ्चालक नामक दूत देता है, जब वे द्रौपदी के साथ अपने शिविर में हैं। महाभारत के युधिष्ठिर जल में छिपे दुर्योधन को निकालने के लिए उसे उकसाते हैं और एक-एक वीर से गदायुद्ध करने के लिए जल के बाहर निकलवाते हैं। वेणीसंहार में भीम जल का मन्थन करके उसे बाहर निकलवाते हैं।

वेणीसंहार के अनुसार कृष्ण शिविर में स्थित युधिष्ठिर को अपने राज्याभिषेक का समारंभ करने के लिए पांचालक से समाचार भेजते हैं। ऐसा कोई प्रकरण उस दिन का महाभारत में नहीं है। राज्याभिषेक का नाम तक महाभारत में नहीं है।

वेणीसंहार के कथानक में इतने परिवर्तनों और संशोधनों की क्या आवश्यकता आ पड़ी? इस प्रश्न का समाधान है (१) रंगमञ्च पर युद्ध के दृश्य दिखाये नहीं जा सकते—उनका शाब्दिक वर्णन ही किया जा सकता है। युद्ध के ऐसे वर्णन के लिए वक्ता, श्रोता और स्थान की कल्पना कथा में परिवर्तन द्वारा सम्भाव्य थी। इस प्रयोजन से अधिकाधिक परिवर्तन किये गये हैं।[1] (२) नाटक में प्रायः शृङ्गार रस अङ्गी रहा है, पर इसके साथ ही वीर रस का समावेश दूसरे स्थान पर किया ही गया है। भट्टनारायण ने रौद्र रस को अपने नाटक में अङ्गी बनाया तो उनके लिए आवश्यक था कि शृङ्गार रस का समावेश दूसरे स्थान पर करते। इसके उद्देश्य से भानुमती के स्वप्न आदि के कल्पित कथांश को इसमें जोड़ा गया है। (३) पात्रों को प्रच्छन्न रख कर उनके कार्य-कलाप से चमत्कार उत्पन्न करने की परम्परागत रीति का अनुसरण करने के उद्देश्य से षष्ठ अंक में मुनिवेष में चार्वाक और दुर्योधन प्रतीत होने वाले भीम की कथा का उपस्थापन किया गया है। (४) अपने प्रिय प्रकरणों का सन्निवेश करने के लिए कथानक में कतिपय कल्पित अंश जोड़े गये हैं।[2]

---

१. नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगमञ्च पर अस्त्र-शस्त्रात्मक युद्ध नहीं दिखाये जा सकते थे, किन्तु वाग्युद्ध का निषेध नहीं था। वाग्युद्ध वीर रस के पोषण के लिए होता है। भट्टनारायण को वाग्युद्ध का चाव था। तृतीय अंक की कथा की कल्पना इसी अभिप्राय से की गई है।

२. कवि को दुर्योधनादि प्रमुख पात्रों को भड़काना रुचिकर है। तृतीय अंक में कर्ण ने दुर्योधन को भड़काया और प्रथम अंक में द्रौपदी ने भीम को।

वेणीसंहार के कथानक में भावी वस्तु की सूचना अनेक विधियों से प्रायशः प्रस्तुत की गई है। प्रस्तावना में शरद् का वर्णन करते हुए सूत्रधार कहता है--

निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥ १ ६

इसमें शरद् के प्रसंग में धृतराष्ट्र हंस हैं, किन्तु इस पद के द्वारा श्लेष से धृतराष्ट्र के पुत्रों की अभिव्यक्ति होती है और दुर्योधनादि के मारे जाने की सूचना मिलती है। इसी अंक में भीम के नीचे लिखे वक्तव्य द्वारा सूचित किया गया है कि दुर्योधन की जाँघ टूटेगी और उसके रक्त से द्रौपदी का वेणीसंहार होगा--

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥[1] १·२१

कभी-कभी वक्ता कुछ और ही कहना चाहता है किन्तु उसके मुँह से भावी कथावस्तु की दिशा की सूचना मिलती है। द्वितीय अंक में दुर्योधन भूल से कहता है कि पाण्डव दुर्योधन का वध करेंगे--

सह भृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात् पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥ २·५

वह कहना चाहता था '**पाण्डुसुतं सुयोधनः**', किन्तु मुँह से भ्रान्तिवश उलटा निकल गया।

इसी प्रकार का भावीसूचक वक्तव्य है कञ्चुकी का--

'भग्नं भीमेन भवतः' इत्यादि ।

भानुमती के स्वप्न द्वारा द्वितीय अंक में भावी घटनाओं की सूचना दी गई है। भानुमती ने स्वप्न देखा था कि किसी नकुल ने सौ साँपों का विनाश कर दिया था।

मुनिवेषधारी राक्षस के द्वारा युधिष्ठिर आदि के आत्मदाह की योजना की पूर्व सूचना पंचम अंक में धृतराष्ट्र के नीचे लिखे वक्तव्य में मिलती है--

रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम् ।

तृतीय अंक के विष्कम्भक में भीम के द्वारा दुःशासन-वध की पूर्व सूचना यथास्थान दी गई है।

---

१. इस घटना की पूर्व सूचना 'दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि' ४·२ पद्य में भी है। दुर्योधन की मृत्यु की सूचना नीचे लिखे पद्यांशों में भी दी गई है--

वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया । ५·८
छलबहुलमरीणां संगरं हा हतोऽस्मि ॥ ५·२१
स्त्यानेनार्द्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥ ५·३५

अर्थोपक्षेपकों के द्वारा महाभारत की प्रमुख घटनाओं का परिगणन स्थान-स्थान पर किया गया है। इस प्रकार के उल्लेखों से नाटकीय इतिवृत्त के विकास का परिचय दर्शक को होता चलता है। यथा,

> आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-
> स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।
> प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो
> बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात्॥ २·२

विष्कम्भक के इस पद्य से ज्ञात होता है कि भीष्म पर्व के पश्चात् द्रोण पर्व में अभिमन्यु का वध हो जाने के पश्चात् की कथा आगे है। तृतीय अङ्क के विष्कम्भक में जयद्रथ, घटोत्कच, भगदत्त, द्रुपद, भूरिश्रवा, सोमदत्त, वाह्लीक और द्रोण आदि के वध के प्रकरण की चर्चा की गई है। नेपथ्य से भी वारंवार ऐसी घटनाओं की घोषणा की गई है। कहीं-कहीं संवादों में प्रसङ्ग से थोड़ी दूर खिच जाने का दोष मोल लेकर भी महाभारतीय घटनाओं का परिगणन किया गया है।[1] पात्रों का परिचय देते हुए उनके महान् पराक्रमों की चर्चा करते हुए भी ऐसी घटनायें चर्चित हैं।[2]

कथानक का विकास कतिपय स्थलों पर इस प्रकार किया गया है कि प्रमुख पात्र भ्रान्ति में पड़े रहते हैं।[3] आरम्भ में ही भीम ने यह समझने की भूल की है कि युधिष्ठिर सन्धि करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। द्वितीय अङ्क में स्वप्न को सुनते हुए बीच में ही दुर्योधन यह समझ लेता है कि भानुमती का नकुल से अनुचित सम्बन्ध है। भग्नम्-भग्नम् यह शब्द कंचुकी से सुनकर उसे अपनी ही जाँध के विषय में यह भावी सूचना प्रतीत होती है। तृतीय अङ्क में द्रोणाचार्य को यह सुनाया गया कि 'अश्वत्थामा हतः' और यह सुनकर उन्हें भ्रान्ति हुई कि मेरा पुत्र ही मारा गया। षष्ठ अङ्क में प्रायः पूरी कथा ऐसी ही भ्रान्तियों से बनी है। युधिष्ठिर ने चार्वाक के कहने से मान लिया कि भीमसेन मारा गया और साथ ही जब दुर्योधन को मार कर भीम रक्तरंजित होकर आ रहे थे तो उन्हें दुर्योधन समझने की भ्रान्ति युधिष्ठिर और द्रौपदी आदि ने की। प्रायः इन सारी भ्रान्तियों की सृष्टि भट्टनारायण ने स्वयं की है। केवल द्रोण की भ्रान्ति को कवि ने महाभारत से ज्यों का त्यों ले लिया है। ऐसी भ्रान्तियों के माध्यम से विशेषतः जहाँ पात्र को कवि ने प्रच्छन्न कर रखा है, पाठक की उत्सुकता द्विगुणित की गई है। यथा, छठें अंक में भीम द्रौपदी से कहते हैं—**तिष्ठ तिष्ठ भीरु। क्वाधुना गम्यते**' तो युधिष्ठिर उससे भिड़ जाते हैं और कहते हैं—

---

१. इस योजना से अन्यथा अप्राप्य भावों के वर्णन का अवसर मिलता है।

२. वेणी० ६·१७, १८,१९।

३. वेणी० ५·३६ में।

'दुरात्मन् भीमार्जुनशत्रो सुयोधनहतक' आदि। ऐसे स्थलों में हास्य रस की बहुशः निष्पत्ति होती है।

कतिपय स्थलों पर एक अन्य प्रकार की नाटकीय भ्रान्ति की सृष्टि भट्टनारायण ने की है।[1] द्रोणाचार्य मर चुका है, किन्तु अश्वत्थामा यह समझता है कि वे जीवित हैं और वह कहता है--

कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्काम्।
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्यावकाशः॥ ३·७

इसी प्रकार की भ्रान्ति में पड़ा हुआ दुर्योधन भी दिखाया गया है, जब दुःशासन मर चुका है। दुर्योधन कहता है कि उसे बचाना है। ऐसे अवसर पर सूत ने उससे कहा—

एतद्विज्ञापयामि आयुष्मन् सम्पूर्णप्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन। अत एवं ब्रवीमि।

कथानक को एक स्थान पर महर्षियों से सम्बन्धित करके उसे गरिमा प्रदान की गई है। यथा,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते॥ ६·४४

इसमें व्यास, वाल्मीकि, परशुराम आदि महर्षियों के राज्याभिषेक के अवसर पर आने की चर्चा गौरवप्रदायिनी है।

वेणीसंहार का कथानक इस प्रकार का बनाया गया है, जिसमें रंगमंच पर प्रायशः किये हुए कामों की सूचना संवाद के द्वारा दी जाती है। रंगमंच पर कामों का अभिनय नहीं होता।[2] ऐसी स्थिति में इसमें भारती वृत्ति का आधिक्य और अन्य वृत्तियों की स्वल्पता है। ऐसा होना नाटक के लिए चिन्त्य है। डा० कुन्हनराजा ने वेणीसंहार की इस प्रवृत्ति का पर्यालोचन करते हुए लिखा है--

There is plenty of action,...But there is little of actual movement found on the stage, as there is too much of narration of events than

---

१. इस नाटकीय योजना के आदि प्रवर्तक भास हैं। उन्होंने इस प्रकार की नाटकीय भ्रान्तियों को पात्र-सम्बन्धी निगूढता से प्रायशः अतिशय निपुणतापूर्वक समञ्जसित किया है।

२. यह नाटक की त्रुटि है। नाट्यदर्पण के अनुसार--चरितासाक्षात्कारे हि प्रेक्षकाणामव्युत्पत्तिः। पृ० ३३ गायकवाड सीरीज़।

exhibition of action. So many things we know from reports on the stage by other characters.[1]

मुद्राराक्षस का कथानक, जैसा हम पहले लिख चुके हैं, कुछ ऐसा ही है।

कथानक का एक और बड़ा दोष है इसको उपन्यासात्मक बना देना। नाटक में पंचसन्धियों के द्वारा सारा कथानक सुनिबद्ध होना चाहिए, जिसमें आदि से अन्त तक सारी बातें एक मुख्य प्रयोजन को लेकर कही-सुनी जाती हों। भट्टनारायण इस मत को नहीं मानते। उन्हें तो प्रयोजन से सर्वथा असम्बद्ध बातें भी कहनी हैं, यदि वे दर्शक को रुचिकर मात्र प्रतीत हों। इस प्रवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण है वेणीसंहार का तृतीय अंक। इसमें कर्ण और अश्वत्थामा का सारा विवाद नाटक के प्रयोजन से असम्बद्ध है। डा० डे ने वेणीसंहार की इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है—

The work is hardly a unified play, but is rather a panaromic procession of a large number of actions and incidents, which have no intrinsic unity except that they concern the well known epic personages who appear, no naturally developed sequence except the sequence in which they are found in the epic.[2]

वेणीसंहार की कथा के कार्यव्यापार में नाटकीय एकसूत्रता का अभाव है। नाटक में कोई भी बात ऐसी नहीं कहनी चाहिए, जिसका पूर्वापर कार्य-प्रवृत्ति से सम्बन्ध न हो। भट्टनारायण इस नियम की चिन्ता नहीं करते। उदाहरण के लिये तृतीय अंक में कृपाचार्य का वक्तव्य है—

केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन् नूनं निःशेषिताः प्रजाः ॥ ३·१४

अर्थात् द्रोण के केशग्रह से सारी प्रजा का ही विनाश होगा। इस वक्तव्य से दर्शक के मन में उत्कण्ठा होगी कि द्रोण के केशग्रह से किस प्रकार मार काट में या अन्यथा प्रजा का सर्वथा विनाश होता है। किन्तु नाटक में इस उत्कण्ठा के शमन की कोई चर्चा नहीं है और ऐसा लगता है कि कृपाचार्य की यह उक्ति व्यर्थ ही है। इसी प्रकार धृतराष्ट्र की गान्धारी से नीचे लिखी उक्ति है—

इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिविरमेव गच्छावः।

इस बात का कोई पूर्वापर प्रसंग न होने से इसकी व्यर्थता स्पष्ट है।

पात्रोन्मीलन

वेणीसंहार में पात्रों की संख्या ३२ है, जो अपवाद रूप से अधिक कही जा

---

१. Survey of Sanskrit Literature P. 181

२. S. K. De : History of Sanskrit Literature P. 274

सकती है ।[1] इनमें २६ पात्र मानव और तीन पात्र राक्षस हैं । २२ पात्र पुरुष और १० पात्र स्त्री हैं । इस नाटक का नायक कौन है—यह एक विवादास्पद प्रश्न है । युधिष्ठिर भीम और दुर्योधन को आलोचकों ने नायक मान कर उनके नायकत्व-विषयक पक्ष का समर्थन या विरोध किया है, जो नीचे लिखे अनुसार समाकलित है ।

युधिष्ठिर पूरे महाभारत का नायक है । वेणीसंहार में भी पूरे महाभारत की कथा है विशेषत: युद्ध की । अतएव युधिष्ठिर वेणीसंहार का नायक हो सकता है । नाटक का नायक भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार धीरोदात्त होना चाहिए, भीम और दुर्योधन दोनों धीरोद्धत हैं ।[2] नाटक का बीज युधिष्ठिर का उत्साह है, जो राजलक्ष्मी-प्राप्ति-रूप फल में परिणत होता है ।[3] इस फल की प्राप्ति युधिष्ठिर को होती है । युधिष्ठिर राजा हैं और भीम उनका छोटा भाई सहायक है । भीम के अप्रतिम उत्साह से भी जो विजय प्राप्त होती है, वह राजा युधिष्ठिर की विजय है न कि भीम की । स्वयं भीम ने युधिष्ठिर का नेतृत्व प्रतिपादित करते हुए वेणीसंहार के प्रथम अंक में कहा है—

संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता ।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलम् ॥ १.२५

एते वयमुद्यता आर्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुमेव

युधिष्ठिर रणयज्ञ में यजमान दीक्षित हैं, यज्ञ का फल (प्रिया परिभव क्लेशोपशान्तिः) उन्हें मिलता है । भीम उनकी अनुज्ञा का परिपालन करते हैं । ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर के होते हुए भीम को नायक मानना उचित नहीं है । साधारणत: भरतवाक्य नायक के मुख से कहलवाया जाता है । इस नाटक में युधिष्ठिर भरतवाक्य बोलते हैं । युधिष्ठिर के नायकत्व का विरोध करने वालों का मत है कि वेणीसंहार के पंचम अङ्क में वे नेपथ्य से बोलते हैं और केवल अन्तिम अङ्क में ही वे रङ्गमञ्च पर आते हैं । नायक को तो प्रत्येक अङ्क में होना चाहिए । वास्तव में यह आदर्श स्थिति है, किन्तु संस्कृत के प्रायश: नाटकों में नायक सभी अङ्कों में नहीं रहता । वेणीसंहार में भीम केवल प्रथम, पञ्चम और छठें अङ्क में रङ्गमञ्च पर आते हैं और दुर्योधन प्रथम अङ्क में ही रंगमंच पर नहीं आता है ।

---

१. नाट्यशास्त्र के अनुसार ।
न महाजनपरिवारं कर्तव्यं नाटकं प्रकरणं वा ।
येनात्र कार्यपुरुषाश्चत्वारः पंच वा ते स्युः ।।

२. नाट्यशास्त्र का यह नियम सुप्रतिष्ठित नहीं प्रतीत होता । स्वप्नवासवदत्त का नायक उदयन धीरललित है, फिर भी वह सर्वसम्मति से नायक माना गया है । यदि धीरललित नायक है तो धीरोद्धत्त या धीरप्रशान्त के नायक होने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

३. लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या ।। ६.२६

युधिष्ठिर के नायकत्व के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि उनकी निजी भूमिका का पूरे नाटक के विन्यास में कोई विशेष महत्त्व नहीं हैं। यदि युधिष्ठिर के सारे कार्यकलाप को नाटक से निकाल भी दिया जाय तो वेणीसंहार में कोई विशेष त्रुटि नहीं आती। नायक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए, जैसी भीम और दुर्योधन की है। इसी आधार पर उनका नायकत्व समर्थित होता है।

द्रौपदी के वेणीसंहार को नाटक का फल और चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात, आदि को बीज मान लेने पर कथा का प्रणयन करने वाला भीम वस्तुतः नायक प्रतीत होता है। वह बीजाधान करता है और फल की प्राप्ति करता है। इसके नायकत्व के विरोध में एक तो है इसका धीरोद्धत होना और दूसरे इसका युधिष्ठिर के द्वारा अधिष्ठित होना। भीमसेन स्वयं ही कहता है कि फल की प्राप्ति युधिष्ठिर को होती है, जो **लक्ष्मीरार्ये निषण्णा** से स्पष्ट है। धीरोदात्त के अतिरिक्त अन्य कोटियों के नायक कतिपय नाटकों में मिलते हैं, किन्तु जहाँ तक युधिष्ठिर के द्वारा अधिष्ठित होने की बात है, वह अन्यथा नहीं की जा सकती। इसका प्रतिनायक दुर्योधन भी इसके सर्वथा योग्य ही है, जिससे इसका वैर जीवन के आरम्भ से गदायुद्ध तक रहा है। किसी और को नायक मानने पर प्रतिनायक की सटीकता इतनी प्रत्यक्ष नहीं बैठती। भीम के चरित्र का छिछलापन उसके नायकत्व के प्रतिकूल है। दूसरे, तीसरे और चौथे अङ्क में भीम रंगमंच पर नहीं आता, किन्तु दूसरे अंक में कंचुकी की सूचना के अनुसार भीम दुर्योधन की जाँघ तोड़ने वाला है, तीसरे अङ्क में भीम की चर्चा नेपथ्य से सुनाई पड़ती है कि वह दुःशासन का रक्त पीने जा रहा है और चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक उसके शौर्य और कार्यों को चर्चा करता है। इस प्रकार समस्त नाटक में उसका चरित प्रेक्षकों के मानस में साक्षात् है।

अन्त में दुर्योधन का नायकत्व आता है। इसके लिए वेणीसंहार को एक दुःखान्त नाटक माना गया है। भारतीय शास्त्रीय परम्परा के अनुसार यह ठीक नहीं है, क्योंकि दुःखान्त नाटक की कल्पना प्राचीन विधान के अनुसार की ही नहीं गई। इसको दुःखान्त नाटक मानने वाले कहते हैं कि 'वेणीसंहार का दुर्योधन एक महान् पात्र है, जो हमारी समवेदना प्राप्त कर लेता है'। हमें समवेदियों का यह मत मानने में कठिनाई होती है कि दुर्योधन एक महान् पात्र है। अन्य पात्र दुर्योधन के विषय में क्या कहते हैं—इसे जाने दीजिये। दुर्योधन ने स्वयं अपने विषय में कहा है—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा।
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी॥[1] ५.३०

---

१. इसी आशय का पद्य २.२५ दुर्योधन ने जयद्रथ की माता को सुनाया था।

ऐसा करने और कहने वाले दुर्योधन को महान् पात्र न कह कर महापात्र कहना चाहिए। दुर्योधन इस नाटक में अधिकतम चर्चित पात्र है और उसका और उसके पक्ष का विघात इस नाटक की सबसे बड़ी घटना है। नाटकीय संविधानों का प्रगमन भी दुर्योधन के द्वारा निदेशित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दुर्योधन में नायक बनने के अनेक लक्षण प्रचुर मात्रा में हैं, किन्तु वैदेशिक दृष्टिकोण से। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार दुःखान्त नाटक और दुर्योधन का नायकत्व अमान्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युधिष्ठिर, भीम और दुर्योधन तीनों के नायक-तत्व के पक्ष-विपक्ष में अनेक सबल और दुर्बल तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार एकमात्र धीरोदात्त युधिष्ठिर ही नायक हो सकता है। ऐसी स्थिति में नायक के सम्बन्ध में शास्त्रसम्मत निर्णय ही मान्य होना चाहिए कि युधिष्ठिर नेता है। नेता के सामान्य लक्षण का उत्कर्ष एक मात्र युधिष्ठिर में ही है।[1]

भट्टनारायण की चरित्र-चित्रण कला प्रभविष्णु है। लेखक ने कल्पना द्वारा कुछ अभिनव कथात्मक परिस्थितियों की सर्जना करके उनमें पात्रों को संसक्त करते हुए उनकी चारित्रिक प्रतिक्रियाओं का एक नया अध्याय ही अपनी ओर से जोड़ा है। महाभारत में दुर्योधन के चरित्र का शृङ्गार-पक्ष अज्ञात सा है। भास ने अपने ऊरु-भंग में उसकी दो पत्नियों की चर्चा की है। वेणीसंहार में शृंगारित पक्ष का विशेष समुन्मेष किया गया है।[2] युद्ध के अन्तिम विन्यास में दुर्योधन के कारुणिक मनोभावों का चित्रण उसके पास धृतराष्ट्र और गान्धारी के आने के प्रकरण में हुआ है। साथ ही उसके दृढ विचारों का परिचय मिलता है।

अश्वत्थामा और कर्ण के वाग्युद्ध का तीसरे अंक में नया प्रकरण भी इन दोनों पात्रों के चरित्र की एक अभिनव प्रवृत्ति का परिचय देता है। उच्चकोटि के पात्रों का हीन स्तर की कलहपूर्ण बातचीत का इसके समान प्रकरण विरल ही है।

---

१. नेता का सामान्य लक्षण है—

> नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
> रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।
> बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः
> शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥ दश० २.१–२

२. वेणीसंहार में कहा गया है कि युद्ध के समय भी दुर्योधन 'अन्तःपुरविहार-सुखमनुभवति'।

कतिपय पात्रों को भ्रान्ति में रखकर उनकी चारित्रिक प्रतिक्रियाओं का निदर्शन किया गया है। प्रथम अंक में भीम की युधिष्ठिर के विषय में भ्रान्ति है कि वे युद्ध नहीं चाहते। भीम ने स्पष्ट ही कहा है—

किं नाम कदाचित् खिद्यते गुरुः। गुरुः खेदमपि जानाति।

ऐसी परिस्थिति में उनके क्रोध का पारावार ऊर्मिल होता है। कृपाचार्य और अश्वत्थामा को भी अपने प्रति दुर्योधन की धारणा के विषय में भ्रान्ति थी। अश्वत्थामा तो भोला ब्राह्मण था। उसे कृपाचार्य ले गये थे दुर्योधन के द्वारा सेनापति नियुक्त कराने, जब कर्ण पहले ही नियुक्त हो चुका था। दुर्योधन को सबसे अधिक भ्रान्ति थी अपने और अपने पक्ष की शक्ति की।[1] उसका अभिमत था कि द्रोण या कर्ण के रहते कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। जब दुर्योधन ने शल्य को सेनापति बनाया तो उसकी अन्ध-मूढता का व्याख्यान सञ्जय ने किया—

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।
आशा बलवती राजञ्शल्यो जेष्यति पाण्डवान्॥ ५·२३

पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए भट्टनारायण ने उनके प्रधान कार्यों का विशेषण रूप में परिगणन किया है। दुर्योधन के चरित्र-चित्रण के लिए कहा गया है—

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽतिमानी।
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत् पाण्डवा यस्य दासाः॥ ५·२६

भीम के चरित्र-चित्रण के लिए युधिष्ठिर का वक्तव्य है—

कान्तार-व्यसनबान्धव, हा मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर, जतुगृहविपत्समुद्रतरण-यानपात्र, हा किर्मीरहिडिम्बासुरजरासन्धविजयमल्ल, हा कीचकसुयोधनानुजकमलिनी-कुञ्जर।

अर्जुन के चरित्र-चित्रण के लिए युधिष्ठिर का वक्तव्य है—

हा सव्यसाचिन्, हा त्रिलोचनाङ्गनिष्पेषमल्ल, हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकी-कृतामरलोक, हा बदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस, हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य, हा अस्त्रशिक्षा-बलपरितोषितगाङ्गेय, हा राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष, हा गन्धर्वनिर्वासितदुर्योधन, हा पाण्डवकुलकमलिनीराजहंस।

दुःशासन और दुर्योधन का चरित्र-चित्रण भीम के मुख से है—

---

१. दुर्योधन ने सभी भाइयों के मर जाने के पश्चात् धृतराष्ट्र और गान्धारी को आश्वासन देते हुए कहा था—

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया।
विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम्॥ ५.४

पर ऐसा कभी न होने वाला था और न हुआ।

ऊरू करेण परिघट्टयतः सलीलं दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या ।
दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥

कतिपय पात्रों के चरित्र का श्वेतीकरण किया गया है। भीम ने दुःशासन का रक्त महाभारत के अनुसार पिया था। वेणीसंहार में रुधिरप्रिय नामक राक्षस भीम में प्रवेश करके रक्त पीता है।[1] दुर्योधन के चरित्र के श्वेतीकरण के लिए कहा गया है कि वह गुप्त उपायों से शत्रुसंहार नहीं चाहता है—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः
किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाश्यं रणे ॥ ५.६

साथ ही धृतराष्ट्र का चरित्र कालीकृत है। धृतराष्ट्र महाभारत में अपनी कूटनीति के लिए सापवाद है। भट्टनारायण के अनुसार वह दुर्योधन को परामर्श देता है—

रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम् ।

द्रोणाचार्य का चरित्र भी हीन स्तर पर ला दिया गया है। कर्ण ने तृतीय अङ्क में द्रोण पर दोष लगाया है कि वह अपने पुत्र को पृथिवी का राजा बनाना चाहता था, अतएव उसकी मृत्यु की बात सुनते ही द्रोण ने जीवन को निरुद्देश्य मान कर शस्त्र परित्याग कर दिया।

कतिपय पात्रों का चारित्रिक विकास परिस्थितिवशात् दिखाया गया है। दुर्योधन का अपने विषय में कहना है—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य वाष्पपयसां तव चाम्बहेतुः ।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ॥ ५.२

भट्टनारायण के चरित्र-चित्रण में एक दोष है गाली-गलौज से पात्रों को सम्पृक्त करना। और पात्रों की कौन कहे, उनके युधिष्ठिर भी शालीन मर्यादाओं को छोड़कर अपशब्दों का प्रयोग वारंवार करते हैं। ऐसे कुछ अपशब्द हैं—

कर्ण के लिए **आशीविषभोगी,** दुर्योधन के लिए **दुरात्मन्, कौरवाधम, कुरुपतिपशु**। कर्ण और अश्वत्थामा को तो अपशब्द-पराक्रम में अद्वितीय दक्षता प्राप्त थी। आश्चर्य तो यह है कि कृपाचार्य और दुर्योधन के समक्ष ही वे परस्पर गाली दे रहे थे

---

१. रुधिरप्रिय ने अपनी प्रिया से कहा है—
वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम्। तच्चास्माभि राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यम्। तृतीय अङ्क में।

और उन्होंने गाली रोकने का प्रयास नहीं किया। ऐसी अपशब्द-प्रक्रिया कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन और युधिष्ठिर आदि के चारित्रिक स्तर को तो गिराती ही है, साथ ही नाटक और उसके लेखक को भी कुछ नीचे उतार देती है। पात्रों का जो चारित्रिक स्तर महाभारत में है, वह भट्टनारायण के वेणीसंहार में प्रतिष्ठित नहीं रह सका है। प्रायः सभी पात्र हीन प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं पात्रों का चरित्र विरोधी प्रवृत्तियों का निदर्शक है। एक ओर तो भीम **'स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः'** का व्यंग्य अर्थ नहीं समझते, दूसरी ओर वे कृष्ण विषयक उच्च दार्शनिक तत्त्व का नीचे लिखे पद्य में व्याख्यान करते हैं—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥ १·२३

रस-विमर्श

वेणीसंहार में प्रमुख इतिहासकारों ने वीर रस को अङ्गी माना है और रौद्र, करुण, शृङ्गार, भयानक, बीभत्स आदि को अङ्ग रस माना है।[1] वीर रस को अङ्गी मानना समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इसमें आदि से अन्त तक रौद्र का स्थायी भाव क्रोध वर्तमान है और ऐसी परिस्थिति में रौद्र रस अङ्गी होना चाहिए।[2] नाटक के मूल, मध्य और अन्त में क्रोध का सर्वातिशायी स्वरूप दिखाई देता है। इसका मूल है द्रौपदी का आधर्षण, केशग्रहण आदि।[3] यथा,

१. डा० डे का मत है कि अङ्गी रस वीर है। उनका कहना है—Venīsaṁhāra takes valour as its ruling sentiment. History of Sanskrit Literature P. 272. डा० कुन्हन राजा इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं—This is a drama of martial heroism. Survey of Sanskrit Literature P. 180.

२. रौद्र को अङ्गी मानने में शास्त्रीय विप्रतिपत्ति है कि नाटक में अङ्गी रस शृङ्गार और वीर ही हो सकते हैं। शास्त्र का यह मानदण्ड उत्तररामचरित नामक नाटक में नहीं लगता, क्योंकि उसमें करुण रस अङ्गी है। इसी प्रकार नियम के अपवाद रूप में वेणीसंहार में रौद्र मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

३. आधर्षण रौद्र का उद्दीपन विभाव होता है।
नाट्यदर्पण की नीचे लिखी उक्ति में शृङ्गार, वीर और रौद्र—इन तीनों को अङ्गीरस होने की चर्चा है—अद्भुत एव रसोऽन्ते निर्वहणे। यत्र एको नायकौचित्येनान्यतमोऽङ्गी प्रधानरसो यत्र। यतः शृङ्गार-वीर-रौद्रः स्त्रीरत्न-पृथ्वीलाभ-शत्रुक्षयसम्पत्तिः। करुण-भयानक-वीभत्सैस्तन्निवृत्तिरितीयता क्रमेण लोकोत्तरासम्भाव्य फलप्राप्तौ भवितव्यमन्तेऽद्भुतेनैव। पृ० २९ गायकवाड सीरीज

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य सम्भृतम् ।
तत् प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ।। १·१४
तद् द्यूतारणिसम्भूतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः ।
क्रोधज्योतिरिदं महत् कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ।। १·२४

इस प्रकरण में अभिनवगुप्त रौद्र रस मानते हैं

इसका मध्य है भीम के द्वारा दुःशासन की छाती का रक्त पीना। यथा,

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः ।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्
सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ।। ३·४७

और अन्त है दुर्योधन का ऊरुभंग

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन
स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि ।
कान्ते राज्ञः कुरूणामपि रुधिरमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ।। ६·४२

वेणीसंहार के प्रायः सभी पात्र जहाँ-कहीं मिलते हैं, प्रायशः क्रोधाभिभूत दिखाई पड़ते हैं। नीचे प्रतिपात्र क्रोध भाव के परिचायक कतिपय उद्धरण दिये जाते हैं—

भीम

१. सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाभिवर्तते । प्रथम अंक में
२. क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत । १·१०
३. एवमतिसम्भूतक्रोधेषु युष्मासु कदाचित् खिद्यते गुरुः ।
४. क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवान् । १·१२
५. युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः । १·१७
६. रोषावेशवशादार्यागताप्यार्येण नोपलक्षिता ।
७. किं नाथ, दुष्करं त्वया परिकुपितेन। प्रथम अङ्क में
८. बलानां नाथेऽस्मिन् परिकुपितभीमार्जुनभये । ३·४५
९. आर्य प्रसीद किमत्र क्रोधेन । पञ्चम अङ्क में
१०. क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने। ५·३३
११. क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य । षष्ठ अंक से
१२. वीर्यक्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापरिघपाणिना ।

१३. उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिंगः । ६·६

१४. क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः । ६·१२

१५. क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः । ६·१३

१६. निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि । ६·३७

भीम वेणीसंहार का प्रमुख पात्र है और इसे क्रोध के अतिरिक्त दूसरे स्थायी भाव से सम्पृक्त नहीं देखा जाता। भीम का ही कार्यकलाप इस नाटक में प्रमुख है और इसमें रौद्र रस और क्रोध नामक भाव उत्फुल्ल हैं। दशरूपक की टीका अवलोक में भीम और दुर्योधन के कार्यकलाप में रौद्र का निदर्शन किया गया है। यथा,

वैरिकृतादिर्यथा वेणीसंहारे-

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु नः प्रहृत्य ।
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः
स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः । १·८

इत्येवमादिविभावैः प्रस्वेदरक्तवदननयनाद्यनुभावैरमर्षादिव्यभिचारिभिः क्रोध-परिपोषो रौद्रः। परशुरामभीमसेनदुर्योधनादिव्यवहारेषु वीरचरित-वेणीसंहारादेरनु-गन्तव्यः ।। दशरूपक ४·७४ पर अवलोक

इसके अनुसार धनञ्जय का यही मत प्रतीत होता है कि वेणीसंहार में अङ्गी रौद्र ही है, क्योंकि ये ही दोनों नाटक के प्रधान पात्र हैं।

दुर्योधन के क्रोध के परिचायक नीचे लिखे वाक्य हैं—

१. **पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन**। प्रथम अंक में

२. **कर्णाननेन्दुस्मरणात् क्षुभितः शोकसागरः ।**
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ।। ५·१६

३. **किं वा नेदं क्रोधस्थानम्** । पंचमाङ्क से

४. **क्रोधात् किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयास्तोऽभिमानः ।। ६·८**

वेणीसंहार में वृषसेन के साथ अर्जुन का जो युद्ध हुआ, उससे वीर रस की निष्पत्ति होती है। यह वीर अङ्गी नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें लड़ने वाले पात्र अर्जुन और वृषसेन प्रमुख पात्रों में से नहीं हैं और न वेणीसंहार की दृष्टि से वृषसेन को पराजित करना परम प्रयोजन से साक्षात् सम्बद्ध ही है। इस नाटक में अर्जुन भी प्रायशः क्रोधाविष्ट दिखाया गया है, जैसा नीचे के वाक्यों से स्पष्ट है।

१. **अद्य खलु पुत्रवधामर्षितेन गाण्डिविनास्तमिते द्विक्सनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः**। द्वितीय अङ्क से

२. यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥ २·२५

३. अरे रे वृषसेन पितुरपि तावत् ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुखं स्थातुम् । चतुर्थ अङ्क से

४. उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन गाण्डिविना ।

५. शक्तिरवण्डनामर्षितेन गाण्डिविना भणितम् । चतुर्थ अङ्क से

पाण्डवों का सामूहिक रूप से क्रुद्ध होना भी इस नाटक में प्रायशः चर्चित है। यथा,

(१) एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् । प्रथम अंक से

(२) ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः परिक्रामन्ति । द्वितीय अङ्क से

(३) सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवानाम् ।

(४) क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात् क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि । ६·४२

(५) क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पंचाक्षतास्ते वयम् । ६·४५

इन पात्रों के सक्रोध होने पर रौद्र रस की प्रधानता निर्विवाद है, यद्यपि क्रोध कतिपय स्थानों पर वीर रस के लिए सञ्चारी भाव है।

क्या भीम के कार्यकलाप में वीर रस हो सकता है? नहीं, क्योंकि वीर रस के लिए आलम्बन विभाव उत्तम प्रकृति का मनुष्य होना चाहिए।[1] धीरोद्धत होने के कारण और राक्षसाविष्ट होने के कारण भीम रौद्र रस के ही आलम्बन हो सकते हैं। और भी, क्रोध के स्फुरण के लिए शत्रु की अन्यायकारिता अपेक्षित होती है,[2] जो वेणीसंहार में दुर्योधन के व्यवहारों में पूर्णरूप से व्यक्त होती है। उसने स्वयं कहा है—

तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा । कृष्टा केशेषु भार्या इत्यादि ।

रौद्र रस के लिए आवश्यक होता है उग्र कर्म, जिसमें भीम पूर्णता निष्णात हैं। उन्होंने दुःशासन की छाती का रुधिरपान किया है और दुर्योधन की जाँघ तोड़कर उसके रक्त से स्नान किया है।

वीर और रौद्र की परिस्थितियों में एक स्पष्ट अन्तर है कि जहाँ वीर के लिए पात्रों में प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता का भाव होना चाहिए, वहाँ रौद्र के लिए प्रतिशोध

---

१. अभिनवभारती के अनुसार 'उद्रिक्तं हन्तृत्वं येषां ते उद्धताः । उद्धतस्वभावत्वादेव ह्यसौ (भीमः) क्रोधपरवशः सन्ननुचितमपि प्रतिज्ञातवान् । षष्ठ अध्याय पृष्ठ ५८४

२. अन्यायकारिता प्राधान्येन कोधस्य विषयः । अभिनवभारती षष्ठ अध्याय पृ० ५८२

का भाव होना चाहिए। क्रोध के लिए प्रतिपक्षी के दुराचार का ध्यान आने पर ही किसी पुरुष में रक्तास्यनेत्रता आती है। अभिनवभारती के अनुसार रौद्र के प्रकरण में शत्रु के प्रति इतना रोष होना चाहिए कि केवल उसकी हार ही पर्याप्त नहीं होती, अपितु शत्रु के मर जाने के पश्चात् भी उसकी छीछालेदर आवश्यक होती है। दुःशासन की छाती का रक्तपान करके और दुर्योधन के रक्त से अपने को अभिषिक्त करके भीम ने यह कमी भी पूरी की है।[1]

कवि का एक प्रमुख उद्देश्य है युद्ध के प्रति विराग उत्पन्न करना। सामरिक परिस्थितियों पर विमर्श करते हुए कतिपय स्थलों पर करुण की अजस्र धारा प्रवाहित की गई है। यथा,

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे।
दग्धे दैवात् सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि-
न्नाशाबन्धः कमपि कुरुते छाययार्थी जनोऽयम्॥ ६·२६

इसमें असहायता और दैन्य की अभिव्यक्ति अनूठी ही है।

कतिपय स्थलों पर भावों का सहसा उत्थान-पतन विशेष मर्मस्पर्शी है। दुर्योधन अपनी प्रिया भानुमती के मानिनी होने की कल्पना कर रहा है। तभी उसे भास होता है कि वह कुलटा है और उसके मुँह से सहसा निकल पड़ता है—

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन् वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत्॥ २·९

जब अश्वत्थामा को अपने पिता के अप्रतिम युद्ध-कौशल पर अभिमान प्रकट करते हुए पाते हैं, तभी तीसरे अंक में उसे सुनना पड़ता है—**कुतोऽद्यापि ते तातः** और **किं तातो नामास्तं गतः**। इसी प्रकार का भावात्मक उत्थान-पतन अश्वत्थामा के सेनापति बनने के प्रसङ्ग में तृतीय अङ्क में मिलता है, जब कृपाचार्य दुर्योधन से प्रस्ताव करते हैं कि अश्वत्थामा को सेनापति बनाया जाय और दुर्योधन कहता है कि इस पद पर कर्ण नियुक्त हो चुका है। भावात्मक उत्थान-पतन का चरमोत्कर्ष छठें अङ्क में है, जहाँ कृष्ण का सन्देश पाकर युधिष्ठिर को राज्याभिषेक का समारम्भ करना है किन्तु वहीं राक्षस आकर कहता है कि भीम मारा गया। तभी युधिष्ठिर के चिता में जलने की तैयारी होने लगती है।

---

१. मारणप्राधान्यं नानाप्रहरणेन दर्शयति। शिरः कर्तनादि मृतशरीरस्यापि क्रोधातिशयात् सूचयन् वीराद् भेदमाह। युद्धवीरेहितन्नास्ति। षष्ठ अध्याय पृ० ५९२

साधारणतः आलोचकों की धारणा है कि वेणीसंहार में हास्य रस का अभाव है। सूक्ष्मेक्षिका से हास्य की निष्पत्ति दूसरे अंक में है, जहाँ दुर्योधन भानुमती की बातें सुनकर समझता है कि वह नकुल से अनुचित प्रणयानुराग करती है। वह उस पर और नकुल पर क्रोध करता है। यहाँ रौद्राभास के कारण हास्य रस की निष्पत्ति होती है।[1]

वृत्तियों की दृष्टि से विचार करने पर भी वेणीसंहार में रौद्र रस का अङ्गित्व प्रतीत होता है। वीर रस के लिए सात्त्वती वृत्ति होनी चाहिए, जिसमें सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया और आर्जव को प्रकट करने वाले काम होने चाहिए।[2] इसके विपरीत रौद्र रस के लिए आरभटी वृत्ति होनी चाहिए, जिसमें माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध और उद्भ्रान्त चेष्टायें होनी चाहिए। वेणीसंहार में प्रत्यक्ष ही आरभटी वृत्ति का प्राधान्य होने से रौद्र का अङ्गी होना निर्विवाद है।[3]

व्यभिचारिभावों की दृष्टि से भी वेणीसंहार में रौद्र की प्रधानता है। रौद्र के व्यभिचारी हैं औग्रच, अमर्ष, मोहादि और वीर के व्यभिचारी हैं हर्ष, गर्व और मोद आदि। वेणीसंहार में रौद्र के व्यभिचारियों की प्रखरता है न कि वीर के।

समुदाचार

नाटकीय समुदाचार का उत्कृष्टतम रूप भास के नाटकों में मिलता है। वेणी-संहार में भी समुदाचार शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है।[4] कहीं-कहीं समुदाचार की सीख भी दी गई है और इसके प्रस्तावक हैं भीम। उनका कहना है—**वन्द्याः खलु गुरवः।** अर्जुन को भीम ने समुदाचार की सीख देते हुए कहा है—

मूढ, अनुल्लंघनीयः सदाचारः। न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्। (उपसृत्य) सञ्जय, पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय। अथवा तिष्ठ, स्वयं विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीया गुरवः।

भीम केवल समुदाचार के सिद्धान्तों की सीख देना जानते थे। उनके साथ अर्जुन भी धृतराष्ट्र और गान्धारी को उद्विग्न करने के लिए कहता है—

---

१. ऐसे हास्य की निष्पत्ति के लिए देखिये अभिनवभारती षष्ठ अध्याय पृष्ठ ५१६—
तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम्। अनौचित्यप्रवृत्तिकृतमेव हास्य-विभावत्वम्। तच्चानौचित्यं सर्वरसानां विभावानुभावादौ संभाव्यते।

२. विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः। दश० २.५३

३. शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती॥ दश० २.६२

४. समुदाचार शब्द के कतिपय प्रयोग इस प्रकार हैं—
षष्ठ अङ्क में—अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः। अकालोऽयं समुदाचारस्य।
श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ।। ५·२७

ऐसा लगता है कि गाली-गलौज भरे इस नाटक में समुदाचार की प्रवृत्ति विपरीत ही है।

शैली

भट्टनारायण की शैली शब्दालङ्कार और अर्थालंकारों से उभयविध पर्याप्त मण्डित है। श्लेषात्मक शब्दों के प्रयोग से कहीं कहीं श्रोता पात्र ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेता है, जो वक्ता का अभिप्रेत न हो। **'स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः'** में भीम स्वस्थ का अर्थ समझता है सुखी किन्तु वक्ता का अभिप्राय है स्वर्गस्थ या मृत। सहदेव ने भीम से कहा—**अत्रोपविश्यार्यः पालयतु कृष्णागमनम्।** इस प्रसङ्ग में कृष्णा (द्रौपदी) का आगमन उनका अभिप्राय स्पष्ट है, किन्तु कृष्णागमन से भीम ने कृष्ण का सन्धि विषयक दौत्य से लौटना अर्थ ध्यान करके बात आगे बढ़ाई। भानुमती ने स्वप्न का विवरण देते हुए जो कुछ कहा उससे श्लेष के द्वारा अनभिप्रेत अर्थ लेते हुए दुर्योधन को पर्याप्त मानसिक सन्ताप हुआ। श्लेषात्मक शाब्दी क्रीडा भट्टनारायण को रुचिकर थी। उसकी सहायता से वे कार्यदिशा को मोड़ देने में समर्थ होते हैं।

नीचे लिखे पद्य में यमकालंकार के द्वारा उत्प्रेक्षा की भूमिका प्रस्तुत की गई है—

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम् ।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन ।। ५·११

भट्टनारायण का शब्दों की अनन्त राशि पर अप्रतिम अधिकार था, जिसका परिचय उन्होंने अनुप्रासात्मक पदशय्या की निर्मिति करने में प्रायशः दिया है। यथा,

तेनागच्छतैव कुमारवृषसेनेन विदलितासिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः कठिनकङ्कपत्रैः कृष्णवर्णैः शाणशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तरुर्मुहूर्तेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनञ्जयस्य रथवरः ।

इस गद्यांश में ल, त, क, श, आदि के अनुप्रास से संगीतमयी वाग्धारा प्रवाहित है। प्यास के लिए उदन्या का प्रयोग भी उनकी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

कहीं-कहीं स्वरों के अनुप्रास का चमत्कार है। यथा,

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते । ५·२३

इसमें ए की छः बार पुनरावृत्ति अनुप्रासात्मक है।

अर्थालंकारों का संयोजन करने में कवि की कल्पना-परिधि पर्याप्त विशाल प्रतीत होती है। यथा,

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ।। ३·४

सेना की भगदड़ से जो कोलाहल हुआ, उसके लिए उपमान की प्राप्ति कवि ने **महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरव** में की है ।[1]

कवि अलंकार की धारा में कहीं-कहीं औचित्य को बहा देने में भी नहीं हिचकिचाता । यथा, कृष्ण का युधिष्ठिर के लिए सन्देश है—

रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि ।
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ।। ६·१२

भला कौन क्षत्रिय कहेगा और सुनेगा इस बात को कि परशुराम ने क्षत्रद्रुम का उच्छेद किया था ।

भट्टनारायण की शैली में व्यञ्जना का चमत्कार प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। जैसा कवि ने स्वयं लिखा है—उनके अर्थ को ग्रहण करने के लिए व्युत्पन्न होना चाहिए । भीम भले व्यञ्जना न समझें, किन्तु उनकी वाणी में व्यंजना है—

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात् । १·१५

और इससे उसका अभिप्राय है कि सौ कौरवों को तो युद्ध में मार ही डालूँगा। वेणीसंहार में कहीं-कहीं प्राबन्धिक व्यञ्जना भी मिलती है । यथा,

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः
प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः ।
अभिमुखमरीन् घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया ।। ५·८

इससे अर्थ ध्वनित होता है कि दुर्योधन मारा जायेगा । भट्टनारायण के द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्द व्यंग्य अर्थ द्योतित करते हैं। अश्वत्थामा ने कर्ण के लिए तृतीय अङ्क में जामदग्न्यशिष्य शब्द का प्रयोग करके यह अर्थ ध्वनित किया है कि परशुराम के शाप के कारण तुम्हारी शस्त्रविद्या 'कालविफल' है, क्योंकि तुम झूठ बोलकर गुरुओं

---

१. ऐसी ही कल्पनात्मक अनन्त परिधि का द्योतन नीचे के पद्य में है—

कर्णाननेन्दुस्मरणात् क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ।। ५·१६

इसमें रूपक की सम्यक् सटीकता उल्लेखनीय है ।

को धोखा देते हो । इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में भीम के लिए दुर्योधन मरुत्तनय शब्द का प्रयोग करके उसके अनभिजात होने की व्यञ्जना प्रस्तुत करता है ।

कितनी गहरी व्यञ्जना है दुर्योधन के द्वारा भीम के लिए प्रयुक्त 'शोकापनोदी जनः' पदों में । भीम शोक को दूर कर देगा, जब वह मार डाला जायेगा, अथवा दुर्योधन की इहलोकलीला समाप्त करके वह उसका शोक सदा के लिए दूर कर देगा । इसी प्रकार का विपरीत अर्थ है तेजस्विनां का नीचे लिखे पद्य में—

तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ।। २·२८

इसमें तेजस्वी का अर्थ है निस्तेज ।

वेणीसंहार में गौड़ी रीति और ओज गुण की विशेषता है । युद्धात्मक वर्णनों के लिए इनकी उपादेयता निर्विवाद है । गौड़ी रीति का विलास पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक समुन्नत है । यथा,

इत्युत्थाय परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसंग्रामो विचित्रविभ्रमभ्रमितगदापरिघभासुरभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ । षष्ठ अङ्क से ।

पद्यों में कहीं-कहीं गौड़ी रीति के साथ ही युद्धोचित ध्वान भी है । यथा,

मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताड्यतेऽयम् ।। १·२२

भट्टनारायण वैदर्भी-रचना में कुछ कम दक्ष नहीं थे । वे जहाँ चाहते हैं वैदर्भी द्वारा लोकरंजन करने में नहीं चूकते । यथा,

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः
परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्रमेण ।
स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः
प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ।। २·१६

भट्टनारायण ने कहीं-कहीं समगुणयोग की व्यञ्जना के लिए शाब्दिक साहचर्य उपस्थित किया है । भीम से भीमगद (दुर्योधन) की बातचीत कराना इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है ।

भट्टनारायण ने अच्छे भावों को महाभारत से भी संकलित करने में निपुणता प्रकट की है । वे कहते हैं—

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजञ्शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।। ५·२३

यह महाभारत के नीचे लिखे श्लोकों पर रूपित है—

हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते ।
शल्यः पार्थान् रणे सर्वान् निहनिष्यति मारिष ।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ।। शल्यप० ८.१७-१८

वेणीसंहार की शैली की प्रभविष्णुता लोकोक्तियों से यथास्थान समेधित है । जैसे,

अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम्

(विना कहे ही उपकार कर देना मानसिक स्वामिभक्ति को प्रकट करता है।)

अनुल्लंघनीयो हि समुदाचारः

(सदाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए)

उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन

(जिसका उपकार करना हो, उसके मर जाने पर उपकार से क्या लाभ ?)

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्

(दैव किसी भी कुल में जन्म भले दे, पौरुष का अर्जन तो अपने हाथ में है)

न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेण वेदयितुम्

(बन्धुओं की विपत्ति संक्षेप में बतानी चाहिए ।)

पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति

(पुण्यशाली ही दुःख का अनुभव करते हैं ।)

वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम्

(कथनी सरल है, करनी कठिन है ।)

संवाद

अनेक स्थलों पर वेणीसंहार में संवाद-सम्बन्धी कुछ अनोखी विशेषतायें हैं । संवाद के द्वारा जैसे भी हो महाभारत की अप्रासंगिक घटनाओं की भी चर्चा पात्रों को करनी ही है । यथा,

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां
वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।

विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि गुरुषु ॥ १.११

कतिपय स्थलों पर बातों को इस प्रकार कहा गया है कि वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अभिप्राय ग्रहण करके श्रोता कुछ अनपेक्षित काम कर बैठता है। यथा,

कंचुकी—कुमार, एष खलु भगवान् वासुदेवः—

कंचुकी का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि सभी श्रोता हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए और भीमसेन ने घबड़ा कर पूछा—कहाँ हैं, कहाँ हैं भगवान् ?

कंचुकी का पूरे वाक्य का अर्थ होता कि भगवान् वासुदेव को दुर्योधन बाँधने लगा था। भट्टनारायण को संवाद-कला पर अप्रतिम अधिकार था। वे पात्रोचित भाषा का व्यवहार करने में परम दक्ष हैं। नीचे के उदाहरण में भीम बोलता है और इस संवाद में कुछ ऐसा औद्धत्य है कि लगता है कि भीम ही बोल रहा है—

ननु पाञ्चालराजतनये; किमद्याप्यलीकाश्वासनया।
भूयः परिभवक्षान्तिलज्जाविधुरिताननम्।
अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम्॥ १.२६

यदि कोई पात्र भ्रान्ति में है तो उसकी भ्रान्ति के दूर होने की स्थिति आने पर भी तत्सम्बन्धी संवादों को भट्टनारायण ऐसा रूप दे सकते हैं कि भ्रान्ति गाढ़ी होती जाय और प्रेक्षक को प्रतीत हो कि पात्र व्यर्थ ही भ्रान्ति में पड़ा है।[1] इस चमत्कार का सर्वातिशायी उदाहरण है दुर्योधन को मार कर आने वाले भीमसेन को दुर्योधन समझने से सम्बद्ध संवाद। भीम इस अवसर पर जो कुछ कहते हैं, उससे युधिष्ठिरादि को निश्चय होता जाता है कि यह दुर्योधन है, साथ ही प्रेक्षक समझता है कि युधिष्ठिर की भ्रान्ति है कि वे भीम को दुर्योधन समझते हैं। यथा,

रक्षो नाहं न भूतो रिपुरुधिरजलाप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि।
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते किम्॥ ६.३७

इस पद्य की दूसरी पंक्ति से प्रेक्षक को ज्ञात हो गया कि यह दुर्योधन नहीं है भीम है, क्योंकि उसी ने प्रतिज्ञायें की थीं। फिर भी युधिष्ठिर उसे दुर्योधन ही समझते हैं। इसी प्रकार जब भीम कहता है—

---

१. भट्टनारायण ने अपनी शैली की इस आवश्यक विशेषता का परिचय दुर्योधन के मुख से कराया है—किमविस्पष्टकथितैराकुलमपि पर्याकुलयसि मे हृदयम्। चतुर्थ अङ्क में।

पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिना। तिष्ठतु, तिष्ठतु। स्वयमेवाहं संहरामि।

इसे सुनकर भी द्रौपदी भागती रही। अन्त में रङ्गमञ्च पर कंचुकी ने भीम को पहचान ही लिया।[1] उसके कहने से, भीम के वक्तव्य से नहीं, युधिष्ठिर को ज्ञात होता है कि यह भीम है।

संवाद की प्रासङ्गिकता के लिए अपह्नुति का आश्रय नीचे के गद्य में लिया गया है—

हा वीरशतप्रसविनी हतगान्धारी दुःखशतं प्रसूता, न पुनः सुतशतम्। पंचम अङ्क में।

कतिपय स्थलों पर संवाद की स्वाभाविकता उल्लेखनीय है। नीचे के पद में 'शरीरस्पृष्टिकया' इसका द्योतक है—

गच्छ जयन्धर, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितोऽसि। षष्ठ अङ्क से

भट्टनारायण की संवाद-शैली रक्त-रंजित कही जा सकती है। दुःशासन का रक्तपान और दुर्योधन के रक्त से अपना अभिषेक तो जैसे-तैसे ठीक है, भीम को दुर्योधन का समाचार देने वाला व्याध भी **'प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरण-निवसनः'** है।

संवाद की त्रुटि है कहीं-कहीं अतिशय लम्बायमान होना और साथ ही सुदीर्घ-समस्तपदावली से निलम्बित होना। सुन्दरक की एक उक्ति तो चतुर्थ अंक में लगभग ४० पंक्तियों की है। इसमें लम्बे समास भी हैं, जो दर्शक को उबा देते हैं। चतुर्थ अंक में ततः ततः की भरमार है, जो २४ वार प्रयुक्त हैं।[2] संवादों का आख्यानात्मक होना भी दूषण है। जो संवाद दूसरे के कामों के आख्यान मात्र होते हैं, उनमें अभिनय का प्रायः अभाव होने के कारण उनकी नाटकीयता हीनप्राय होती है।

रङ्गमञ्च

वेणीसंहार नाटक के अभिनय के लिए एक बहुत बड़े रंगमंच की आवश्यकता है, जिस पर एक साथ ही एक-दूसरे से निरपेक्ष अनेक समुदायों के संवादादि चल सकते हों। चतुर्थ अङ्क में एक ओर सुन्दरक है, और कुछ लोगों से दुर्योधन का समाचार पूछता है। रंगमंच पर उससे थोड़ी दूर पर बद्धपरिकर पुरुषों का समूह है। उनसे भी पूछता है। कुछ ज्ञात न होने पर वह रंगमंच पर कुछ दूरी पर दिखाई देने वाली वीरमंडली के पास पहुँच कर पूछता है। वे लोग रो-धो रहे थे। वहाँ भी कुछ ज्ञात न होने पर

१. कञ्चुकी की प्रतिभा प्रखर थी। उसने अपनी प्रतिभा से राक्षस को भी डरा दिया था।

२. स्वप्नवासवदत्त में भी प्रथम अंक में ततः ततः २० वार प्रयुक्त है।

किसी दूसरे रोने वाले वीरसमूह के पास पहुँचता है। वहाँ से भी उसे दुर्योधन को ढूँढ़ने के लिए अन्यत्र जाने पर दुर्योधन मिलता है। द्वितीय अंक में भी एक ओर दुर्योधन है और दूसरी ओर भानुमती अपनी सखियों सहित बात करती हुई उसे नहीं देख पाती। इससे भी रंगमंच की विशालता प्रमाणित होती है। रंगमंच पर अलक्षित रहकर दूसरे की बात सुनने के लिए लताजाल से अन्तरित होने की चर्चा द्वितीय अंक में है। प्रथम अंक में रोषावेश होना पर्याप्त है, जिससे वह रंगमंच पर निकट स्थित पात्र को नहीं देख सकता और दूसरा पात्र उसकी बातों को अन्तरित की भाँति सुनता रहा।

छन्द

वेणीसंहार में १८ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें से ५३ पद्यों में श्लोक या अनुष्टुप् छन्द है। इसके पश्चात् वसन्ततिलका में ३९, शिखरिणी में ३५, शार्दूलविक्रीडित में ३२, और स्रग्धरा में २० पद्य हैं। मन्दाक्रान्ता में १४ और शिखरिणी में १३, मालिनी में ७, आर्या में ६ और हरिणी में ५ पद्य हैं। मंजुभाषिणी, प्रहर्षिणी और पुष्पिताग्रा में प्रत्येक में २ तथा उपजाति, औपच्छन्दसिक, द्रुतविलम्बित, और सुन्दरी में केवल एक पद्य है।

वेणीसंहार को योरपीय दृष्टि से आँकने वाले समीक्षकों ने बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया है। कीथ का कहना है—The play is on the whole undramatic, for the action is choked by narrative, and the vast abundance of detail served up in this form confuses and destroys interest. Yet the character's action is good.[१]

विण्टरनित्ज ने कहा है—The popularity of the drama among the pandits is possibly based on the language alone and not on the subject matter.[२]

डा० डे अपने शाश्वत अभ्यास के अनुसार वेणीसंहार की निन्दास्तुति योरपीय आदर्श पर करते हुए कहते हैं—The work does not indeed pretend to any milder or refiner graces of poetry, and the defect of dramatic form and method is almost fatal; but it has energy, picturesqueness and narrative motion.[३]

---

१. Sanskrit. Drama P.215

२. History of Indian Literature, Vol. III pt. I P. 267

३. History of Sanskrit Literature, P. 276

अध्याय १२

भवभूति

उत्तररामचरित, महावीरचरित और मालतीमाधव के रचयिता महाकवि भवभूति ने अपना पर्याप्त परिचय अपनी कृतियों के प्रारम्भ में दिया है। कविवर का पहला नाम श्रीनीलकण्ठ था, अर्थात् जिसके कण्ठ में सरस्वती का विलास हो। इस नाम से प्रतीत होता है कि कवि के जीवन के प्रथम दिन से ही उसके चतुर्दिक् सरस्वती की उपासना का वातावरण था। इनका प्रादुर्भाव आठवीं शती के प्रथम पाद में हुआ था।

कविपरिचय

भवभूति का जन्म आधुनिक महाराष्ट्र के विदर्भ खण्ड में पद्मपुर में हुआ था। इनके वंश का नाम उदुम्बर है। कहते हैं कि इस वंश का प्रादुर्भाव कश्यप मुनि से हुआ था। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी यह ब्राह्मणकुल था। वे ब्रह्मवादी थे और सोमयज्ञ का प्रचलन उस कुल में था। भवभूति ने इस कुल का श्लोकाख्यान किया है—

> ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय
> भूरि श्रुतं शाश्वतमद्रियन्ते।
> इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान्
> दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः॥

अर्थात् वे श्रोत्रिय थे, उच्चकोटि के विद्वान् थे। इष्ट और पूर्त का सम्पादन उनकी विशेषता थी। उनका जीवन ही तप के लिए था।

भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जातुकर्णी था। ऐसे कुल में उत्पन्न कवि का अध्ययन सार्वक्षेत्रिक था, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—

> यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
> ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद्गुणो नाटके।
> यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
> तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः॥

अर्थात् कविवर ने विविध दर्शनों, वेदों और उपनिषदों का अध्ययन तो किया ही था, काव्य-रचना में उनकी लोकप्रियपक्षात्मक दृष्टि भी सफल थी।

भवभूति ने अपनी शिक्षा-दीक्षा सम्भवतः उज्जयिनी में पाई। वे गृहस्थाश्रम में कभी कन्नौज में यशोवर्मा की राजसभा की विद्वत्परिषद् के सदस्य थे।

मालतीमाधव में जो पद्मावती में उस रूपक की घटनास्थली है, वह ग्वालियर के पास पवाया हो सकती है।[1] इस स्थान से भवभूति का निकट सम्बन्ध किसी न किसी रूप में दीर्घकालीन रहा होगा। तभी इसका विवरण इतना सटीक और रुचिपूर्ण हो सकता था। भवभूति के नाटकों के प्रथम अभिनय कालप्रियनाथ की यात्रा में हुए। यह कालप्रिय उत्तर प्रदेश की आधुनिक कालपी है।[2]

व्यक्तित्व

भवभूति की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे बहुत ऐश्वर्यशाली नहीं थे। आरम्भ में उनकी रचनाओं का कोई विशेष सम्मान नहीं हुआ। तभी तो उन्हें लिखना पड़ा--

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥ उ०रा० १·५

कवि ने मालतीमाधव और उत्तररामचरित में आदर्श का जो स्वरूप निरूपित किया है, उससे ज्ञात होता है कि इस विषय में उनका निजी अनुभव ही प्रधान कारण है। उनका कौटुम्बिक जीवन सरल, सरस और सौहार्दपूर्ण रहा होगा।[3] कवि की उक्ति प्रमाण है--

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु॥ मा० मा० ६·१८

---

१. महामहोपाध्याय डा० वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार पद्मावती भण्डारा जिले में आमगाँव के निकट का पद्मपुर है। सागरिका १९६३ अंक २।

२. कालप्रियनाथ सूर्य हैं। इनके देवालय के प्राङ्गण का वर्णन राष्ट्रकूटवंशी इन्द्र के कान्यकुब्ज आक्रमण-सम्बन्धी उत्कीर्ण लेख में मिलता है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कालप्रियनगर का उल्लेख किया है कि यह कान्यकुब्ज से दक्षिण में स्थित है। सागरिका वर्ष १० अंक ४ पृ० ४३९

३. उत्तररामचरित में भी भवभूति ने कहा है--
अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते॥ उ० रा० ३·१७

सम्भव है, कवि का पुण्य अपनी कृतियों से यश पाने के लिए पर्याप्त नहीं रहा हो, फिर भी कवि को अपने मित्रों की संगति में आनन्दनिर्भरता का सान्द्रोपभोग सम्भव हुआ—

प्राणैरपि हिते वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम् ।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम् ॥

भवभूति का भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों में विश्वास था। उन्होंने जिस प्रकार के कथानक लिये हैं और आदर्श पात्रों के चरित्र-चित्रण का जैसा निर्वाह किया है, उससे प्रतीत होता है कि कविवर को अपनी कृतियों के द्वारा समाज को विकासोन्मुख गति देने का उत्साह था। सदाचार, सत्य, सत्संगति, यशःकाम और कर्तव्य-पालन के द्वारा वे व्यक्ति और समाज का वास्तविक अभ्युदय मानते थे।

काल-निर्णय

कन्नौज के राजा यशोवर्मा के राजकवि वाक्पतिराज की रचना गौडवहो में भवभूति का उल्लेख है कि वाक्पतिराज ने भवभूति से बहुत कुछ सहायता ली। यथा,

भवभूइजलहि-निग्गय-कव्वामयं रसकणा इव फुरति ।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ॥ गौड० ७९९

कल्हण ने भी उपर्युक्त राजा का वर्णन करते हुए कहा है कि वाक्पतिराज और भवभूति यशोवर्मा की सभा में थे—

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥ ४·१४४

यशोवर्मा की यह पराजय आठवीं शताब्दी के मध्य भाग में हुई थी।

उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि गौडवहो की रचना जब यशोवर्मा की पराजय (७३६ ई०) के पहले हुई तो भवभूति इस समय के पहले हुए। यदि कल्हण का कहना सत्य है तो भवभूति आठवीं शती के पूर्वार्ध में हुए। यदि इस कथन का सत्य अप्रमाणित है तो भी भवभूति को ७३६ ई० के पहले मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। कितना पहले? प्रायः विद्वानों ने आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भवभूति का प्रादुर्भाव माना है। डा० एस० के० डे के मतानुसार—

As the poem **Gaudavaho** is presumed to have been composed about 736 A.D. before Yasovarman's defeat and humiliation by King Lalitaditya of Kashmir, it is inferred that Bhavabhuti flourished, if not actually in the court of Yasovarman, at least during his reign in the closing years of the seventh or the first quarter of the eighth century.

मालतीमाधव

मालतीमाधव प्रकरण कोटि का रूपक है। प्रकरण की कथावस्तु कविकल्पित होती है। यहाँ कविकल्पित का यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि कथावस्तु प्रकरण के लेखक के द्वारा ही कल्पित है। कल्पित से इतना ही तात्पर्य है कि वह ऐतिहासिक कोटि में नहीं आती है। पहले के कथाकारों के द्वारा कल्पित कथा भी प्रकरण में ग्रहणीय हो सकती है।

कथा का मूल

मालतीमाधव की मूलकथा गुणाढ्य की बड्ढकहाओ से सम्भवत: ली गई है।[1] कथासरित्सागर की इस उपजीव्य कथा के विषय में विल्सन का कथन है—

The incidents are curious and diverting, but they are chiefly remarkable from being the same as the contrivances by which Madhava and Makaranda obtain their mistresses in the drama entitled Malati and Madhava or the stolen marriage.

इसके अतिरिक्त इस प्रकरण की कथा के अन्य अंशों को भी बड्ढकहाओ, विक्रमोर्वशीय, दशकुमारचरित आदि की कुछ कथाओं पर स्पष्ट आधारित देखा जा सकता है। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि भवभूति ने कई कथांशों को अत्यन्त कौशलपूर्वक संयोजित करके इस प्रकरण का रूप अनुपम रसास्वादन के योग्य बना डाला है।

कथावस्तु

मालतीमाधव में पद्मावती के राजमंत्री भूरिवसु की कन्या मालती और विदर्भ के राजमन्त्री देवरात के पुत्र माधव के विवाह की कथा मिलती है। दोनों राजमन्त्री अपनी बालावस्था में पद्मावती में कामन्दकी के सहाध्यायी मित्र थे। अपने मैत्री-भाव को स्थायी बनाने के लिए मन्त्रियों ने उसी समय अपनी सन्तान का परस्पर विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी। सयोगवश देवरात को पुत्र और भूरिवसु को कन्या उत्पन्न हुई, जिनके नाम क्रमशः माधव और मालती पड़े। माधव न्यायशास्त्र के अध्ययन के लिए कामन्दकी के पास ब्रह्मचारी बना। वहीं पद्मावती में रहते हुए मालती के साथ उनके विवाह की सम्भावना देवरात के मन में थी। पर मालती का एक नया प्रेमी निकला अतिवयस्क राजश्याल नन्दन, जिसके कहने पर राजा ने स्वयं अपने मन्त्री भूरिवसु से नन्दन-मालती के परिणय की बात कही। मन्त्री चक्कर में पड़ा—इधर बालकाल की प्रतिज्ञा के अनुसार मालती-माधव का परिणय होना चाहिए था और उधर राजाज्ञा। भूरिवसु ने विचारपूर्ण उत्तर दिया—राजा अपनी कन्या का, जो चाहें, करें। वह इस

१. कथासरित्सागर में मदिरावती की कथा के अनुरूप मालतीमाधव का कथानक प्रतीत होता है।

विषम स्थिति में कामन्दकी के समीप गया कि आप मेरी प्रतिज्ञा पूरी करायें। उपाय निकला मालती और माधव का स्वयं गान्धर्व विवाह कर लेना। इनके बीच प्रेम स्थापित कराने का काम कामन्दकी ने अपनी शिष्या अवलोकिता को सौंपा और प्रतिदिन माधव को किसी न किसी काम से वह मालती के घर के समीप भेज देती। एक दिन मालती ने जो उसे देख लिया तो माधव से मिलने की ठानी। इस काम के लिए सखियों के परामर्श से मालती ने माधव का चित्र बनाया और उसे माधव के विद्यालय में काम करने वाली दासी मन्दारिका से माधव के पास भेज दिया। यह दासी माधव के दास कलहंस पर मोहित थी।

मदनमहोत्सव के अवसर पर अवलोकिता के निर्देशानुसार माधव मदनोद्यान में गया। वहीं उसकी मालती पर दृष्टि जो पड़ी तो मोहित हो गया। बहुत देर तक नायक-नायिका की एक दूसरे से देखा-देखी हुई। अन्त में जब मालती चली गई तो उसकी सखी लवङ्गिका माधव से उसी के द्वारा बनाई हुई माला को लेकर मालती के पास पहुँची। इस बीच मालती का बनाया चित्र माधव के पास पहुँचा तो माधव ने मालती का चित्र बना दिया, जो मालती के पास पहुँचा। यह था परस्पर-प्रणय का आन्दोलन। इसको उत्तेजित करने के लिए स्वयं कामन्दकी मालती के समीप पहुँची, जब वह माधव का चित्र निहार रही थी। कामन्दकी ने मालती से कहा कि तुम्हारा विवाह राजाज्ञा से वयस्क नन्दन से होने वाला है। यह अनर्थ है। उसी समय माधव की भी चर्चा आई, जिसके विषय में मालती ने कहा कि मैं अपने पिता से सुन चुकी हूँ। फिर कामन्दकी लौट गई।

कामन्दकी ने मालती-माधव-मिलन के लिए कुसुमाकर उद्यान चुना। उसके आयोजन से माधव वहाँ पहुँचा और मालती भी। अच्छी सफलता रही, पर अन्त में वही चर्चा माधव के कान में आई कि मालती नन्दन की होने वाली है। अपने दुःसाध्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए माधव श्मशान में प्रेतसिद्धि करने पहुँचा। प्रेतों का नग्न नृत्य देख लेने पर उसे किसी स्त्री के रोने की ध्वनि सुनाई पड़ी, जो उसे मालती की ध्वनि लगी। झट घटनास्थल पर पहुँचा तो उसने देखा कि अघोरघण्ट कापालिक अपनी शिष्या कपालकुण्डला के द्वारा लाई हुई मालती के बलिदान से देवी को तृप्त करना चाहता है। इसने कापालिक को तलवार के घाट उतारा। इसी बीच कामन्दकी के भेजे हुए सैनिक वहाँ आ पहुँचे। मालती के प्राण बचे।

मालती का नन्दन के साथ विवाह का दिन आ पहुँचा। नन्दन भूरिवसु के घर सप्तपदी के लिए पहुँचा। कामन्दकी के निर्देशानुसार मालती की माँ ने उसे विवाह के पूर्व नगरदेव-दर्शन के लिए भेज दिया। वहीं मन्दिर में कामन्दकी ने माधव और मालती की परिणय-प्रतिज्ञा कराई। वहाँ से मालती के परिधान में माधव का मित्र मकरन्द

भूरिवसु के घर पहुँचा और मालती और माधव पहुँचे कामन्दकी के आश्रम में। वहीं अवलोकिता ने उन दोनों का विवाह कराया। मालती के वेष में मकरन्द भी नन्दन से विवाहित हुआ। वह नन्दन के घर पहुँचा। उसका घूँघट खोलने का नन्दन ने जो प्रयास किया तो मकरन्द ने उसे पादप्रहार से दूर भगाया। उसी समय नन्दन की बहिन मदयन्तिका सारी कहानी जान कर मकरन्द से मिली। उसे मकरन्द से पहले से ही प्रेम था। कामन्दकी के निर्देशानुसार वे दोनों उसके आश्रम में जा रहे थे कि मार्ग में नन्दन के सैनिकों से मुठभेड़ हुई। माधव की सहायता से मार्ग निष्कण्टक हुआ।

अन्तिम प्रकरण कपालकुण्डला के मालती-हरण का है। वह अपने गुरु का बदला लेने के लिए माधव के पीछे पड़ी थी। वह इसी बीच मालती का हरण करके उसकी बलि देने के लिए उसे श्रीपर्वत पर ले उड़ी। वहीं कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी भी सिद्धि-प्राप्ति के लिए रहती थी। उसने मालती की रक्षा की और माधव से मिला दिया। अन्त में राजा ने विवाह के लिए अपनी अनुमति दे दी।

मालती-माधव में हास्य का अभाव है। स्वभावतः भवभूति विदूषक जैसे पात्र को लाने में असमर्थ थे। घटनाओं का संक्रमण उत्तेजनापूर्ण है। प्रणय और वीरता का सामञ्जस्य पर्याप्त सफल है। इस प्रकरण के द्वारा भवभूति ने तत्कालीन समाज में प्रचलित साम्प्रदायिक कुरीतियों पर कुठाराघात करने की चेष्टा की है। अघोरघण्ट और कपालकुण्डला का प्रभाव भारत में बढ़ रहा था। इसके खोखलापन और हीनताओं की ओर ध्यान दिलाने की चेष्टा सराहनीय है। भवभूति की लेखनी से बौद्ध सम्प्रदाय की, सम्भवतः न चाहते हुए भी, कुछ दुष्प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है। कामन्दकी, सौदामिनी, अवलोकिता, बुद्धरक्षिता आदि विदुषी भिक्षुणियों के प्रति भवभूति का सम्मान प्रकट होता है। पर शिष्यों और शिष्याओं के विवाह-सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में उनको तत्पर दिखाना अनुचित है।

उपर्युक्त कथानक यद्यपि घिसा-पिटा शृंगारात्मक है, तथापि इसमें नवीनता यह है कि वह राजाओं से सम्बद्ध न होकर साधारण मानवों के सम्बन्ध में है। इधर-उधर से सामग्री लेकर और वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रणयमिलन की योजनाओं को अपनाकर भवभूति ने दो प्रेमकथाओं को जोड़कर रख दिया है और दस अङ्कों का एक चित्र-विचित्र संसार ही रच दिया है, जिसमें कम ही ऐसे पात्र हैं, जिनका चरित आदर्श कहा जा सके। स्थान-स्थान पर जघन्यता, भयङ्करता और विस्मय के साथ अलौकिकता का अपूर्व सम्मिश्रण होने से सारे प्रकरण में मानो इन्द्रजाल का वातावरण है। बेल्वलकर के अनुसार—And the action is projected upon a weird background, with tigers running wild in the streets, ghosts squeaking in the cemeteries and mystic Kapalikas performing gruesome rites in the blood-stained temples.

इस प्रकरण के नायक और नायिका माधव और मालती हैं, किन्तु जैसी कथा बनी है, उसमें सहकारी प्रेमकथा के नायक और नायिका का मकरन्द और मदयन्तिका जैसा चारित्रिक उत्कर्ष नहीं दिखाया जा सका है। मकरन्द और मदयन्तिका से सम्बद्ध घटनावली अधिक साहसिकता से पूर्ण है और पाठक की जिज्ञासा अधिक समय तक वे अपनी ओर बनाये रख सके हैं। कथा को संयोगवश घटी हुई घटनाओं के सहारे अनेकशः बढ़ाना भी नाटकीयता के विरुद्ध बात है।

कथा का साधारण अन्त आठवें अंक तक कर देना अच्छा रहता, किन्तु भवभूति ने कथा को अनावश्यक वृत्तों से और आगे खींचा है, जो अनावश्यक है। इस भाग में भयंकरता और तिलस्मी चमत्कार और अधिक बढ़े हैं। इस प्रकार अनेक स्थलों पर प्रेक्षक को अद्‌भुत तत्त्वों के चक्कर में डालने के लिए भवभूति ने कथा को लम्बायमान किया है।

पात्रोन्मीलन

कथा के दो नायक, अधिकारी माधव और सहायक मकरन्द हैं। इनमें से माधव का व्यक्तित्व संयत और गम्भीर है। वह विचारशील है। माधव हृदय का धनी है। वह अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होकर चलता है और जिस स्थिति में रहता है, प्रायः उसी में पड़ा रह जाता है। उसमें उछल-कूद मचाने की शक्ति विशेष नहीं है। इधर मकरन्द पूरा खटपटी है। किसी काम को पूरा करने के लिए जितनी तत्परता चाहिए थी, उससे दूनी मात्रा में उसके पास थी। वह उच्चकोटि का मित्र, साहसिक, प्रणयी और संशयारोही है। वह मित्र की सहायता करने लिए नन्दन से विवाह करने की सारी संकटास्पद प्रक्रिया को अपना लेता है। वह नन्दन के यहाँ से चुपचाप नहीं भाग निकलता, अपितु दुलत्ती झाड़कर निकलता है। नन्दन जैसे व्यभिचारी को यही फल मिलना चाहिए था।

दोनों नायिकाओं में भी तत्सम्बन्धी नायकों का व्यक्तित्व ही प्रतिफलित होता है। मालती विनय की मूर्ति है। उसका शील उदात्त है। वह माधव के गुण और भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मन ही मन अपना सर्वस्व देकर भी अपने-आप कुछ भी नहीं करती, जिससे उसके प्रणय की पूर्णता हो। वह सब कुछ भाग्य के भरोसे छोड़ने वाली थी। माता-पिता की आज्ञा में उसकी सर्वोपरि निष्ठा थी। ऐसी मन:स्थिति रखने वाली मालती को जब अनेक संकटों से मुक्त होकर अपने प्रियतम से मिली हुई देखने का अवसर मिलता है तो प्रेक्षक की दैवी न्याय में आस्था बढ़ जाती है। मदयन्तिका वीर और साहस-सम्पन्न कन्या थी। उसने प्रिय-मिलन के पथ की सभी योजनाओं को संशय में पड़कर भी सम्पन्न किया। अवसर मिलते ही उसने अपना घर छोड़ कर मकरन्द का साथ पकड़ा। सम्भवतः मदयन्तिका का जीवन-स्तर हीनतर था और उस

स्तर पर रहती हुई उसे शालीनता की कल्पना ही नहीं थी। नन्दन के साथ जो वातावरण था, उसमें बेचारी मदयन्तिका को कहाँ से उदात्त जीवन की झलक मिलती? उसमें तो पाश्चात्य संस्कृति के योग्य प्रेरणायें और भावनाओं के साथ कार्य-क्षमता भरी है, जो भारतीय ललनाओं के योग्य नहीं प्रतीत होती।

कामन्दकी बौद्ध आचार्या थी। संन्यासिनी का जीवन बिताती हुई भी वह विचित्र प्रवृत्तियों से सम्पन्न थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसमें अद्भुत बुद्धि-कौशल था और योजनाओं को बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने में उसे समान दक्षता प्राप्त थी। एक बार किसी काम को हाथ में लेने पर उसे अन्त तक निभाना उसका गुण है। फिर भी एक संन्यासिनी का ऐसा व्यवहार श्लाघ्य चरित की परिधि से बाहर है।

शैली

भवभूति उच्चकोटि के विद्वान् थे, साथ ही उनको सरस्वती का वरद हस्त प्राप्त था। इन दोनों गुणों का परिचय प्रचुर मात्रा में उनकी शैली से मिलता है। इस प्रकरण में कवि ने वेद, उपनिषद्, दर्शनादि के साथ अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के पाण्डित्य की बातें स्थान-स्थान पर भरी हैं।

कवि ने भावुकता की संगीतमय धारा का प्रवाह इस प्रकरण में सफलतापूर्वक प्रवाहित किया है। ऐसे अवसरों पर भावानुकूल पदावली का प्रभावोत्पादक सामञ्जस्य वर्त्तमान है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को यह भूल ही गया है कि मेरे प्रकरण की एक कथा है, जिसका सूत्र टूट-सा रहा है। श्लोकों की श्रेणी निरन्तर चल पड़ती है तो गीतात्मक नाट्य का आनन्द आने लगता है। उदाहरण के लिए देखिये—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै—
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै—
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च॥ १·२८

कविवर गद्य लिखने में नितान्त पटु हैं किन्तु यही पटुता उनके गद्य को प्रकरणोचित सम्भाषणीयता के योग्य नहीं रहने देती। कवि को कभी-कभी कादम्बरी लिखने की सी वृत्ति में उलझा हुआ देखा जा सकता है। यथा,

अलमनेनायासितेन। एष सानन्दसहचरीसमाकर्ण्यमानमधुरगम्भीरकण्ठगर्जितध्वनिरपरो मत्तमातङ्गयूथपालः प्रत्यग्रविकसितकदम्बसंघातसुरभिशीतलामोदबहलसंगलितमांसलकपोलनिष्यन्दकर्दमितकरटः समुद्दलितकमलिनीखण्डविप्रकीर्णपर्णकमलकेसरमृणालविसकन्दकोमलाङ्कुरनिकरमनवरतप्रवृत्तकमनीयकर्णतालताण्डवप्रचलजर्जरितजलतरंगविततनीहारमुत्त्रस्तकुररसारसं सरोऽवगाह्य विहरति।

ऐसे लम्बे समास वाले दीर्घतम वाक्य कदापि नाट्योचित नहीं हैं। इसमें भाषा तो चित्रात्मक है और शब्दालंकार की छटा विराजती है पर नाटकीयता का अभाव है। ऐसे लम्बे-लम्बे गद्य-खण्डों से इस प्रकरण में अनेक स्थलों पर गति अवरुद्ध हो जाती है और परिणामतः प्रेक्षक का मन ऊबता है।

रस

मालतीमाधव में शृंगार-रस की व्यापकता है। यद्यपि नवयुवकों के शृंगार की चर्चा है किन्तु भवभूति ने असाधारण संयम से इसके विभावादि का वर्णन किया है। इसके साथ ही शृंगार के विरुद्ध या अविरुद्ध रस, रौद्र तृतीय अंक में, वीर तृतीय और सप्तम अङ्क में, बीभत्स और भयानक पंचम अंक में, करुण नवम अङ्क में तथा अद्भुत नवम और दशम अंक में विशेष रूप से हैं।

छन्द

भवभूति ने इस प्रकरण में विविध छन्दों का वैचित्र्य प्रस्तुत किया है। इनमें से सबसे कठिन प्रयास है दण्डक छन्द का, जिसमें ५४ अक्षर होते हैं।[1] सब मिलाकर २५ प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से अपरवक्त्र आदि विशेष प्रचलित हैं। कवि के प्रिय छन्द वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता और हारिणी हैं। कोमल भावों की व्यञ्जना के लिए लघु छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा साहस, पराक्रम आदि की अभिव्यक्ति बड़े छन्दों से की गई है।

महावीरचरित

भवभूति ने सम्भवतः मालतीमाधव के पश्चात् महावीरचरित की रचना की। इस पुस्तक के सात अंकों में प्रायः पूरी रामचरित की कथा का नाटकीय संविधान प्रस्तुत किया गया है। यह एक कठिन कार्य था। साधारणतः प्रत्येक काण्ड की एक-एक प्रमुख कथा को लेकर अनेक नाटक रामचरित पर आधारित करके लिखे गये और लिखे जा सकते हैं, पर पूरी कथा को पंचसन्धि, पंच अर्थप्रकृति और पंच कार्यावस्था में प्रविभक्त कर देना सरल नहीं था। इसे भवभूति ने कर दिखाया है। सारी राम-कथा को एक नये ढंग से प्रस्तुत करने की यह कला नीचे लिखे कथानक से स्पष्ट होती है।

कथावस्तु

जनक ने सीता के स्वयंवर की घोषणा की। रावण के दूत ने आकर जनक को सूचित किया कि आप रावण को अपनी कन्या प्रदान करके उसके उन्नत कुल के सम्बन्धी बनें। वह आता नहीं है, क्योंकि इसमें प्रतिष्ठा का प्रश्न है। उसकी अभ्यर्थना पर विचार करना भी जनक ने ठीक न समझा। सीता का विवाह राम से कर दिया गया।

---

१. मालतीमाधव ५·२३

रावण ने इसे अपना अपमान माना, विशेषत: इस बात से कि राम ने ताडका, सुबाहु आदि अनेक सम्बन्धी राक्षसों को मारा था ।

रावण के मन्त्री माल्यवान् ने उसे समझाया कि युक्तिपूर्वक काम करने से सब कुछ शान्ति से ही बन जायेगा। वह मन्त्री परशुराम से मिला और उन्हें राम के विरुद्ध भड़काया। परशुराम ने राम का विरोध तो किया, पर परास्त हुये। फिर भी माल्यवान् को पूरी निराशा न हुई। उसने रावण की बहिन शूर्पणखा को मन्थरा-धाई के रूप में अयोध्या में राम के लौटने के पहले ही यह सन्देश देने के लिए कहा कि कैकयी आपको १४ वर्ष का वनवास देना चाहती हैं। राम तदनुसार लक्ष्मण और सीता के साथ वन में चले गये।

उपर्युक्त उपाय से माल्यवान् ने आशा की थी कि राम को वन में अकेले रहने पर खर की सेना परास्त कर देगी और सीता का अपहरण खर करेगा। परिणामतः राम वन में चले गये, पर खर इस उपक्रम में सफल न हो सका। रावण ने मारीच की सहायता से सीताहरण किया। माल्यवान् ने वाली को उसकी इच्छा के विरुद्ध राम को परास्त करने के लिए उकसाया। युद्ध में वाली मारा गया। उसने अपने भाई सुग्रीव और अपने पुत्र अङ्गद को राम की शरण में मरते समय दे दिया।

अब तक माल्यवान् को पूरी सफलता नहीं मिली थी। उसने अन्त में निरुपाय होकर राम-रावण युद्ध कराया। रावण मरा। विभीषण उसके स्थान पर राजा हुआ। राम को सीता मिली। वे अयोध्या आये और राजा बन गये।

कथा-परिवर्तन

प्रत्यक्ष ही भवभूति ने इस नाटक की कथा में बहुत अधिक परिवर्तन किया है। यह सारा परिवर्तन इसलिए बहुत कुछ आवश्यक है कि कथावस्तु को नाटकीय रूप देकर आदि से अन्त तक कारण-कार्य और पञ्चसन्धियों का समावेश अपेक्षित था।

राम से लेकर रावण तक सभी पात्रों के चरित का सम्मार्जन करना भी इस कथा-वस्तु के परिवर्तन का उद्देश्य प्रतीत होता है। यद्यपि इस कथा में परशुराम, वाली और रावण के चरित्र की कुछ दुर्बलतायें दिखाई गई हैं, पर उसका उद्देश्य है उनकी सापेक्षता में राम को उदात्ततम दिखाना। इस नाटक में इस बात का स्पष्ट प्रयास है कि 'सत्यमेव जयते'। कवि ने राम को आदर्श वीर और शत्रुओं के प्रति भी सद्व्यवहार करने वाला दिखलाया है। राम का मैत्रीभाव स्पृहणीय है। जिसका साथ दिया, उसे सत्पथ पर चला कर अभ्युदयशील बना दिया। इस नाटक के नायक राम ही महावीर हैं। उनके चरित का प्रभाव मानवता को उज्ज्वल बनाने के लिए होना ही चाहिए—यह कवि का लक्ष्य था।

महावीरचरित में नाट्यकला की दृष्टि से कुछ दोष स्पष्ट हैं। व्यर्थ के विवादों का जाल-सा इस नाटक में बिछा है। परशुराम के साथ दशरथ, विश्वामित्रादि का विवाद, जो दार्शनिक स्तर पर है, सार्थक नहीं प्रतीत होता। वर्णनों की लम्बाई, मालतीमाधव के समान ही, कहीं-कहीं बहुत लम्बी है। श्लोकों की संख्या तो औचित्य की सीमा का उल्लंघन करती है।

छन्द

महावीरचरित में पद्य संख्या २८४ हैं, जिनमें १०० अनुष्टुप् हैं। इनके अतिरिक्त शार्दूलविक्रीडित ६३, वसन्ततिलका ३४, शिखरिणी १७, मन्दाक्रान्ता १३ और मालिनी ११ पद्यों में हैं।

उत्तररामचरित

उत्तररामचरित भवभूति की सर्वोच्च कृति होने के कारण उनके यश को कालिदास आदि के समकक्ष ला देता है। महावीरचरित में रामायण के पूर्वार्ध को नाटकरूप में प्रस्तुत कर लेने के पश्चात् उसके उत्तरार्ध को उत्तररामचरित में प्रस्तुत किया गया है। इस उत्तर भाग की कथा को भी भवभूति ने वैसा ही एक नया रूप दे दिया है, जैसा महावीरचरित में हम पहले ही देख चुके हैं। द्विजेन्द्रलाल राय ने इस का विवेचन करते हुए कहा है—

'भवभूति ने मूल रामायण का कथाभाग प्रायः कुछ भी नहीं लिया। पहले तो रामायण के राम ने वंश-मर्यादा की रक्षा के लिए छल से जानकी को वन भेजा, किन्तु भवभूति के राम ने प्रजारञ्जन-व्रत का पालन करने के लिए किसी प्रकार का छल न करके स्पष्ट रूप से जानकी को त्याग दिया। दूसरे, सिर काटने पर शम्बूक का दिव्यमूर्ति बन जाना, छाया-सीता के साथ राम की भेंट, लव और चन्द्रकेतु का युद्ध, इनमें से कोई बात रामायण में नहीं पाई जाती। सबसे बढ़कर भारी वैषम्य राम से सीता का पुनर्मिलन है।'

कथावस्तु

चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् राम के अयोध्या लौट आने पर राम का अभिषेक हुआ। अभिषेक के उत्सव में भाग लेने के लिए राम के वनवास के सहायक सभी श्रेष्ठ वानर और राक्षस आये और ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों ने राम का अभिनन्दन किया था। इस अवसर पर जनक भी आये थे। वे सभी चले गये। राम की मातायें दशरथ के जामाता ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में यज्ञोत्सव में चली गई थीं। जनक के चले जाने से सीता खिन्न हैं। राम उनको आश्वस्त करने के लिए वासगृह में जाते हैं। इसी वातावरण में उत्तररामचरित-कथा का समारम्भ होता है। वातावरण संकेत करता है कि कुछ अन्य लोगों का भी जाना अभी शेष है।

सीता के दूसरे वनवास की मानो व्यंजना राम के द्वारा कहे हुए इस पद्य में है—

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।। १·८

मनुष्य स्वतंत्र नहीं है । उसे गृहस्थ के धार्मिक कृत्य सम्पन्न करने हैं तो उसे अवांछनीय घटनाओं का सामना करना पड़ेगा ही ।

जब सीता ने कहा कि बन्धुजन-वियोग सन्तापकारी है तो राम ने उत्तर दिया कि यह वियोग का प्रकरण तो गृहस्थाश्रम की विशेषता है, जिससे बचने के लिए लोग वानप्रस्थ ले लेते हैं।

इसी अवसर पर ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से अष्टावक्र आये। उन्होंने सीता को वसिष्ठ का आशीर्वाद सुनाया—वीरप्रसवा भूयाः। अरुन्धती आदि देवियों ने सन्देश दिया था कि सीता के सभी दोहद पूरे किये जायँ। यजमान ऋष्यशृङ्ग ने कहा था कि पुत्रभरी गोदवाली आपको देखूँगा।

ऐसे प्रारम्भिक संवादों के द्वारा भवभूति ने पाठकों को अपनी करुण कथा के लिए साहस प्रदान कर दिया कि अन्त में तो ऋषियों की वाणी के अनुसार सब कुछ कल्याणमय ही होगा।

वसिष्ठ ने राम को सन्देश दिया था—

युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः ।
तस्माद् यशो यत् परमं धनं वः ।। १·११

प्रजा का अनुरञ्जन करना ही रघुकुल का परम धन है।
राम ने अपने जीवन का आदर्श सुनाया—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।

यहाँ जानकी के त्याग की बात सारगर्भित है। राम ने क्या यों ही कह दिया कि सीता को छोड़ते हुए भी व्यथा नहीं होगी, यदि इससे लोकाराधन हो।[1] राम को इस प्रकार लोकाराधन करना पड़ा। सीता ने कहा कि तभी तो आप राघव-धुरंधर हैं।

---

१. राम जानते थे कि सीता का उत्तरवनवास अनुचित है। फिर भी वे राजा होने पर अपने स्वामी नहीं रह गये थे। उन्होंने कहा भी है—

कष्टं जनः कुलधनैरनुरंजनीय—
स्तन्मे दुरुक्तमशिवं न हि तत् क्षमं ते।

उपर्युक्त सभी बातें सत्य होकर रहती हैं। उसी समय लक्ष्मण आकर कहते हैं कि वीथिका पर आपका चरित चित्रित हो चुका है। दर्शनीय है।

इस रामचरित में जो पहला महत्त्वपूर्ण कार्य दिखलाई पड़ा, वह था राम के लिए विश्वामित्र का दिव्यास्त्र-दान। राम ने सीता से कहा—

एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ।। १·१५

अर्थात् पुराने गुरुओं का तेज ही अस्त्र रूप में प्रकट हुआ। यह है तप का माहात्म्य। यही तप सीता को भी करना है, यदि उसे गुरुओं की पद्धति को अपनाना है।

चित्र-दर्शन प्रकरण में गंगा दिखलाई पड़ी।[1] राम ने गंगा से कामना प्रकट की—

सा त्वमम्ब स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्यानपरा भव।

गंगा को सीता का ध्यान रखना है। राम की यह बात सीता के भावी गंगा-शरण-ग्रहण का संकेत करती है।

चित्रदर्शन में सीता-हरण के प्रकरण में राम के वियोग का चित्रण तक बता कर समाप्ति कर दी गई है। इसके पश्चात् सीता श्रान्त हैं। वे अपना दोहद प्रकट करती हैं—वनराजि में विहार करना और गंगावगाहन। राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि इसकी व्यवस्था कर दी जाय। सीता राम की गोद में सो जाती हैं।

इसी अवसर पर दुर्मुख पौरजानपद-वृत्त कहने के लिए उपस्थित हुआ। उसने कान में कही सीतापवाद की बात—परगृहवास-दूषण। परिणामतः सीता को राम ने वन भेज दिया।

अनेक वर्ष बीत गये, लगभग १२ वर्ष। इसके पश्चात् अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की अध्यक्षता में बहुत बड़ी दिग्विजयी सेना के साथ छोड़ा गया।

इधर उसी समय दैवी निर्देश के अनुसार राम को शम्बूक नामक तपस्वी वृषल को मारने के लिए जाना पड़ा, क्योंकि उस अनधिकारी के तप करने के कारण एक ब्राह्मण बालक की मृत्यु हो गई थी।

राम ने शम्बूक को तलवार के प्रहार से मारा, किन्तु मरते ही वह दिव्य पुरुष में परिणत हो गया। वहाँ से राम पंचवटी-दर्शन के लिए चले गये।

तृतीय अंक में राम शम्बूक को मारने के पश्चात् विमान से पञ्चवटी में जा पहुँचते हैं। वहाँ पहले से ही तमसा नामक नदी-देवी और सीता नियोजित हैं कि अपनी विपन्नावस्था में राम पंचवटी में विशेष आतुर होंगे। उनका आश्वासन करना है। सीता

---

१. भवभूति ने यह चित्रप्रकरण रघुवंश १४·२५–२८ में चित्रावली से लिया है अथवा भास के दूतवाक्य के आधार पर राजचरित-चित्रण की कल्पना भवभूति ने की होगी।

पितरों के तर्पण के लिए पुष्पावचय करती हुई गोदावरी तट पर हैं। इन्हें सुनाई पड़ता है कि सीता के पहले के पालित हाथी के बच्चे पर किसी गजराज ने आक्रमण कर दिया है। उसी अवसर पर राम वहाँ अपने पुष्पक विमान से उतरते हैं। पंचवटी को देखकर राम को सीता की स्मृति हो आती है और वे मूच्छित हो जाते हैं। उन्हें पुनः चेतना प्रदान करने का सर्वोत्तम उपाय सीता का स्पर्श बना। राम सीता को ढूँढते हैं। पर वे अदृश्य हैं। राम अदृश्य सीता का सम्बोधन करते हुए कहते हैं--

त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि ॥ ३·१४

उसी समय सीता के पालित हस्ति-शावक के ऊपर गजराज के आक्रमण की घटना का समाचार राम को सुनाई पड़ता है। राम उसकी रक्षा के लिए उस ओर जाना चाहते हैं। वासन्ती नामक पूर्वपरिचित वनदेवी उन्हें बताती है कि सीतातीर्थ से गोदावरी पार करके वहाँ पहुँचें। सभी उधर चल देते हैं। अभी राम गोदावरी तट पर ही हैं कि उन्हें करिकलभ की विजय का समाचार मिलता है।[1]

राम और वासन्ती की बातचीत होती है। वासन्ती ने पहले लक्ष्मण की खबर ली। फिर रोती हुई बोली कि आप भी क्या ही घोर निर्दय हैं। सीता को कहाँ छोड़ दिया। बस, राम को सीता के प्रति किया गया अपना व्यवहार इस प्रजामुक्त वातावरण में शूल देने लगा। उन्होंने १२ वर्षों के अपने शोकावेग को वासन्ती के सामने उड़ेल दिया। सीता और तमसा उसे सुन रही थीं। सीता भी रो उठीं।

वासन्ती राम के शोकावेग की असहनीयता देखकर उन्हें जनस्थान के भागों को देखने के लिए ले जाती है। इसी बीच राम पुनः-पुनः मूच्छित हो जाते हैं। सीता उन्हें अपने स्पर्श से चेतना प्रदान करती हैं। राम की विचित्र अवस्था है। वे सीता के स्पर्श का अनुभव तो करते हैं, पर उन्हें देख नहीं पाते। यह स्वप्न है या जागरण? फिर राम विमान से चल देते हैं।

चतुर्थ अङ्क में दृश्य वाल्मीकि के आश्रम का है। दो शिष्य बातचीत करते हुए बतलाते हैं कि वसिष्ठादि अनेक महर्षि आये हैं। जनक अपने मित्र वरुण के पुत्र से मिलने आये हैं। वे वाल्मीकि से मिलकर एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उसी समय अरुन्धती के साथ कौशल्या जनक से मिलने आती हैं। कौसल्या और जनक सीता की विपत्ति से शोकग्रस्त हैं। अरुन्धती तभी उनको स्मरण कराती है कि वसिष्ठ की भविष्य वाणी का भी तो ध्यान रखिये कि इस विपत्ति का भी परिणाम सुखमय होगा। उसी समय खेलते हुए बालकों का कलकल सुनाई पड़ता है। सबसे पहले कौशल्या को उन बालकों में से एक (लव) राम के सामन प्रतीत होता है, जब वे बालक थे। जनक की उत्सुकता उसमें विशेष बढ़ी। उन्होंने कञ्चुकी को भेजा कि वाल्मीकि से पूछ कर

---

१. यह आगे चलकर लव की दिग्विजय की सूचना देता है।

बताओ कि यह बालक कौन है। वाल्मीकि ने उत्तर भिजवाया कि यथासमय सब कुछ ज्ञात हो जायगा। इस बीच उस बालक को बुलाकर उससे माता-पिता आदि के विषय में पूछा। बालक ने उत्तर दिया—कुछ भी ज्ञात नहीं। तुम किसके हो? यह पूछने पर उसने कहा कि भगवान् वाल्मीकि के।

उसी समय राम के अश्वमेध का घोड़ा उस आश्रम के समीप लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की अध्यक्षता में आ पहुँचा। नेपथ्य में यह घोषणा हुई। कौसल्या प्रसन्न हुई कि आज चन्द्रकेतु से भी भेंट हुई। लव ने उनसे पूछा कि यह चन्द्रकेतु कौन है। जनक ने कहा—क्या तुम राम-लक्ष्मण को जानते हो? बालक ने कहा कि ये रामायण कथा में पात्र हैं। जनक ने बताया कि चन्द्रकेतु लक्ष्मण के पुत्र हैं। लव ने कहा कि तब तो चन्द्रकेतु उर्मिला के पुत्र और जनक के नाती हैं। जनक ने फिर पूछा—बताओ दशरथ के अन्य पुत्रों को किस-किस स्त्री से क्या सन्तान है? लव ने बताया कि रामायण-कथा का यह भाग वाल्मीकि लिख तो चुके हैं, पर प्रकाशित नहीं किया है। उसी के एक भाग को नाटकीय स्वरूप देने के लिए और अप्सराओं के द्वारा अभिनीत किये जाने के लिए महर्षि भरत के पास भेजा है। साथ में मेरे भाई कुश उस पुस्तक की रक्षा के लिए भेजे गये हैं। कौसल्या के पूछने पर ज्ञात हुआ कि लव के बड़े भाई कुश हैं। दोनों यमज हैं। जनक ने पूछा कि रामायण कथा का अन्त कैसे होता है? लव ने कहा कि जहाँ राम ने वन में सीता का निर्वासिन करा दिया। यह सुन कर जब कौसल्या और जनक रोने लगे तो लव के पूछने पर अरुन्धती ने बताया कि यह कौशल्या हैं और ये जनक हैं।

उसी अवसर पर लव के साथी आये और उसे घोड़े को देखने के लिए खींच ले गये। लव को क्षत्रियों का अश्वमेध के द्वारा पराभव असहनीय हो उठा। उसने घोड़े को आश्रम में ले जाने के लिए वटुसेना को आदेश दिया।

चन्द्रकेतु की सेना को युद्ध करते हुए लव ने पछाड़ दिया। चन्द्रकेतु आया तो लव को देखते ही उसे—**'नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धः प्ररोहः'** समझा। फिर भी लव को अपने से लड़ने के लिए आह्वान किया। लव भी चन्द्रकेतु से प्रभावित हुआ। वे दोनों बातचीत करना चाहते थे, पर चन्द्रकेतु की सेना के नायक वारंवार लव पर वाण आदि फेंककर विघ्न डालते थे। लव ने जृम्भकास्त्र से उन सबको सुला दिया। फिर शान्त होकर जब वे मिले तो एक दूसरे को प्रिय-दर्शन माना। तथापि उन्होंने निर्णय किया—

वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते ॥ ५.१९

लव पैदल था। चन्द्रकेतु ने भी उसके समान होकर ही लड़ने के लिए स्वयं रथ से उतरना ठीक समझा। उतर कर उन्होंने कहा—**आर्य सावित्रश्चन्द्रकेतुरभि-**

वादयते। तथापि युद्ध का क्रम समाप्त नहीं हुआ। राम के क्षात्र धर्म के विषय में लव को सन्देह था। उसने राम की भरपूर आलोचना करते हुए कहा—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते।

चन्द्रकेतु को यह कब सह्य था। दोनों वीर लड़ने चल पड़े।

छठें अङ्क में लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन विद्याधर और विद्याधरी की तद्विषयक बातचीत द्वारा प्रस्तुत है, जिसमें चन्द्रकेतु के आग्नेयास्त्र का लव ने वारुणास्त्र से शमन कर दिया। वारुणास्त्र का शमन करने के लिए चन्द्रकेतु ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। इसी बीच राम शम्बूक-वध के पश्चात् अपने विमान से वहाँ उतर पड़े। युद्ध समाप्त हो गया। चन्द्रकेतु के परिचय देने पर लव ने राम को पहचाना और राम लव के आत्मसादृश्य से विस्मित थे। लव ने राम के कहने पर जृम्भकास्त्र का प्रभाव दूर किया। जृम्भकास्त्र लव को कैसे मिला—यह समस्या राम के मन में लव के विषय में आत्मनीन सम्भावनायें उत्पन्न कर रही थी। उसी समय कुश भी वहाँ लव की सहायता के लिए आ पहुँचा। राम ने उसका आलिंगन लिया। राम को सीता-निर्वासन की स्थिति और लव-कुश के आत्मसाम्य से यह अनुमान-सा होने लगा कि ये दोनों सम्भवतः सीता के पुत्र हैं। उन्होंने सीता के गर्भ में आरम्भ में ही युग्म की प्रतीति की थी। राम और कुश की बातचीत चलती रहती है। राम ने कहा कि रामायण से कोई कथा-प्रसंग सुनाओ। कुश ने बालचरित के अन्तिम अध्याय के दो श्लोकों को सुनाया। लव ने मन्दाकिनी-चित्रकूट-विहार-सम्बन्धी श्लोक सुनाया। अन्त में राम अरुन्धती, वसिष्ठ और जनक से मिलने चल देते हैं।

सातवें अंक का आरम्भ गर्भाङ्क की सूचना से होता है, जिसके अन्त में सीता और उनके पुत्रों का राम से मिलन होता है। इस नाटच के प्रेक्षक हैं देव, असुर, तिर्यक्, उरग, सचराचरभूतग्राम। प्रधान दर्शक हैं राम-लक्ष्मण। इसमें पात्र हैं सीता, भागीरथी और पृथ्वी। इसका आरम्भ सीता के वन में लक्ष्मण के द्वारा परित्यक्त होने से होता है।[1]

सीता आसन्नप्रसवा होने पर गंगा में प्रवेश कर जाती हैं। पृथ्वी और भागीरथी देवियाँ सीता को आश्वस्त करती हैं कि रघुवंश को चलाने वाले तुम्हें दो पुत्र हुए हैं। दोनों सीता का आलिङ्गन करके मूर्छित हो जाती हैं। पृथ्वी रामचरित की भर्त्सना और गंगा रामचरित की स्थितिवशात् यथार्हता प्रमाणित करती हैं। सीता पृथ्वी से कहती हैं—माँ, मुझे अपने में विलीन कर लो। पृथ्वी और गंगा उन्हें पुत्र-रक्षा के लिए उद्यत करा लेती हैं। देवियाँ सीता के विषय में कहती हैं—

१. गर्भाङ्क अङ्क के भीतर अङ्क नहीं, अपितु लघु रूपक है।

जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवलम्बसे।
आवयोरपि यत्संगात्पवित्रं प्रकृष्यते ।। ७.८

अर्थात् तुम तो हम दोनों को भी पवित्र करने वाली जगन्मंगला हो। उसी समय सीता के दोनों पुत्रों का आश्रय जृम्भादि अस्त्र लेते हैं । सीता के पूछने पर देवियों ने बताया कि वाल्मीकि इन शिशुओं का क्षात्र-संस्कार करेंगे । पुत्रों को लेकर सीता पृथ्वी के साथ रसातल में चली गईं, जिससे दूध पीने के समय तक उनका पोषण कर सकें । यह देखकर राम मूर्च्छित हो गये । उसी समय नाट्य का अन्त होता है ।

मूल नाटक के प्रसङ्ग में नेपथ्य से गंगा और पृथ्वी सीता को राम के लिए समर्पित करती हैं । मूर्च्छित राम को सीता स्पर्श से आश्वस्त करती हैं । वाल्मीकि लव-कुश को लेकर उन्हें माता-पिता से मिला देते हैं ।

परिवर्तन

उत्तररामचरित की कथावस्तु वाल्मीकि की कथा से अनेक स्थलों में भिन्न है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि राम कथा के अनेक रूप किंवदन्तियों के माध्यम से सुप्रचलित थे । सम्भव है, इन्हीं किंवदन्तियों से भवभूति को उत्तररामचरित की कथा के अनेक अभिनव अंशों की झलक मिली हो । वाल्मीकि रामायण की कथा में लव और चन्द्रकेतु का युद्ध, राम-वासन्ती मिलन, दण्डकारण्य में अदृश्य सीता के द्वारा राम का समाश्वासन, वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक, और राम की माताओं का मिलन आदि उत्तररामचरित की नवीन साहित्यिक योजनायें हैं ।[1] सबसे बढ़कर नवीनता है सीता का १२ वर्ष तक गंगा की शरण में रहना । वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता वाल्मीकि के आश्रम में १२ वर्ष तक रहीं । उत्तररामचरित के अन्त में सीता का राम से मिलन होता है । यह संयोजन कथावस्तु में अनुपम लोकप्रियता ला देता है ।

पात्रोन्मीलन

भवभूति की चरित्र-चित्रण-कला उत्तररामचरित में पूर्णरूप से निखरी है। उन्होंने अपने पात्रों में स्नेह, दया, उदारता, वीरता और त्याग आदि आत्म गुणों को पूर्णतया भर दिया है । उनके पुरुष-पात्रों में राम और स्त्री-पात्रों में सीता आदर्श हैं।

---

१. कुछ अन्य अभिनव तत्त्व हैं—अष्टावक्र का वृत्तान्त, ऋष्यश्रृंग का १२ वर्ष का यज्ञ, उनके निमन्त्रण पर वसिष्ठ, अरुन्धती और राजमाताओं का वहीं जाना, चित्रदर्शन और गर्भशायी शिशुओं को जृम्भकप्रदान, दुर्मुख का वृत्तान्त, लव-कुश का गंगा में जन्म, उनके विघ्न से आत्रेयी का वाल्मीकि का आश्रम छोड़ना, शम्बूक की कथा, चन्द्रकेतु का अश्वमेध के घोड़े के साथ जाना, इस प्रकरण में चन्द्रकेतु और लव का युद्ध होते समय राम का उनसे मिलना और गर्भाङ्क।

राम

भवभूति के राम वाल्मीकि और कालिदास आदि की वर्णना के अनुरूप विकसित हुए हैं। उनको लोकाराधक या प्रजानुरञ्जक रूप में दिखाने का श्रेय भवभूति को ही सबसे अधिक मिला है। लोकाराधन या सेवा करे और भृति रूप में प्रियतमा का वियोग मिले तो भी अवकाश न लेना और निरन्तर सेवा में संलग्न रहना--यह है राम का व्रत, जो उनके इस वाक्य में उदीरित है--

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

वे अपने कुल के गौरव को जानते थे और उसकी परम्परा के अनुसार जीवन को सुख का साधन नहीं मानते थे। लक्ष्मण के शब्दों में राम थे---

राज्याश्रमनिवासेऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः ।

राम अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते थे। लक्ष्मण वीथिका-चित्र-दर्शन कराते हुए सीता से कहते हैं कि देखिये यह परशुराम का आर्य राम के द्वारा परास्त होना। राम ने उन्हें बीच में ही रोक दिया।

कुटुम्बिजनों के विषय में राम की नीति क्षमापूर्ण थी। यदि उन्होंने कुछ गड़बड़ किया है तो उसे दृष्टि-पथ से ओझल करो। लक्ष्मण ने मन्थरा और कैकयी से सम्बद्ध प्रकरण रामादि के सामने लाना चाहा, किन्तु राम वीथिका-चित्र-दर्शन के अवसर पर इन सबको छोड़कर शृङ्गवेरपुर का दृश्य देखने लगे। यही राम और लक्ष्मण का अन्तर है। इस अवसर पर राम ने कहा---

निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत् समागमः ।

इसी स्निग्ध का दर्शन करना राम सदा चाहते थे। परशुराम का प्रकरण भी उनको इसी प्रकार दर्शनीय नहीं रहा।

राम को जीवन के सरस क्षणों ने विशेष प्रभावित कर रखा है।[1] उन क्षणों को वे विस्मृत नहीं कर सके। उदाहरण के लिए देखिये---

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥ १.१९

और भी--

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसंजातखेदा--
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥ १.२४

---

१. इसका सर्वोत्तम उदाहरण है--'अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणम्' १.३९

राम ने स्वयं कहा है—यह स्थान, जहाँ की इस प्रकार की अनुभूतियाँ हैं, कैसे भूला जा सकता है ? प्रस्रवण गिरि के आवास की सुखद रातें भी राम न भूल सके—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ।। १.२७

लक्ष्मण के मुख से राम के जीवन का यह पक्ष अत्यन्त भावुकतापूर्ण विधि से वर्णित है—

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।। १.२८

सीता के वियोग का यह युग राम के लिए हृदय को फोड़ने वाला है। लक्ष्मण ने इस दृश्य का वर्णन किया है।

अयं ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः ।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मातहृदयः ।। १.२९

राम की प्रकृति भूलने की नहीं है। उनके मानस में दुःखाग्नि पुनः पुनः विपच्यमान होती हुई वेदना उत्पन्न करती है वैसे ही, जैसे हृदय का घाव शूल उत्पन्न करता है।

दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने में राम निष्णात हैं। जटायु के विषय में राम का कहना है—

हा तात कश्यप शकुन्तराज, क्व पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थस्य साधोः सम्भवः ।

उसी प्रकार राम हनुमान् के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः ।
यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च ।। १.३२

राम के चरित्र के उदात्त पक्ष से उनके सम्पर्क में आये हुए सभी लोग प्रभावित हैं। सीता ने उनके विषय में कहा है—

थिरप्पसादा तुम्हे इदो दाणिं किं अवरं ।

राम की कर्मण्यता धन्य है। गर्भवती सीता श्रान्त होकर उनकी गोद में सो गई। फिर भी दुर्मुख नामक चर से पौरजानपद-वृत्त सुनने के लिए उसी समय वे उद्यत हैं।

राम अपनी स्थिति को पूर्णतया समझते हैं। सीता को पुनः वन भेजते समय उनकी प्रतिक्रिया है—(१) मैं धोखे से सीता को मृत्यु के मुख में डाल रहा हूँ। (२)

सीता को वनवास देने के कारण मैं अस्पृश्य और पातकी हूँ, अपूर्व-कर्म-चाण्डाल हूँ। राम के शब्दों में—

पर्यवसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य.....अशरणोऽस्मि ॥

अपने सभी सम्बन्धियों और सहायकों को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—

मुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन

वे राम देव नहीं आदर्श मानव हैं, जो सीता को छोड़ते हुए उनके चरणों में सिर रख कर कहते हैं—

देवि, देवि, अयं पश्चिमस्ते रामस्य शिरसा पादपङ्कजस्पर्शः।

राम के चरित्र का चित्रण स्वयं वनदेवी वासन्ती ने किया है। तदनुसार—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥ २.७

अर्थात् लोकोत्तर राम का चरित्र वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है। कैसे? सीता का निर्वासन करते समय वज्रवत् कठोरता देखिये और निर्वासित सीता की स्मृति को निरन्तर सोते-जागते अपने हृदय में सँजोये रखकर उसके दुःख में घुलते रहना—यह है कुसुम से बढ़कर कोमल होने का लक्षण।

भवभूति ने राम के चरित्र के जिस उदात्त पक्ष की मानसी कल्पना की है, उसके अनुसार उनका शम्बूक का मारना असम्भव है। राम स्वयं कहते हैं—अरे हाथ, अब तू निर्दय हो चला है। सीता का निर्वासन करके क्रूरता के कामों में दक्ष है। इस शूद्रमुनि को मारो।

राम क्या शूद्रों की तपस्या के विरोधी हैं? नहीं। उन्होंने स्पष्ट ही उस शूद्रमुनि से कहा है—

तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः फलम्।

अर्थात् अपनी तपस्या का फल प्राप्त करो। इससे सिद्ध होता है कि राम की दृष्टि में वह शम्बूक तपस्या का अधिकारी था।

भवभूति के राम वाल्मीकि के राम के समान ही प्रकृति के अद्भुत प्रेमी हैं। प्रकृति के बीच उनका मन रमता था—

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास-
स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु।
गोदावर्याः पयसि विततश्यामलानोकहश्री-
रन्तः कूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः ॥

राम प्रकृति के रम्य भूभागों को पहले के मित्र (पूर्वसुहृत्) की संज्ञा देकर उनका स्मरण करते हैं क्यों ?

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत ॥ २.२८

राम क्षात्र धर्म के प्रशंसक थे । उन्होंने तेजस्विता को समादरणीय मान कर कहा है—

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः ।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ॥ ६.१४

राम रामायणकथा-नायक के रूप में 'ब्रह्मकोशस्य गोपायिता' इस उपाधि से विश्रुत थे ।

राम के लोकोत्तरचरित की कल्पना उनके अनुपम रूप, अनुभाव और गाम्भीर्य के द्वारा होती थी । कुश ने उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आरम्भ में ही कहा—

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचं व्यवीवृतत् ॥ ६.२

राम के द्वारा सौन्दर्यानुशीलन का एक मानदण्ड प्रस्तुत किया गया है। यथा,

श्रमाम्बुशिशिरीभवत्प्रसृतमन्दमन्दाकिनी–
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति ।
अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम् ॥ ६.३

उत्तररामचरित के तृतीय अंक में राम का चरित्र सार रूप में प्रथम श्लोक में दे दिया गया है ।[1] यथा,

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ ३.१

इस अंक में राम का चरित करुणामय चित्रित किया गया है । हमारे सामने जो राम प्रस्तुत हैं, वे दीर्घकालीन शोक के सन्ताप के कारण परिक्षीण हैं ।

---

१. ऐसा ही श्लोक है—

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवकुसुममिव घर्मो ग्लपयति । ३.३०

राम के महामहिम व्यक्तित्व का विशद परिचय विष्कम्भक में ही दे दिया गया है। उनके महानुभाव से सभी प्रभावित होकर उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं। उदाहरण के लिए—सरयू ने गंगा से कहा है कि राम पंचवटी में जाने वाले हैं। लोपामुद्रा और गंगा को यह आशंका हो उठती है कि 'पंचवटी वन में सीता के सहवास की लीलाओं की साक्षी देने वाले प्रदेशों में राम के लिए प्रमाद होना स्वाभाविक है'। यहाँ इस प्रकरण में अयोध्या के राजा राम नहीं हैं, जो लोकाराधन के लिए सब कुछ—सीता को भी, छोड़ने के लिए उद्यत हैं। यहाँ इस अवसर पर वे राम हैं, जो मानवोचित भावुकता का आदर्श स्नेह-सने चौखटे के भीतर प्रकट कर रहे हैं।

राम का स्नेह केवल मानवों तक ही सीमित नहीं है। तभी तो वे राम हैं। पंचवटी में तो उन्हें नए बन्धु-बान्धव द्रुम और मृगों के रूप में मिलते हैं। झरनों और कन्दराओं के प्रति उनका अनुराग है। करिकलभक और गिरिमयूर दोनों वत्स हैं।

राम के दाम्पत्य जीवन की मधुरिमा की एक झाकी इस अंक में इस प्रकार दी गयी है।

आश्च्योतनं तु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितमनःपरितर्पणोऽयं
संजीवनौषधिरसः नु हृदि प्रसिक्तः॥ ३.११

राम के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा सलोनापन है कि उनकी रूप-माधुरी नित्य नूतन रहती है। वासन्ती ने उनकी मनोहारिता का वर्णन करते हुए कहा है—

कुवलयदलस्निग्धैरंगैर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव यः।

राम का यह अप्रतिम सौन्दर्य तत्सम्बन्धी एक नया मानदण्ड ही प्रस्तुत करता है, जो अंग्रेजी के महाकवि कीट्स के शब्दों में है—

A thing of beauty is a joy for ever.

राम और सीता का दाम्पत्य-भाव आदर्श था। वासन्ती के शब्दों में राम ने सीता के लिए कभी कहा था—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। ३.२६

यदि इतना प्रेम सीता के लिए था और राम जानते भी थे कि 'क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता' और उन्होंने सीता-परित्याग किया तो यह कठोरता का काम किया, एक विवेकहीन काम किया। उन्हें सीता की रक्षा का कुछ प्रबन्ध तो वन

में कर ही देना चाहिए था । भवभूति ने राम के चरित्र की इस दुर्बलता को वासन्ती के मुख से कहलवाया है--

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं । ३.२७

सीता के वियोग में राम पूर्णतः विपन्न हैं । वे सीता की स्मृति करके रो उठते हैं । राम के शब्दों ही में उनकी दशा सुनिये--

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ।। ३.३१

गाढोद्वेगपूर्वक हृदय फट रहा है, पर दो टुकड़े नहीं हो जाता। विकल शरीर मोहाच्छन्न है, पर चेतना-रहित नहीं हो जाता । आन्तरिक ज्वाला जला तो रही है पर राख नहीं बना देती । मर्मच्छेदी विधि प्रहार तो करता है किन्तु जीवन-तन्तु को काट नहीं देता ।

भवभूति ने राम की विषादावस्था को प्रखरतम चित्रित करने के लिए उनके मुख से कहलवाया है—

'इदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते' । ३.३२

राम के चरित्र में उपर्युक्त वक्तव्य देने की दुर्बलता भवभूति को कहाँ से दिखायी पड़ी, यह सोच लेना कठिन है । जिस राम ने उत्तररामचरित के आरम्भ में कहा था–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।

वे ही अपनी प्रजा के लिए ऐसी दुस्सह सोल्लुण्ठ उक्ति क्यों कर कहेंगे ? अथवा क्या शोकावेग राम को भी परवश बना सकता था ? यही कहा जा सकता है कि राम की स्थिति बहुत कुछ असाधारण ही थी । उनको सीता का परित्याग करने के पश्चात् नींद नहीं आयी थी । उन्होंने स्वयं कहा है--

कुतो रामस्य निद्रा

अर्थात् राम को नींद कहाँ ?

लक्ष्मण

लक्ष्मण मूर्तिमान् पराक्रम ही हैं। चित्र-दर्शन के प्रकरण में उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निदर्शन कराया गया है । जिन-जिन वस्तुओं की ओर लक्ष्मण दर्शकों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं, वे प्रायः सभी संरम्भपूर्ण हैं । यथा--(१) **अयं च भगवान् भार्गवः** (२) **एषा मन्थरा** (३) **धृतमार्येण पुण्यमारण्यकं व्रतम्** (४)

कालिन्दीतटवटः श्यामो नाम (५) एष विन्ध्याटवीमुखे विराध-संरोधः (६) एषा पञ्चवट्यां शूर्पणखा ।

उपर्युक्त प्रकरणों से स्पष्ट है कि लक्ष्मण को ही सीता को वन में छोड़ने का काम दिया जायेगा । वे ऐसे साहसपूर्ण परिस्थितियों को संभाल सकेंगे ।

लक्ष्मण का चरित्र वाल्मीकि के द्वारा चित्रित उनके चरित के समकक्ष ही पड़ता है । सातवें अङ्क में जब राम मूर्च्छित हो जाते हैं तो वाल्मीकि को भी मानो फटकारते हुए वे कहते हैं--

लक्ष्मणः--परित्रायस्व, परित्रायस्व । एष ते काव्यार्थः ।

वे नाटक में जहाँ-कहीं राम उपस्थित हैं, सदा राम के रक्षक-रूप में तत्पर दिखायी पड़ते हैं ।

सीता

सीता का चरित्र-चित्रण करने में कवि को पूरी सफलता मिली है । अभिज्ञान की शकुन्तला के विपरीत ये गृहलक्ष्मी हैं । राम ने कहा है--

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः ।। १·३८

कवि की दृष्टि में सीता प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग रखती हैं । उनको भगवती भागीरथी में अवगाहन प्रिय है । वे कह उठती हैं--

जाणे पुणो वि पसण्णगम्भीरासु वणराइसु विहरिस्सं पवित्तसोम्मसिसिरावगाहां च भअवदीं भाईरहीं अवगाहिस्सं ।

भवभूति की सीता भोगविलासिनी नहीं हैं । उन्होंने राम से कहा था--

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु ।
इतीहारमतैवासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः ।। २·१८

उस सीता को राम का स्नेह सम्राज्ञी-पद से बढ़ कर था । जो सीता राम के साथ रहने के लिए अयोध्या के विलास-सुखों को छोड़कर १४ वर्ष का वनवास सहने के लिए उद्यत हुई थीं, उनको राम के साथ रहना नहीं बदा था । उत्तररामचरित में राम के वियोग में उनकी शारीरिक और मानसिक क्षीणता का चित्रण विशेष रूप से तृतीय अङ्क में किया गया है ।

सीता को साधारण नारी समझने की भूल राम तक ने नहीं की थी । तभी तो राम ने कहा--(१) त्वया जगन्ति पुण्यानि तथा (२) नाथवन्तस्त्वया लोकाः । इसी का विचार करते हुए गङ्गा और पृथ्वी ने सीता की सर्वोच्च चारित्र्य-गरिमा को प्रकट करते हुए कहा है--

जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे ।
आवयोरपि यत्सङ्गात् पवित्रत्वं प्रकृष्यते ।। ७.८

उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में वनवासिनी सीता के चरित्र-चित्रण की सामग्री है। वन में रहने वाली सीता को वन्य-प्रकृति से साहचर्य है। उन्हें पंचवटी में सर्वप्रथम उस हाथी के बच्चे का वृत्त मिलता है, जिसे उन्होंने पाला था—

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रेलोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत् ।। ३·६

उस हस्ति-शावक को सीता पुत्रक कहती हैं। सीता ने वन में रहते हुए वृक्षों, पक्षियों और मृगों को जल, नीवार और घास देकर संवर्धित किया था। सीता को राम के वियोग में उतना कष्ट नहीं हुआ, जितना राम को। सीता ने स्वयं कहा है—

'भअवदि तमसे एदिणा अवच्च संसुमरणेण उससिदपण्हुतत्थणी ताणं अ पिदुणो संणिहाणेण खणमेत्तं संसारिणीम्हि संवुत्ता ।'

वे केवल क्षणमात्र संसारिणी हुईं, अन्यथा वे देवता थीं, जिन्हें मानवोचित सुख-दुःख का परामर्श साधारणतः नहीं होता।

सीता को राम के हृदय का पूर्ण परिचय था कि राम ने मेरा निर्वासन इसलिए नहीं किया है कि उनके मन में मेरे प्रति उदासीनता है, अपितु इसलिए कि राम का अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है लोकाराधन। वे सभी कष्ट सह सकते हैं एकमात्र लोकाराधन के लिए। इस वियोग में दोनों को समान कष्ट है। ऐसी स्थिति में सीता को राम के प्रति सहानुभूति है। जब कोई कभी राम को उपालम्भ देने की बात करता है तो सीता खेद प्रकट करती हैं। उनका कहना है कि आर्यपुत्र से प्रिय व्यवहार किया जाना चाहिए।

सीता के चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी सामग्री प्रासंगिक रूप से भी तृतीय अङ्क में मिलती है। उन्हें गोदावरी के बालू पर हंसों के साथ खेलने का चाव था।

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते ।। ३·३७

चतुर्थ अङ्क की सीता महान् आत्माओं के द्वारा आलोचित हैं। उनके सम्बन्ध में अरुन्धती का कहना है—अग्निरिति वत्सां प्रति परिलघून्यक्षराणि। अर्थात् यह सीता तो अग्नि से बढ़कर है। और भी

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्ति द्रढयति ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।। ४·११

दशरथ के शब्दों में सीता की प्रतिष्ठा सुनिये—

एसा रहुउलमहत्तराणं वहु अम्हाणं दु जणअसुदादुहिदेव्व ।

और भी—**प्रियातनूजास्य तथैव सीता ।।** ४·१६

वे तो अपने गुणों के कारण दशरथ का प्यार उनकी कन्या के रूप में प्राप्त कर चुकी थीं।

उत्तररामचरित में नायिका सीता का महत्त्व नायक राम से बढ़कर है। सीता के सम्बन्ध में आदि से अन्त तक प्रेक्षक की उत्सुकता रहती है कि उसका क्या हो रहा है। राम के विषय में सभी अनुत्सुक हैं। प्रायः सभी अङ्कों में सीता प्रत्यक्ष और गौण रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और उनसे सम्बद्ध, कुछ कार्य-विशेष हो रहा है। नाटक की प्रायः सारी कार्य-वृत्ति सीता पर केन्द्रित है, न कि राम पर।

सीता का उदाहरण लेकर कवि ने समाज को धिक्कारा है कि स्त्रियों की निन्दा करना उसकी विषमता का द्योतक है।

वासन्ती

उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में वासन्ती स्वयं प्रकृति की देवी या वनदेवी है। वह सारी प्रकृति की संचारिका है। इस अङ्क में अन्य सभी पात्र तो धीरता खो बैठे हैं। बस यही एक वासन्ती है, जो केवल एक बार रोती है और मूर्च्छित होती है, किन्तु फिर सदा वह राम की खबर लेती रहती है। उसने राम से पूछा—

तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन ।

यह क्या कर डाला आपने सीता को वन में छोडकर ? बातें सोलह आने सच्ची कहना वासन्ती का स्वभाव है। वह वनदेवी जो ठहरी। वन में लल्लो-चप्पो का अवसर कहाँ ? उसने राम से कहा—**अयि कठोर यशः किल ते प्रियम्**। तुम्हें तो यश प्रिय है, पर काम अपयश का किया है।

अन्त में उसे राम पर दया हो आती है। उसने राम को आश्वासन देते हुए कहा—बीती ताहि विसार दे। वह राम को जनस्थान की ओर मोड़कर उनके शोकावेग को कम करना चाहती तो है, पर परिणाम ठीक उलटा है। यही सब देखकर तो सीता ने उसके विषय में कहा—

दारुणासि वासन्ति दारुणासि ।

वास्तव में राम को खूब रुलाया इस वासन्ती ने। वासन्ती को ज्ञात नहीं था कि सीता जीवित हैं। जब मूर्च्छित राम को अदृश्य सीता ने छूकर पुनः चेतना प्रदान की तो राम ने वासन्ती से कहा कि सीता तो सामने ही है। वासन्ती ने दो टूक उत्तर दिया—क्यों मुझे जला रहे हो।

वर्णन

भवभूति ने संसार की सभी मनोरम वस्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया था, केवल दोनों आँखों से ही नहीं, अपितु अपने हृदय से भी। उन्होंने पूर्वतर काव्यों के अध्ययन से प्राक्कालीन वस्तुओं को पुराने रूप में समझा था और तदनुसार वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके वर्णन में पाठक के समक्ष वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करने की विशेष शक्ति है। नीचे के श्लोक में वाल्मीकि के आश्रम की पाकशाला का वर्णन है—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यःप्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ।। ४·१

बस, इतनी वस्तुयें कहीं स्थित कर दीजिये और आश्रम की पाकशाला दिखाई पड़ने लगेगी।

बाल्य-वर्णन

वात्सल्य-रस की सृष्टि के लिए भवभूति को विशेष चाव था। इस प्रयोजन से वह बाल्य-वर्णन करने में चूकते नहीं थे। कौसल्या के शब्दों में—**सुलहसोक्खं दाव-बालत्तणं होदि**। अरुन्धती की आँखों में तो बालक अमृताञ्जन की भाँति प्रियङ्कर था। उन्होंने रामपुत्र के द्वारा अपने हृदय की निर्वृत्ति का वर्णन करते हुए कहा है—

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन् ।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम् ।। ४.१९

भवभूति के वर्णन में एक स्वाभाविकता है। कौसल्या के वर्णन में मातृत्व प्रधान है। वह देखते ही माता के तत्त्वान्वेषी हृदय से परख लेती है कि लव राम के समान ही है तथा अपने मुग्ध और ललित अंगों से हमारे लोचनों को शीतल कर रहा है।[1] अरुन्धती ऋषि-पत्नी की भाँति उनकी पुण्यश्री, स्निग्ध श्यामलता आदि को देखती है। किन्तु कितना स्वाभाविक है उस बाल में क्षात्रत्व को देखना जनक के लिए। वे कहते हैं—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् ।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ।।

---

१. अन्यत्र भी—जात इदो वि दाव एहि, तथा ४.२२।

प्रकृति

भवभूति ने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा है। सर्वप्रथम है वन को देवता-रूप में देखना। वासन्ती साक्षात् और मूर्तिमती वनदेवी है। ऐसी प्रकृति पात्र-रूप में प्रकट की गई है। वासन्ती के अतिरिक्त गंगा, गोदावरी, सरयू, तमसा, मुरला आदि नदियाँ पात्र रूप में प्रदर्शित की गई हैं। गंगा का कार्य-व्यापार इस नाटक में अतिशय महत्त्वपूर्ण है।

पञ्चवटी के प्रति भवभूति की विशेष आस्था है। राम इनको पूर्वसुहृद् कहते हैं और साथ ही बतलाते हैं कि सुख के दिन पंचवटी के संग में वैसे ही बिताये गये, जैसे अपने घर में। इन पूर्वसुहृदों के विषय में पहले बहुत देर-देर तक बातें होती रहती थीं।[1] उस पंचवटी की सम्भावना करना वैसा ही है, जैसे किसी श्रेष्ठ मित्र की। जब अगस्त्य से मिलने के लिए राम कुछ देर तक पंचवटी को छोड़ कर जाने लगते हैं तो कहते हैं—

भगवति पंचवटि गुरुजनोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामयमतिक्रमो रामस्य।

प्रकृति ने राम का साथ दिया है। नदियों और वासन्ती ने राम को दुःख की स्थिति में सान्त्वना और आश्वासन के उपाय किये हैं। सबसे बढ़कर तो वह करि-कलभक है, जो राम और सीता का पुत्रक ही बन गया है। उसे देखकर राम और सीता की पुत्रविषयक लालसा अंशतः पूरी होती है। सीता ने कहा है—

भअवदि तमसे अयं दाव ईदिसो जादो। दे उण ण आणामि कुसलवा एत्तिएण कालेण कीरिसा संवुत्तेति।

तमसा कहती है—

यादृशोऽयं तादृशौ तावपि।

प्रकृति कहीं-कहीं उपमान रूप में वर्णित है। यथा,

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मंगलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्॥ ६.२९

भवभूति ने प्रकृति का कठोर रूप भी देखा है। यथा,

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-
र्घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥ २.९

१. यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत। २.२८

भवभूति ने प्रकृति को सजीव पात्र-सा भी चित्रित किया है। वासन्ती स्वयं प्रकृति की देवी है। वह प्रकृति की संचारिका रूप में प्रस्तुत की गई है। वह वन्य प्रकृति को राम का स्वागत करने के लिए प्रेरित करती है।[1]

डा० पी० वी० काने ने भवभूति के प्रकृति-वर्णन की विशेषताओं का आकलन करते हुए कहा है—

Bhavabhuti shows a true love of nature in its beautiful and sublime moods. He was a minute observer of Nature and could draw out lessons from the most trivial aspect of it. His descriptions of scenery of forests and mountains are always realistic, vivid and forcible. What can be more graphic and picturesque than his description of the Dandaka forest and Janasthana in the second Act of the Uttararamacarita ? He also depicts as the awful and the terrible with as great force and precision as the sublime and the beautiful.

In his description of nature and human feelings, Bhavabhuti is entirely free from conventions.·····Bhavabhuti hardly refers to the note of cuckoo and other conventions of Sanskrit poets. He treats as with descriptions of the awful forests, the mellow peaks of mountains, the panoramic views from the tops of mountains, the wild onrush of cascades down the slopes of hills.

कला

उत्तररामचरित की रचना में भवभूति ने बहुक्षेत्रीय काव्य-कला का प्रदर्शन किया है। कथावस्तु का प्रपञ्च, पात्र-चयन, चरित्र-चित्रण, वर्णन, रस-निष्पादन आदि में से प्रत्येक अपने आप में और साथ ही अन्य काव्यात्मक तत्त्वों के अनुषङ्ग में कला-वैचित्र्य के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कथावस्तु

भवभूति ने उत्तररामचरित में अतिशय उदात्त पृष्ठभूमि में कथावस्तु का विस्तार किया है। पहले तो यह जान लीजिये कि यह खेल केवल नायक और नायिका की प्रवृत्तियों तक सीमित नहीं है। नायक और नायिका के ऊपर भी कुछ शक्तियाँ हैं, जो इनके सुख-दुःख या सभी प्रवृत्तियों में अभिरुचि रखती हैं। वसिष्ठ ने सीता से कहलवाया है—

---

१. ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः॥ ३.२४

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।। १.९

इस श्लोक में वह भूमिका रेखाङ्कित की गई है, जिससे ज्ञात होता है कि भविष्य में एक महान् कार्य होने जा रहा है, जिसका एक अंश है--

केवलं वीरप्रसवा भयाः ।

सीता वन में भले ही जाय, पर उसकी माता सर्वव्यापिनी विश्वम्भरा को यदि अपना नाम सार्थक करना है तो उसे सीता की रक्षा सदा और सर्वत्र करनी है। रघुकुल के गुरु सविता और वयं च (वन में रहने वाले वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि ऋषि) कहाँ उसकी रक्षा के लिए नहीं हैं ? अर्थात् सीता कहीं भी अरक्षित नहीं है ।

वीथिका-चित्रदर्शन-प्रकरण में सीता की परवर्ती करुण-कथा सहने के लिए पाठक के हृदय को उसी प्रकार सक्षम बनाया जाता है, जैसे महामारी आदि भयंकर रोगों का सामना करने के लिए उनके दुर्बल कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश करा दिया जाता है । उदाहरण के लिए देखिये--

सीता--हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं ।
रामः--अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत् ।
सीता--जहा तहा होदु । दुज्जणो असुहं उपपादेइ ।
रामः--हन्त वर्तमान इव जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति ।

उत्तररामचरित के कथा-विन्यास में भवभूति ने पात्रों को रंगमंच के अन्य पात्रों के अनुमान द्वारा ईषत् परिचित बनाये रखने का अपूर्व कौशल प्रदर्शित किया है, जिसमें केवल वाल्मीकि ही सबको जानते हैं । राम, कौसल्या, जनक आदि पात्र लव, कुश को अनुमान के द्वारा पहचानने का प्रयास करते हैं । यह एक रहस्य है, जो प्रायः अन्त तक बना रहता है । ऐसा ही रहस्य है सीता की छायानुवृत्ति का । वे तृतीय अंक में सबको देख सकती हैं, पर उन्हें कोई नहीं देख पाता । राम उनके वास्तविक स्पर्श की अनुभूति तो करते हैं, पर सीता को देख नहीं पाते । इसी रहस्यात्मक वातावरण में अत्यन्त हृद्य कविता की प्रवृत्ति हुई है । ऐसे ही छठे अंक में लव-कुश राम को पहचान कर भी यह नहीं जानते कि ये पिता हैं । तभी तो कुश कहता है--

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ।। ६.३०

भावी घटना-पथ का संकेत कवि स्थान-स्थान पर कराते चलते हैं। यथा चतुर्थ अंक में वसिष्ठ की यह बात दुहराई गई है कि—

भवितव्यं तथेत्युपजातमेव । किन्तु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति ।

अर्थात् जो कुछ बुरा होना था, हो चुका। अब कल्याणमय अन्त आने वाला है।

प्रथम अङ्क में चित्रदर्शन-प्रकरण और उसके पश्चात् की आने वाली बातें निर्वहण के प्रसङ्ग में सन्निवेशित होने से कथा-विन्यास की सुश्लिष्टता प्रमाणित होती है। उदाहरण के लिए नेपथ्य में उच्चरित यह संवाद लीजिये—

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे यथा भगवति वसुन्धरे श्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीमिति। तदधुना कृतवचनास्मि प्रभोर्वत्सस्येति।

गर्भाङ्क के दृश्य और मूलनाटक के दृश्य का संश्लेष-कौशल संस्कृत नाट्य-साहित्य में अनुपमेय ही है, जहाँ एक ही व्यक्ति अभिनेता और प्रेक्षक दोनों ही है। राम और लक्ष्मण इस प्रकार के व्यक्ति हैं।

उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में कथावस्तु-सम्बन्धी कला का विशेष चमत्कार है। अपनी प्रियतमा के विलुप्त हो जाने के पश्चात् उसके प्रत्यागमन और संस्पर्शन आदि का वृत्त भास के स्वप्नवासवदत्त में सुपरिचित है। सम्भव है, भास की कथा पहले से प्रचलित किंवदन्ती के अनुरूप ही हो, किन्तु भवभूति की कथा की योजना उनकी प्रतिभा से विकसित प्रतीत होती है। जब राम पंचवटी आते हैं तो गङ्गा किसी घरेलू काम के बहाने गोदावरी से मिलने आती हैं। वहीं सीता गङ्गा के साथ हैं। सारा उद्देश्य है राम को पंचवटी-दर्शन के समय आश्वस्त रखना। गङ्गा सीता से कहती हैं कि मेरे प्रभाव से तुम को पृथ्वीतल पर विचरण करते हुए देवता भी नहीं देख सकते, मनुष्यों की क्या बात। इस प्रकार पंचवटी-दर्शन के समय राम के बारंबार मूच्छित होने पर सीता अपने उपस्थान से राम की पत्नी-वियोग-जनित आतुरता की प्रखरता को कम करती हैं। इस दृश्य का संविधान और विन्यास इतने कौशलपूर्ण और सरल विधि से किया गया है कि नाट्यसाहित्य में इसका स्थान अद्वितीय ही है। राम और सीता की लुका-छिपी का खेल इतने गम्भीर वातावरण में सफलता और सरसता पूर्वक चित्रित कर देना भवभूति की लेखिनी की ही अतिशायिता है।

उपर्युक्त दृश्य के निदर्शन में भवभूति केवल भास से ही आगे नहीं हैं, अपितु वे कालिदास से भी बढ़ गये हैं। कालिदास ने भी पुरूरवा और उर्वशी अथवा दुष्यन्त और शकुन्तला का जो मिलन-दृश्य विन्यस्त किया है, उसमें इतनी मार्मिकता नहीं आ पाई है।

तृतीय अङ्क में करिकलभ की प्रासंगिक घटना का नियोजन कला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। राम और सीता को पूर्वतर स्मृतियों के कारण अतिशय हार्दिक

विषाद है। उस समय उन दोनों के सामने करिकलभ का वृत्तान्त लाकर मानसिक अवसाद की क्षीणता कम कर दी गई है। यहाँ अभिनयात्मक कला का अनुत्तम सुयोग भवभूति ने प्रस्तुत किया है। तृतीय अङ्क में सीता तो अदृश्य हैं। उनकी बात तक कोई नहीं सुन सकता, किन्तु इस प्रसङ्ग में सीता की बातें बिना सुने हुए ही अकेली राम की बातों का क्रम ऐसा बनाया गया है कि वे सीता की बातों के उत्तर-रूप में भी सटीक बैठती हैं। राम ने कहा था कि अवश्य ही सीता को हिंस्र पशुओं ने खा डाला होगा। सीता कहती हैं—

अज्जउत्त धरामि एसा धरामि

इसे राम ने सुना तो नहीं पर वे कहते हैं—

हा प्रिये जानकि क्वासि।

यह अन्तिम वाक्य पूर्व वक्तव्य के क्रम में है और साथ ही सीता की उक्ति का उत्तर भी है।[1]

एक दृश्य में राम समझते हैं कि मुझे सीता का स्पर्श प्राप्त है। वे कहते हैं—

सखि वासन्ति, आनन्दनिमीलितेन्द्रियः साध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वं तावदेनां धारय।

राम की इस उक्ति को सुनकर वासन्ती कहती है—

कष्टमुन्माद एव।

उसे भी सीता के स्पर्श की वास्तविकता की अभिज्ञता नहीं। सीता के लिए भी राम का स्पर्श वास्तविक है, किन्तु सीता तो अदृश्य हैं। राम भी मानो सपना देखते हुए की भाँति सीता के स्पर्श की वास्तविकता को असत्य ही मानते हैं। यही है नाटककार का कला-नैपुण्य।

भाव की प्रवेगमयी धारा में बहते हुए पात्रों को भवभूति ने अपना आपा खो देने के लिए विवश कर दिया। ऐसी स्थिति में वह दृश्य आता है, जब सीता-हरण और जटायु-मरण आदि पात्रों को मानो प्रत्यक्ष से हो रहे हैं और सीता कहती हैं—

(सास्रम्) अज्जउत्त तादो वावादीअदि। अहं वि अवहरिज्जामि। ता परित्ताहि परित्ताहि।

(सवेगमुत्थाय) आः पाप तातप्राणसीतापहारिन्, क्व यासि।

कथा-प्रपञ्च में पूर्वानुस्मृति का अभिन्नाश्रय लेकर रस और चरित्र-चित्रण के उत्कर्ष को द्विगुणित कर दिया गया है। वे पात्रों को उदात्ततम स्वरूपित करने के लिए

---

१. ऐसा ही दृश्य तृतीय अङ्क के अन्त में भी है, जहाँ राम सीता की प्रतिकृति की चर्चा करते हैं।

प्रसङ्गतः अनपेक्षित प्रकरणों का भी उल्लेख करने में हिचकिचाते नहीं। ऐसे उल्लेख भी पूर्वानुस्मृति की कोटि में आते हैं। उदाहरण के लिए अरुन्धती की यह उक्ति लीजिए—

एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ ।। ४·९

इसमें दूसरी पंक्ति जनक के चरित्र पर प्रकाश डालती है, पर प्रसङ्गतः अनपेक्षित है। इसी प्रकार का श्लोक है—

यया पूतंमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः ।
त्रिलोकीमङ्गल्यामवनितललीनेन शिरसा
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ।। ४·१०

पूर्वानुस्मृति के प्रकरणों को रस-निष्पत्ति के लिए अभूतपूर्व साधन भी बनाया गया है। वीथिका-चित्र-दर्शन, जनक के द्वारा सीता का शैशव-स्मरण, कौसल्या का यह कहना कि **सुमारिदम्हि अणिव्वेदरमणीए दिअसे** आदि कुछ अन्य प्रकरण इसी प्रकार के हैं। जनक जो पूर्ण रूप से विरत हो चुके हैं, उन्हें भी भवभूति ने पूर्वानुस्मृति के पाश में डालकर कौशल्या को देखते ही कहलवाया है—

क एतत्प्रत्येति सैवेयमिति

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विपाकः ।। ४·६
य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः ।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम् ।। ४·७

अरुन्धती पुनः इसी पूर्वानुस्मृति का सहारा लेकर करुण-रस की निर्झरिणी बहाती हैं। यथा,

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम् ।। ४·१२

जनक का भी वह पथ है—

स सम्बन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम् ।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान् किमिव मम नासीद् दशरथः ।। ४·१३

पूर्वानुस्मृति सम्बन्धी इस कला को भवभूति ने स्वयं ही नीचे लिखे श्लोक में निदर्शित किया है—

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदः प्रथममेकरसामनुकूलताम्
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणो विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम् ।। ४·१५

इसका प्रत्यक्ष-सा उदाहरण कौसल्या के नीचे लिखे वाक्यों में देखिए—

कौशल्या—(आश्वस्य) हा वच्छे, जाणइ, कहिं सि सुमिरामि दे णवविवाहलच्छीपरिग्गहेक्कमण्डनं पप्फुरन्तसुद्धविहसिदं मुद्धमुहपुण्डरीग्रं । आप्फुरन्तचन्दचन्दिग्रासुन्दरेहिं अङ्गेहिं पुणो वि मे जादे उज्जोएहि उच्छङ्गं । सव्वदा महाराग्रो भणादि । एसा रहुउलमहत्तराणं बहु अम्हाणं दु जणग्रसुग्रा दुहिदेव्व ।

यही पूर्वानुस्मृति लव से अरुन्धती, कौसल्या और जनक के मिलने के अवसर पर पुनः उद्दाम बन जाती है । लव को रामायण की कथा का अभ्यास था । उसकी पूछताछ होने लगी तो जनक ने अन्त में लव से प्रश्न किया—**वत्स, कथय कथाप्रसङ्गस्य कीदृशः पर्यन्तः** और लव ने पुनः पूर्वानुस्मृति का कारुण्य प्रवाहित किया—

अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राजा निर्वासितां देवीं देवयजनसम्भवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्तः ।

बस, इसी एक वाक्य में उत्तररामचरित का सम्पूर्ण कारुण्य निर्भर है ।

गर्भांक में सीता की करुण-गाथा की पुनरावृत्ति करके और साथ ही उनकी वर्तमान स्थिति का परिचय देकर भवभूति ने प्रेक्षकों को इतना करुणार्द्र कर दिया है कि उनके पास गिराने के लिए आँसू नहीं रह जाते ।

कथावस्तु में यथासमय कलात्मक मोड़ देने में भवभूति दक्ष हैं । शोकावेग को मिटा देने के लिए कालिदास की भाँति ही भवभूति ने भी आकस्मिक संरम्भ का संयोजन किया है । सीता के वनवास का प्रसंग राम के हृदय को बैठाये जा रहा है । उसी समय नेपथ्य में—

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ।
लवणत्रासितः स्तोमः शरण्यं त्वामुपस्थितः ।। १·५०

इस पद्य को सुनकर राम सीता को भूल से गये ।

भवभूति का भाग्योदय में विश्वास कथा-विन्यास से स्पष्ट होता है । अच्छे दिन आने पर अनेक अच्छी बातें हो जाती हैं । जब राम को सीता पुनः मिलती है, तभी उस आश्रम में लवण को मार कर शत्रुघ्न भी लौटते हुए उनसे मिलते हैं । राम के शब्दों में 'प्रवृत्तिरियमभ्युदयानाम्' ।[1]

१. इस अपूर्व विन्यास के लिए कवि ने रामायण की कथा में परिवर्तन किया है, जिसके अनुसार शत्रुघ्न पुनर्मिलन के बहुत पहले ही लौट आये थे ।

चरित्र-चित्रण-कला

कवि ने पात्रों के चयन द्वारा इस नाटक के स्तर को अतीव उदात्त बना दिया है। राम और सीता जैसी महान् विभूतियों के साथ ही वाल्मीकि, वसिष्ठ और जनक जैसे महर्षि, पृथ्वी, भागीरथी, वासन्ती, गोदावरी, तमसा, मुरला और अरुन्धती जैसी देवियाँ इस नाटक में पात्र बन कर प्रस्तुत हैं। उनकी उपस्थिति-मात्र से नाटक में उज्ज्वल महिमा का प्रादुर्भाव हुआ है। नीचे के श्लोक से इसकी विशेष प्रतीति की जा सकती है—

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु-
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः ।
विद्यां वागिव यामसूत भवती तद्वत्तु या दैवतं
तस्यास्तं दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः ।। ४·५

किसी भी महापुरुष के महानुभाव से उसके चतुर्दिक् वातावरण पर प्रभाव पड़े तो वही वास्तविक महानुभाव है। भवभूति के पात्र कुछ ऐसे ही निरूपित किये गये हैं। चतुर्थ अङ्क में लव आता है तो कौशल्या, जनक और अरुन्धती तीनों प्रभावित होते हैं। उनके मनोभाव सुनिये—

कौसल्या—**अम्महे एदाणं मज्झे को एसो रामभद्दस्स कोमारलच्छीसरिसेहिं सावट्ठम्भेहिं मुद्धललिदेहिं अंगेहिं अम्हाणं लोअणाइं सीअलावेदि ।**

अरुन्धती—**झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोऽमृताञ्जनम् ।**

जनक—**भिद्येत वासद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य ।**

उपर्युक्त वक्तव्यों से व्यञ्जना के द्वारा भवभूति ने चरित्र-चित्रण कर दिया है कि वह कोई विशेष विभूति है। पाँचवें अङ्क में शत्रु बन कर चन्द्रकेतु आता है। तथापि वह लव के महानुभाव से प्रभावित है। एक ही पद्य में इन दो भावों का निर्वाह कितने कौशलपूर्वक ढंग से भवभूति ने किया है—

चन्द्रकेतुः—**अत्यद्भुतादसि गुणातिशयात्प्रियो मे**
तस्मात् सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव ।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ।। ।। ५·१०

लव के नीचे लिखे राम-विषयक वक्तव्य के माध्यम से भवभूति ने अपनी इस चरित्र-चित्रणकला का रहस्योद्घाटन किया है—

आश्वासस्नेहभक्तीनामेकायतनं महत् ।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः ।।६·१०

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः ।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत् ।।७·२०

और भी—लव का चन्द्रकेतु के विषय में इसी प्रकार क्तव्य है—

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी
तथैवास्मिन्दृष्टिर्मम कलहकामः पुनरयम् ।
रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु—
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालोल्बणरसः ।। ५·२६

राम के चरित्र-चित्रण में पुनः कवि की यह कला स्फुरित हुई है। लव ने उन्हें देखा और प्रतीत किया—

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिन् दृष्टे किमिव परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ।। ६·११

उपर्युक्त श्लोक के चतुर्थ पाद के अनुसार महापुरुषों का कोई अनिर्वचनीय वैचित्र्य-गुणमण्डित अतिशय होता है। चरित्र-चित्रण में इस अतिशय को लक्ष्य बनाकर चलना भवभूति की कला है।

राम ने सीता को वनवास देकर जो कुछ बुरा किया, उसका मार्जन कवि की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कला ही कर सकती है। दुर्मुख के सीता-सम्बन्धी परगृहवास-दूषण की चर्चा करने पर राम के द्वारा पुनः उन परिस्थितियों का आकलन कराया जाता है, जिनमें सीता का परित्याग किया जा सकता है—सज्जनों का लोकाराधन-व्रत, वसिष्ठ का सन्देश और सूर्यवंश के चरित्र की शुद्धि का ध्यान। यही बात शम्बूक-बध के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कवि की कला राम-चरित्र के उदात्त पक्ष का निर्वाह करती है। पहले तो भवभूति ने यह दिखाया कि ब्राह्मण-पुत्र को जीवित करने के लिए यह आवश्यक था। दूसरे मारे जाने पर दिव्य पुरुष होकर शम्बूक अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हुआ। ऐसा होना प्राक्कलित भी था। तीसरे कवि ने राम के मुख से कहलवा दिया कि मैं जानता हूँ कि यह क्रूरता का काम होने पर भी कर्त्तव्य है। पर सबसे बढ़कर कला का संयोजन यह है कि यह राम का अपराध नहीं है। यह उनके एक अङ्ग हाथ का अपराध है। यही स्वीकारोक्ति मार्जन की विधि है। फिर राम को सर्वाङ्ग अपराधी नहीं कह सकते। भवभूति ने यहाँ कितनी कलात्मकता के साथ व्यक्त किया है कि शम्बूक-वध राम के व्यक्तित्व का यदि विपरीत पक्ष नहीं है तो कम से कम एकाङ्गी और वह भी अपवादात्मक पक्ष है। इस प्रसङ्ग में प्रस्तुत कला-निर्भर पद्य का पारायण करें—

हे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।
रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥ २·१०

राम ही कहते हैं—कृतं रामसदृशं कर्म।

इस वाक्य से स्पष्ट व्यक्त हो जाता है कि शम्बूक को मारने वाला व्यक्ति वास्तविक राम से भिन्न है। यह है कला।

भवभूति की वर्णन-कला में स्निग्धतम वस्तुओं का नाम गिना देने की पद्धति भी निर्वचनीय है। किसी एक वस्तु से सम्बद्ध भाव-निगूढ़ता की सरिता में अवगाहन कराने की पद्धति भवभूति की नहीं है। भवभूति के वर्णन में फोटोग्राफ जैसा चित्रग्रहण प्रायः मिलता है। उदाहरण के लिए नीचे लिखा श्लोक है—

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥ २·२०

इस पद्य में निर्झरिणी है। जम्बू वृक्ष का समूह है। उसके फल पके हैं। वहाँ मदमत्त पक्षियों से वानीर व्याप्त हैं। उनके फूलों से निर्झरणी का जल सुरभित है। जम्बू-वृक्ष के बीच से निर्झरिणी का प्रवाह मुखरित है। इस पद्य से हृदय को भावों की प्राप्ति, सम्भव है, बहुत न हुई हो, किन्तु नेत्रों को बहुत कुछ देखने को मिल गया।

उपर्युक्त वर्णन में चित्रगृहीत वस्तुओं का महत्त्व है उनके विशेषणों का नहीं। नीचे लिखे पद्य में वर्णन-कला का यह उदाहरण विशेष प्रस्फुटित है—

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रम्
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत् पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं वाख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥ ४·२६

भवभूति करुण-रस की निष्पत्ति के लिए कोरी भावुकता को पर्याप्त नहीं मानते। वे करुण-दृश्य को सीधे सामने रख कर मानो हृदय पर करुण का आरा चला देते हैं। यथा,

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता ।

पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ।। ४·३

प्राय: यही दृश्य कौसल्या के नीचे लिखे वाक्य में उपस्थित है--

ता ण सक्कुणोमि उव्वट्टमाणमूलबन्धनं हिअअं पज्जवत्थावेदुं ।

करुण की धारा भवभूति ने उत्तररामचरित में अजस्र प्रवाहित की है, किन्तु पाठकों का हृदय इस रस के भौतिक वेग से कहीं बैठने न लगे--इस उद्देश्य से उन्होंने स्थान-स्थान पर कुछ विधान प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए सीता के सम्बन्ध में जनक, कौसल्या और अरुन्धती आदि बातें कर रही हैं। करुण अपने सर्वोच्च शिखर पर व्याप्त है। जनक ने कहा--

घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम् । ४·१७ ।

कौसल्या ने कहा--

दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि ।

तभी अरुन्धती कहती है--

आश्वसिहि राजपुत्रि वाष्पविश्रमोऽप्यन्तरे कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितव्यं तथेत्युपजातमेव किं तु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति।

कौसल्या के यह कहने पर कि 'कुदो अदिवकन्दमणोरहाए मह एदं' अरुन्धती ने उत्तर दिया--

तत्किं मन्यसे राजपुत्रि मृषोद्यं तदिति। न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मन्तव्यम्। भवितव्यमेव तेन।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत् ।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषिक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ।। ४·१८

अरुन्धती के माध्यम से भवभूति ने प्रेक्षकों की सान्त्वना के लिए एक और काम किया। उसने अपवारित विधि से उनसे कहा--

इदं नाम भागीरथी-निवेदितरहस्यं कर्णामृतम्। न त्वेवं विद्मः कतरोऽयममायुष्मतोः कुशलवयोः।

यह रहस्योद्घाटन पाठकों को करुण रस के वेग से बचाने के लिए था।

रस-विन्यास-कौशल की स्पष्ट अभिव्यक्ति पाँचवें अङ्क में होती है। चौथे अङ्क तक तो भवभूति ने करुण की गंगा बहाई है। सम्भवतः उनको भान हो गया कि इसके आगे करुण की गाड़ी नहीं चलेगी। करुण की सीमा नातिग होती है, अनन्त नहीं। बस, पाँचवे अङ्क में उन्होंने करुण को पास तक न फटकने दिया और दर्शकों में वीर रस भरने के लिए चन्द्रकेतु और लव का युद्ध वर्णन कर दिया। तभी तो आगे चलकर दर्शक करुण की धारा में पुनः अवगाहन करने के लिए प्रस्तुत हो सके।

पाँचवें अङ्क में मिश्रीकृत रसक्रम का सफल प्रयोग किया गया है। यथा,

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी
तथैवास्मिन् दृष्टिर्मम कलहकामः पुनरयम्।
रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु--
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालोल्बणरसः॥ ५.२६

इसमें भ्रातृप्रेम और वीरोत्साह का मिश्रण है। प्रेम और वीरता का मिश्रण भवभूति ने छठें अंक में निभाया है, विशेषतः उस प्रकरण में जब राम की कुश से भेंट होती है।

भवभूति का वीर रस तो मूर्तिमान् है। राम के शब्दों में

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥ ६.१९

अभिव्यक्ति

तृतीय अंक की अभिव्यक्ति विशेष कौशलपूर्ण है। करिकलभक और गिरिमयूर दोनों अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सानन्द हैं। प्रकृति के बीच यही विधान है। इस प्राकृतिक विधान में राम और सीता का पृथक् होना ही अस्वाभाविक है। यह अस्वाभाविकता अशाश्वत है। यदि पति-पत्नी का चिरमिलन ही प्रकृति का नियोजन है तो राम और सीता का पुनर्मिलन अवश्यम्भावी है और वह भी शीघ्र ही। यही इस अंक की कथावस्तु की प्रथम अभिव्यक्ति है। भवभूति ने इस अभिव्यक्ति को मानो कुछ अधिक स्पष्ट करने के लिए ही सीता के मुख से कहलवाया है--

सहि वासन्दि किं तुए किदं अज्जउत्तस्स मह अ एवं दंसअन्तीए। हद्धी हद्धी। सो एव्व अज्जउत्तो तं एव्व पंचवटी-वणं सा एव्व पियसही वासन्दी, दे एव्व विविह-विस्सम्भसक्खिणो गोदावरीकाणणोद्देसा, दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिपाअवा,

सा ज्जेव चाहं। मह उण मन्दभाइणीए दीसन्तं वि सव्वं एव्व एदं णत्थि त्ति सो ईदिसो जीवलोअस्स परिवत्तो।

तृतीय अंक के द्वारा राम के चरित्र का उदात्ततम स्वरूप अभिव्यक्त है। राम के साथ सीता शरीरतः यद्यपि नहीं रहीं, तथापि उनके मन में सीता सदा रहीं। राम ने विवाह नहीं किया, इतना उनका हार्दिक प्रेम था सीता के साथ। यह सब इस अंक से व्यक्त होता है।

प्रेम-विश्लेषण

भवभूति ने उत्तररामचरित में प्रेम के विराट् स्वरूप और सीमातिग क्षेत्र का परिचय दिया है। इसका मूल मन्त्र राम के शब्दों में है—

व्यतिषिजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।[1]
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥ ६.१२

पति और पत्नी का प्रेम इस प्रसंग में सर्वोपरि है। पत्नी का एक वाक्य स्नेह-निर्भर होने पर क्या कर सकता है—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥ १.३६

यह स्नेह करता क्या है? अद्वैतम्। यथा,

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्वस्थासु यद्-
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥ १.३९

पत्नी राम के शब्दों में गृहशोभा है।[2]

जो जिससे स्नेह करता है, वह उसके लिए सब कुछ है—इस प्रसङ्ग में पत्नी का स्नेह निर्वचनीय है। राम ने सीता के प्रेम के विषय में कहा है—

---

१. इस प्रसंग में उपाधियों की अनावश्यकता की चर्चा उत्तर० २.२ में भी है।
२. उत्तर० १.४९

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।। २.१६

राम का पत्नीव्रत था—

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ।। ३.३३

तथापि पति-पत्नी के प्रेम में भवभूति का विश्वास था—

हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ।। ६.३२

स्नेह का रूप सज्जनों की संगति में कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । इसके लिए तो पुण्यों को न्यौछावर किया जा सकता है । वनदेवता के शब्दों में—

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति । २.१

सत्सङ्गति का लक्षण-युक्त विवेचन है—

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ।। २.२

शिशुओं के साथ प्रेम का वास्तविक रूप भवभूति की दृष्टि में है। जैसे ठूंठ में भी वसन्त सरसता ला देता है, वैसे ही यह शिशु-प्रेम ऋषियों और चराचरों को सप्रेम बना देता है । आत्रेयी के शब्दों में—

दारकद्वयमुपनीतम् । तत्खलु न केवलमृषीणामपि तु चराचराणां भूतानामान्तराणि तत्त्वान्युपस्नेहयति ।

माता-पिता के लिए शिशु क्या हैं—

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते ।। ३.१७

अपनी सन्तति का शोक कितना गहरा हो सकता है—इसकी कल्पना महाराज जनक के उदाहरण से करें । सीता के निर्वासन का वृत सुनकर वे वैखानस बन कर तप करने लगे, पर तब भी सीता के वियोग-जनित व्यथा से उनकी मुक्ति नहीं है—

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते ।
अन्तःप्रसृतदहनो जरन्निव वनस्पतिः ।। ४.१

वे सीता के विषय में 'वदनकमलकं शिशोः स्मरामि' के अनुसार सदैव चिन्तित रहे ।

चराचर के साथ महानुभावों का प्रेम दिखाना भवभूति के लिए अभीष्ट है। पंचवटी का नाम सुनते ही आत्रेयी को सर्वप्रथम सीता के वृक्षों के साथ बन्धुत्व का स्मरण हो आता है—

स एष ते वल्लभशाखिवर्गः । २.६

राम ने सीता के विषय में कहा है—**प्रियारामाहि सर्वथा वैदेह्यासीत्**। सीता ने भी राम से कहा था—

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु । २.१८

राम के प्रेम ने प्रकृति को सजीवता प्रदान कर रखी है। वे पंचवटी प्रदेश की इस सजीवता का उपाख्यान करते हैं—

तदत्रैव सा पञ्चवटी यत्र चिरनिवासेन विविधविस्रम्भातिसाक्षिणः प्रदेशाः प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता ।

राम के साथ पंचवटी का यही सजीवता का भाव आगे भी रहता है। राम ने कहा है—

हन्त परिहरन्तमपि मामितः पञ्चवटीस्नेहो बलादाकर्षति ।

पंचवटी की सम्भावना करना राम अपना कर्तव्य समझते हैं उसी प्रकार, जैसे अगस्त्यादि ऋषियों का।[1]

प्रकृति की उपर्युक्त सजीवता का विशदीकरण करके भवभूति ने प्रकृति से अपने नाटक के लिए पात्र ढूंढ़ लिये हैं। वे हैं नदियाँ—तमसा, मुरला, गोदावरी, गङ्गा, सरयू। इनके साथ पृथ्वी।

सीता का पशुओं और पक्षियों के भी साथ प्रेम उदात्त है। उन्होंने हाथी के बच्चे को पाल रखा था। उसे सल्लकी-पल्लवाग्र खिलाती थीं। एक पालित मोर को वे नचाया करती थीं। प्रकृति के बीच सीता के प्रेम ने सौहार्द का साम्राज्य बना रखा था। हाथी का बच्चा उनका पुत्रक था। भवभूति के अनुसार प्रकृति ने राम और सीता के लिए एक कुटुम्ब बना रखा था। यथा,

---

१. राम ने स्वयं कहा है—

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥ ३.८

येनोद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु लवलीपल्लवः कर्णमूलात् ।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः ॥[1]

प्रकृति का प्रेम-व्यापार उसके मानवीकरण के लिए अभिव्यक्त है। हस्ति-दम्पती में कान्तानुवृत्ति-चातुर्य का परिलक्षण मानवीकरण के उद्देश्य का साधक है। राम ने वत्स हस्तियुवक के विषय में कहा——

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामं पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥ ३.१६

वह एक नागरक के समान ही प्रियानुवर्तन में निष्णात था।

हाथी के समान मयूर वधूसखः था। राम ने उसके विषय में कहा है——

सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि ॥ ३.१९

राम और सीता के प्रकृति-प्रेम ने पशु-पक्षियों से जो मैत्रीभाव स्नेह-सम्बन्ध के द्वारा स्थापित किया था, उसका प्रत्यक्ष और कार्य के माध्यम से परिचय नीचे के श्लोक में मिलता है——

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः॥

यह है प्रेमिका प्रकृति के द्वारा राम का अभिनन्दन। यह वही प्रकृति है, जिसके सम्बन्ध में कभी यह सत्य था——

---

१. उत्तररामचरित ३.१५। कौटुम्बिक भाव की प्रतिष्ठा आगे भी की गई है। यथा,

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः
प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।
स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः
स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति॥ ३.२०

हरिणों के कुटुम्बी होने का वृत्त ३.२१ में है।

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत्। ३.२५

भवभूति ने प्रथम दृष्टि में उत्पन्न स्नेह का वर्णन किया है। सुमन्त्र के शब्दों में ऐसे प्रेम की व्याख्या है—

भूयसा जीविधर्म एष यद्रसमयी कस्यचित् क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचार-स्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तमप्रतिसंख्येयमनिबन्धनं प्रेमाणमामनन्ति।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥ ५.२०

प्रथम-दृष्टिगत स्नेह महानुभाव से प्रतिफलित होता है।[1] ऐसे महानुभाव के सम्पर्क में यदि शत्रुभाव से भी भले मानुष आ जायँ तो उनकी स्थिति इस प्रकार होगी—

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते
मोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा—
दुन्मीलत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते॥ ५.१८

जीवन-दर्शन

उत्तररामचरित में भवभूति ने मानव-जीवन का दर्शन स्थान-स्थान पर अंकित किया है। इसके अनुसार सबसे बड़ा सत्य है दैव का सर्वोपरि प्रभाव। भागीरथी के शब्दों में—

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो—
द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे॥ ७.४

भवभूति गीता के कर्मयोग को जीवन की सर्वोत्तम सफलता मानते थे। उनके आदर्श राम थे, जिनका व्रत था—लोकाराधन। लोकाराधन में सदा प्रशंसा मिलेगी—यह निश्चित नहीं है। राम को ही अनेक स्थलों पर व्यक्त या अव्यक्त विधि से कर्तव्य-पथ पर चलने के लिए खोटी-खरी सुननी पड़ी। तथापि—

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता॥ १.५

---

१. महानुभाव का वर्णन भवभूति ने किया है—

आश्वासः स्नेहभक्तीनामेकायतनं महत्।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः॥ ६.१०

जीवन को सफल और सुखी बनाने के लिए आवश्यक है अपने को अच्छा बना लेना और फिर सज्जनों का साथ करना । भवभूति के अनुसार सज्जनों का साथ मिल जाना आकस्मिक नहीं है । इसके लिए पुण्य होना चाहिए ।

मनुष्य को अपना चरित्र कैसा बनाना चाहिए ? भवभूति का मत है कि मनुष्य दो प्रकार के होते हैं——एक तो वे जो साधारण हैं——घिसे-पिटे मार्ग पर चलने वाले और दूसरे वे जो असाधारण हैं । असाधारण लोगों को भवभूति ने लोकोत्तर कहा है। ऐसे लोकोत्तर मानव की चित्तवृत्ति है——

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।

आवश्यकता पड़ने पर अतिकठोर, अन्यथा कुसुम से भी कोमल । यदि ऐसा न हुआ तो गुड़ को खाने वाले इतने चीटें मिलेंगे कि अस्तित्व ही मिट जाय । तभी तो कहा——

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते ।

अपने व्यवहार से लोक में मधुरता आपादित करना महापुरुषों का काम होना चाहिए । इस उद्देश्य से सत्य और मधुर वाणी का प्रयोग अपेक्षित है । भवभूति के अनुसार ऐसी वाणी——

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ।। ५.३०

चित्र-दर्शन

उत्तररामचरित का चित्र-दर्शन-प्रकरण भासकृत प्रतिमानाटक में भरत के द्वारा प्रतिमा-दर्शन के समान अंशतः पड़ता है । भास ने प्रतिमा-दर्शन को महत्त्वपूर्ण मानकर इस नाटक का नाम प्रतिमा दे डाला था ।

वीथिका-चित्रदर्शन का सबसे अधिक महत्त्व है परवर्ती अंकों में नाटक की कथावस्तु और पात्रों के चरित्र-चित्रण की भूमिका प्रस्तुत कर देना । किस प्रकार राम, लक्ष्मण आदि के चरित्र पर यह चित्रदर्शन-प्रकरण प्रकाश डालता है, इसे पात्रोन्मीलन के प्रसङ्ग में देखा जा सकता है । इसमें प्रत्यक्ष ही राम के माहात्म्य की प्रतिष्ठा है और सीता का मनोरंजन होता है ।

चित्रदर्शन में सीता और राम के परवर्तिवियोग की व्यञ्जना कलात्मक विधि से की गई है । पंचवटी में शूर्पणखा का चित्र देखते ही सीता चिल्ला पड़ीं——

हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं ।

इस अवसर पर राम को कहना पड़ा—

अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत् ।

इन वाक्यों के अर्थ की गम्भीरता देखिए । पाठक इनको देखकर भावी आशंका की कल्पना कर लेता है । इसी परिस्थिति में आगे चलकर राम कहते हैं—

विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः ।। १.३३

जैसा अन्य नाटकों में देखा जा सकता है, कवि का उद्देश्य है पात्रों के चरित्र को परिमार्जित रखना । राम को किन्हीं परिस्थितियों में सीता को वनवास देना पड़ा। वनवास देने की बात को राम के चरित्र के ऊपर धब्बा न समझा जाय—इसके लिए कवि ने सीता के दोहद का उपन्यास चित्र-दर्शन के माध्यम से सफलतापूर्वक किया है । सीता कहती हैं—

अज्जउत्त एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहदाए अत्थि मे विण्णप्पं ।... जाणे पुणो वि पसण्णगम्भीरासु वणराइसु विहरिस्सं पवित्तसोम्मसिसिरावगाहां च भअवदीं भाइरहीं अवगाहिस्सं ।

अभी दुर्मुख की बात आने ही को है कि राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को वन-दर्शन कराने की व्यवस्था कर दो ।

उत्तररामचरित में सीता के पुत्रों के सरहस्य जृम्भकास्त्र-युक्त होने का विशेष महत्त्व है । आत्रेयी ने वनदेवता से द्वितीय अंक में वाल्मीकि के द्वारा प्राप्त दारकद्वय का प्रभाव बताया—

तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राण्याजन्मसिद्धानीति ।

पञ्चम अंक में लव जृम्भकास्त्र का प्रयोग करता हुआ देखा जाता है । इस प्रसङ्ग की नीचे लिखी उक्तियाँ व्यञ्जक हैं—

लवः—**कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि ।**

सुमन्त्रः—**वत्स, मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्रमामन्त्रितम् । कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात् ।**

चन्द्रकेतुः—**भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे ।**

सुमन्त्रः—**वत्स नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु । यतः**
कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात्कौशिकं गताः ।
अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रेऽपि स्थिताः ।। ५.१५

इन दोनों प्रकरणों में प्रेक्षकों को यह व्यञ्जना द्वारा प्रकट हो जाता है कि ये राम के पुत्र हैं। इस व्यञ्जना का आधार चित्र-दर्शन-प्रकरण में ही है, जहाँ राम ने सीता से जृम्भकास्त्रों के विषय में कहा है—

राम:—वन्दस्व देवि दिव्यास्त्राणि ।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परःसहस्राः शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ।। १·१५

सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।

प्रेक्षकों को प्रत्यक्ष ही यह ज्ञात रहता है कि जृम्भकास्त्र राम के पुत्रों के ही हो सकते हैं। इस प्रकार प्रेक्षकों को स्थान-स्थान पर करुण का प्रभाव कम करने की योजना सफल बनाई गई है।

षष्ठ अङ्क में लव के जृम्भकास्त्र-प्रयोग को देखकर राम ने उससे पूछा कि कैसे मिला तुम्हें जृम्भकास्त्र ? राम वही श्लोक प्रयुक्त कर रहे हैं, जो पहले अंक में उन्होंने चित्र-दर्शन-प्रकरण में किया था। इससे पुनः व्यक्त होता है कि राम का पुत्र लव है, जिसे उत्तराधिकार रूप में जृम्भकास्त्र पिता से प्रदत्त होकर सिद्ध है। अन्त में कुश और लव को देखते हुए जब उन्हें प्रायः विश्वास-सा हो चला कि ये दोनों मेरे पुत्र ही हैं तो एक बार और इन जृम्भकास्त्रों के सम्प्रदाय को अकाट्य प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

यदपि स्वतः प्रकाशान्यस्त्राणीति तत्र विमृशामि। अपि खलु तच्चित्रदर्शन-प्रासङ्गिकमस्त्रानुज्ञानमुद्भूतं स्यात् । न ह्यसाम्प्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामप्यनुशुश्रुम । अयं च संप्लवमानमात्मानं सुखातिशयो हृदयस्य मे विस्रम्भयते ।

सीता की शुद्धि को प्रमाणित करने वाले सर्वप्रथम ये जृम्भकास्त्रादि ही सातवें अङ्क में दिखाये गये हैं। यदि सीता पवित्र न होतीं तो वाचा-प्रदत्त तथा गुरुक्रम से प्राप्तव्य कैसे ये शस्त्रदेव लवकुश का उपस्थान करते ? गर्भांक में नेपथ्य से यह घोषणा होती है—

देवि सीते नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते ।
आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः ।। ७·१०

चित्र-दर्शन-प्रकरण में चित्र-लिखित गंगा से राम ने कहा था—

'सा त्वमम्ब स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव ।'

उपर्युक्त प्रसङ्ग में सप्तम अङ्क में गङ्गा का नेपथ्य से कहना—

जगत्पते रामचन्द्र स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मनो वचनं यथा सा त्वमम्बे स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवेति तत्रानृणास्मि जाता ।

संवाद

भवभूति के संवादों में कहीं-कहीं चरित्र-चित्रण के प्रयोजन से यद्यपि अनपेक्षित प्रकरणों और विशेषणों का प्रयोग मिलता है, तथापि इन संवादों में कवि ने प्रायशः वास्तविकता का निदर्शन इस प्रकार कराया है कि इनके द्वारा नाटक का अभिनय-गुण प्रवर्धित होता चलता है। चतुर्थ अङ्क में अरुन्धती, जनक, कौसल्या आदि की औपचारिक वार्ता उनके मिलन-प्रसङ्ग में हो रही है। नाप-तौल कर एक-एक शब्द वक्ता, श्रोता और चर्चित पुरुषों के व्यक्तित्व के अनुरूप हो रहे हैं। साथ ही प्रत्येक वक्तव्य से वक्ता के हृदय की अनुभूति परिलक्षित हो रही है। पूरे वाक्य ही नहीं, एक-एक पद वातावरण और व्यक्तित्व के अनुरूप प्रयुक्त हैं। नीचे के कुछ वाक्य निदर्शन रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं—

जनकः—(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते।

अरुन्धती—परं ज्योतिस्ते प्रकाशताम्। अथ त्वां पुनातु देवः परोरजाः य एष तपति।

जनकः—आर्य गृष्टे, अपि कुशलमस्याः प्रजापालकस्य मातुः।

जनकः—(सरोषम्) आः कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने। कष्टमेवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि वयं पुनः परिभूयामहे।

अरुन्धती—(निःश्वस्य) एवमेतत्। अग्निरिति वत्सां प्रति परिलघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। हा वत्से।

जनकः—हन्त हन्त सर्वथा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः। यश्चिरस्य दृष्टान् प्रियसुहृदः प्रियदारान्नस्निग्धं पश्यामि।

कौसल्या—जादे जाणाइ किं करोमि। दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि।

संवादों में कहीं-कहीं वास्तविकता प्रत्यक्ष दिखलाई देती है। लव सूर्यवंश का शिशु है। उसे राजपुरुष की घोषणा जलाये जा रही है। वह कहता है—

सन्दीपनान्यक्षराणि। तत्किमक्षत्रिया पृथ्वी। अन्त में आदेश देता है—

भो भो वटवः परिवृत्य लोष्ठैश्चाभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्ये वराकश्चरतु।

दूसरी ओर वहीं ब्राह्मण-बटु कहते हैं—

कुमार कृतमनेनाश्वेन। तर्जयन्ति विस्फुरितशस्त्राः कुमारायुधीयश्रेणयः। दूरे चाश्रमपदमितस्तदेहि हरिणप्लुतैः पलायामहे।

एकोक्ति

भवभूति को चाव था कि किसी पात्र को अपनी धुन में रमाकर एकान्त में या साथ के अन्य पात्रों की उपस्थिति का ध्यान न रखते हुए किसी पात्र से अपना करुणाकलित हृदय खोल कर रखवा दें। राम की गोद में सीता सोई हैं और राम कहते हैं **'अद्वैतं सुखदुखयोः'** आदि १·३६। पुनः दुर्मुख से सीतापवाद सुनकर राम का **'सतां केनापि कार्येण** आदि १·४१ से लेकर १·४३ तक दुर्मुख की उपस्थिति में ही ऐसे कहना मानो उसकी उपस्थिति नगण्य है। पुनः दुर्मुख के चले जाने पर **'शैशवात् प्रभृति'** आदि १·४५ से १·४६ तक आत्मनिन्दा करना अनुत्तम एकोक्तियाँ हैं। विष्कम्भक के पश्चात् दूसरे अंक में राम रङ्गमञ्च पर अकेले हैं। ऐसी स्थिति वे **'रे हस्त दक्षिण'** आदि २·१० में शूद्र मुनि के हन्ता होने के कारण आत्मनिन्दा करते हैं। फिर शम्बूक के रङ्गमञ्च पर होने पर भी उसकी उपस्थिति की उपेक्षा करके १७वें से १६वें पद्य तक वन में सीता-विषयक चिन्ता प्रकट करते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने शम्बूक के चले जाने पर रङ्गमञ्च पर अकेले ही २२वें से २८वें पद्य तक गिरि, सरित्तट, वनान्त, आदि की प्राकृतिक रमणीयता का अपने आप के लिए वर्णन किया और भूतकाल में सीता के साथ पंचवटी में रहने का स्मरण किया।

तीसरे अंक में सर्वप्रथम एकोक्ति नेपथ्य से अष्टम तथा नवम पद्यों में है। इसमें प्रकृति के निर्जन वातावरण में सीता का स्मरण कर-करके राम अकेले में शोक करते हैं और अन्त में मूर्च्छित हो जाते हैं। उनके रङ्गमञ्च पर पहुँचने पर वासन्ती और अदृश्य सीता भी साथ हैं। साथ होने पर भी अदृश्य सीता विषयक उक्ति अनूठी एकोक्ति कही जा सकती है, जब वासन्ती भी उनके साथ है, पर राम अपनी धुन में इतने रमे हैं कि वे वासन्ती की बात तक नहीं सुनते। यथा, **'करकमलवितीर्णैः'** आदि ३·२५।

एकोक्ति प्रायः अपने से सम्बद्ध पिछली घटनाओं के विषय में किसी पात्र की भावात्मक विचारणा होती है। तीसरे अंक के छाया-प्रकरण में भवभूति ने सीता-विषयक समकालिक घटना के प्रतिघातात्मक विचारणा को राम की एकोक्ति द्वारा प्रस्तुत करके रसनिर्भरता की नई योजना कार्यान्वित की है। यथा **'करपल्लवः स तस्याः'** इत्यादि ३·४१।

चतुर्थ अंक के आरम्भ में जनक रङ्गमञ्च पर अकेले हैं और तीन पद्यों और कतिपय गद्यांशों में वे सीता की दुर्गति पर शोक, अपनी चिन्ता, आत्महत्या का विचार, सीता के शैशव की स्मृति आदि प्रकट करते हैं। इस प्रकार प्रयोजन, अवसर और विषय की दृष्टि से एकोक्तियों की प्रचुर राशि उत्तररामचरित की एक विशेषता है।

शैली

पदावली

भवभूति की शैली भावानुरूप सरल या कठिन है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति करते समय सरल तथा कान्त पदावली का प्रयोग साधारणतः सर्वत्र मिलता है। यथा,

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः। १.१९

अथवा—

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी-तटेषु
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि[1]॥ १.२७

कठोरीभूत दिवस का वर्णन करने में भाषा कठोर है। यथा,

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि—
र्घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥ २.९

इस श्लोक में अनुप्रासालङ्कारमात्र हैं, पर व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा उस प्रदेश की चतुर्दिक् सहानुभूति प्रकट होती है।

कवि की भाषा नाटक में साधारणतः बोलचाल की होनी चाहिए, किन्तु जहाँ किसी घनघोर दृश्य का स्मरण करना है, वहाँ भवभूति ने समासबहुला, संयुक्ताक्षर-प्रचुरा और बड़े शब्दों की संघटना प्रस्तुत की है।[2] यथा—जनस्थान के बीच तक जाने वाले पर्वत प्रस्रवण का वर्णन लक्ष्मण के मुख से इस प्रकार है—

अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः सततमभिष्यन्दमानमेघदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

प्रेम की बातों के लिए स्निग्धाक्षरों का प्रयोग किया गया है। यथा,

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।

---

१. एक अन्य उल्लेखनीय उदाहरण ३.२७ है।

२. भरत के अनुसार—गुर्वक्षरप्रायकृतं बीभत्से करुणे तथा। ना० शा० १६.११५

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।। १.३६

कवि की भाषा समान प्रकरण के लिए भी वक्ता के व्यक्तित्व के अनुरूप सरल या कठोर बनती गई है । वन का वर्णन लीजिये । द्वितीय अङ्क में शम्बूक द्वारा प्रस्तुत वर्णन कठोर भाषा में है और वहीं राम के द्वारा प्रस्तुत वर्णन अतीव सरल और मधुर भाषा में है । यथा,

शम्बूकः—दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मभिदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः ।। २.२१

रामः— एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीरनिचुलानि सरित्तटानि ।। २.२३

भवभूति को कुछ ही पदों के प्रयोग द्वारा एक बहुत बड़ी कथा को बिना कुछ छोड़े हुए कह देने में अनुपम लाघव प्राप्त है । उदाहरण के लिए लव का यह कहना—

अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसम्भवां सीतामासन्न-प्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्तः ।

कभी-कभी किसी महापुरुष या उसके उच्च भाव को प्रकट करने के लिए महिमा को मानो व्यक्त करने के उद्देश्य से लम्बे समास का प्रयोग किया गया है । यथा,

महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्यसम्भाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरितातिशयम् ।

यह लम्बा समास राम के व्यक्तित्व की लम्बाई की कल्पना कराता है ।

डा० पी० वी० काने ने भवभूति की शैली का पर्यालोचन करते हुए कहा है—

Bhavabhuti had a great command over language and was a master of style and expression. He often composes verses where the sound is an echo to the sense.[१]

The popularity of Bhavabhuti and his power of putting truth in simple, trenchant and attractive language may be guaged from the fact that many of his verses and even some of his prose passages have attained the rank of proverbs and Subhasitas.

१. उत्तररामचरित के १.४०; ४.२९ तथा ५.२६ में उपर्युक्त गुण विशेष स्पष्ट हैं ।

अलंकार

भवभूति की शैली को अलङ्कार से बोझिल नहीं कहा जा सकता, यद्यपि प्रायः सभी सुप्रचलित अलङ्कारों का रसोद्बोधक प्रयोग उत्तररामचरित में मिलता है। इन अलङ्कारों के प्रयोग में संयम देखकर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कवि अलंकारों को काव्य-चमत्कार का प्रमुख साधन नहीं मानते। भाव-गाम्भीर्य की निर्झरिणी के प्रवाह को ही काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानते हुए उन्होंने अलङ्कारों के द्वारा भावगाम्भीर्य को गम्भीरतर बनाने का उपक्रम किया है। यथा,

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥ ३·२९

इसमें प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार के द्वारा राम के शोक और क्षोभ को प्रखरतर सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार की भावप्रखरता नीचे लिखे श्लोक में अलङ्कार-प्रयोग के द्वारा अभिव्यक्त की गई है——

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कु-
र्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः॥ ३·३५

अलङ्कारों में उपमानों का चयन उच्च स्तर पर किया गया है। यथा,

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः॥ ६·६

इस श्लोक में उपमालङ्कार में उपमान की खोज ब्रह्मदर्शन से की गई है। उपर्युक्त उच्चता का प्रभावपूर्ण उदाहरण नीचे के श्लोक में देखिये——

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यनामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः॥ ६·९

उपमान के संचयन में कहीं-कहीं भवभूति ने भाव-सामञ्जस्य और रूपसाम्य का ध्यान रखा है। यथा,

बाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मंगलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्॥ ६·२९

भवभूति ने अलङ्कारों के प्रयोग द्वारा प्रायः अपनी आख्यानात्मक उक्तियों और वक्तव्यों में बल ला दिया है। नीचे के श्लोक में प्रथम पद में आख्यान है। आख्यान की प्रामाणिकता तृतीय और चतुर्थ पाद के दृष्टान्तालङ्कार से प्रत्यक्ष सिद्ध है——

कष्टो जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय-
स्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।। १·१४

उपर्युक्त पद्य में राम का सीता के प्रति पूज्य भाव अभिव्यक्त है ही।

भवभूति ने अर्थान्तरन्यास के द्वारा सुभाषितों और सूक्तिरत्नों को यथास्थान जड़ दिया है। यथा,

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः । ४·११
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति। ४·१२
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ।। ६·११
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः । ६·१२
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति । ६·१४
को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तोर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे । ७·४

भाषा

जहाँ तक भाषा-प्रयोग का सम्बन्ध है, नाटक में स्त्री आदि पात्रों को प्राकृत बोलना ही चाहिए। ऐसा लगता है कि भवभूति को यह नियम बहुत प्रिय नहीं था। उत्तर-रामचरित में तो बहुत सी स्त्रियों को देवीरूप में प्रस्तुत करके उनसे संस्कृत का प्रयोग कराया गया है। प्रायः प्राकृत भाषा के वक्तव्य छोटे रखे गये हैं। भवभूति की दृष्टि में प्राकृत भाषा का स्थान बहुत उच्च नहीं था। वह इस बात से प्रकट है कि जिन स्त्रियों को संस्कृत बोलने की सुविधा थी, वे तो पद्यों के माध्यम से अपने भाव प्रायशः व्यक्त करती हैं, पर प्राकृत के पद्य किसी स्त्री के मुख से निस्सृत नहीं हुए। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि भवभूति प्राकृत को पद्यात्मक भाषा मानने में हिचकते थे।

उत्तररामचरित की उत्कृष्टता पर प्राचीन काल से ही आलोचक मुग्ध रहे हैं। कला की जिस उदात्त पृष्ठभूमि पर भवभूति ने इस नाटक का निर्वाह किया है, वह संस्कृत नाट्य साहित्य में विरल है।

आधुनिक आलोचकों के मत

प्रोफेसर विल्सन—Brilliant thoughts occur—the justice and beauty of which are not surpassed in any literature.

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—Noble and lofty sentiments abound in his work in a measure not to be seen in those of other poets.

भण्डारकर--He shows a just appreciation of the awful beauty and grandeur of Nature, enthroned in the solitudes of dense forests, cataracts and lofty mountains. He has an equally strong perception of stern grandeur in human character and is very successful in bringing out deep pathos and tenderness. He is skilful in detecting beauty even in ordinary things or actions and in distinguishing the nicer shades of feeling. He is a master of style and his cleverness in adapting his words to the sentiment is unsurpassed.

एस० के० डे--If he is a poet of human passion, having a strong perception of the nobility of human character and its deeply felt impulses and emotions, he is no less a lover of the overwhelming grandeur of nature, enthroned in the solitude of dense forests, sounding cataracts and lofty mountains. If he expresses his sensations with a painful and disturbing intensity and often strays into the rugged and formless, he thereby drinks deep at the very fountain of life; he realises the man's joy, even if he loses the artist's serenity. His unevenness and inequality, even his verbosity and slovenliness, are thus explicable. Bhavabhuti suffers from the excess of his qualities, but the qualities are those of a great, but powerfully sensitive, poetic mind.

प्राचीन आलोचकों के मत--

स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ।।[१]

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी ।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ।।[२]

भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ।।[३]

सुकविद्वितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्त्रितयोऽनयोः ।।[४]

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।[५]

---

१. धनपाल--तिलकमञ्जरी--प्रारम्भिक पद्य ३०

२. क्षेमेन्द्र--सुवृत्ततिलक ३.३३

३. गोवर्धनाचार्य--आर्यासप्तशती १.३६

४. भोजप्रबन्ध पद्य १९१

५. विक्रमार्क

रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परं विभूषा भवभूतिरेव ।।[1]

भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया ।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ।।[2]

मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः ।
वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा जनः कवीनामनुपृष्ठमेति ।।[3]

छन्द

भवभूति ने उत्तररामचरित में भी विविध प्रकार के बड़े-छोटे छन्दों में बहुसंख्यक श्लोकों को भरा है । पूरे पद्यों की संख्या २५५ है, जिनमें १९ प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं । संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक प्रयुक्त अनुष्टुप् है, जो ८९ पद्यों में मिलता है। इनके अतिरिक्त शिखरिणी ३० पद्यों में, वसन्ततिलका २६ पद्यों में, शार्दूलविक्रीडित २५ में, मालिनी १६, मन्दाक्रान्ता १३ और हारिणी ९ पद्यों में प्रयुक्त हैं। छन्दः-शास्त्र के मर्मज्ञ जानते हैं कि इन छन्दों के प्रयोग से कवि की प्रौढ कवित्व-शक्ति अभिव्यक्त होती है । शिखरिणी और हारिणी छन्द करुण के लिए विशेष प्रभावशाली हैं ।

रस

भवभूति की इस रचना में हास्यादि अगम्भीर रसों को स्थान नहीं मिलना साधारण सी बात होती, किन्तु हास्य के बिना रामचरित को न पूरा करने ही के लिए मानो कवि ने वसिष्ठ की धार्मिकता से विषण्ण सौधातकि के द्वारा उनका ईषत् परिहास कराया है । बात यह थी कि सौधातकि जिस प्यारी बछिया को चराता था, उसी को दाढ़ीबाबा (वसिष्ठ) महर्षि ने अर्घ-विधि के अनन्तर खा डाला । बस देखिए सौधातकि को क्या कहना है। बछिया मरी तो उसको चराने से छुट्टी मिली और दूसरी छुट्टी मिली शिष्टानध्याय की। सौधातकि कहता है अपने साथी से—

सौधातकि—पढ़ाई से छुट्टी दिलाने वाले इन अनेक प्रकार के दढ़ियल लोगों का भला हो ।

दाण्डायन—सौधातके, गुरुओं का यह घोर आदर प्रदर्शित करने का कोई बड़ा कारण अवश्य ही है ।

सौधातकि—भो दाण्डायन, इस बड़े सठियाये हुए लोगों के झुण्ड का धुरन्धर नेता अतिथि कौन आया है ?

दाण्डायन—धिक्कार है तुम्हारे प्रहसन को । ये वसिष्ठ हैं ।

१–२. जल्हण—सूक्तिमुक्तावली
३. उदयसुन्दरीचम्पू

सौधातकि—मैंने तो समझा था कि यह कोई बाघ या भेड़िया आ गया ।

दाण्डायन—क्या बकते हो ?

सौधातकि—आते ही तो बिचारी कपिला कल्याणी को मडमड़ा गये ।

यह प्रसङ्ग भवभूति के इस नाटक में आवश्यक नहीं था । सम्भवतः हास्य के लिए ही इसे स्थान दिया गया है ।

इस नाटक में रस की दृष्टि से करुण का सर्वाधिक महत्त्व है । प्रस्तुत अंक में करुण का प्रवाह अन्य अंकों की अपेक्षा विशेष प्रखर है । भवभूति के शब्दों में—

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ।

और—

करुणस्य मूर्तिरथवाशरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।। ३.४

भवभूति के अनुसार करुण ही सर्वोपरि रस है । उन्होंने वेदान्त दर्शन की पृष्ठ-भूमि लेकर इस अंक में कहा है कि करुण ही विभिन्न रसों का रूप ग्रहण करता है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुद्तरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ।। ३·४७

भवभूति का इस अंक का करुण लौकिक दृष्टि से निर्वासित पत्नी के मानसिक विक्षोभ को प्रशान्ति प्रदान करने के लिए है । सीता ने स्वयं कहा है—

जाणं पच्चएण णिक्कालणपरिच्चाअसल्लिदो वि बहुमदो मह जम्मलाहो ।

तृतीय अंक में करुण की निर्झरिणी को वेग प्रदान करने के लिए कहा गया है कि राम सीता को मरी हुई मानते हैं । । उत्तररामचरित के पहले किसी अन्य ग्रन्थ में राम के विषय में यह नहीं दिखाया गया कि वे सीता को मृत समझते थे ।

इस अंक में वात्सल्य रस की निर्झरिणी भी प्रवाहित की गई है । करिकलभक, गिरिमयूर आदि के प्रकरण में इस रस का मनोरम निर्वाह किया गया है । इनके साथ ही लव-कुश का प्रकरण भी व्यञ्जना से अनुबद्ध है । इनके विषय में सीता कहती हैं—मेरे पुत्रों के कुछ-कुछ विरल-कोमल-धवल दर्शन के कारण उज्ज्वल कपोल वाला, सतत मुग्ध काकली और हास्य वाला, बँधे हुए काक शिखण्डक वाला, अमल मुख-कमलों का युग्म आर्यपुत्र के द्वारा नहीं चुम्बित हुआ ।

शृंगार और वीर रस का परिपोष भी इस अंक में यत्र तत्र हुआ है । मूर्च्छित राम का स्पर्श करती हुई सीता कहती हैं—

पर यह मेरा हाथ चिर सद्भाव से सौम्य और आर्यपुत्र के शीतल स्पर्श से दीर्घ-कालीन दारुण सन्ताप को शीघ्र ही दूर करते हुए मानो वज्रलेप से उपनिबद्ध किया हुआ पसीने से लथपथ निःसह और विपर्यस्त वेपनशील और अवश जैसा हो गया है। इसी अंक में अदृश्य सीता ने राम का जो स्पर्श किया तो--

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी
जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा ।
मरुन्नवाम्भः प्रविधूतसिक्ता
कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ॥ ३·४२

शृंगाररस का दूसरा उत्कृष्ट उदाहरण है--

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते ॥
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥ ३·३७

शृंगाररस की निष्पत्ति प्रासङ्गिक वृत्त के करिकलभक के कान्तानुवृत्तिचातुर्य में भी स्पष्ट है--

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसङ्क्रान्तयः ।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥ ३·१६

वीररस की निष्पति करिकलभक के द्विरदपति से भिड़न्त के प्रकरण में होती है

वध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा-
दुद्दामेनद्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः ॥ ३·४३

रौद्र रस की निष्पत्ति जटायु और रावण के युद्धसम्बन्धी संस्मरणों में है। यथा,

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-
स्ते चैते पुनः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषाः खराः ।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह-
न्नन्तर्व्यावृतविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः ॥ ३·४३

ऊपर के निदर्शन से स्पष्ट है कि इस तृतीय अंक में यद्यपि करुण का ही एकमात्र क्षेत्र है, तथापि पूर्वानुस्मृति के प्रकर्ष से शृंगार, वात्सल्य, वीर, रौद्र आदि रसों की सहचारिता सम्भव हुई है। यही देखकर भवभूति ने तमसा के मुख से कहलवाया है--

अहो संविधानकम्
एको रस करुण एव निमित्तभेदात् आदि ।

दोष

भवभूति के दोष विदेशी आलोचकों ने प्रायः गिनाये हैं। उनके इस सम्बन्ध के मतों के तथ्यातथ्य का निरूपण किया जा चुका है। हम यहाँ कुछ ऐसे दोषों की चर्चा करेंगे, जो पात्रों की स्थिति और अवस्था के अनुकूल नहीं लगते। पञ्चम अंक के अन्त में लव के द्वारा चन्द्रकेतु के चाचा राम की निन्दा करवाना ठीक नहीं है। षष्ठ अंक में बारह वर्ष के ब्रह्मचारी कुश का राम से यह कहना कि

विना सीता देव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ॥ ६·३०

वास्तव में पाँचवें अंक के चतुर्थ और पञ्चम श्लोक के अनुसार कुश शिशु था। उस शिशु से यह कहलवाना कि पत्नी के मर जाने पर संसार अरण्य हो जाता है—अनुचित सा लगता है।

राम का शिशु और ब्रह्मचारी कुश से सीता की शरीरसौष्ठव-विषयक उत्कृष्टता का निदर्शन करना नितान्त अयोग्य है। बाप-बेटे की बातचीत का स्तर तो दूसरा होना चाहिए था ही—एक शिशु ब्रह्मचारी से मर्यादा पुरुषोत्तम राम का इस कामुकता के स्तर पर चर्चायें करना सापवाद है।

भवभूति के अन्य दोष यूरोपीय आलोचना-सरणि पर गिनाये जाते हैं। कथावस्तु विन्यास के विषय में भवभूति निपुण नहीं थे। नाटकीय वस्तु-विन्यास में कालसीमा का ध्यान नहीं रखा गया है। पहले और दूसरे अंक में १२ वर्ष का सुदीर्घ अन्तराल है। भवभूति ने विशेषतः गद्य भाग को लम्बे समासों से सजाया है। ऐसी समास-मालिका नाट्योचित नहीं है। गद्य और पद्य भागों को एक ही नाटक में भी पुनः पुनः प्रयोग करने में भवभूति को कोई हिचक नहीं दिखाई देती। करुण रस की धारा कहीं-कहीं इतनी गहरी हो गई है, प्रेक्षक या पाठक उसमें डूब-सा जाता है। भवभूति पत्थर को भले रुलाते, पर राम को इतना रुलाना कहाँ तक उचित है।

उत्तररामचरित की प्रस्तावना में जो कथावस्तु का अंश आ गया है, वह वास्तव में एक शुद्ध विष्कम्भक में अलग से रखा जाना चाहिए था। प्रस्तावना में कथावस्तु का ईषत्प्रपञ्च भी शास्त्र की दृष्टि से समीचीन नहीं है।[1] इसी प्रकार सातवें अंक के आरम्भ में दी हुई लक्ष्मण की एकोक्ति अलग से विष्कम्भक में प्रस्तुत करने योग्य है। यह विशुद्ध अर्थोपक्षेपक-तत्त्व है।

भवभूति ने सीता के निर्वासन के समय कौसल्या और वसिष्ठ आदि को ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में जाने का जो कल्पित कथा-संयोजन किया है, वह पूर्णतया अस्वाभाविक

---

१. एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीं संवृत: आदि से प्रस्तावना के अन्त तक।

प्रतीत होता है। सीता का जिस दिन निर्वासन हुआ, उसी दिन कौसल्या और वसिष्ठ आदि गये और उसी दिन लक्ष्मण के द्वारा गङ्गातट पर छोड़ी जाने पर उसे पुत्र-प्रसव हुआ। भला जिस दिन किसी बहू को पुत्र होने को हो, उसी दिन सास १२ वर्ष के लिए यज्ञ में भाग लेने बाहर चली जायेगी? इस सम्बन्ध में एक और विडम्बना है दोहद की। जिस दिन प्रसव होने को होता है, उस दिन प्रसव पीडा होती है न कि दोहद। उपर्युक्त दोष का परिहार यही कह कर किया जा सकता है कि वन में छोड़ी जाने पर असहायावस्था में संभ्रम के कारण सीता को उचित समय से दो-तीन मास पहले ही प्रसव हुआ। पर भवभूति ने इस प्रकार की बात कही नहीं है।

दोहद के अनुसार सीता राम के साथ बन में जाना चाहती थी, किन्तु लक्ष्मण उसे अकेले ही ले गये। सीता ने राम को साथ चलने के लिए क्यों नहीं रथ पर बैठते समय बुलाया? यह प्रश्न है तो, पर कुछ बहुत सटीक नहीं। नाटककार को सभी सन्देहों और वितर्कों को दूर करते हुए अपनी कृति को समाप्त कर लेना और उसे कलात्मक रूप भी दे लेना असम्भव होता है।

सातवें अंक के अन्त में शत्रुघ्न का लवणेश्वर को मार कर लौटने में भी कुछ लोगों को असामञ्जस्य दिखाई देता है। क्या वह युद्ध १२ वर्ष तक होता रहा? इस आक्षेप के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि शत्रुघ्न ने १२ वर्षों तक युद्ध नहीं किया, अपितु लवण को मार कर मथुरा में १२ वर्षों तक राज्य किया। भवभूति ने तो केवल इतना ही कहा है उत्खात लवणो-मधुरेश्वरः प्राप्तः। इसमें 'मधुरेश्वर' पद से स्पष्ट व्यक्त है कि १२ वर्ष का युद्ध-काल मानना ठीक नहीं है।[1]

---

१. उपर्युक्त कतिपय आक्षेपों के विवरण शारदारंजन राय के उत्तररामचरित की भूमिका में सविस्तर हैं।